प्रकाशक :
मनुभाई भ० मोदी, अध्यक्ष
श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,
श्रीमद् राजचंद्र आश्रम,
स्टेशन—अगास; वाया—आणंद,
पोस्ट—बोरिया-३८८१३० (गुज०)

[प्रथमावृत्ति प्रति १००० वि० सं० १९६१]
[द्वितीयावृत्ति प्रति १००० वि० सं० १९७२]
[तृतीयावृत्ति प्रति १००० वि० सं० २०२५]
[चतुर्थावृत्ति प्रति १५०० वि० सं० २०४२]

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कालोनी,
वाराणसी-२२१००१

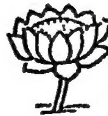
प्रकाशकीय निवेदन

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य रचित इस 'पंचास्तिकाय' नामक ग्रन्थका प्रथम संस्करण श्रीपरमश्रुत प्रभावक मण्डलकी ओरसे वि० सं० १९६१ में श्री अमृतचंद्राचार्यकृत 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृतटीका तथा श्रीमान् पं० पन्नालालजी वाकलीवाल कृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् वि० सं० १९७२ में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें श्री पं० मनोहर-लालजी शास्त्रीने शब्दार्थ समझनेकी सरलताके लिये श्री जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामकी संस्कृत टीका तथा सन्दर्भकी सुगमताके लिये विषयानुक्रमणिका तथा गाथानुक्रमणिका जोड़ दी, तथा प्रथम संस्करणमें रही हुई अशुद्धियाँ भी सुधार दी। फिर वि० सं० २०२५ में वही संशोधित सामग्री श्री पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थकृत नवीन हिंदी भाषामें तृतीय संस्करणके रूपमें प्रकाशित की गई। उसीका यह चतुर्थ संस्करण आज विद्वान पाठकोंके समक्ष रखते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता होती है।

मूलग्रन्थ आचार्यश्रीने प्राकृत भाषाकी १७३ गाथाओंमें रचा है जिस पर कई आचार्योंने अर्थगम्भीर संस्कृत टीकाएँ रची हैं। श्रीमद् राजचंद्रने भी इस ग्रन्थका (मूल प्राकृत गाथाओंका) अविकल (अक्षरशः) अनुवाद गुजराती भाषामें किया है जिसका हिन्दी अनुवाद इस ग्रन्थके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें दिया गया है।

श्रीमद् राजचंद्र जैन शास्त्रमालाकी ओरसे अनेक सद्ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है और हो रहा है। आशा है, पाठकगण इन ग्रन्थोंका पूरा लाभ उठाकर हमें निर्ग्रंथ-प्रवचनकी सेवाका अवसर देते रहेंगे।

—प्रकाशक



प्रस्तावना

(प्रथमावृत्ति)

जासके मुखारविंदते प्रकास भास वृन्द,
स्यादवाद जैनवैन इंदु कुन्दकुन्दसे ।
तासके अभ्यासतें विकास भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे ॥
देत हैं असीस सीस नाय इंद चंद जाहि,
मोह-मार-खण्ड-मारतंड कुन्दकुन्दसे ।
सुद्ध-बुद्धि-वृद्धिदा प्रसिद्ध-रिद्धि-सिद्धिदा,
हुए न हैं न होंहिंगे मुनींद कुन्दकुन्दसे ॥
(कविवर वृन्दावन)

आजसे २४३१ वर्ष पहिले अर्थात् सन् ईसवीसे ५२७ वर्ष पहिले इस भारतवर्षकी पुण्यभूमिमें विपुलाचल पर्वत पर जगत्पूज्य परमभट्टारक भगवान् श्री १००८ महावीर (वर्द्धमान) स्वामी मोक्ष मार्गका प्रकाश करनेके लिये समस्त पदार्थोंका स्वरूप अपनी सातिशय दिव्यध्वनि द्वारा प्रगट करते थे । उस समय निकटवर्ती अगणित ऋषि मुनियों द्वारा वंदनीय सप्तऋद्धि और चार ज्ञानके धारक श्रीगौतम (इन्द्रभूति) नामा गणधरदेव भगवद्भाषित समस्त अर्थको धारण करके द्वादशांग श्रुतरूप रचना करते थे । श्रीवर्द्धमानस्वामीके मोक्ष पधारनेके पश्चात् उक्त गौतम स्वामी १ सुधर्माचार्य २ और जम्बूस्वामी ३ ये तीन केवलज्ञानी हुये, सो ६२ वर्ष पर्यन्त श्रीवर्धमान तीर्थंकर भगवान्के समान ही मोक्षमार्गकी यथार्थ प्ररूपणा (उपदेश) करते रहे । इनके पश्चात् क्रमसे विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्धन ४ और भद्रबाहु ५ ये पाँच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी हुये । इन्होंने एकसौ वर्ष पर्यन्त केवली भगवान्के समान ही यथार्थ मोक्षमार्गका उपदेश किया । इनके पश्चात् विशाखाचार्य १ प्रौष्टिलाचार्य २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिमान् ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११ ये ग्यारह मुनि ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारक क्रमसे हुये, सो ये भी एकसौ तियासी वर्ष तक मोक्षमार्गका यथार्थ उपदेश देते रहे । इनके पश्चात् नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंशाचार्य ५ ये पांच महामुनि ग्यारह अंगमात्रके पाठी अनुक्रमसे दोसौ वीस वर्षमें हुये । इनके पश्चात् सुभद्र १ यशोधर २ महायश ३ लोहाचार्य ४ ये चार मुनि एक अंगके पाठी अनुक्रमसे ११८ वर्षमें हुये ।

इस प्रकार वर्धमान स्वामीके पश्चात् ६८३ वर्षपर्यन्त अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। इनके पश्चात् अंगपाठी कोई भी नहीं हुये, किन्तु वर्धमानस्वामीके मोक्ष पधारनेके ६८३ वर्षके पश्चात् दूसरे भद्रबाहु स्वामी अष्टांग निमित्तज्ञान (ज्योतिष) के धारक हुये। इनके समयमें १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़नेसे इनके संघमेंसे अनेक मुनि शिथिलाचारी हो गये और स्वच्छन्द प्रवृत्ति होनेसे जैनमार्ग भ्रष्ट होने लगा, तब भद्रबाहुके शिष्योंमेंसे एक धरसेन[1] नामके मुनि हुये जिनको अग्रायणीपूर्वमें पंचमवस्तुके महाप्रकृति नाम चौथे प्राभृतका ज्ञान था, सो इन्होंने अपने शिष्य भूतवली और पुष्पदन्त इन दोनों मुनियोंको पढ़ाया। इन्होंने षट्खंड नामकी सूत्ररचना कर पुस्तकमें लिखा। फिर उन षट्खंडसूत्रोंको अन्यान्य आचार्योंने पढ़कर उनके अनुसार विस्तारसे धवल महाधवल जयधवलादि टीकाग्रंथ (सिद्धान्त-ग्रन्थ) रचे। उन सिद्धान्तग्रन्थोंको नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकदेवने पढ़कर लब्धिसार, क्षपणासार, गोमट्ट-सारादि ग्रन्थोंकी रचना की। सो षट्खंड सूत्रसे लगाय गोमट्टसार पर्यन्तके ग्रन्थसमूहको प्रथमश्रुत-स्कंध वा सिद्धान्तग्रन्थ कहते हैं। इन सबमें जीव और कर्मके संयोगसे जो संसार पर्यायें होती हैं उनका विस्तारसे स्वरूप दिखाया गया है। अर्थात् भव्य जीवोंके हितार्थ गुणस्थान मार्गणाओंका वर्णन पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे समस्त कथन किया है। पर्यायार्थिक नयको अनेकान्त शैलीसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे अशुद्ध निश्चयनय तथा व्यवहारनय भी कहते हैं।

उक्त धरसेनाचार्यके समयमें ही एक गुणधर नामा मुनि हुये। उनको ज्ञानप्रवादपूर्वके दशम वस्तुमें तृतीय प्राभृतका ज्ञान था। उनसे नागहस्त नामा मुनिने उस प्राभृतको पढ़ा और इन दोनों मुनियोंसे फिर यतिनायक नामा मुनिने उक्त प्राभृतको पढ़कर उसकी ६००० चूर्णिकारूप सूत्र रचे, उन सूत्रोंपर समुद्धरण मुनिने १२००० श्लोकोंमें एक विस्तृत टीका रची। सो इस ग्रन्थको श्रीकुन्दकुन्द-स्वामी अपने गुरु जिनचन्द्राचार्यसे पढ़कर पूर्ण रहस्यके ज्ञाता हुए और उसही ग्रन्थके अनुसार कुन्द-कुन्दस्वामीने नाटक समयसार पंचास्तिकाय समयसार प्रवचनसारादि ग्रन्थ[2] रचे। ये सब ग्रन्थ द्वितीय-श्रुतस्कंधके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सबमें ज्ञानको प्रधान करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका कथन किया गया है अर्थात् अध्यात्मरीतिसे इन ग्रन्थोंमें आत्माका ही अधिकार है इसकारण इस शुद्धद्रव्यार्थिक नयका शुद्ध निश्चयनय वा परमार्थ भी नाम है। इन ग्रन्थोंमें पर्यायार्थिक नयोंकी गौणता की गई है। क्योंकि इस जीवकी जबतक पर्यायबुद्धि रहती है तबतक संसार ही है। और जब शुद्धनयका उपदेश श्रवण करनेसे द्रव्यबुद्धि होकर निज आत्माको अनादि अनन्त एक और परद्रव्य तथा परभावोंके निमित्तसे हुये जो निजभाव तिनसे भिन्न आपको जानकर अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभवकर शुद्धोप-योगमें लीन हो तबही कर्मोका अभावकर यह जीव मोक्षपदको प्राप्त होता है।

पट्टावलियोंके अनुसार ये कुन्दकुन्दस्वामी नन्दिसंघके आचार्योमें विक्रम संवत् ४९ में हुए हैं तथा पद्मनंदी एलाचार्य गृध्रपिच्छ और वक्रग्रीव ये ४ नाम भी इनहींके प्रसिद्ध किये गये हैं। यद्यपि ये नाम इनहीं के हों तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु पद्मनंदी आचार्यके बनाये हुये जगत्प्रसिद्ध पद्मनंदिपंच-विंशतिका, व जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ भी इनके बनाये हुये हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि पद्मनंदी नामके आचार्य कई हो गये हैं। जैसे एक तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्त्ता पद्मनंदि हैं जो कि वीरनंदिके शिष्य बलनंदी और बलनंदिके शिष्य पद्मनंदी हैं सो विजयगुरुके निकट वारानगरके शक्ति-

---

१ इनका बनाया हुआ एक अनेकार्थ कोश ईडरके भण्डारमें प्राप्त हुआ है।

२ इन्होंने ८४ पाहुड़ (प्राभृत) भी रचे हैं जिनमेंसे षट्पाहुड़ तो इस समय प्राप्त हैं।

भूपालके समयमें हुये[1] हैं। दूसरे—पद्मनंदिने पंचविंशतिका, चरणसारप्राकृत, धर्मरसायन प्राकृत, ये तीन ग्रन्थ बनाये हैं इनका समयादि कुछ प्राप्त नहीं हुआ। तीसरे पद्मनंदी कर्णखेट ग्राममें हुये हैं जिन्होंने सुगन्धदशम्युद्यापनादि ग्रन्थ बनाये हैं। चौथे—पद्मनंदी कुण्डलपुर निवासी हुये हैं जिन्होंने चूलिका सिद्धान्तकी व्याख्या वृत्ति नामक १२००० श्लोकोंमें बनाई है। पांचवें—पद्मनंदी विक्रम सं० १३९५ में हुये हैं। छट्ठे पद्मनंदी भट्टारक नामसे प्रसिद्ध हुये हैं जिनकी बनाई रत्नत्रयपूजा देवपूजा पूनाकी दक्षिणकालेज लाइब्रेरीमें प्राप्त हुई है। सातवें—पद्मनंदी विक्रम संवत १३६२ में भट्टारक नामसे हुये हैं इनकी लघुपद्मनंदी संज्ञा भी है। इनके बनाये हुये यत्याचार, आराधनासंग्रह, परमात्मप्रकाशकी टीका, निघंट वैद्यक, श्रावकाचार, कलिकुण्डपार्श्वनाथविधान, अनन्तकथा, रत्नत्रयकथा आदि ग्रन्थ हैं। इस प्रकार एक नामके धारी अनेक आचार्य हो गये हैं। यह सब नाम हमने पूना लाइब्रेरीकी रिपोर्टों परसे संग्रहीत किये हैं। इनमें तथ्य कितना है सो हम नहीं कह सकते और न इनका पृथक्-पृथक् समय निर्णय करनेका ही कोई साधन है। किन्तु इस पंचास्तिकायसमयप्राभृतके कर्त्ता कुन्दकुन्दस्वामी जगतमें प्रसिद्ध हैं। इनके बनाये समस्त ग्रन्थोंको दिगम्बरीय श्वेताम्बरीय दोनों ही पक्षके विद्वद्गण प्रमाणभूत मानकर परम आदरकी दृष्टिसे इनका स्वाध्याय अवलोकनादि करते रहते हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जैनी नहीं होगा जो इनके वचनोंमें अश्रद्धा करता हो।

इन आचार्य महाराजके बनाये हुये ग्रन्थोंके पूर्ण ज्ञाता पुरुषार्थसिद्ध्युपाय तत्त्वसारादि ग्रन्थोंके कर्त्ता अमृतचन्द्रसूरि विक्रम संवत ९६२ में नंदिसंघके पट्टीपर हो गये हैं। इन्होंने ही समयप्राभृत (समयसारनाटक) पंचास्तिकायसमयसार प्रवचनसारादि ग्रन्थोंपर परमोत्तम टीकायें रची हैं। इनके सिवाय इस पंचास्तिकाय समयसार पर एक टीका [2]देवजितनामा आचार्यने बनाई है तीसरी टीका विक्रम सं० १३१६ में प्रसिद्ध ग्रन्थकार व टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्यने बनाई है चौथी टीका सं० १७७५ में भट्टारक ज्ञानचन्द्रजीने बनाई है और पांचवीं टीका बालचन्द्रमुनिने कर्णाटक भाषामें बनाई है। अन्वेषण करनेसे इस ग्रन्थ पर और भी अनेक टीकायें प्राप्त होना सम्भव है। इनके पश्चात् भाषाकारोंका नम्बर है सो इसका एक भाषानुवाद तो वि० सं० १७१६ में पंडित राजमल्लजीने किया है। दूसरा भाषानुवाद वि० सं० १७०० के लगभग पंडित हेमराजने ३५०० श्लोकोंमें किया है। तीसरा भाषापद्यानुवाद वि० सं० १७१८ में जहानाबाद निवासी कवि हीराचन्दजीने २२०० श्लोकोंमें बनाया है। चौथा भाषापद्यानुवाद वि० सं० १८९१ में [3]विधिचन्दजीने १४०० श्लोकोंमें किया है।

हमको उक्त ग्रन्थोंमेंसे १ प्रति अमृतचन्द्रजी सूरिकृत संस्कृत टीकाकी पदच्छेद छाया व टिप्पणी सहित प्राप्त हुई और तीन प्रति पंडित हेमराजजीकृत ब्रजभाषानुवादकी प्राप्त हुई। जिनमें-से १ प्रति वि० सं० १७४१ की लिखी हुई देवरीनिवासी भाई नाथूराम प्रेमीसे प्राप्त हुई। दूसरी प्रति विना सं० मिती की लिखी खुरई निवासी पंडित खेमचन्द्रजी अध्यापक जैनपाठशाला ईडरसे प्राप्त हुई। तीसरी प्रति सं० १९४१ की लिखी हुइ वोरमगाँव निवासी दोसी बेलसी वीरचंदसे प्राप्त

---

१ यह बात बड़ौदा प्रान्तके करमसद ग्रामके पुस्तकालयस्थ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिकी अंतकी प्रशस्तिमें लिखी है।

२ पिटर्सन साहबकी रिपोर्ट चौथी नं० १४४२ का ग्रंथ।

३ लाहौर निवासी बाबू ज्ञानचन्द्रजीने बुधजन सतसई और बुधजनविलास आदि के कर्त्ता पं० बुधजनजी यही थे। ऐसा प्रगट किया गया है।

हुई। यद्यपि लेखक महाशयोंके प्रमादसे तीनों ही प्रतियाँ अशुद्ध हैं, परन्तु पहली प्रति दूसरी तीसरी से बहुत ही शुद्ध है।

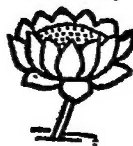
यद्यपि पंडित हेमराजजीकृत यह वचनिका प्राचीन व्रजभाषापद्धतिके अनुसार बहुत ही उत्तम और बालबोध है परन्तु आजकलके नवीन हिन्दी भाषाके संस्कारक महाशयोंकी दृष्टिमें यह व्रजभाषा समीचीन नहीं समझी जाती है, तथा सर्वदेशीय भी नहीं समझी जाती, इसकारण मैंने पंडित हेमराज-कृत भाषानुवादके अनुसार ही नई सरल हिन्दी भाषामें अविकल अनुवाद किया है। अर्थात् संस्कृतके प्रत्येक पदके पीछे 'कहिये, कहिये, शब्दको उठाने और संस्कृत पदोंको कोष्ठकमें रखनेके अतिरिक्त अपनी ओरसे अर्थमें कुछ भी न्यूनाधिक नहीं किया है। किन्तु जहाँ जहाँ मूलपाठ और अर्थमें लेखकों की भूलसे कुछ छूट गया है तथा अन्यका अन्य हो गया है, उसको मैंने संस्कृत टीकाके अनुसार शुद्ध करके लिखा है। पंचास्तिकायका विषय आध्यात्मिक होनेके कारण कठिन है, इसलिये, तथा प्रतियों की अशुद्धताके कारण प्रमादवशतः मुझ सरीखे अल्पज्ञ द्वारा अशुद्धियां रह जाना सम्भव है, इसकारण विद्वज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे उन्हें शुद्ध करके पढ़ें।

स्वर्गीय तत्त्वज्ञानी श्रीमान् रायचन्द्रजी द्वारा स्थापित श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलकी ओरसे इस ग्रन्थका जीर्णोद्धार हुआ है, अतएव उक्त मंडलके उत्साही सभासद और प्रवन्धकर्ताओंको इस प्रस्तावनाके अन्तमें कोटिशः धन्यवाद दिये जाते हैं, और श्रीजीसे प्रार्थना की जाती है कि वीतराग-देवप्रणीत उच्च श्रेणीके तत्त्वज्ञानका इच्छित प्रसार करनेमें उक्त मण्डल कृतकार्य होनेको शक्ति-वान् होवे।

श्रीमान् शेठ माणिकचन्द पानाचन्दजी जौहरीने अपने भतीजे स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द जी के स्मरणार्थ इस ग्रन्थके प्रकाशनमें ३५०) रु० की सहायता देकर विशेष उत्तेजना दी है, अतएव मंडल की ओरसे उक्त विद्योत्साही शेठजी भी विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

बम्बई, ता० १०-१२-१९०४ ई०

जैनसमाजका दास,
पन्नालाल बाकलीवाल.



इस युगके महान् तत्त्ववेत्ता

श्रीमद् राजचन्द्र

जिस महापुरुषकी विश्वविहारी प्रज्ञा थी, अनेक जन्मोंमें आराधित जिसका योग था अर्थात् जन्मसे ही योगीश्वर जैसी जिसकी निरपराध वैराग्यमय दशा थी तथा सर्व जीवोंके प्रति जिसका विश्वव्यापी प्रेम था, ऐसे आश्चर्यमूर्ति महात्मा श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म महान् तत्त्वज्ञानियोंकी परम्परारूप इस भारतभूमिके गुजरात प्रदेशान्तर्गत सौराष्ट्रके ववाणिया बन्दर नामक एक शान्त रमणीय गाँवके वणिक कुटुम्बमें विक्रम संवत् १९२४ (ईस्वी सन् १८६७) की कार्तिकी पूर्णिमा रविवारको रात्रिके दो बजे हुआ था। इसके पिताका नाम श्री रवजीभाई पंचाणभाई मेहता और माताका नाम श्री देवबाई था। इनके एक छोटा भाई और चार बहनें थीं। श्रीमद्जीका प्रेम-नाम 'लक्ष्मीनन्दन' था। बादमें यह नाम बदलकर 'रायचन्द' रखा गया और भविष्यमें आप 'श्रीमद् राजचन्द्र' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

बाल्यावस्था, समुच्चय वयचर्या

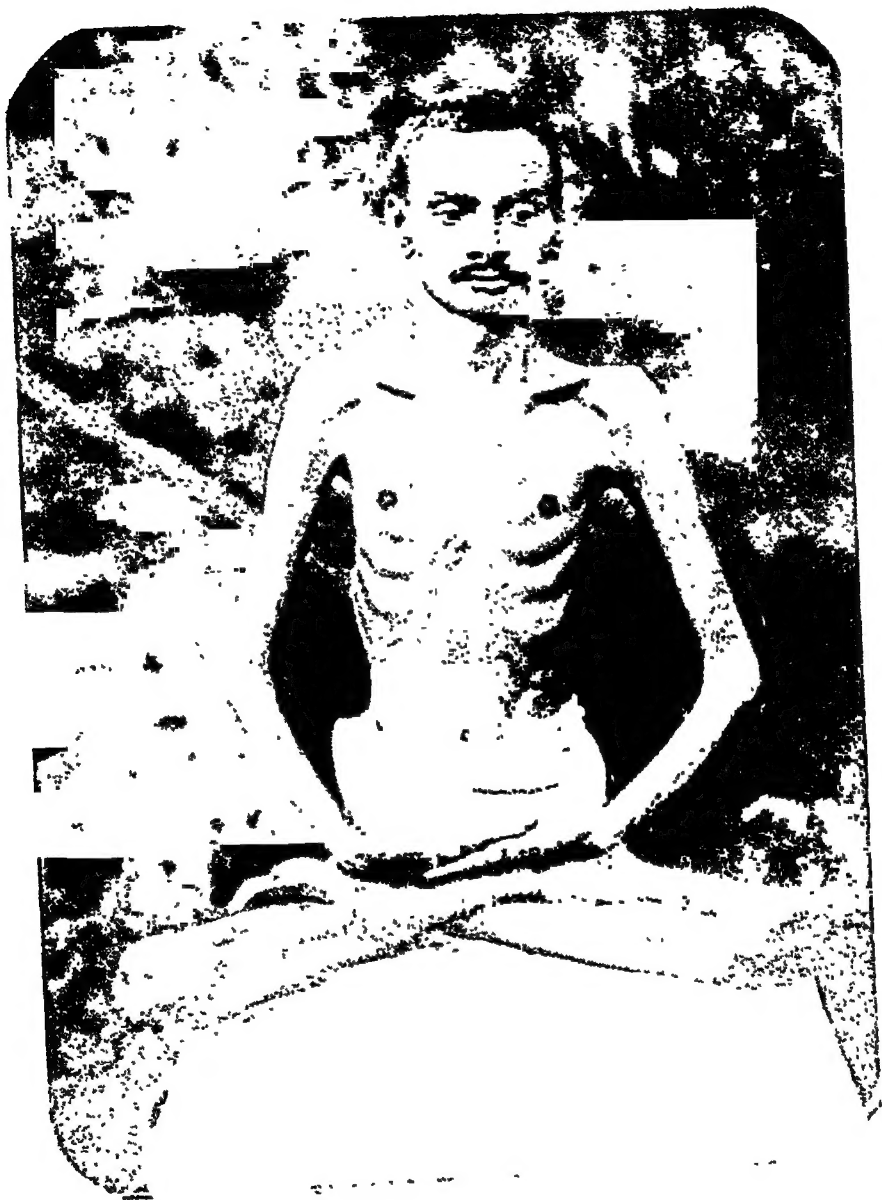
श्रीमद्जीके पितामह श्रीकृष्णके भक्त थे और उनकी माताजी देववाई जैनसंस्कार लाई थीं। उन सभी संस्कारोंका मिश्रण किसी अद्भुत ढंगसे गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति हमारे बाल-महात्माके हृदयमें प्रवाहित हो रहा था। अपनी प्रौढ़ वाणीमें बाईस वर्षकी उम्रमें इस बाल्यावस्थाका वर्णन 'समुच्चयवयचर्या' नामके लेखमें उन्होंने स्वयं किया है—

"सात वर्ष तक बालवयकी खेलकूदका अत्यन्त सेवन किया था। खेलकूदमें भी विजय पानेकी और राजेश्वर जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी परम अभिलाषा थी। वस्त्र पहननेकी, स्वच्छ रखनेकी, खाने-पीनेकी, सोने-बैठनेकी, सारी विदेही दशा थी; फिर भी अन्तःकरण कोमल था। वह दशा आज भी बहुत याद आती है। आजका विवेकी ज्ञान उस वयमें होता तो मुझे मोक्षके लिये विशेष अभिलाषा न रहती।

सात वर्षसे ग्यारह वर्ष तकका समय शिक्षा लेनेमें बीता। उस समय निरपराध स्मृति होनेसे एक ही बार पाठका अवलोकन करना पड़ता था। स्मृति ऐसी बलवत्तर थी कि वैसी स्मृति बहुत ही थोड़े मनुष्योंमें इस कालमें, इस क्षेत्रमें होगी। पढ़नेमें प्रमादी बहुत था। बातोंमें कुशल, खेलकूदमें रुचिवान और आनन्दी था। जिस समय शिक्षक पाठ पढ़ाता, मात्र उसी समय पढ़कर उसका भावार्थ कह देता। उस समय मुझमें प्रीति—सरल वात्सल्यता—बहुत थी। सबसे ऐक्य चाहता; सबमें भ्रातृभाव हो तभी सुख, इसका मुझे स्वाभाविक ज्ञान था। इस समय कल्पित बातें करनेकी मुझे बहुत आदत थी। आठवें वर्षमें मैंने कविता की थी; जो बादमें जाँचनेपर समाप थी।

अभ्यास इतनी त्वरासे कर सका था कि जिस व्यक्तिने मुझे प्रथम पुस्तकका बोध देना आरम्भ किया था उसीको गुजराती शिक्षण भली-भाँति प्राप्त कर उसी पुस्तकका पुनः मैंने बोध किया था।

मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति करते थे। उनसे उस वयमें कृष्णकीर्तनके पद मैंने सुने थे तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंके सम्बन्धमें चमत्कार सुने थे, जिससे मुझे भक्तिके साथ-साथ उन अवतारोंमें प्रीति हो गई थी, और रामदासजी नामके साधुके पास मैंने बाल-लीलामें कण्ठी बँधवाई थी।...उनके सम्प्रदायके महन्त होवें, जगह-जगहपर चमत्कारसे हरिकथा करते होवें और त्यागी होवें तो कितना आनन्द आये? यही कल्पना हुआ



श्रीमद् राजचन्द्र

जन्म : ववाणिया
वि. सं. १९२४ कार्तिक पूर्णिमा, रविवार

देहोत्सर्ग : राजकोट
वि. सं. १९५७ चैत्र वद ५, मंगलवार

करती; तथा कोई वैभवी भूमिका देखता कि समर्थ वैभवशाली होनेकी इच्छा होती।""गुजराती भाषाकी वाचनमालामें जगतकर्त्ता सम्बन्धी कितने ही स्थलोंमें उपदेश किया है वह मुझे दृढ़ हो गया था, जिससे जैन लोगोंके प्रति मुझे बहुत जुगुप्सा आती थी""तथा उस समय प्रतिमाके अश्रद्धालु लोगोंकी क्रियाएँ मेरे देखनेमें आई थीं, जिससे वे क्रियाएँ मलिन लगनेसे मैं उनसे डरता था अर्थात् वे मुझे प्रिय न थीं।

लोग मुझे पहलेसे ही समर्थ शक्तिशाली और गाँवका नामांकित विद्यार्थी मानते थे, इसलिये मैं अपनी प्रशंसाके कारण जानबूझकर वैसे मण्डलमें बैठकर अपनी चपल शक्ति दर्शानेका प्रयत्न करता। कण्ठीके लिये बार-बार वे मेरी हास्यपूर्वक टीका करते; फिर भी मैं उनसे वाद करता और उन्हें समझानेका प्रयत्न करता। परन्तु धीरे-धीरे मुझे उनके (जैनके) प्रतिक्रमणसूत्र इत्यादि पुस्तकें पढ़नेके लिये मिलीं; उनमें बहुत विनयपूर्वक जगतके सब जीवोंसे मित्रता चाही है। अतः मेरी प्रीति इसमें भी हुई और उसमें भी रही। धीरे-धीरे यह प्रसंग बढ़ा। फिर भी स्वच्छ रहनेके तथा दूसरे आचार-विचार मुझे वैष्णवोंके प्रिय थे और जगतकर्त्ताकी श्रद्धा थी। उस अरसेमें कण्ठी टूट गयी; इसलिये उसे फिरसे मैंने नहीं बाँधा। उस समय बाँधने न बाँधनेका कोई कारण मैंने ढूँढ़ा न था। यह मेरी तेरह वर्षकी वयचर्या है। फिर मैं अपने पिताकी दूकानपर बैठता और अपने अक्षरोंकी छटाके कारण कच्छ-दरबारके उतारेपर मुझे लिखनेके लिये बुलाते तब मैं वहाँ जाता। दूकानपर मैंने नाना प्रकारकी लीला-लहर की हैं, अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, राम इत्यादिके चरित्रपर कविताएँ रची हैं; सांसारिक तृष्णाएँ की हैं, फिर भी मैंने किसीको न्यून-अधिक दाम नहीं कहा या किसीको न्यून-अधिक तौल कर नहीं दिया, यह मुझे निश्चित याद है।" (पत्रांक ८९)

जातिस्मरणज्ञान और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति

श्रीमद्जी जिस समय सात वर्षके थे उस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग उनके जीवनमें बना। उन दिनों ववाणियामें अमीचन्द नामके एक गृहस्थ रहते थे जिनका श्रीमद्जीके प्रति बहुत प्रेम था। एक दिन साँपके काट खानेसे उनकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह बात सुनकर श्रीमद्जी पितामहके पास आये और पूछा—'अमीचन्द गुजर गये क्या?' पितामहने सोचा कि मरणकी बात सुननेसे बालक डर जायेगा, अतः उन्होंने, व्यालू कर ले, ऐसा कहकर वह बात टालनेका प्रयत्न किया। मगर श्रीमद्जी बार-बार वही सवाल करते रहे। आखिर पितामहने कहा—'हाँ, यह बात सच्ची है।' श्रीमद्जीने पूछा—'गुजर जानेका अर्थ क्या?' पितामहने कहा—'उसमेंसे जीव निकल गया, और अब वह चल-फिर या बोल नहीं सकेगा; इसलिये उसे तालाबके पासके स्मशानमें जला देंगे।' श्रीमद्जी थोड़ी देर घरमें इधर-उधर घूमकर छिपे-छिपे तालाबपर गये और तटवर्ती दो शाखावाले बबूलपर चढ़कर देखा तो सचमुच चिता जल रही थी। कितने ही मनुष्य आसपास बैठे हुए थे। यह देखकर उन्हें विचार आया कि ऐसे मनुष्यको जला देना यह कितनी क्रूरता! ऐसा क्यों हुआ? इत्यादि विचार करते हुए परदा हट गया; और उन्हें पूर्वभवोंकी स्मृति हो आई। फिर जब उन्होंने जूनागढ़का गढ़ देखा तब उस (जातिस्मरणज्ञान) में वृद्धि हुई।

इस पूर्वस्मृतिरूप ज्ञानने उनके जीवनमें प्रेरणाका अपूर्व नवीन अध्याय जोड़ा। इसीके प्रतापसे उन्हें छोटी उम्रसे वैराग्य और विवेककी प्राप्ति द्वारा तत्त्वबोध हुआ। पूर्वभवके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा निश्चल हो गई। सम्वत् १९४९, कार्तिक वद १२ के एक पत्रमें लिखते हैं—"पुनर्जन्म है—जरूर है। इसके लिये 'मैं' अनुभवसे हाँ कहनेमें अचल हूँ। यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समय सिद्ध हुआ लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादि भाव किये हैं, उस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर यह वाक्य लिखा गया है।" (पत्रांक ४२४)

एक अन्य पत्रमें लिखते हैं—"कितने ही निर्णयोंसे मैं यह मानता हूँ कि इस कालमें भी कोई-कोई महात्मा गतभवको जातिस्मरणज्ञानसे जान सकते हैं; यह जानना कल्पित नहीं किन्तु सम्यक् (यथार्थ) होता है! उत्कृष्ट संवेग, ज्ञानयोग और सत्संगसे भी यह ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् पूर्वभव प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाता है। जब तक पूर्वभव अनुभवगम्य न हो तब तक आत्मा भविष्यकालके लिये सशंकित धर्मप्रयत्न किया करता है; और ऐसा सशंकित प्रयत्न योग्य सिद्धि नहीं देता।" (पत्रांक ६४)

अवधान-प्रयोग, स्पर्शनशक्ति

वि० सं० १९४० से श्रीमद्‌जी अवधान-प्रयोग करने लगे थे। धीरे-धीरे वे [1]शतावधान तक पहुँच गये थे। जामनगरमें बारह और सोलह अवधान करनेपर उन्हें 'हिन्दका हीरा' ऐसा उपनाम मिला था। वि० सं० १९४३ में १९ वर्षकी उम्रमें उन्होंने बम्बईकी एक सार्वजनिक सभामें डॉ० पिटर्सनकी अध्यक्षतामें शतावधानका प्रयोग दिखाकर बड़े-बड़े लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया था। उस समय उपस्थित जनताने उन्हें 'सुवर्णचन्द्रक' प्रदान किया था और 'साक्षात् सरस्वती'की उपाधिसे सम्मानित किया था।

श्रीमद्‌जीकी स्पर्शनशक्ति भी अत्यन्त विलक्षण थी। उपरोक्त सभामें उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके बारह ग्रन्थ दिये गये और उनके नाम भी उन्हें पढ़कर सुना दिये गये। बादमें उनकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर जो-जो ग्रन्थ उनके हाथपर रखे गये उन सब ग्रन्थोंके नाम हाथोंसे टटोलकर उन्होंने बता दिये।

श्रीमद्‌जीकी इस अद्‌भुत शक्तिसे प्रभावित होकर तत्कालीन बम्बई हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने उन्हें यूरोपमें जाकर वहाँ अपनी शक्तियाँ प्रदर्शित करनेका अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें कीर्तिकी इच्छा न थी, बल्कि ऐसी प्रवृत्ति आत्मोन्नतिमें बाधक और सन्मार्गरोधक प्रतीत होनेसे प्रायः बीस वर्षकी उम्रके बाद उन्होंने अवधान-प्रयोग नहीं किये।

महात्मा गांधीने कहा था

महात्मा गांधीजी श्रीमद्‌जीको धर्मके सम्बन्धमें अपना मार्गदर्शक मानते थे। वे लिखते हैं—

"मुझपर तीन पुरुषोंने गहरा प्रभाव डाला है—टाल्सटॉय, रस्किन और रायचन्दभाई। टाल्सटॉयने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दि लास्ट' से—जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है, और रायचन्दभाईने अपने गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिन्दु-धर्ममें शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करनेवाले रायचन्दभाई थे...."

जो वैराग्य (अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?) इस काव्यकी कड़ियोंमें झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमें प्रतिक्षण उनमें देखा है। उनके लेखोंमें एक असाधारणता यह है कि उन्होंने जो अनुभव

---

१. शतावधान अर्थात् सौ कामोंको एक साथ करना। जैसे शतरंज खेलते जाना, मालाके मनके गिनते जाना, जोड़ बाकी गुणाकार एवं भागाकार मनमें गिनते जाना, आठ नई समस्याओंकी पूर्ति करना, सोलह निर्दिष्ट नये विषयोंपर निर्दिष्ट छन्दमें कविता करते जाना, सोलह भाषाओंके अनुक्रमविहीन चारसौ शब्द कर्ताकर्मसहित पुनः अनुक्रमबद्ध कह सुनाना, कतिपय अलंकारोंका विचार, दो कोठोंमें लिखे हुए उल्टे-सीधे अक्षरोंसे कविता करते जाना इत्यादि। एक जगह ऊँचे आसनपर बैठकर इन सब कामोंमें मन और दृष्टिको प्रेरित करना, लिखना नहीं या दुबारा पूछना नहीं और सभी स्मरणमें रखकर इन सौ कामोंको पूर्ण करना। श्रीमद्‌जी लिखते हैं—"अवधान आत्मशक्तिका कार्य है यह मुझे स्वानुभवसे प्रतीत हुआ है।" (पत्रांक १८)

किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरेपर प्रभाव डालनेके लिये एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा।....

खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो होता ही। किसी समय इस जगतके किसी भी वैभवमें उन्हें मोह हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा।....

व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैंने कविमें देखा उतना किसी अन्यमें नहीं देखा।"

'श्रीमद् राजचन्द्र जयन्ती' के प्रसंग पर ईस्वी सन् १९२१ में गांधीजी कहते हैं—"बहुत बार कह और लिख गया हूँ कि मैंने बहुतोंके जीवनमेंसे बहुत कुछ लिया है। परन्तु सबसे अधिक किसीके जीवनमेंसे मैंने ग्रहण किया हो तो वह कवि (श्रीमद्जी) के जीवनमेंसे है। दयाधर्म भी मैंने उनके जीवनमेंसे सीखा है।.... खून करनेवालेसे भी प्रेम करना यह दयाधर्म मुझे कविने सिखाया है।"

गृहस्थाश्रम

वि० सं० १९४४ माघ सुदी १२ को २० वर्षकी आयुमें श्रीमद्जीका शुभ विवाह जौहरी रेवाशंकर जगजीवनदास मेहताके बड़े भाई पोपटलालकी महाभाग्यशाली पुत्री झबकबाईके साथ हुआ था। इसमें दूसरोंकी 'इच्छा' और 'अत्यन्त आग्रह' ही कारणरूप प्रतीत होते हैं। विवाहके एकाध वर्ष बाद लिखे हुए एक लेखमें श्रीमद्जी लिखते हैं—"स्त्रीके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारसे रागद्वेष रखनेकी मेरी अंशमात्र इच्छा नहीं है। परन्तु पूर्वोपार्जनसे इच्छाके प्रवर्तनमें अटका हूँ।" (पत्रांक ७८)

सं० १९४६ के पत्रमें लिखते हैं—"तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करनेपर गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है।" (पत्रांक ११३)

श्रीमद्जी गृहवासमें रहते हुए भी अत्यन्त उदासीन थे। उनकी मान्यता थी—"कुटुंबरूपी काजलकी कोठड़ीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो, तो भी एकान्तवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है उसका शतांश भी उस काजलकी कोठड़ीमें रहनेसे नहीं हो सकता, क्योंकि वह कषायका निमित्त है और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।" (पत्रांक १०३) फिर भी इस प्रतिकूलतामें वे अपने परिणामोंकी पूरी सम्भाल रखकर चले।

सफल एवं प्रामाणिक व्यापारी

श्रीमद्जी २१ वर्षकी उम्रमें व्यापारार्थ ववाणियासे बंबई आये और सेठ रेवाशंकर जगजीवनदासकी दुकानमें भागीदार रहकर जवाहिरातका व्यापार करने लगे। व्यापार करते हुए भी उनका लक्ष्य आत्माकी ओर अधिक था। व्यापारसे अवकाश मिलते ही श्रीमद्जी कोई अपूर्व आत्मविचारणामें लीन हो जाते थे। ज्ञानयोग और कर्मयोगका इनमें यथार्थ समन्वय देखा जाता था। श्रीमद्जीके भागीदार श्री माणेकलाल घेलाभाईने अपने एक वक्तव्यमें कहा था—"व्यापारमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ आती थीं, उनके सामने श्रीमद्जी एक अडोल पर्वतके समान टिके रहते थे। मैंने उन्हें जड़ वस्तुओंकी चिंतासे चिंतातुर नहीं देखा। वे हमेशा शान्त और गम्भीर रहते थे।"

जवाहिरातके साथ मोतीका व्यापार भी श्रीमद्जीने शुरू किया था और उसमें वे सभी व्यापारियोंमें अधिक विश्वासपात्र माने जाते थे। उस समय एक अरब अपने भाईके साथ मोतीकी आढ़तका धन्धा करता था। छोटे भाईके मनमें आया कि आज मैं भी बड़े भाईकी तरह बड़ा व्यापार करूँ। दलालने उसकी श्रीमद्जीसे भेंट करा दी। उन्होंने कस कर माल खरीदा। पैसे लेकर अरब घर पहुँचा तो उसके बड़े भाईने पत्र

दिखाकर कहा कि वह माल अमुक किमतके बिना नहीं बेचनेकी शर्त की है और तूने यह क्या किया ? यह सुनकर वह घबराया और श्रीमद्‌जीके पास जाकर गिड़गिड़ाने लगा कि मैं ऐसी आफतमें आ पड़ा हूँ। श्रीमद्‌जीने तुरन्त माल वापस कर दिया और पैसे गिन लिये। मानो कोई सौदा किया ही न था ऐसा समझकर होनेवाले बहुत नफेको जाने दिया। वह अरब श्रीमद्‌जीको खुदाके समान मानने लगा।

इसी प्रकारका एक दूसरा प्रसंग उनके करुणामय और निःस्पृही जीवनका ज्वलंत उदाहरण है। एक वार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्‌जीने हीरोंका सौदा किया कि अमुक समयमें निश्चित किये हुए भावसे वह व्यापारी श्रीमद्‌जीको अमुक हीरे दे। उस विषयका दस्तावेज भी हो गया। परन्तु हुआ ऐसा कि मुद्दतके समय भाव बहुत बढ़ गये। श्रीमद्‌जी खुद उस व्यापारीके यहाँ जा पहुँचे और उसे चिन्तामग्न देखकर वह दस्तावेज फाड़ डाला और बोले—"भाई, इस चिट्ठी (दस्तावेज) के कारण तुम्हारे हाथ-पाँव बँधे हुए थे। बाजार भाव बढ़ जानेसे तुमसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेने निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे ले लूँ तो तुम्हारी क्या दशा हो ? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।" वह व्यापारी कृतज्ञभावसे श्रीमद्‌जीकी ओर स्तब्ध होकर देखता ही रह गया।

भविष्यवक्ता, निमित्तज्ञानी

श्रीमद्‌जीका ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान भी प्रखर था। वे जन्मकुंडली, वर्षफल एवं अन्य चिह्न देखकर भविष्यकी सूचना कर देते थे। श्री जूठाभाई (एक मुमुक्षु) के मरणके बारेमें उन्होंने सवा दो मास पूर्व स्पष्ट बता दिया था। एक बार सं० १९५५ की चैत वदी ८ को मोरबीमें दोपहरके ४ बजे पूर्व दिशाके आकाशमें काले बादल देखे और उन्हें दुष्काल पड़नेका निमित्त जानकर उन्होंने कहा—"ऋतुको सन्निपात हुआ है।" तदनुसार सं० १९५५ का चौमासा कोरा रहा और सं० १९५६ में भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रीमद्‌जी दूसरेके मनकी बातको भी सरलतासे जान लेते थे। यह सब उनकी निर्मल आत्मशक्तिका प्रभाव था।

कवि-लेखक

श्रीमद्‌जीमें, अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति पद्यरूपमें करनेकी सहज क्षमता थी। उन्होंने 'स्त्रीनीति-बोधक', 'सद्बोधशतक', 'आर्यप्रजानी पड़ती', 'हुन्नरकला वधारवा विषे' आदि अनेक कविताएँ केवल आठ वर्षकी वयमें लिखी थीं। नौ वर्षकी आयुमें उन्होंने रामायण और महाभारतकी भी पद्य-रचना की थी जो प्राप्त न हो सकी। इसके अतिरिक्त जो उनका मूल विषय आत्मज्ञान था उसमें उनकी अनेक रचनाएँ हैं। प्रमुखरूपसे 'आत्मसिद्धि', 'अमूल्य तत्त्वविचार', 'भक्तिना वीस दोहरा', 'परमपदप्राप्तिनी भावना (अपूर्व अवसर)', 'मूलमार्ग रहस्य', 'तृष्णानी विचित्रता' है।

'आत्मसिद्धि-शास्त्र'के १४२ दोहोंकी रचना तो श्रीमद्‌जीने मात्र डेढ घंटेमें नड़ियादमें आश्विन वदी १ (गुजराती) सं० १९५२ को २९ वर्षकी उम्रमें की थी। इसमें सम्यग्दर्शनके कारणभूत छः पदोंका बहुत ही सुन्दर पक्षपातरहित वर्णन किया है। यह कृति नित्य स्वाध्यायकी वस्तु है। इसके अंग्रेजीमें भी गद्य-पद्यात्मक अनुवाद प्रगट हो चुके हैं।

गद्य-लेखनमें श्रीमद्‌जीने 'पुष्पमाला', 'भावनाबोध' और 'मोक्षमाला' की रचना की। इसमें 'मोक्ष-माला' तो उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जिसे उन्होंने १६ वर्ष ५ मासकी आयुमें मात्र तीन दिनमें लिखी थी। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। आज तो इतनी आयुमें शुद्ध लिखना भी नहीं आता जब कि श्रीमद्‌जीने एक अपूर्व पुस्तक लिख डाली। पूर्वभवका अभ्यास ही इसमें कारण था। 'मोक्षमाला'के सम्बन्धमें श्रीमद्‌जी लिखते हैं—"जैनधर्मको यथार्थ समझानेका उसमें प्रयास किया है, जिनोक्त मार्गसे कुछ भी न्यूनाधिक उसमें नहीं कहा

है। वीतराग मार्गमें आबालवृद्धकी रुचि हो, उसके स्वरूपको समझे तथा उसके बीजका हृदयमें रोपण हो, इस हेतुसे इसकी बालावबोधरूप योजना की है।"

श्री कुन्दकुन्दाचार्यके 'पंचास्तिकाय' ग्रन्थकी मूल गाथाओंका श्रीमद्जीने अविकल (अक्षरशः) गुजराती अनुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री आनन्दघनजीकृत चौबीसीका अर्थ लिखना भी प्रारम्भ किया था, और उसमें प्रथम दो स्तवनोंका अर्थ भी किया था; पर वह अपूर्ण रह गया है। फिर भी इतने से, श्रीमद्जीकी विवेचन शैली कितनी मनोहर और तलस्पर्शी है उसका ख्याल आ जाता है। सूत्रोंका यथार्थ अर्थ समझने-समझानेमें श्रीमद्जीकी निपुणता अजोड़ थी।

मतमतान्तरके आग्रहसे दूर

श्रीमद्जीकी दृष्टि बड़ी विशाल थी। वे रूढ़ि या अन्धश्रद्धाके कट्टर विरोधी थे। वे मतमतान्तर और कदाग्रहादिसे दूर रहते थे, वीतरागताकी ओर ही उनका लक्ष्य था। उन्होंने आत्मधर्मका ही उपदेश दिया। इसी कारण आज भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवाले उनके वचनोंका रुचिपूर्वक अभ्यास करते हुए देखे जाते हैं।

श्रीमद्जी लिखते हैं—

"मूलतत्त्वमें कहीं भी भेद नहीं है, मात्र दृष्टिका भेद है ऐसा मानकर आशय समझकर पवित्र धर्ममें प्रवृत्ति करना।" (पुष्पमाला–१४)

"तू चाहे जिस धर्मको मानता हो इसका मुझे पक्षपात नहीं, मात्र कहनेका तात्पर्य यही कि जिस मार्ग से संसारमलका नाश हो उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर।" (पुष्पमाला-१५)

"दुनिया मतभेदके बन्धनसे तत्त्व नहीं पा सकी।" (पत्रांक २७)

"जहाँ तहाँसे रागद्वेषरहित होना ही मेरा धर्म है''''मैं किसी गच्छमें नहीं हूँ, परन्तु आत्मामें हूँ यह मत भूलियेगा।" (पत्रांक ३७)

श्रीमद्जीने प्रीतम, अखा, छोटम, कबीर, सुन्दरदास, सहजानन्द, मुक्तानन्द, नरसिंह मेहता आदि सन्तोंकी वाणीको जहाँ-तहाँ आदर दिया है और उन्हें मार्गानुसारी जीव (तत्त्वप्राप्तिके योग्य आत्मा) कहा है। फिर भी अनुभवपूर्वक उन्होंने जैनशासनकी उत्कृष्टताको स्वीकार किया है—

"श्रीमान वीतराग भगवानोंने जिसका अर्थ निश्चित किया है, जो अचिन्त्य चिन्तामणिस्वरूप, परम-हितकारी, परम अद्भुत, सर्व दुःखोंका निःसंशय आत्यन्तिक क्षय करनेवाला, परम अमृतस्वरूप सर्वोत्कृष्ट शाश्वत है वह धर्म जयवन्त रहे, त्रिकाल जयवन्त रहे। उन श्रीमान् अनन्तचतुष्टयस्थित भगवानका और उस जयवन्त धर्मका आश्रय सदैव कर्तव्य है।" (पत्रांक ८४३)

परम वीतरागदशा

श्रीमद्जीकी परम विदेही दशा थी। वे लिखते हैं—

"एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसम्पत्तिके सिवाय हमें कुछ रुचिकर नहीं लगता; हमें किसी पदार्थमें रुचिमात्र रही नहीं है''''हम देहधारी है या नहीं—यह याद करते हैं तब मुश्केलीसे जान पाते हैं।" (पत्रांक २५५)

"देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है। क्योंकि हम भी अवश्य उसी स्थितिको पानेवाले हैं, ऐसा हमारा आत्मा अखण्डतासे कहता है और ऐसा ही है, जरूर ऐसा ही है।" (पत्रांक ३३४)

"मान लें कि चरमशरीरीपन इस कालमें नहीं है, तथापि अशरीरी भावसे आत्मस्थिति है तो वह भावनयसे चरमशरीरीपन नहीं, अपितु सिद्धत्व है; और यह अशरीरीभाव इस कालमें नहीं है ऐसा यहाँ कहें तो इस कालमें हम खुद नहीं हैं, ऐसा कहने तुल्य है।" (पत्रांक ४११)

अहमदावादमें आगाखानके बँगलेपर श्रीमद्‌जीने श्री लल्लुजी तथा श्री देवकरणजी मुनिको बुलाकर अन्तिम सूचना देते हुए कहा था—"हमारेमें और वीतरागमें भेद न मानियेगा।"

एकान्तचर्या, परमनिवृत्तिरूप कामना

मोहमयी (बम्बई) नगरीमें व्यापारिक काम करते हुए भी श्रीमद्‌जी ज्ञानाराधना तो करते ही रहते थे और पत्रों द्वारा मुमुक्षुओंकी शंकाओंका समाधान करते रहते थे; फिर भी बीच-बीचमें पेढ़ीसे विशेष अवकाश लेकर वे एकान्त स्थान, जंगल या पर्वतोंमें पहुँच जाते थे। मुख्यरूपसे वे खंभात, वडवा, काविठा, उत्तरसंडा, नडियाद, वसो, रालज और ईडरमें रहे थे। वे किसी भी स्थान पर बहुत गुप्तरूपसे जाते थे, फिर भी उनकी सुगन्धी छिप नहीं पाती थी। अनेक जिज्ञासु-भ्रमर उनके सत्समागमका लाभ पानेके लिये पीछे-पीछे कहीं भी पहुँच ही जाते थे। ऐसे प्रसंगोंपर हुए बोधका यत्किंचित् संग्रह 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें 'उपदेशछाया', 'उपदेशनोंध' और 'व्याख्यानसार' के नामसे प्रकाशित हुआ है।

यद्यपि श्रीमद्‌जी गृहवास-व्यापारादिमें रहते हुए भी विदेहीवत् थे, फिर भी उनका अन्तरङ्ग सर्वसंगपरित्याग कर निर्ग्रन्थदशाके लिये छटपटा रहा था। एक पत्रमें वे लिखते हैं—"भरतजीको हिरनके संगसे जन्मकी वृद्धि हुई थी और इस कारणसे जड़भरतके भवमें असंग रहे थे। ऐसे कारणोंसे मुझे भी असंगता बहुत ही याद आती है; और कितनी ही बार तो ऐसा हो जाता है कि उस असंगताके बिना परम दुःख होता है। यम अन्तकालमें प्राणीको दुःखदायक नहीं लगता होगा, परन्तु हमें संग दुःखदायक लगता है।" (पत्रांक २१७)

फिर हाथनोंधमें वे लिखते हैं—"सर्वसंग महास्रवरूप श्री तीर्थंकरने कहा है सो सत्य है। ऐसी मिश्रगुणस्थानक जैसी स्थिति कहाँ तक रखनी? जो बात चित्तमें नहीं सो करनी; और जो चित्तमें है उसमें उदास रहना ऐसा व्यवहार किस प्रकारसे हो सकता है? वैश्यवेषमें और निर्ग्रन्थभावसे रहते हुए कोटि-कोटि विचार हुआ करते हैं।" (हाथनोंध १-३८) "आकिंचन्यतासे विचरते हुए एकान्त मौनसे जिनसदृश ध्यानसे तन्मयात्मस्वरूप ऐसा कब होऊँगा?" (हाथनोंध १-८७)

संवत् १९५६ में अहमदाबादमें श्रीमद्‌जीने श्री देवकरणजी मुनिसे कहा था—"हमने सभामें स्त्री और लक्ष्मी दोनोंका त्याग किया है, और सर्वसंगपरित्यागकी आज्ञा माताजी देंगी ऐसा लगता है।" और तदनुसार उन्होंने सर्वसंगपरित्यागरूप दीक्षा धारण करनेकी अपनी माताजीसे अनुज्ञा भी ले ली थी। परन्तु उनका शारीरिक स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता गया। ऐसे ही अवसरपर किसीने उनसे पूछा—"आपका शरीर कृश क्यों होता जाता है?" श्रीमद्‌जीने उत्तर दिया—"हमारे दो बगीचे हैं, शरीर और आत्मा। हमारा पानी आत्मारूपी बगीचेमें जाता है, इससे शरीररूपी बगीचा सूख रहा है।" अनेक उपचार करनेपर भी स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ। अन्तिम दिनोंमें एक पत्रमें लिखते हैं—"अत्यन्त त्वरासे प्रवास पूरा करना था, वहाँ बीचमें सहराका रेगिस्तान संप्राप्त हुआ। सिर पर बहुत बोझ रहा था उसे आत्मवीर्यसे जिस प्रकार अल्पकालमें वेदन कर लिया जाय उस प्रकार प्रयत्न करते हुए, पैरोंने निकाचित उदयरूप थकान ग्रहण की। जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है।" (पत्रांक ९५१)

अन्त समय

स्थिति और भी गिरती गई। शरीरका वज़न १३२ पौंडसे घटकर मात्र ४३ पौंड रह गया। शायद उनका अधिक जीवन कालको पसन्द नहीं था। देहत्यागके पहले दिन शामको अपने छोटे भाई मनसुखलाल आदिसे कहा—"तुम निश्चिन्त रहना। यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होनेवाला है। तुम शान्ति और समाधिपूर्वक रहना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देहके द्वारा कही जा सकनेवाली थी उसे कहनेका समय नहीं है। तुम पुरुषार्थ करना।" रात्रिको ढाई बजे वे फिर बोले—"निश्चिन्त रहना, भाईका समाधिमरण है।" अवसानके दिन प्रातः पौने नौ बजे कहा—"मनसुख, दुःखी न होना। मैं अपने आत्म-स्वरूपमें लीन होता हूँ।" फिर वे नहीं बोले। इस प्रकार पाँच घण्टे तक समाधिमें रहकर संवत् १९५७ की चैत्र वदी ५ (गुजराती) मंगलवारको दोपहरके दो बजे राजकोटमें इस नश्वर शरीरका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त हुए। भारतभूमि एक अनुपम तत्त्वज्ञानी सन्तको खो बैठी। उनके देहावसानके समाचारसे मुमुक्षुओंमें अत्यन्त शोकके बादल छा गये। जिन-जिन पुरुषोंको जितने प्रमाणमें उन महात्माकी पहचान हुई थी उतने प्रमाणमें उनका वियोग उन्हें अनुभूत हुआ था।

उनकी स्मृतिमें शास्त्रमालाकी स्थापना

वि० सं० १९५६ के भादों मासमें परम सत्श्रुतके प्रचार हेतु बम्बईमें श्रीमद्जीने श्रीपरमश्रुतप्रभावक-मण्डलकी स्थापना की थी। श्रीमद्जीके देहोत्सर्गके बाद उनकी स्मृतिस्वरूप 'श्रीमद्राजचन्द्रजैनशास्त्रमाला'की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत दोनों सम्प्रदायोंके अनेक सद्ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है जो तत्त्वविचारकोंके लिये इस दुषमकालको बितानेमें परम उपयोगी और अनन्य आधाररूप हैं। महात्मा गांधीजी इस संस्थाके ट्रस्टी और श्री रेवाशंकर जगजीवनदास मुख्य कार्यकर्त्ता थे। श्री रेवाशंकरके देहोत्सर्ग बाद संस्थामें कुछ शिथिलता आ गई थी परन्तु अब उस संस्थाका काम श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगासके ट्रस्टियोंने सम्भाल लिया है और सुचारुरूपसे पूर्वानुसार सभी कार्य चल रहा है।

श्रीमद्जीके स्मारक

श्रीमद्जीके अनन्य भक्त आत्मनिष्ठ श्री लघुराजस्वामी (श्री लल्लुजी मुनि)की प्रेरणासे श्रीमद्जीके स्मारकके रूपमें और भक्तिधामके रूपमें वि० सं० १९७६ की कार्तिकी पूर्णिमाको अगास स्टेशनके पास 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम'की स्थापना हुई थी। श्री लघुराज स्वामीके चौदह चातुर्मासोंसे पावन हुआ यह आश्रम आज बढ़ते-बढ़ते गोकुल-सा गाँव बन गया है। श्री स्वामीजी द्वारा योजित सत्संगभक्तिका क्रम आज भी यहाँपर उनकी आज्ञानुसार चल रहा है। धार्मिक जीवनका परिचय करानेवाला यह उत्तम तीर्थ बन गया है। संक्षेपमें यह तपोवनका नमूना है। श्रीमद्जीके तत्त्वज्ञानपूर्ण साहित्यका भी मुख्यतः यहींसे प्रकाशन होता है। इस प्रकार यह श्रीमद्जीका मुख्य जीवन्त स्मारक है।

इसके अतिरिक्त वर्तमानमें निम्नलिखित स्थानोंपर श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर आदि संस्थाएँ स्थापित हैं जहाँपर मुमुक्षु-बन्धु मिलकर आत्म-कल्याणार्थ वीतराग-तत्त्वज्ञानका लाभ उठाते हैं—ववाणिया, राजकोट, मोरबी, वढवा, खम्भात, काविठा, सीमरडा, वडाली, भादरण, नार, सुणाव, नरोडा, सडोदरा, धामण, सायला, अहमदाबाद, ईडर, सुरेन्द्रनगर, वसो, वटामण, उत्तरसंडा, बोरसद, बम्बई (घाटकोपर एवं चौपाटी), देवलाली, बेंगलोर, इन्दोर, आहोर (राजस्थान), सिवाना (राजस्थान), मोम्बासा (आफ्रिका) इत्यादि।

अन्तिम प्रशस्ति

आज उनका पार्थिव देह हमारे बीच नहीं है मगर उनका अक्षरदेह तो सदाके लिये अमर है। उनके मूल पत्रों तथा लेखोंका संग्रह गुर्जरभाषामें 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हो चुका है (जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकट हो चुका है) वही मुमुक्षुओंके लिये मार्गदर्शक और अवलम्बनरूप है। एक-एक पत्रमें कोई अपूर्व रहस्य भरा हुआ है। उसका मर्म समझनेके लिये सन्तसमागमकी विशेष आवश्यकता है। इन पत्रोंमें श्रीमद्‌जीका पारमार्थिक जीवन जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है। इसके अलावा उनके जीवनके अनेक प्रेरक प्रसंग जानने योग्य है, जिसका विशद वर्णन श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम प्रकाशित 'श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला'में किया हुआ है (जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकट हो चुका है)। यहाँपर तो स्थानाभावसे उस महान विभूतिके जीवनका विहंगावलोकनमात्र किया गया है।

श्रीमद् लघुराजस्वामी (श्री प्रभुश्रीजी) 'श्री सद्‌गुरुप्रसाद' ग्रन्थकी प्रस्तावनामें श्रीमद्‌के प्रति अपना हृदयोद्‌गार इन शब्दोंमें प्रकट करते हैं—"अपरमार्थमें परमार्थके दृढ़ आग्रहरूप अनेक सूक्ष्म भूलभूलैयाँके प्रसंग दिखाकर, इस दासके दोष दूर करनेमें इन आप्त पुरुषका परम सत्संग और उत्तम बोध प्रबल उपकारक बने हैं....संजीवनी औषध समान मृतको जीवित करें, ऐसे उनके प्रबल पुरुषार्थ जागृत करनेवाले वचनोंका माहात्म्य विशेष-विशेष भास्यमान होनेके साथ ठेठ मोक्षमें ले जाय ऐसी सम्यक् समझ (दर्शन) उस पुरुष और उनके बोधकी प्रतीतिसे प्राप्त होती है; वे इस दुषम कलिकालमें आश्चर्यकारी अवलम्बन है। परम माहात्म्यवन्त सद्‌गुरु श्रीमद् राजचन्द्रदेवके वचनोंमें तल्लीनता, श्रद्धा जिसे प्राप्त हुई हैं या होगी उसका महद् भाग्य है। वह भव्य जीव अल्पकालमें मोक्ष पाने योग्य है।"

ऐसे महात्माको हमारे अगणित वन्दन हों!



पंचास्तिकायस्य वर्णानुक्रमेण गाथासूची

ॐ

द्रव्यानुयोग परम गंभीर और सूक्ष्म है, निर्ग्रंथ प्रवचनका रहस्य है. शुक्लध्यानका अनन्य कारण है। शुक्लध्यानसे केवलज्ञान समुत्पन्न होता है। महाभाग्यसे उस द्रव्यानुयोगकी प्राप्ति होती है।

दर्शनमोहका अनुभाग घटनेसे अथवा नष्ट होनेसे, विषयके प्रति उदासीनता से और महत्पुरुषके चरणकमलकी उपासनाके बलसे द्रव्यानुयोग परिणत होता है।

ज्यों ज्यों संयम वर्धमान होता है, त्यों त्यों द्रव्यानुयोग यथार्थ परिणत होता है। संयमको वृद्धिका कारण सम्यक्‌दर्शनकी निर्मलता है, उसका कारण भी 'द्रव्यानुयोग' होता है।

सामान्यतः द्रव्यानुयोगकी योग्यता प्राप्त करना दुर्लभ है। आत्मारामपरिणामी, परमवीतरागदृष्टिवान्, परम असंग ऐसे महात्मा पुरुष उसके मुख्य पात्र है।

किसी महत्पुरुषके मननके लिये [1]पंचास्तिकायका संक्षिप्त स्वरूप लिखा था; उसे मननके लिये इसके साथ भेजा है।

हे आर्य ! द्रव्यानुयोगका फल सर्व भावसे विराम पानेरूप संयम है। इस पुरुषके ये वचन अंतःकरणमें तू कभी भी शिथिल मत करना। अधिक क्या ? समाधिका रहस्य यही है। सर्व दुःखसे मुक्त होनेका अनन्य उपाय यही है।

❀ ❀ ❀

यदि मन शंकाशील हो गया हो तो 'द्रव्यानुयोग' विचारना योग्य है; प्रमादी हो गया हो तो 'चरणकरणानुयोग' विचारना योग्य है; और कषायी हो गया हो तो 'धर्मकथानुयोग' विचारना योग्य है; जड हो गया हो तो 'गणितानुयोग' विचारना योग्य है।

—श्रीमद् राजचन्द्र

---

१ देखिये, इसी ग्रंथमें, पृष्ठ २५६ पर।

अथ पंचास्तिकायस्य विषयानुक्रमणिका

श्रीमत्कुंदकुंदस्वामिविरचितः

पंचास्तिकायः



श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

पंचास्तिकायः

(टीकात्रयोपेतः)

श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृता तत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे[1] ।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने[2] परमात्मने ॥१॥
दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः ।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनीसिद्धान्तपद्धतिः ॥२॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः

स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने ।
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानंदचिदे नमः ॥१॥

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञश्रीमंदरस्वामितीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं, अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते । अथ प्रथमतः

श्रीपांडे हेमराजजीकृत बालावबोधभाषाटीका

[जिनेभ्यो नमः] सर्वज्ञ वीतरागको नमस्कार होहु । अनादि चतुर्गति संसारके कारण, रागद्वेषमोहजनित अनेक दुःखोंको उपजानेवाले जो कर्मरूपी शत्रु तिनको जीतनहारे होयँ सो ही जिन हैं.

---

१ पूज्याय गरिष्ठाय वा. २ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-भेदेन वा व्यवहारनिश्चयेन ।

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया ।
अथातः समयव्याख्या [1]संक्षेपेणाऽभि[2]धीयते ॥३॥

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणं ।
[3]पूर्वं मूलपदार्थानामिह[4] सूत्र[5]कृता कृतम् ॥४॥

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम् ।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था[6] प्रतिपादिता ॥५॥

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण[7] त्रितयात्मना ।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा[8] ॥६॥

अथात्र 'नमो जिनेभ्यः'[9] इत्यनेन[10] जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं[11] शास्त्रस्याऽऽदौ [12]मङ्गलमुपात्तं:—

इन्दसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥१॥

इन्द्रशतवन्दितेभ्यस्त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः ।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः ॥१॥

अनादिना संतानेन प्रवर्त्तमाना अनादिनैव संतानेन प्रवर्त्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता ये इत्यनेन[13] सर्वदैव देवाधिदेवत्वात्तेषा[14]मेवा[15]ऽसाधारणनमस्कारार्हत्वमुक्तम् ।

इन्द्रशतवन्दितेभ्य इत्यादि जिनभावनमस्काररूमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मंगलं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—"णमो जिणाण" मित्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते, **णमो जिणाणं** नमः नमस्कारोऽस्तु । केभ्यः । जिनेभ्यः । कथंभूतेभ्य. । **इंदसयवंदियाणं** इन्द्रशतवन्दितेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । **तिहुवणहिदमहुरविसदवक्काणं** त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः । पुनरपि किंविशिष्टेभ्यः । **अंतातीदगुणाणं** अन्तातीतगुणेभ्यः । पुनरपि । **जिदभवाणं** जित-

---

तिस ही जिनपदको नमस्कार करना योग्य है । अन्य कोई भी देव वंदनीक नहीं हैं, क्योंकि अन्य देवोंका स्वरूप रागद्वेषरूप होता है । और जिनपद वीतराग है, इस कारण कुन्दकुन्दाचार्यने इनको ही नमस्कार किया है । ये ही परम मंगलस्वरूप हैं । कैसे हैं सर्वज्ञ वीतरागदेव ? **[इन्द्रशतवन्दितेभ्यः]** सौ इन्द्रोंकर वन्दनीक हैं; अर्थात् भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यन्तर देवोंके ३२, कल्पवासी देवोंके

---

१ समुच्चयेन. २ कथ्यते. ३ तावत् प्रथमतः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमोऽधिकारः. ४ इह ग्रन्थे प्रथमाधिकारे वा. ५ आचार्येण, (मूलकर्ता श्रीवर्धमानः, उत्तरकर्ता श्रीगौतमगणधरः, उत्तरोत्तरकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सूत्रकारः) ६ सप्ततत्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयोऽधिकारः. ७ पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां ज्ञानपूर्वेण. ८ उत्तमा. ९ अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्म्मारातीन् जयन्तीति जिना. तेभ्यः. १० नमस्कारेण. ११ असदृशम्, १२ मलं पापं गालयतीति मङ्गलम्, वा मङ्गं सुखं तल्लाति गृह्णातीति मङ्गलं. १३ विशेषणेन वाक्येन वा. १४ जिनानाम्. १५ अनन्यसदृशम् ।

त्रिभुवनमूर्ध्वाधोमध्यलोकवर्ती समस्त एव जीवलोकस्तस्मै[1] निर्व्याबाधविशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भोपायाभिधायित्वाद्धितं। परमार्थरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरम्[2]। निरस्त-

---

भवेभ्यः, इति क्रियाकारकसंबन्धः। इन्द्रशतवन्दितेभ्य त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः। "पदयोर्विवक्षितः सुविनसमासान्तरयो" रिति परिभाषासूत्रबलेन विवक्षितस्य संधिर्भवतीति वचनात्प्राथमिकशिष्यप्रतिसुखबोधार्थमत्र ग्रन्थे संधेर्नियमो नास्तीति सर्वत्र ज्ञातव्यं। एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो जिनेभ्यो नमः इत्यनेन मंगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोस्त्विति संग्रहवाक्यं। अथैव कथ्यते इन्द्रशतैर्वन्दिता इन्द्रशतवन्दितास्तेभ्य इत्यनेन पूजातिशयप्रतिपादनार्थं। किमुक्तं भवति—त एवेन्द्रशतनमस्काराहा नान्ये। कस्मात्। तेषां देवासुरादियुद्धदर्शनात्। त्रिभुवनाय शुद्धात्मरूपप्राप्त्युपायप्रतिपादकत्वाद्धितं, वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूपपारमार्थिकसुखरसास्वादपरमसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृणस्पर्शशुक्तिकारजतविज्ञानरूपसंशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन शुद्धजीवास्तिकायादिसप्ततत्त्वनवपदार्थषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकत्वात् अथवा पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वात् अथवा कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकं त्रयमित्यष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषातदन्तर्भेदगतबहुभाषारूपेण युगपत्सर्वजीवानां स्वकीयस्वकीयभाषायाः स्पष्टार्थप्रतिपादकत्वात्प्रतिपत्तिकारकत्वात् सर्वजीवानां ज्ञापकत्वात् विशदं स्पष्टं व्यक्तं वाक्यं दिव्यध्वनिर्येषां त्रिभुवनहितमधुरविषदवाक्यास्तेभ्यः। तथाचोक्तं। "यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं, नो वांछा-

---

२४, ज्योतिषी देवोंके २, मनुष्योंका १, और तिर्यंचोंका १, इस प्रकार सौ इन्द्र[3] अनादिकालसे वर्तते हैं, सर्वज्ञ वीतराग देव भी अनादि कालसे हैं, इस कारण १०० इंद्रोंकर नित्य ही वंदनीय हैं, अर्थात् देवाधिदेव त्रैलोक्यनाथ हैं। फिर कैसे हैं? [**त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः**] तीन लोकके जीवोंके हित करनेवाले मधुर (मिष्ट-प्रिय) और विशद कहिये निर्मल हैं वाक्य जिनके ऐसे हैं। अर्थात् स्वर्गलोक, मध्यलोक, अधोलोकवर्ती जो समस्त जीव हैं, तिनको अखंडित निर्मल आत्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके उपाय बताते हैं, इस कारण हितरूप हैं। तथा वे ही वचन मिष्ट हैं, क्योंकि जो परमार्थी रसिक जन हैं, तिनके मनको हरते हैं, इस कारण अतिशय मिष्ट (प्रिय) हैं। और वे ही वचन निर्मल हैं, क्योंकि जिन वचनोंमें संशय, विमोह, विभ्रम, ये तीन दोष वा पूर्वापर विरोधरूपी दोष नहीं लगते हैं; इस कारण निर्मल हैं। ये ही (जिनेन्द्र भगवान्के अनेकान्तरूप) वचन समस्त वस्तुओंके स्वरूपको यथार्थ दिखाते हैं; इस कारण प्रमाणभूत हैं; और जो अनुभवी पुरुष हैं, वे ही इन वचनोंको अंगीकार करनेके पात्र हैं। फिर कैसे हैं जिन? [**अन्तातीतगुणेभ्यः**] अन्तरहित हैं गुण जिनके, अर्थात् क्षेत्रकर तथा कालकर जिनकी मर्यादा (अन्त) नहीं, ऐसे परम चैतन्य शक्तिरूप समस्त वस्तुओंको प्रकाश करनेवाले अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शनादि गुणोंका अन्त (पार) नहीं है।

---

१. जीवलोकाय त्रिभुवनाय, २. वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूपपारमार्थिकसुखरसास्वादसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वात् मधुरम्, ३. "भवणालयचालीसा वितरदेवाण होंति बत्तीसा। कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ॥१॥"

समस्तशंकादिदोषास्पदत्वाद्विशदवाक्यम् । दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात्प्रेक्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम् । अन्तमतीतः क्षेत्रानवच्छिन्नः काला-

कलितं न दोषमलिनं नोच्छ्वासरुद्धक्रमं । शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिस्तन्नः सर्वविदो विनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥१॥" इत्यनेन वचनातिशयप्रतिपादनेन तद्वचनमेव प्रमाणं न चैकान्तेनापौरुषेयवचनं न चित्रकथाकल्पितपुराणवचनं चेतीत्युक्तं भवति । अन्तातीतद्रव्यक्षेत्रकालभावपरिच्छेदकत्वादन्तातीतं केवलज्ञानगुणः स विद्यते येषां तेन्तातीतगुणास्तेभ्य इत्यनेन ज्ञानातिशयप्रतिपादनेन बुद्धयादिसप्तर्द्धिमतिज्ञानादिचतुर्विधज्ञानसंपन्नानामपि गणधरदेवादियोगीन्द्राणां वंद्यास्ते भवन्तीत्युक्तं । जितो भवः पञ्चप्रकारसंसार आजवं जवो यैस्ते जितभवास्तेभ्य इत्यनेन घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन कृतकृत्यत्वप्रकटनादन्येषामकृतकृत्यानां त एव शरणं नान्य इति प्रतिपादितं भवति । एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो नमः । इत्यनेन मंगलार्थमनंतज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः कृतः । इदं विशेषणचतुष्टयं अनेकभवगहनविषयव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः इति व्युत्पत्तिपक्षे श्वेतशंखवत्स्वरूपकथनार्थं, अव्युत्पत्तिपक्षे नामजिनव्यवच्छेदनार्थं । एवं विशेष्यविशेषणसंबंधरूपेण शब्दार्थः कथितः । अनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपभावनमस्कारोऽशुद्धनिश्चयनयेन, नमो जिनेभ्य इति वचनात्मकद्रव्यनमस्कारोप्यसद्भूतव्यवहारनयेन, शुद्धनिश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभाव इति नयार्थोप्युक्तः । त एव नमस्कारार्हा नान्ये चेत्यादिरूपेण मतार्थोप्युक्तः । इन्द्रशतवन्दिता इत्यागमार्थः प्रसिद्ध एव । अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकायमेवोपादेय इति भावार्थः । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थः । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थं व्याख्यानकाले सर्वत्र योजनीयमिति संक्षेपेण मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारः कृतः । मंगलमुपलक्षणं निमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृरूपा पञ्चाधिकाराः यथासंभवं वक्तव्याः । इदानीं पुनर्विस्तररुचिशिष्याणां व्यवहारनयमाश्रित्य यथाक्रमेण मंगलादिषडधिकाराणामियत्तापरिमितविशेषणव्याख्यानं क्रियते—"मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं । वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्यमाइरिओ ॥१॥" वक्खाणउ व्याख्यातु । स कः कर्त्ता । आइरिओ आचार्यः । किं । सत्थं शास्त्रं पच्छा पश्चात् । किं कृत्वा पूर्वं । वागरिय व्याकृत्य व्याख्याय । कान् । छप्पि षडपि मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं मंगलनिमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृत्वाधिकाराणीति । तद्यथा—मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगलं, अथवा मंगं पुण्यं सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलं । चतुष्टयफलं समीक्ष्यमाणा ग्रन्थकाराः शास्त्रस्यादौ त्रिधा देवतायास्त्रेधा नमस्कारं कुर्वन्ति मंगलार्थं ॥

फिर कैसे हैं जिन ? [जितभवेभ्यः] जीता है पंचपरावर्त्तनरूप अनादि संसार जिन्होंने, अर्थात्—

१. यः सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान्, पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वतः । जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते, सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥

नवच्छिन्नश्च परमचैतन्य-शक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञा-

"नास्तिक्यपरिहारस्तु शिष्टाचारप्रपालनम्। पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥१॥" त्रिधा देवता कथ्यते। केन। इष्टाधिकृतताभिमतभेदेन। आशीर्वस्तुनमस्क्रियाभेदेन नमस्कारस्त्रिधा। तच्च मंगलं द्विविधं मुख्यामुख्यभेदेन। तत्र मुख्यमंगलं कथ्यते "आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः। तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये ॥१॥" तथाचोक्तं। "विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु, न क्षुद्रदेवाः परिलंघयन्ति। अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥" "आई मंगलकरणे सिस्सा लहु पारगा हवंतित्ती। मज्झे अव्वुच्छित्ती विज्जा विज्जाफलं चरिमे ॥" अमुख्य-मंगलं कथ्यते—"सिद्धत्थ पुण्णकुम्भो वंदणमाला य पंडुरं छत्तं। सेदो वण्णो आदस्स णाय कण्णा य जत्तस्सो ॥१॥ वयणियमसंजमगुणेहिं साहिदो जिणवरेहिं परमट्ठो। सिद्धासण्णा जेसिं सिद्धत्था मंगलं तेण ॥२॥ पुण्णा मणोरहेहि य केवलणाणेण चावि संपुण्णा। अरहंता इदि लोए सुमंगलं पुण्णकुम्भो दु ॥३॥ णिग्गमणपवेसम्हि य इह चउवीसंपि वंदणीज्जा ते। वंदणमालेत्ति कया भरहेण य मंगलं तेण ॥४॥ सव्वजणणिव्वुदियरा छत्तायारा जगस्स अरहंता। छत्तायारं सिद्धित्ति मंगलं तेण छत्तं तं ॥५॥ सेदो वण्णो झाणं लेस्सा य अघाइसेसकम्मं च। अरुहाणं इदि लोए सुमंगलं सेदवण्णो दु ॥६॥ दीसइ लोयालोओ केवलणाणे जहा जिणिंदस्स। तह दीसइ मुकुरे बिंबुमंगलं तेण तं मुणह ॥७॥ जह वीयराय सव्वण्हु जिणवरो मंगलं हवइ लोए। हयरायबालकण्णा तह मंगलमिदि विजाणाहि ॥८॥ कम्मारिजिणेविणु जिणवरेहिं मोक्खु जिणाहिवि जेण। जं चउरउअरिबलजिणइ मंगलु वुच्चइ तेण ॥९॥" अथवा निबद्धानिबद्धभेदेन द्विविधं मंगलं तेनैव ग्रन्थकारेण कृतं। निबद्धमंगलं यथा मोक्ष-मार्गस्य नेतारमित्यादि। शास्त्रान्तरादानीतो नमस्कारोऽनिबद्धमंगलं यथा जगत्त्रयनाथायेत्यादि। अस्मिन्प्रस्तावे शिष्यः पूर्वपक्षं करोति—किमर्थं शास्त्रादौ शास्त्रकाराः मंगलार्थं परमेष्ठिगुणस्तोत्रं कुर्वन्ति यदेव शास्त्रं प्रारब्धं तदेव कथ्यतां मंगलमप्रस्तुतं। नच वक्तव्यं मंगलनमस्कारेण पुण्यं भवति, पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति। कस्मान्न वक्तव्यमितिचेत्। व्यभिचारात्। तथाहि-क्वापि नमस्कार-दानपूजादिकरणेपि विघ्नं दृश्यते क्वापि दानपूजानमस्काराभावेपि निर्विघ्नं दृश्यत इति। आचार्याः परिहारमाहुः। तदयुक्तं, पूर्वाचार्या इष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरमेव कार्यं कुर्वन्ति, यदुक्तं भवता नमस्कारे कृते पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति नच वक्तव्यं तदप्ययुक्तं। कस्मात्। देवता-नमस्कारकरणे पुण्यं भवति तेन निर्विघ्नं भवतीति तर्कादिशास्त्रे व्यवस्थापितत्वात्। पुनश्च यदुक्तं त्वया व्यभिचारो दृश्यते तदप्ययुक्तं। कस्मादितिचेत्। यत्र देवतानमस्कारपूजादिधर्मे कृतेपि विघ्नं

जो कुछ करना था सो कर लिया, संसारसे मुक्त (पृथक्) हुये। और जो पुरुष कृतकृत्य दशाको

१. प्रकृष्टाश्चर्यज्ञानप्रतापप्रकाशनात्।

नातिशयप्रकाशनादवाप्तज्ञानातिशयानामपि योगीन्द्राणां वन्द्यत्वमुदितम् । जितो भव

भवति तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतपापस्यैव फलं तत् नच धर्मदूषणं, यत्र पुनर्देवतानमस्कारदानपूजादिधर्माभावेपि निर्विघ्नं दृश्यते तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतधर्मस्यैव फलं तत् नच पापस्य । पुनरपि शिष्यो ब्रूते—शास्त्रं मंगलममंगलं वा ? मंगलं चेत्तदा मंगलस्य मंगलं किं प्रयोजनं, यद्यमंगलं तर्हि तेन शास्त्रेण किं प्रयोजनं । आचार्याः परिहारमाहुः—भक्त्यर्थं मंगलस्यापि मंगलं क्रियते । तथाचोक्तं "प्रदोपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम् । वागीश्वरीं तथा वाग्भिर्मंगलेनैव मंगलम् ॥१॥" किंच इष्टदेवतानमस्कारकरणे प्रत्युपकारं कृतं भवति । तथाचोक्तं—"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥" "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् । इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धिर्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥" इति संक्षेपेण मंगलं व्याख्यातं । निमित्तं कथ्यते-निमित्तं कारणं । वीतरागसर्वज्ञदिव्यध्वनिशास्त्रे प्रवृत्ते किं कारणं ? भव्यपुण्यप्रेरणात् । तथाचोक्त "छद्दव्वणवपयत्थे सुयणाणाइच्चदिव्वते एण । पस्संतु भव्वजीवा इय सुअरविणो हवे उदओ ॥" अथ प्राभृतग्रंथे शिवकुमारमहाराजो निमित्तं अन्यत्र द्रव्यसंग्रहादौ सोमाश्रेष्ठ्यादि ज्ञातव्यं । इति संक्षेपेण निमित्तं कथितं । इदानीं हेतुव्याख्यानं । हेतुः फलं । हेतुशब्देन फलं कथं भण्यत इति चेत् । फलकारणात्फलमुपचारात् । तच्च फलं द्विविधं प्रत्यक्षपरोक्षभेदात् । प्रत्यक्षफलं द्विविधं साक्षात्परंपराभेदेन । साक्षात्प्रत्यक्षं किं ? अज्ञानविच्छित्तिः संज्ञानोत्पत्त्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा इत्यादि । परंपराप्रत्यक्षं किं ? शिष्यप्रतिशिष्यपूजाप्रशंसाशिष्यनिष्पत्त्यादि । इति संक्षेपेण प्रत्यक्षफलं । इदानीं परोक्षफलं भण्यते । तच्च द्विविधं अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात् । अभ्युदयसुखं कथ्यते । अष्टादशश्रेणीनां पतिः स एव मुकुटधरः कथ्यते, तस्माद्द्विगुणद्विगुणक्रमेण सकलचक्रिपर्यंत इति अभ्युदयसुखं । अथ निश्रेयससुखं कथ्यते "खविदघणघाइकम्मा चउतीसातिसया पंचकल्लाणा । अट्ठ महापाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झं ॥" सिद्धपदं कथ्यते "मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का । मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा ॥" इति संक्षेपेण अभ्युदयनिश्रेयससुखं कथितं । इदमत्र तात्पर्य—यत्कोपि वीतरागसर्वज्ञप्रणोतपंचास्तिकायसंग्रहादिकं शास्त्रं पठति श्रद्धत्ते तथैव च भावयति स च इत्थंभूतं सुखं प्राप्नोतीत्यर्थः । इदानीं परिमाणं प्रतिपाद्यते । तच्च द्विविधं ग्रन्थार्थभेदात् । ग्रन्थपरिमाणं ग्रन्थसंख्या यथासम्भवं, अर्थपरिमाणमनन्तमिति संक्षेपेण परिमाणं भणितं । नाम कथ्यते । नाम द्विधा अन्वर्थयदृच्छभेदेन । अन्वर्थनाम किं ? यादृशं नाम तादृशोर्थः यथा तपतीति तपन आदित्य इत्यर्थः । अथवा पंचास्तिकाया यस्मिन् शास्त्रे ग्रन्थे स भवति पंचास्तिकायः, द्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रह इत्यादि । यदृच्छं काष्ठाभारेणेश्वर इत्यादि । कर्ता कथ्यते—स च त्रिधा । मूलतन्त्रकर्ता उत्तरतन्त्रकर्ता-

(मोक्षावस्थाको) प्राप्त नहिं हुये, उन पुरुषोंको शरणरूप हैं, ऐसे जो जिन हैं तिनको नमस्कार होहु ॥१॥

आजवं जवो यैरित्यनेन तु कृतकृत्यत्वप्रकटनात्त एवान्येषामकृतकृत्यानां शरणमित्युपदिष्टम् । इति सर्वपदानां तात्पर्यम् ॥१॥

समयो ह्यागमः । तस्य प्रणामपूर्वकमात्मनाभिधानमत्र[६] प्रतिज्ञातम्[७]:—

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुगादिणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥२॥

श्रमणमुखोद्गतार्थं चतुर्गतिनिवारणं सनिर्वाणं ।
एष प्रणम्य शिरसा समयमिमं शृणुत वक्ष्यामि ॥२॥

पूज्यते हि स प्रणन्तुमभिधातुं चाप्तोपदिष्टत्वे सति सफलत्वात् । तत्राप्तोपदिष्टत्वमस्य श्रमणमुखोद्गतार्थत्वात् । श्रमणा हि महाश्रमणाः सर्वज्ञवीतरागाः । अर्थः

उत्तरोत्तरतन्त्रकर्तृभेदेनेति । मूलतन्त्रकर्ता कालापेक्षया श्रीवर्धमानस्वामी अष्टादशदोषरहितोऽनन्तचतुष्टयसंपन्न इति, उत्तरतन्त्रकर्ता श्रीगौतमस्वामी गणधरदेवश्चतुर्ज्ञानधरः सप्तर्द्धिसंपन्नश्च, उत्तरोत्तरा बहवो यथासंभवं । कर्ता किमर्थं कथ्यते ? कर्तृप्रामाण्याद्वचनप्रमाणमिति ज्ञापनार्थं । इति संक्षेपेण मंगलाद्यधिकारषट्कं प्रतिपादितं व्याख्यातं ॥१॥

एवं मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारगाथा गता । अथ द्रव्यागमरूपं शब्दसमयं नत्वा पंचास्तिकायरूपसमर्थसमयं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापूर्वकाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारकरणेन संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति;—**पणमिय** प्रणम्य । कः कर्ता । **एसो** एषोऽहं । केन **सिरसा** उत्तमाङ्गेन । कं । **समयं** शब्दसमयं **इयं** इमं ण प्रत्यक्षीभूतं । किंविशिष्टं । **समणहुमुग्गदं** सर्वज्ञवीतरागमहाश्रमणमुखोद्गतं । पुनरपि किंविशिष्टं । **अट्ठं** जीवादिपदार्थं । पुनरपि किंरूपं **चदुग्गदिणिवारणं** नरकादिचतुर्गतिविनिवारणं । पुनश्च कथंभूतं । **सणिव्वाणं** सकलकर्मविमोचनलक्षणनिर्वाणं । इत्थंभूतं शब्दसमयं कथंभूतं । "गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं, कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतं । स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं, दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः" ॥ तथाचोक्तं । "एनाज्ञानतमस्ततिर्विघटते ज्ञेये हिते चाहिते, हानादानमुपेक्षणं च समभूत्तस्मिन् पुनः

आगे आचार्यवर जिनागमको नमस्कार करके पंचास्तिकायरूप समयसार ग्रन्थके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं;—[**एष 'अहं' इमं समयं वक्ष्यामि**] यह मैं कुन्दकुन्दाचार्य जो हूँ सो इस पंचास्तिकायरूप समयसार नामक ग्रन्थको कहूँगा. [**शृणुत**] इसको तुम सुनो । क्या करके कहूँगा ? [**श्रमणमुखोद्गतार्थं शिरसा प्रणम्य**] श्रमण कहिये सर्वज्ञ वीतरागदेव मुनिके मुखसे उत्पन्न

---

१. घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन, २. कृतकार्यत्वप्रकाशनात् । ३. अकृतकार्याणाम्, ४. शरणं नान्य इति प्रतिपादितमस्ति, ५. द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानवाचकः ६. आगमस्यमध्ये, ७. प्रतिज्ञयावधारितम् ।

पुनरनेकशब्दसंबन्धेनाभिधीयमानो वस्तुतयैकोऽभिधेयः। सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यग्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात्, साक्षात् पारतंत्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात्, स्वातंत्र्यप्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति ॥२॥

प्राणिनः। येनेयं दृगपैति तां परमतां वृत्तं च येनानिशं, तज्ज्ञानं मम मानसाम्वुजमुदे स्तात्सूर्यवर्योदयः।" इत्यादि गुणविशिष्टवचनात्मकं नत्वा किं करोमि। वोच्छामि वक्ष्यामि। कं अर्थसमयं सुणुह शृणुत यूयं हे भव्या इति क्रियाकारकसम्बन्धः। अथवा द्वितीयव्याख्यानं। श्रमणमुखोद्गतं पञ्चास्तिकायलक्षणार्थसमयप्रतिपादकत्वादर्थं परम्परया चतुर्गतिनिवारणं चतुर्गतिनिवारणत्वादेव सनिर्वाणं एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः कुण्डकुन्दाचार्यः प्रणम्य नमस्कृत्य नत्वा। केन। शिरसा मस्तकेनोत्तमाङ्गेन। कं प्रणम्य। पूर्वोक्तश्रवणमुखोद्गतादिविशेषणचतुष्टयसंयुक्तं समयं शब्दरूपं द्रव्यागममिमं प्रत्यक्षीभूतं तं शब्दसमयं प्रणम्य। पश्चात् किं करोमि। वक्ष्यामि कथयामि प्रतिपादयामि शृणुत हे भव्या यूयं। कं वक्ष्यामि। तमेव शब्दसमयवाच्यमर्थसमयं शब्दसमयं नत्वा पश्चादर्थसमयं वक्ष्ये ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमिति। वीतरागसर्वज्ञमहाश्रमणमुखोद्गतं शब्दसमयं कश्चिदासन्नभव्यः पुरुषः शृणोति शब्दसमयवाच्यं पश्चात्पञ्चास्तिकायलक्षणमर्थसमयं जानाति तदन्तर्गते शुद्धजीवास्तिकायलक्षणेर्थे वीतरागनिर्विकल्पसमाधिना स्थित्वा चतुर्गतिनिवारणं करोति चतुर्गतिनिवारणादेव निर्वाणं लभते स्वात्मोत्थमनाकुलत्वलक्षणं निर्वाणफलभूतमनन्तसुखं च लभते जीवस्तेन कारणेनायं द्रव्यागमरूपशब्दसमयो नमस्कर्तुं व्याख्यातुं च युक्तो भवति। इत्यनेन व्याख्यान क्रमेण संवन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि भवन्ति। कथमति चेत्। विवरणरूपमाचार्यवचनं व्याख्यानं, गाथासूत्रं व्याख्येयमिति व्याख्यानव्याख्येयसंवन्धः। द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानं वाचकः तेन शब्दसमयेन वाच्यः पंचास्तिकायलक्षणोर्थसमयोऽभिधेय इति अभिधानाभिधेयलक्षणसम्बन्धः। फलं प्रयोजनं चाज्ञानविच्छित्त्यादि निर्वाणसुखपर्यन्तमिति संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति भावार्थः ॥२॥

हुये पदार्थसमूहसहित वचन तिनको मस्तकसे प्रणाम करके कहूँगा, क्योंकि सर्वज्ञके वचन ही प्रमाणभूत हैं, इस कारण इनके ही आगमको नमस्कार करना योग्य है, और इनका ही कथन योग्य है। कैसा है भगवत्प्रणीत आगम ? [चतुर्गतिनिवारणं] नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, [illegible] योंका निवारण करनेवाला है. अर्थात् संसारके दुःखोंका विनाश करनेवाला है। फिर कैसा है आगम ?—[सनिर्वाणं] मोक्षफलकर सहित है; अर्थात् शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप मोक्षपदका परंपरायकारणरूप है, इस प्रकार भगवत्प्रणीत आगमको नमस्कार करके पंचास्तिकायनामक समयसारको कहूँगा। आगम दो प्रकारका है:— एक अर्थसमयरूप है, दूसरा शब्दसमयरूप है। शब्दसमयरूप जो आगम है सो अनेक शब्दसमय कर कहा जाता है। अर्थसमय वह है जो भगवत्प्रणीत है ॥२॥

अत्र[1] शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिविधाऽभिधेयता समयशब्दस्य लोकालोकविभागश्चाभिहितः;—

समवाओ पंचण्हं समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥३॥

समवायः पंचानां समय इति जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तं।
स च एव भवति लोकस्ततोऽमितोऽलोकः खं ॥३॥

तत्र[2] च पञ्चानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभ्यामनुपहतो वर्णपदवा-

---

एवमिष्टाभिमतदेवतानमस्कारमुख्यतया गाथाद्वयेन प्रथमस्थलं गतं।

(उपोद्घातः) तद्यथा-प्रथमतस्तावत् "इंदसयवंदियाण" मित्यादिपाठक्रमेणैकादशोत्तरशत-गाथाभिः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमो महाधिकारः, अथवा स एवामृतचन्द्रटीका-भिप्रायेण त्र्यधिकशतपर्यन्तश्च। तदनन्तरं "अभिवंदिऊण सिरसा" इत्यादि पञ्चाशद्गाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयो महाधिकारः। अथ स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेणाष्टा-चत्वारिंशद्गाथापर्यन्तश्च। अथानन्तरं जीवस्वभावो इत्यादि विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गस्वरूपकथन-मुख्यत्वेन तृतीयो महाधिकार इति समुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिर्महाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं। तत्र महाधिकारे पाठक्रमेणान्तराधिकाराः कथ्यन्ते। तद्यथा-एकादशोत्तरशतगाथामध्ये "इंदसय" इत्यादि गाथासप्तकं समयशब्दार्थपीठिकाव्याख्यानमुख्यत्वेन। तदनन्तरं चतुर्दशगाथाद्रव्यपीठिकाव्याख्यानेन। अथ गाथापञ्चकं कालद्रव्यमुख्यत्वेन, तदनन्तरं त्रिपञ्चाशद्गाथा जीवास्तिकायकथनरूपेण। अथ गाथादशकं पुद्गलास्तिकायमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथासप्तकं धर्माधर्मास्तिकायव्याख्यानेन। अथ गाथासप्तकमाकाशास्तिकायकथनमुख्यत्वन, तदनन्तरं गाथाष्टकं चूलिकोपसंहारव्याख्यानमुख्यत्वेन कथयतीत्यष्टभिरन्तराधिकारैः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका। तत्रा-ष्टान्तराधिकारेषु मध्ये प्रथमतः सप्तगाथाभिः समयशब्दार्थपीठिका कथ्यते-तासु सप्तगाथासु मध्ये गाथाद्वयेनेष्टाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारो मङ्गलार्थः। अथ गाथात्रयेण पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं, तदनन्तरं एकगाथया कालसहितपञ्चास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञा, पुनरेकगाथया संकरव्यतिकरदोषपरिहार-मिति समयशब्दार्थपीठिकायां स्थलत्रयेण समुदायपातनिका॥

---

१. अत्र समयव्याख्यायां समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिविधव्याख्यानं विक्रियते, पञ्चानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्। तेषां पञ्चानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशय-विमोह-विभ्रम-रहितत्वेन सम्यग् यो बोधनिर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थ-परिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत्। तेन द्रव्यागमरूपसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेदः पञ्चानामस्तिकायानां समूहः समय इति हि मन्यते। तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्धयर्थं समयोऽत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः। २. त्रिषु समयेषु।

क्यसन्निवेशविशिष्टः पाठो वादः, [1]शब्दसमयः शब्दागम इति यावत्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति [2]सम्यगवायः परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत्। तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छिन्नानां वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः सर्वपदार्थसार्थ इति यावत्। तद[4]त्र ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसंबंधेनार्थसमयोऽभिधातुम[5]भिप्रेतः। अथ तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पात्। स एव पञ्चास्तिकायसमयो

अथ गाथापूर्वार्द्धेन शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिधाभिधेयतां समयशब्दस्य, उत्तरार्धेन तु लोकालोकविभागं च प्रतिपादयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति, एवमग्रेपि वक्ष्यमाणं विवक्षिताविवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्य, अथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवतीत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणमनेन क्रमेण यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्;—**समवाओ पंचण्हं** पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायः समूहः **समयमिणं** समयोयमिति **जिणवरेहिं पण्णत्तं** जिनवरैः प्रज्ञप्तः कथितः **सो चेव हवदि लोगो** स चैव पंचानां मेलापकः समूहो भवति। स कः। लोकः। **तत्तो** ततस्तस्मात्पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायाद्बहिर्भूतः **अमओ** अमितोऽप्रमाणः अथवा 'अमओ' अकृत्रिमो न केनापि कृतः, न केवलं लोकः **अलोयक्खं** अलोक इत्याख्या संज्ञा यस्य स भवत्यलोकाख्यः। अलोय खं इति भिन्नपदपाठान्तरे च अलोक इति कोऽर्थः ? खं शुद्धाकाशमिति संग्रहवाक्यं। तद्यथा-समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिधा व्याख्यानं विज्ञीयते,—पंचानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्, तेषामेव पंचानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सम्यगवायो बोधो निर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् तेन द्रव्यागमरूपशब्दसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेदः पंचानामस्तिकायानां समूहोऽर्थसमय इति भण्यते। तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थंसमयोत्र

आगे शब्द, ज्ञान, अर्थ इन तीनों भेदोंमेंसे समयशब्दका अर्थ और लोकालोकका भेद कहते हैं;-[**पंचानां**] पंचास्तिकाय का जो [**समवायः**] समूह सो [**समयः**] समय है [**इति**] इस प्रकार [**जिनोत्तमैः**] सर्वज्ञवीतरागदेव करके [**प्रज्ञप्तं**] कहा गया है, अर्थात् समय शब्द तीन प्रकार है—शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय। इन तीनों भेदोंमेंसे जो इन पंचास्तिकायकी रागद्वेषरहित यथार्थ अक्षर, पद वाक्यकी रचना सो द्रव्यश्रुतरूप 'शब्दसमय' है; और उस ही शब्दश्रुतका मिथ्यात्वभावके नष्ट होनेसे जो यथार्थ ज्ञान होना सो भावश्रुतरूप 'ज्ञानसमय' है; और जो सम्यग्ज्ञानके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं, उनका नाम 'अर्थसमय' कहा जाता है. [**स एव च**] वह ही अर्थसमय पंचास्तिकायरूप सबका सब [**लोकः भवति**] लोक नामसे कहा जाता है. [**ततः**] तिस लोकसे भिन्न [**अमितः**] मर्यादारहित अनन्त [**खं**] आकाश है सो [**अलोकः**] अलोक है। **भावार्थ**—अर्थसमय लोक अलोकके भेदसे दो प्रकार है। जहां पंचास्तिकायका समूह है वह तो लोक है और

---

१. द्रव्यरूपशब्दसमयः. २. भावागमसम्यग्ज्ञानम्. ३. ज्ञातानाम्. ४. अत्र ग्रंथे त्रिषु मध्ये वा. ५. वांछितः प्रारब्धः।

यावांस्तावाँल्लोकस्ततः[1] परममितोऽनन्तो ह्यलोकः[2], स तु नाभावमात्रं किं तु तत्समवायातिरिक्तपरिमाणमनन्तक्षेत्रं खमाकाशमिति ॥३॥

अत्र पञ्चास्तिकायानां विशेषसंज्ञा सामान्यविशेषास्तित्वं कायत्वं[3] चोक्तं;—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥४॥

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ तथैव आकाशम्।
अस्तित्वे च नियता अनन्यमया अणुमहान्तः ॥४॥

तत्र जीवाः[4] पुद्गलाः[5] धर्माधर्मौ[6][7] आकाशमिति[8]। तेषां[9] विशेषसंज्ञा अन्वर्थाः[10]

व्याख्यातुं प्रारब्धः। स चैवार्थसमयो लोको भण्यते। कथमिति चेत्। यद्दृश्यमानं किमपि पंचेन्द्रियविषययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते। यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते। तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः, स्थितिहेतुलक्षणोऽधर्मः, अवगाहनलक्षणमाकाशं, वर्तनालक्षणः कालश्च, यावति क्षेत्रे स लोकः। तथा चोक्तं-लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः तस्माद्बहिर्भूतमनन्तशुद्धाकाशमलोक इति सूत्रार्थः ॥३॥

अथ पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञाः सामान्यविशेषास्तित्वकायत्वं च प्रतिपादयति;—**जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं** जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानीति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अन्वर्था

जहाँ अकेला आकाश ही है उसका नाम अलोक है। यहाँ कोई प्रश्न करे कि, षड्द्रव्यात्मक लोक कहा गया है सो यहाँ पंचास्तिकायकी लोक संज्ञा क्यों कही ? तिसका समाधानः—यहाँ (इस ग्रन्थमें) मुख्यतासे पंचास्तिकायका कथन है, कालद्रव्यका कथन गौण है, इस कारण लोकसंज्ञा पंचास्तिकायकी ही कही है। कालका कथन नहीं किया है उसमें मुख्य गौणका भेद है। षड्द्रव्यात्मक लोक यह भी कथन प्रमाण है, परन्तु यहांपर विवक्षा नहीं है ॥३॥

आगे पंचास्तिकायके विशेष नाम और सामान्य विशेष अस्तित्व और कायको कहते हैं;—[जीवाः] अनन्त जीवद्रव्य, [पुद्गलकायाः] अनन्त पुद्गलद्रव्य, [धर्माधर्मौ] एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, [तथैव] तैसे ही [आकाशं] एक आकाशद्रव्य, इन द्रव्योंके विशेष नाम सार्थक पंचास्तिकाय जानना, [अस्तित्वे च] और ये पंचास्तिकाय अपने सामान्य विशेष अस्तित्वमें [नियताः] निश्चित हैं, और [अनन्यमयाः] अपनी सत्ता से भिन्न नहीं हैं। अर्थात्-जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है सो सत्ता

१ लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः. २ लोकात्तस्मात् बहिर्भूतमनन्तं शुद्धाकाशमलोकः. ३ कायाः काया इव काया बहुप्रदेशोपचयत्वात् शरीरवत्वं प्रतिपादितं. ४ यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते. ५ यद्दृश्यमानं किमपि पंचेन्द्रिययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते. ६ तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः. ७ स्थितिहेतुलक्षणश्चाधर्मः. ८ अवगाहनलक्षणं. ९ अस्तिकायानां पञ्चानां. १० यथार्थाः।

प्रत्येयाः। सामान्यविशेषास्तित्वञ्च तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां[1] नियतत्वा[2]द्व्यवस्थितत्वादेव[3]सेयम्। अस्तित्वे नियताना[4]मपि न तेषा[5]मन्यमयत्व[6]म्। यतस्ते सर्वदैवा[7]नन्यमया आत्मनिर्वृत्ताः। अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियतत्वं[8] नय[9]प्रयोगात्। द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ [10]द्रव्यार्थिकः [11]पर्यायार्थिकश्च। तत्र[12] न खल्वेकनयायत्ता-ऽऽदेशना[13] किन्तु तदुभयायत्ता। ततः पर्यायार्थदिशादस्तित्वे स्वतः कथंचिद्भिन्नेऽपि [14]व्यवस्थिताः द्रव्यार्थदिशात्स्वयमेव [15]सन्तः [16]सतोऽनन्यमया[17] भवन्तीति। कायत्वमपि तेषामणुमहत्वात्। अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्त्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशा[18]स्तैः महान्तोऽणु-महान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां [19]कायत्वं। अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या

ज्ञातव्याः। अत्थित्तम्हि य णियदा अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः। तर्हि सत्तायाः सकाशात्कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति। नैवं। अणण्णमइया अनन्यमया अपृथग्भूताः यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः स्तम्भे सार इत्यनेन व्याख्यानेनाधाराधेयभावेप्यविनास्तित्वं भणितं भवति। इदानीं कायत्वं चोच्यते अणुमहंता अणुमहान्तः अणुना परिच्छिन्नत्वादणुशब्देनात्र प्रदेशा गृह्यन्ते, अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः द्व्यणुकस्कन्दापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्तोऽणुमहान्तः इति कायत्वमुक्तं।

है, और जो सत्ता है सो ही अस्तित्व कहा जाता है। वह अस्तित्व सामान्यविशेषात्मक है। ये पंचास्तिकाय अपने अपने अस्तित्वमें हैं। अस्तित्व है सो अभेदरूप है। ऐसा नहीं है जैसे कि किसी वर्तन में कोई वस्तु हो, किन्तु जैसे घट घटरूप होता है वा अग्नि उष्णता एक है। जिनेन्द्र भगवान्‌ने दो नय बतलाये हैं:—एक द्रव्यार्थिकनय, और दूसरा पर्यायार्थिकनय है। इन दो नयोंके आश्रय ही कथन है। यदि इनमेसे एक नय न हो तो तत्त्व कहे नहीं जायँ, इस कारण अस्तित्व गुण होनेके कारण द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यमें अभेद है, पर्यायार्थिकनयसे भेद है, जैसे कि गुण गुणी में होता है। इस कारण अस्तित्वविषैं तो ये पंचास्तिकाय वस्तु से अभिन्न हो है। फिर पंचास्तिकाय कैसे हैं कि, [अणुमहान्तः] निर्विभाग मूर्तीक अमूर्तीक प्रदेशोंकर बड़े हैं, अनेक

---

१ अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः तर्हि सत्तायाः सकाशात् कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति. २ निश्चितत्वात्. ३ विशेषरहितं ज्ञातव्यं. ४ अविनश्वराणाम्. ५ तेषां पञ्चास्तिकायानां ६ पृथक्त्वम्. ७ अपृथग्भूताः। यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः। अनेन व्याख्यानेन आधाराधेयभावेऽप्य-भिन्नास्तित्वम्. ३२ स्वतः निष्पन्नाः ८ नियतत्वं निश्चलत्वम्. ९ द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्ये पर्याये वा वस्तुताध्यवसायो नय इति यावत्। यद्वा स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः. १० तत्र पर्यायाभावात् द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः. ११ द्रव्याभावात् पर्याय एवार्थप्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः. १२ द्वयोर्नययोर्मध्ये. १३ सर्वज्ञानामुपदेशः. १४ तिष्ठमानाः पञ्चास्तिकायाः. १५ विद्यमानाः भवन्तः, १६ अस्ति-त्वतः. १७ अपृथग्भूताः १८ निर्विभागैरणुभिः. १९ अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः अणुमहान्तः द्व्यणुकस्कन्धापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्त इति कायत्वमुक्तं। एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत् स्कन्धानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति।

द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वम् । अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धिः । व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्वस्याभावात्कालाणूनामस्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम् । अतएव तेषामस्तिकायप्रकरणे सतामप्यनुपादानमिति ॥४॥

अत्र[5] पञ्चास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः—

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥५॥

येषामस्तिस्वभावः गुणैः सह पर्यायैर्विविधैः ।
ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम् ॥५॥

अस्ति ह्यस्तिकायानां गुणैः पर्यायैश्च विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽनन्य-

---

एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत् । स्कन्धानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेरभावादुपचारेणापि कायत्वं नास्ति । शक्त्यभावोपि कस्मात् ? अमूर्तत्वादिति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अस्तित्वं कायत्वं चोक्तं । अत्र गाथासूत्रेऽनन्तज्ञानादिरूपः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इति भावार्थः ॥४॥

अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं कायत्वं च केन प्रकारेण संभवतीति प्रज्ञापयति;—जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहिं विविहेहिं ते होंति अत्थि येषां पंचास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते । स कः ।

प्रदेशी हैं । भावार्थ—ये जो पहिले पाँच द्रव्य अस्तित्वरूप कहे वे कायवन्त भी हैं, क्योंकि ये सबही अनेक प्रदेशी हैं । एक जीवद्रव्य, धर्म और अधर्मद्रव्य ये तीनों ही असंख्यात प्रदेशी हैं । आकाश अनन्त प्रदेशी है । बहुप्रदेशी को काय कहा गया है । इस कारण ये ४ द्रव्य तो अखण्ड कायवंत हैं । पुद्गलद्रव्य यद्यपि परमाणुरूप एकप्रदेशी है, तथापि मिलन शक्ति है, इस कारण काय कहा जाता है । द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अनन्त परमाणुस्कंध पर्यंत व्यक्तिरूप पुद्गल कायवन्त कहा जाता है, इस कारण पुद्गलसहित ये पाँचों ही अस्तिकाय जानना । कालद्रव्य (कालाणु) एकप्रदेशी है, शक्तिव्यक्तिकी अपेक्षासे कालाणओंमें मिलन शक्ति नहीं है, इस कारण कालद्रव्य कायवंत नहीं है ॥४॥

आगे पंचास्तिकायके अस्तित्वका स्वरूप दिखाते हैं, और काय किसप्रकारसे है सो भी दिखाया जाता है;—[येषां] जिन पंचास्तिकायोंका [विविधैः] नानाप्रकारके [गुणैः] सहभूतगुण और [पर्यायैः] व्यतिरेकरूप अनेक पर्यायोंकर [सह] सहित [अस्तिस्वभावः] अस्तित्वस्वभाव है [ते] वे

---

१ कायत्वसिद्धिः. २ कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सदभावादुपचारेण कायत्वं नास्ति. ३ कालाणूनां. ४ विद्यमानानाम्. ५ अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं केन प्रकारेण सम्भवतीति प्रतिज्ञापयति. ६ सहभुवो गुणाः. ७ व्यतिरेकिणः पर्यायैः. ८ अभिन्नत्वं.

त्वम् । वस्तुनो[1] विशेषा[2] हि व्यतिरेकिणः पर्य्याया गुणास्तु त एवान्वयिनः[3] । तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्यं बिभ्राणस्यैकस्याऽपि वस्तुनः समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यत एव । गुणपर्यायैः सह सर्वथान्यत्वे[4] त्वन्यो विनश्यत्यन्यः प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्बत इति सर्वं विप्लवते[5] । ततः साध्वस्तित्वसंभवप्रकारकथनं । कायत्वसंभवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते अवयविनो[6] हि जीवपुद्गलधर्म्माऽधर्माऽऽकाशपदार्थास्तेषा[7]मवयवा अपि प्रदेशाख्याः परस्परव्यतिरेकित्वा[8]

स्वभावः सत्ता अस्तित्वं तन्मयत्वं स्वरूपमिति यावत् । कैः सह । गुणपर्यायैः । कथंभूतैः । विचित्रैर्नानाप्रकारैस्ते अस्ति भवन्ति इत्यनेन पंचानामस्तित्वमुक्तमिति । वार्तिकं तथा कथ्यते-- अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, अथवा सहभुवो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायास्ते च द्रव्यात्सकाशात् संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन भिन्नाः प्रदेशरूपेण सत्तारूपेण वा चाभिन्नाः । पुनरपि कथंभूताः । विचित्रा नानाप्रकाराः । केन कृत्वा । स्वेन स्वभावविभावरूपेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण वा । जीवस्य तावत्कथ्यन्ते । केवलज्ञानादयः स्वभावगुणा मतिज्ञानादयो विभावगुणाः सिद्धरूपः स्वभावपर्यायः नरनारकादिरूपा विभावपर्यायाः । पुद्गलस्य कथ्यन्ते । शुद्धपरमाणौ वर्णादयः स्वभावगुणाः द्व्यणुकादिस्कन्दे वर्णादयो विभावगुणाः शुद्धपरमाणुरूपेणाव-

---

ही पंचास्तिकाय [अस्तिकायाः] अस्तिकायवाले [भवन्ति] हैं । कैसे हैं वे पंचास्तिकाय ? [यैः] जिनके द्वारा [त्रैलोक्यं] तीन लोक [निष्पन्नं] उत्पन्न हुए हैं । [भावार्थ]—इन पंचास्तिकायों को नाना प्रकारके गुणपर्यायके स्वरूपसे भेद नहीं है, एकता है । पदार्थोंमें अनेक अवस्थारूप जो परिणमन हैं, वे पर्यायें कहलाती हैं । और जो पदार्थमें सदा अविनाशी साथ रहते हैं, वे गुण कहे जाते हैं । इस कारण एक वस्तु एक पर्यायकर उपजती है, और एक पर्यायकर नष्ट होती है और गुणोंकर ध्रौव्य है । यह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वस्तुका अस्तित्वस्वरूप जानना । और जो गुणपर्योयोंसे सर्वथा प्रकार वस्तुकी पृथक्ता ही दिखाई जाय तो अन्य ही विनशै, और अन्य ही उपजै और अन्य ही ध्रुव रहै । इस प्रकार होनेसे वस्तुका अभाव हो जाता है । इस कारण कथंचित् साधनिका मात्र भेद है । स्वरूपसे तो अभेद ही है । इस प्रकार पंचास्तिकायका अस्तित्व है । इन पाँचों द्रव्योंको कायत्व कैसे है सो कहते हैं—कि, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश, ये पाँच पदार्थ अंशरूप अनेक प्रदेशोंको लिए हुए हैं । वे प्रदेश परस्पर

---

१ वस्तुनः द्रव्यस्य. २ केवलज्ञानादयो गुणाः. ३ एकस्यापि वस्तुनो भूतभाविभवत्पर्यायभेदेषु वर्तमानस्य यदनुगतप्रत्ययोत्पादकं सोऽन्वयः, स एषामिति ते अन्वयिनः. ४ भिन्नत्वे. ५ विनश्यति. ६ प्रदेशाख्या अवयवाः विद्यन्ते येषां ते अवयविनः. ७ तेषां जीवादिपदार्थानां त्रिभुवनाकारपरिणतानां । सावयवत्वात् स प्रदेशाख्यः. ८ अन्योन्यभिन्नत्वात् भिन्नत्वात् पृथग्भावाद्वा.

त्पर्याया उच्यन्ते। तेषां तैः[2] सहानन्यत्वे[3] कायत्वसिद्धिरुपपत्तिमती[4]। निरवयवस्यापि परमाणोः सावयवत्वशक्तिसद्भावात् कायत्वसिद्धिरत एवानपवादा[5]। न चैवं तदा शङ्क्यम् पुद्गलादन्येषाममूर्तत्वादविभाज्यानां[6] सावयवत्वकल्पनमन्याय्यम्[7]। दृश्यत एवाविभाज्येऽपि[8] विहायसीदं घटाकाशमिदमघटाकाशमिति विभागकल्पनम्। यदि तत्र[9] विभागो न कल्पेत तदा यदेव घटाकाशं तदेवाघटाकाशं स्यात्। न च तदिष्टं[10]। ततः कालाणुभ्योऽन्यत्र[11] सर्वेषां कायत्वाख्यं सावयवत्वमवसेयं। त्रैलोक्यरूपेण निष्पन्नत्वमपि तेषामस्तिकायत्वसाधनपरमुपन्यस्तम्। तथाच—त्रयाणामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकानामुत्पादव्ययध्रौव्यवन्तस्तेदे[12]विशेषात्मका भावा भवन्तस्तेषां मूलपदार्थानां गुणपर्यय-

---

स्थानं स्वभावद्रव्यपर्यायः वर्णादिभ्या वर्णान्तरादिपरिणमनं स्वभावगुणपर्यायः द्वयणुकादिस्कन्दरूपेण परिणमनं विभावद्रव्यपर्यायाः तेष्वेव द्वयणुकादिस्कन्देषु वर्णान्तरादिपरिणमनं विभावगुणपर्यायाः। एते जीवपुद्गलयोर्विशेषगुणाः कथिताः। सामान्यगुणाः पुनरस्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयः सर्वद्रव्यसाधारणाः। धर्मादीनां विशेषगुणपर्यायाः अग्रे यथास्थानेषु कथ्यन्ते। इत्थंभूतगुणपर्ययैः सह येषां पञ्चास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते तेस्ति भवन्तीति। इदानीं कायत्वं चोच्यते। काया कायाः इव काया बहुप्रदेशप्रचयत्वाच्छरीरवत्। किंकृतं तैः पंचास्तिकायैः। णिप्पण्णं जेहि तेल्लोक्कं निष्पन्नं जातमुत्पन्नं यैः पंचास्तिकायैः। किं निष्पन्नं। त्रैलोक्यं। अनेनापि गाथाचतुर्थपादेनास्तित्वं कायत्वं चोक्तं। कथमिति चेत्। त्रैलोक्ये ये केचनोत्पादव्ययध्रौव्यवन्तः पदार्थास्ते उत्पादव्ययध्रौव्यरूपमस्तित्वं

अंश कल्पनाकी अपेक्षा जुदे जुदे हैं, इस कारण इनका भी नाम पर्याय है। अर्थात् उन पाँचों द्रव्योंकी उन प्रदेशोंसे स्वरूपमें एकता है, भेद नहीं है अखंड हैं, इस कारण इन पाँचों द्रव्योंको कायवंत कहा गया है। यहाँ कोई प्रश्न करे कि, पुद्गल परमाणु तो अप्रदेश हैं, निरंश हैं, इनको कायत्व कैसे होवे ? उसका उत्तर यह है कि—पुद्गल परमाणुओंमें मिलनशक्ति है। स्कंधरूप होते हैं इस कारण सकाय हैं। इस जगह कोई यह आशंका मत करो 'कि पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, इसमें तो अंशकल्पना वनती है; और जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये ४ द्रव्य हैं सो अमूर्तीक हैं, और अखंड हैं, इनमें अंशकथन नहीं बनता, पुद्गल में ही बनता है। मूर्तीक पदार्थको कायकी सिद्धि होती है, इस कारण इन चारोंमें अंशकल्पना मत कहो। क्योंकि अमूर्त्त अखंड वस्तुमें भी प्रत्यक्ष अंशकथन देखनेमें आता है; यह घटाकाश है, यह घटाकाश नहीं है, इस प्रकार आकाशमें भी अंशकथन होता है। इस कारण कालद्रव्यके विना अन्य पाँच द्रव्योंको अंशकथन और कायत्व कथन किया गया है। इन पंचास्तिकायोंसे ही तीन लोककी रचना हुई है। इन ही पाँचों द्रव्योंके उत्पादव्ययध्रौव्यरूप भाव त्रैलोक्यकी रचनारूप हैं। धर्म, अधर्म, आकाशका परिणमन; ऊर्ध्वलोक, अधोलोक,

---

१ अस्तिकायानां. २ तैः पर्यायैः. ३ अभिन्नत्वे. ४ युक्तिमती. ५ अपवादरहिता निश्चयसिद्धिरित्यर्थः. ६ विभागरहितानां अखण्डानां. ७ अयोग्यमिति शङ्का न कर्तव्या. ८ विभागरहिते. ९ आकाशे. १० इष्टं मान्यं. ११ कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते इति अङ्गीकर्तव्यम्. १२ तेषामूर्ध्वाधोमध्यलोकानां।

योगपूर्वकमस्तित्वं साधयन्ति । अनुमीयते च धर्म्माधर्म्माकाशानामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनात्कायत्वाख्यं सावयवत्वं । जीवानामपि प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपे परिणमनत्वाल्लोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेस्सदा सन्निहितशक्तेस्तदनुमीयत एव । पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपपरिणतमहास्कन्धत्वप्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति ॥५॥

अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम्—

ते चेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥६॥

ते चैवास्तिकायाः त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः ।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्त्तनलिङ्गसंयुक्ताः ॥६॥

द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां गुणपर्यायाणामनन्यतयाऽऽधारभूतानि भवन्ति ।

कथयन्ति । तदपि कथमिति चेत् । उत्पादव्ययध्रौव्यरूपं सदिति वचनात् ऊर्ध्वाधोमध्यभागरूपेण जीवपुद्गलादीनां त्रिभुवनाकारपरिणतानां सावयवत्वात्सांशकत्वात् सप्रदेशत्वात् कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेण, अनेन च प्रकारेणास्तित्वं कायत्वं च ज्ञातव्यं । तत्र शुद्धजीवास्तिकायस्य यानन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धपर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमितिभावार्थः ॥५॥

एवं गाथात्रयपर्यंन्तं पंचास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं द्वितीयस्थलं गतं । अथ पंचास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यसंज्ञां कथयति;—**ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा** ते चैव पूर्वोक्ताः पंचास्तिकायाः यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन त्रैकालिकभावपरिणतास्त्रिकालविषयपर्यायपरिणताः संतः क्षणिका अनित्या विनश्वरा भवन्ति तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्या एव । एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां नित्यानित्यात्मकाः संतः **गच्छंति दवियभावं** द्रव्यभावं गच्छन्ति द्रव्यसंज्ञां

मध्यलोक, इस प्रकार तीन भेद लिये हुए है। इस कारण इन तीनों द्रव्योंमें कायकथन, अंशकथन है; और जीवद्रव्य भी दण्ड कपाट प्रतर लोकपूर्ण अवस्थाओंमें लोकप्रमाण होता है, इस कारण जीवमें भी सकाय व अंशकथन है। पुद्गलद्रव्यमें मिलनशक्ति है, इस कारण व्यक्तरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक इन तीनोंलोकरूप परिणमता है, इस कारण अंशकथन पुद्गलमें भी सिद्ध होता है। इन पंचास्तिकायोंके द्वारा लोककी सिद्धि इसीप्रकार है ॥५॥

---

१. शुद्धजीवास्तिकायस्य या अनन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धिपर्यायसत्ता च शुद्धा संख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति. २ द्रव्यस्य सहभुवो गुणाः. ३ द्रव्यस्य क्रमभुवः पर्यायाः ।

ततो वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणानां भावानां पर्यायाणां स्वरूपेण परिणतत्वादस्तिकायानां परिवर्तनलिङ्गस्य कालस्य चास्ति द्रव्यत्वं। न च तेषां भूतभवद्भविष्यद्भावात्मना परिणममानानामनित्यत्वम्। यतस्ते भूतभवद्भविष्यद्भावावस्थास्वपि प्रतिनियत-स्वरूपापरित्यागान्नित्या एव। अत्र[२] कालः पुद्गलादिपरिवर्तनहेतुत्वात्पुद्गलादिपरिवर्तनगम्यमानपर्यायत्वाच्चास्तिकायेष्वन्तर्भावार्थं स[३] परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्त इति ॥६॥

लभन्ते। पुनरपि कथंभूताः संतः परियट्टणलिंगसंजुत्ता परिवर्तनमेव जीवपुद्गलादिपरिणमनमेवाग्नेधूमवत् कार्यभूतं लिंगं चिह्नं गमकं ज्ञापकं सूचनं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुद्रव्यकालस्तेन संयुक्ताः। ननु कालद्रव्यसंयुक्ता इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ता इति अव्यक्तवचनं किमर्थमिति। नैवं। पंचास्तिकायप्रकरणे कालस्य मुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यालिङ्गेन ज्ञायते यतः कारणात् तेनैव कारणेन परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्तं। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहा दिसंज्ञादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पशून्यशुद्धजीवास्तिकायश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजापूर्वपरमानन्दरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं भरितावस्थं शुद्धनिश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥६॥

आगे पञ्चास्तिकाय और कालको द्रव्यसंज्ञा कहते हैं;—[**परियट्टणलिङ्गसंयुक्ताः**] पुद्गलादि द्रव्योंका परिणमन सो ही है लिङ्ग (चिह्न) जिसका ऐसा जो काल, तिसकर संयुक्त [**ते एव च**] वे ही [**अस्तिकायाः**] पंचास्तिकाय [**द्रव्यभावं**] द्रव्यके स्वरूपको [**गच्छन्ति**] प्राप्त होते हैं. अर्थात् पुद्गलादि द्रव्योंके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व प्रकट होता है। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें जब जाता है, तब उसका नाम सूक्ष्मकालकी पर्याय अविभागी होता है। समय कालपर्याय है। उसी समय-पर्याय के द्वारा कालद्रव्य जाना गया है। इस कारण पुद्गलादिकके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व देखनेमें आता है। कालकी पर्यायको जाननेके लिये बहिरंग निमित्त पुद्गलका परिणाम है। इसी अकाय कालद्रव्यसहित उक्त पंचास्तिकाय ही षड्द्रव्य कहलाते हैं। जो अपने गुण पर्यायोंकर परिणमा है, परिणमता है और परिणमैगा उसका नाम द्रव्य है। ये षड्द्रव्य कैसे हैं कि,—[**त्रैकालिकभावपरिणताः**] अतीत, अनागत, वर्तमान काल संबंधी जो भाव कहिये गुणपर्याय हैं उनसे परिणये हैं फिर कैसे हैं ये षड्द्रव्य? [**नित्याः**] नित्य अविनाशीरूप हैं। **भावार्थ**—यद्यपि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे त्रिकालपरिणामकर विनाशीक हैं, परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा टंकोत्कीर्णरूप (टांकीसे उकेरे हुएके समान जैसेका तैसा) सदा अविनाशी हैं ॥६॥

---

१ पञ्चास्तिकायाः. २ अत्र पञ्चास्तिकायप्रकरणे. ३ परिवर्तनमेव पुद्गलादिपरिणमनमेव अग्नेर्धूमवत्कार्यभूतं लिङ्गं चिह्नं गमकं सूचकं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुद्रव्यरूपो द्रव्यकालस्तेन संयुक्तः। ननु कालद्रव्यसंयुक्त इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्त इत्यवक्तव्यवचनं किमर्थमिति। नैवं। पञ्चास्तिकायप्रकरणे कालमुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यलिङ्गेन ज्ञायते।

अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियत[1]स्वरूपादप्रच्यवनमुक्तम्—

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य ।
मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति ॥७॥

अत एव तेषां[2] परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम्। अत एव च तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीवकर्म्मणोर्व्यवहारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति ॥७॥

इति कालसहितपंचास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता । अथ षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरे स्वकीयस्वकीयस्वरूपादच्यवनमुपदिशति;—**अण्णोण्णं पविसंता** अन्यक्षेत्रात्क्षेत्रान्तरं प्रति परस्परसंबंधार्थमागच्छन्तः **दिंता ओगासमण्णमण्णस्स** आगतानां परस्परमवकाशदानं ददतः **मेलंतावि य णिच्चं** अवकाशदानानन्तरं परस्परमेलापकेन स्वकीयावस्थानकालपर्यन्तं युगपत्प्राप्तिरूपः संकरः परस्परविषयगमकरूपव्यतिकरः ताभ्यां विना नित्यं सर्वकालं तिष्ठन्तोपि **सगसब्भावं ण विजहंति** स्वस्वरूपं न त्यजन्तीति । अथवा अन्योन्यं प्रविशन्तः सक्रियवन्तः जीवपुद्गलापेक्षया, आगतानामवकाशं ददतः इति सक्रियनिःक्रियद्रव्यमेलापकापेक्षया, नित्यं सर्वकालं मेलापकेन तिष्ठन्त इति धर्माधर्माकाशकालनिःक्रियद्रव्यापेक्षया, इति षड्द्रव्यमध्ये ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतकृष्णनीलकापोताशुभलेश्यादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पकल्लोलमालारहितं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानन्दरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावस्वभावेन स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं सालम्बं आधारं भरितावस्थं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति पाठः । निश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः । यत्पुनरन्येषामेकान्तवादिनां रागद्वेषमोहसहितानामपि वायुधारणादिसर्वशून्यध्यानव्याख्यानमाकाशध्यानं वा तत्सर्वं

आगे यद्यपि षड्द्रव्य परस्पर अत्यन्त मिले हुए हैं, तथापि अपने स्वरूपको छोड़ते नहीं ऐसा कथन करते हैं;—[**अन्योऽन्यं प्रविशन्ति**] छहों द्रव्य परस्पर सम्बन्ध करते हैं, अर्थात् एक दूसरेसे मिलते हैं, और [**अन्योऽन्यस्य**] परस्पर एक दूसरेको [**अवकाशं**] स्थानदान [**ददन्ति**] देते हैं, कोई भी द्रव्य किसी द्रव्यको बाधा नहीं देता [**अपि च**] और [**नित्यं**] सदाकाल [**मिलन्ति**] मिलते रहते हैं, अर्थात् परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप मिलते हैं, तथापि [**स्वकं**] आत्मीक शक्तिरूप [**स्वभावं**] परिणामोंको [**न विजहन्ति**] नहीं छोड़ते हैं। **भावार्थ**—यद्यपि छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं, तथापि अपनी अपनी सत्ताको कोई भी द्रव्य छोड़ता नहीं है। इस कारण ये द्रव्य मिलकर

---

१ स्वकीयस्वकीयस्वरूपात्. २ तेषां द्रव्याणां ।

अत्रास्तित्वरूपमुक्तम्;—

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥

सत्ता सर्वपदस्था सविश्वरूपा अनन्तपर्याया।
भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका सप्रतिपक्षा भवत्येका ॥८॥

अस्तित्वं हि सत्ता नाम सतो भावः सत्त्वं न सर्वथा नित्यतया सर्वथा

निरर्थकमेव। संकल्पविकल्पयोर्भेदः कथ्यते—बहिर्द्रव्ये चेतनाचेतनमिश्रे ममेदमित्यादिपरिणामः "संकल्पः" अभ्यन्तरे सुख्यहं दुःख्यहं इत्यादिहर्षविषादपरिणामो "विकल्प" इति संकल्पविकल्पलक्षणं ज्ञातव्यं। वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ वीतरागविशेषणमनर्थकमित्युक्ते सति परिहारमाह। आर्तरौद्र-रूपस्य विषयकषायनिमित्तस्याशुभध्यानस्य वर्जनार्थत्वात् हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानत्वाद्वा कर्मधारय-समासत्वाद्वा भावनाग्रन्थे पुनरुक्तदोषाभावत्वाद्वा स्वरूपस्यविशेषणत्वाद्वा दृढीकरणार्थत्वाद्वा। एवं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यम्। वीतरागसर्वज्ञनिर्दोषिपरमात्मशब्दादिष्वप्य-नेनैव प्रकारेण पूर्वपक्षे कृते यथासंभवं परिहारो दातव्यः इति। यत एव कारणाद्वीतरागस्तत एव कारणान्निर्विकल्पसमाधिः इति हेतुहेतुमद्भावशब्दस्यार्थः ॥७॥

संकरव्यतिकरदोषपरिहारेण गाथा गता एवं स्वतन्त्रगाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतं। इति प्रथम-महाधिकारे सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण समयशब्दार्थपीठिकाभिधानः प्रथमोन्तराधिकारः समाप्तः॥

"अथ सत्ता सव्वपयत्था" इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथाभिर्जीवपुद्गलादि-द्रव्यविवक्षारहितत्वेन सामान्यद्रव्यपीठिका कथ्यते। तत्र चतुर्दशगाथासु मध्ये सामान्यविशेषसत्ता-लक्षणकथनरूपेण "सत्ता सव्वपयत्था" इत्यादि प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं, तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोरभेदो द्रव्यशब्दव्युत्पत्तिकथनमुख्यत्वेन च "दवियदि" इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रमेकं, अथ द्रव्यस्य लक्षणत्रय-सूचनरूपेण "दव्वं सल्लक्खणियं" इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रमेकं, तदनन्तरं लक्षणद्वयप्रतिपादनरूपेण "उप्पत्ती य विणासो" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ तृतीयलक्षणकथनेन "पज्जयरहिय" इत्यादि गाथाद्वयं। एवं समुदायेन गाथात्रयेण द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकपरस्परसापेक्षनयद्वयसमर्थनमुख्यतया चतुर्थस्थलं। अथ पंचमस्थले सर्वैकान्तमतनिराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गव्याख्यानमुख्यत्वेन "सियअत्थि" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकसमुदायेन प्रथमसप्तकं गतं। अथ द्वितीयसप्तकमध्ये

एक नहीं हो जाते, सब अपने अपने स्वभावको लिये पृथक् पृथक् अविनाशी रहते हैं। यद्यपि व्यव-हारनयसे बंधकी अपेक्षासे जीव पुद्गल एक हैं, तथापि निश्चयनयकर अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं हैं ॥७॥

आगे सत्ता का स्वरूप कहते हैं;—[सत्ता] अस्तित्वस्वरूप [एका] एक [भवति] है,

क्षणिकतया वा विद्यमानमात्रं वस्तु। सर्वथा नित्यस्य वस्तुनस्तत्त्वतः क्रमभुवां भावानामभावात्कुतो विकारवत्त्वम्। सर्वथा क्षणिकस्य च तत्त्वतः प्रत्यभिज्ञानाभावात् कुत एकसंतानत्वम्। ततः प्रत्यभिज्ञानहेतुभूतेन केनचित्स्वरूपेण ध्रौव्यमालम्ब्यमानं काभ्यांचित्क्रमप्रवृत्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां प्रलीयमानमुपजायमानं चैककालमेव परमार्थतस्त्रितयीमवस्थां बिभ्राणं वस्तु सदवबोध्यम्। अत एव सत्ताप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मिकाऽवबोद्धव्या। भावभाववतोः कथंचिदेकस्वरूपत्वात्। सा च त्रिलक्षणस्य समस्तस्यापि वस्तुविस्तारस्य सादृश्यसूचकत्वादेका। सर्वपदार्थस्थिता च। त्रिलक्षणस्य सदित्यभिधानस्य सदिति प्रत्ययस्य च सर्वपदार्थेषु तन्मूलस्यैवोपलम्भात्। सविश्वरूपा च विश्वस्य समस्तवस्तुविस्तारस्यापि रूपैस्त्रिलक्षणैः स्वभावैः सह वर्तमानत्वात्। अनन्तपर्याया चानन्ताभिर्द्रव्यपर्यायव्यक्तिभिस्त्रिलक्षणाभिः परिगम्यमानत्वात्। एवंभूतापि सा न खलु निरङ्कुशा किं तु सप्रतिपक्षा। प्रतिपक्षो ह्यसत्ता सत्तायाः, अत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः, अनेकत्वमेकस्याः, एकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः, एकरूपत्वं

प्रथमस्थले बौद्धमतैकान्तनिराकरणार्थं द्रव्यस्थापनमुख्यत्वेन "भावस्स णत्थि णासो" इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं तस्या विवरणार्थं गाथाचतुष्टयं। तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये तस्यैवाधिकारसूत्रस्य द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानमुख्यत्वेन "भावा जीवादीया" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ मनुष्यादिपर्यायस्य विनाशोत्पादकत्वेपि ध्रुवत्वेन विनाशो नास्तीति कथनरूपेण "मणुअत्तणेण" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ तस्यैव दृढीकरणार्थं "सो चेव" इत्यादि सूत्रमेकं। अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सदसतोर्विनाशोत्पादौ न स्तः पर्यायार्थिकनयेन पुनर्भवत इति नयद्वयव्याख्यानोपसंहाररूपेण "एवं सदो विणासो" इत्यादि उपसंहारगाथासूत्रमेकं इति द्वितीयस्थले समुदायेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं तृतीयस्थले सिद्धस्य पर्यायार्थिकनयेनासदुत्पादमुख्यतया "णाणावरणादीया" इत्यादि सूत्रमेकं, अथैवं चतुर्थस्थले द्रव्यरूपेण नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवत्वाद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन द्रव्यपीठिकासमाप्त्यर्थं वा "एवं भावं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, इति समुदायेन चतुर्भिःस्थलैर्द्वितीयसप्तकं गतं। एवं चतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्द्रव्यपीठिकायां समुदायपातनिका। तद्यथा। अथास्तित्वस्वरूपं निरूपयति, अथवा सत्तामूलानि द्रव्याणीति कृत्वा पूर्वं सत्तास्वरूपं भणित्वा पश्चात् द्रव्यव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति भगवान्:—हवदि भवति। का कर्त्री। सत्ता

फिर कैसी है? [सर्वपदस्था] समस्त पदार्थोंमें स्थित है [सविश्वरूपा] नाना प्रकारके स्वरूपोंसे संयुक्त है [अनन्तपर्याया] अनन्त हैं परिणाम जिसमें ऐसी है [भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका] उत्पादव्यय

---

१ निश्चयात् स्वभावात्. २ पर्यायाणाम्. ३ पूर्वानुभूतदर्शनेन जायमानं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्. ४ पर्यायाभ्याम्. ५ पर्य्यायद्रव्ययोः परिणामपरिणामिनोर्वा. ६ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य ७ अर्थस्य तयोराधारभूतस्य तद्गुणस्य. ८ व्यापकत्वात्।

सर्वविश्वरूपायाः, एकपर्यायत्वमनन्तपर्यायायाः इति। द्विविधा हि सत्ता महासत्तावान्तरसत्ता च । तत्र सर्वपदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता प्रोक्तैव । अन्या तु प्रतिनियमवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता। तत्र महासत्ताऽवान्तरसत्तारूपेणाऽसत्ताऽवान्तरसत्ता च महासत्तारूपेणाऽसत्तेत्यसत्ता सत्तायाः । येन स्वरूपेणोत्पादस्तत्तथोत्पादैकलक्षणमेव येन स्वरूपेणोच्छेदस्तत्तथोच्छेदैकलक्षणमेव येन स्वरूपेण ध्रौव्यं तत्तथा ध्रौव्यैकलक्षणमेव तत उत्पद्यमानोच्छिद्यमानाऽवतिष्ठमानानां वस्तुनः स्वरूपाणां प्रत्येकं त्रैलक्षण्याभावादत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः । एकस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता नान्यस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता भवतीत्यनेकत्वमेकस्याः । प्रतिनियतपदार्थस्थिताभिरेव सत्ताभिः पदार्थानां प्रतिनियमो भवतीत्येकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः ।

सत्ता । कथंभूता । सव्वपदत्था सर्वपदार्था । पुनरपि कथंभूता । सविस्सरूवा सविश्वरूपा । पुनरपि किंविशिष्टा । अणंतपज्जाया अनंतपर्याया। पुनरपि किंविशिष्टा । भंगुप्पादधुवत्ता भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका । पुनश्च किं विशिष्टा । एक्का महासत्तारूपेणैका । एवं पंचविशेषणविशिष्टा सत्ता किं निरंकुशा निःप्रतिपक्षा भविष्यति। नैवं। सप्पडिवक्खा सप्रतिपक्षैवेति वार्तिकं । तथाहि—स्वद्रव्यादिचतुष्टयरूपेण सत्तायाः परद्रव्यादिचतुष्टयरूपेणासत्ता प्रतिपक्षः, सर्वपदार्थस्थितायाः सत्तायाः एकपदार्थस्थिता प्रतिपक्षः, मूर्तो घटः सौवर्णो घटः ताम्रो घट इत्यादिरूपेण सविश्वरूपाया नानारूपाया एकघटरूपा सत्ता प्रतिपक्षः, अथवा विवक्षितैकघटे वर्णाकारादिरूपेण विश्वरूपायाः सत्ताया विवक्षितैकगन्धादिरूपा प्रतिपक्षः, कालत्रयापेक्षयानन्तपर्यायायाः सत्ताया विवक्षितैकपर्यायसत्ता प्रतिपक्षः, उत्पादव्ययध्रौव्य-

---

ध्रौव्यस्वरूप है [सप्रतिपक्षा] प्रतिपक्षसंयुक्त है । भावार्थ—जो अस्तित्व है सो ही सत्ता है । जो सत्ता लिये है वही वस्तु है । वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है । यदि वस्तु को सर्वथा नित्य ही माना जाय तो सत्ताका नाश हो जाय, क्योंकि नित्य वस्तुमें क्षणवर्ती पर्यायके अभावसे परिणामका अभाव होता है, परिणामके अभावसे वस्तुका अभाव होता है । जैसे मृत्पिंडादिक पर्यायोंके नाश होनेसे मृत्तिकाका नाश होता है । कदाचित् वस्तुको क्षणिक ही माना जाय तो यह वस्तु वही है जो मैंने पहिले देखी थी; इस प्रकारके ज्ञानका नाश होनेसे वस्तुका अभाव हो जायगा, इस कारण यह वस्तु वही है जो मैंने पहिले देखी थी, ऐसे ज्ञान के निमित्त वस्तुको ध्रौव्य (नित्य) मानना योग्य है। जैसे बालक युवा वृद्धावस्थामें पुरुष वहां नित्य रहता है, उसी प्रकार अनेक पर्यायोंमें द्रव्य नित्य है। इस कारण वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है, और इसीसे यह बात सिद्ध हुई कि, वस्तु जो है सो उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है पर्यायोंकी अनित्यताकी अपेक्षासे उत्पादव्ययरूप है, और गुणोंकी नित्यता होनेकी अपेक्षा ध्रौव्य है, इस प्रकार तीन अवस्थाको लिये वस्तु सत्तामात्र होती है। सत्ता उत्पादव्यय-

---

१. अवान्तरसत्ता. २. एकमेकस्वरूपं प्रति त्रिलक्षणत्वाभावात्. ३. निश्चयः ।

प्रतिनियतैकरूपाभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकरूपत्वं वस्तूनां भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपायाः प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाः। इति सर्वमनवद्यम् सामान्यविशेषप्ररूपणप्रवण-

---

रूपेण त्रिलक्षणायाः सत्ताया विवक्षितैकस्योत्पादस्य वा व्ययस्य वा ध्रौव्यस्य वा सत्ता प्रतिपक्षः, एकस्या महासत्ताया अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष इति शुद्धसंग्रहनयविवक्षायामेका महासत्ता अशुद्धसंग्रहनयविवक्षायां व्यवहारनयविवक्षायां वा सर्वपदार्थसविश्वरूपाद्यवान्तरसत्ता सप्रतिपक्षव्याख्यानं सर्वं नैगमनयापेक्षया ज्ञातव्यं। एवं नैगमसंग्रहव्यवहारनयत्रयेण सत्ताव्याख्यानं योजनीयं, अथवैका महासत्ता शुद्धसंग्रहनयेन, सर्वपदार्थाद्यवान्तरसत्ता व्यवहारनयेनेति नयद्वयव्याख्यानं कर्तव्यं। अत्र शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञस्य शुद्धजीवद्रव्यस्य या सत्ता सैवोपादेया भवतीति भावार्थः ॥८॥

ध्रौव्यस्वरूप है। यद्यपि नित्य अनित्यका भेद है, तथापि कथंचित्प्रकार सत्ताकी अपेक्षासे एकता है। सत्ता वही है जो नित्यानित्यात्मक है। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक जो है वह सकल विस्तार लिये पदार्थोंमें सामान्य कथनके करनेसे सत्ता एक है समस्त पदार्थोंमें रहती है, क्योंकि 'पदार्थ है' ऐसा जो कथन है और 'पदार्थ है' ऐसी जो जाननेकी प्रतीति है सो उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है। उसीसे सत्ता है। यदि सत्ता नहीं होय तो पदार्थोंका अभाव हो जाय, क्योंकि सत्ता मूल है, और जितना कुछ समस्त वस्तुका विस्तारस्वरूप है, सो भी सत्तासे गर्भित है। और अनन्त पर्यायोंके जितने भेद हैं, उतने सब इन उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप भेदोंसे जाने जाते हैं। यह ही सामान्यस्वरूप सत्ता विशेषताकी अपेक्षासे प्रतिपक्ष लिये है। इस कारण सत्ता दो प्रकारकी है, अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता। जो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यरूप त्रिलक्षणसंयुक्त है, और एक है, तथा समस्त पदार्थोंमें रहती है, समस्तरूप है, और अनन्तपर्यायात्मक है सो तो महासत्ता है, और जो इसकी ही प्रतिपक्षिणी है, सो अवान्तरसत्ता है। सो यह महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षण गर्भित नहीं है, अनेक है, एक पदार्थमें रहती है, एक स्वरूप है, एक पर्यायात्मक है। इस प्रकार प्रतिपक्षिणी अवान्तरसत्ता जाननी। इन दोनोंमेंसे जो समस्त पदार्थोंमें सामान्यरूपसे व्याप रही है, वह तो महासत्ता है। और जो दूसरी है सो अपने एक एक पदार्थके स्वरूपमें निश्चिन्त विशेषरूप वर्ते है, इस कारण उसे अवान्तरसत्ता कहते हैं। महासत्ता अवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। अवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है, इसी प्रकार सत्ताकी असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षणसंयुक्त जो सत्ता है, वह ही तीन लक्षणसंयुक्त नहीं है। क्योंकि जिस स्वरूपसे उत्पाद है, उसकर उत्पाद ही है; जिस स्वरूपकर व्यय है, उसकर व्यय ही है; जिस स्वरूपकर ध्रौव्यता है, उसकर ध्रौव्य ही है। इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य जो वस्तुके स्वरूप हैं, उनमें एक एक स्वरूपको उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते, इसी कारण तीन लक्षणरूप सत्ताके तीन लक्षण नहीं हैं; और उस ही महासत्ताको अनेकता है, क्योंकि निज निज पदार्थोंमें जो सत्ता है उससे पदार्थोंका निश्चय होता है। इस कारण सर्वपदार्थव्यापिनी महासत्ता निज निज एक पदार्थकी अपेक्षासे एक एक पदार्थमें तिष्ठे है, ऐसी है, और जो वह महासत्ता सकलस्वरूप है, सो ही एकरूप है, क्योंकि अपने अपने पदार्थोंमें निश्चित एक ही स्वरूप है। इस कारण सकल स्वरूप सत्ताको एकरूप कहा जाता

नयद्वयायत्तत्वात् तद्देशनायाः ॥८॥

अत्र सत्ताद्रव्ययोरर्थान्तरत्वं [2]प्रत्याख्यातम्;—

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥९॥

द्रवति गच्छति तांस्तान् सद्भावपर्यायान् यत् ।
द्रव्यं तत् भणन्ति अनन्यभूतं तु सत्तातः ॥९॥

द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्नोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यानुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम् ।

इति प्रथमस्थले सत्तालक्षणमुख्यत्वेन व्याख्यानेन गाथा गता। अथ सत्ताद्रव्ययोरभिन्नत्वं प्रत्याख्याति;—**दवियदि** द्रवति। द्रवति कोर्थः। **गच्छदि** गच्छति। क। वर्तमानकाले। द्रोष्यति गमिष्यति भाविकाले। अदुद्रुवत गतं भूतकाले। कान्। **ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं** तांस्तान् सद्भावपर्यायान् स्वकीयपर्यायान् **जं** यत् कर्तृ **दवियत्तं भण्णंति** हि तद्द्रव्यं भणन्ति सर्वज्ञा हि स्फुटं। अथवा द्रवति स्वभावपर्यायान् गच्छति विभावपर्यायान्। इत्थंभूतं द्रव्यं किं सत्ताया भिन्नं भविष्यति ? नैवं। **अणण्णभूदं तु सत्तादो** अनन्यभूतमभिन्नं। कस्याः। सत्तायाः निश्चयनयेन। यत

है। और जो वह महासत्ता अनंतपर्य्यायात्मक है, उसीको एक पर्यायस्वरूप कहते हैं; क्योंकि अपने अपने पर्यायोंकी अपेक्षासे द्रव्योंकी अनन्त सत्ता है। एक द्रव्यके निश्चित पर्यायकी अपेक्षासे एक पर्यायरूप कहा जाता है, इस कारण अनन्तपर्यायस्वरूप सत्ताको एक पर्यायस्वरूप कहते हैं। यह जो सत्ताका स्वरूप कहा, तिसमें कुछ विरोध नहीं है, क्योंकि भगवान्‌का उपदेश सामान्यविशेषरूप दो नयोंके आधीन है, इस कारण महासत्ता और अवान्तर सत्ताओंमें कोई विरोध नहीं है ॥८॥

आगे सत्ता और द्रव्यमें अभेद दिखाते हैं,—[**यत्**] जो सत्तामात्र वस्तु [**तान् तान्**] उन उन अपने [**सद्भावपर्यायान्**] गुणपर्य्याय स्वभावोंको [**द्रवति गच्छति**] प्राप्त होती है अर्थात् एकताकर व्याप्त होती है [**तत्**] सो [**द्रव्यं**] द्रव्यनाम [**भणन्ति**] आचार्यगण कहते हैं। अर्थात्—द्रव्य उसको कहते हैं कि जो अपने सामान्यस्वरूपकरके गुणपर्यायोंसे तन्मय होकर परिणमें। [**तु**] फिर वह द्रव्य निश्चयसे [**सत्तातः**] गुणपर्यायात्मक सत्तासे [**अनन्यभूतं**] जुदा नहीं है। **भावार्थ**—यद्यपि कथंचित्प्रकार लक्ष्यलक्षण भेदसे सत्तासे द्रव्यका भेद है तथापि सत्ता और द्रव्यका परस्पर अभेद है। लक्ष्य वह होता है कि जो वस्तु जानी जाय। लक्षण वह होता है कि जिसके द्वारा वस्तु जानी जाय।

---

१ अत्र सत्तादेशनाया द्विनयाधीनत्वात्। २ प्रत्याख्यातं निराकृतं। "प्रत्याख्यातो निराकृतः" इति वचनात्। ३ स्वरूपभेदात्।

द्रव्यं च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्यः कथञ्चिद्भेदेऽपि वस्तुतः सत्तायाः अपृथग्भूतमेवेति मन्तव्यम् । ततो यत्पूर्वं सत्त्वमसत्त्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं च प्रतिपादितं सत्तायास्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यं । ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत यः सत्तां वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति ॥९॥

अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम्;—

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥१०॥

द्रव्यं सल्लक्षणकं उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं ।
गुणपर्यायाश्रयं वा यत्तद्भणन्ति सर्वज्ञाः ॥१०॥

सद्द्रव्यलक्षणमुक्तलक्षणायाः सत्ताया अविशेषाद्द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्, न चानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वरूपं । यतो लक्ष्यलक्षणविभागा-

---

एव संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन सत्तायां द्रव्यमभिन्नं तत एव पूर्वगाथायां यत्सत्तालक्षणं कथितं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकरूपत्वमनेकरूपत्वं चेति तत्सर्वं लक्षणं सत्ताया अभिन्नत्वात् द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यमिति सूत्रार्थः ॥९॥

एवं द्वितीयस्थले सत्ताद्रव्ययोरभेदस्य द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेति कथनत्रयेण गाथा गता । अथ त्रेधा द्रव्यलक्षणमुपदिशति;—**दव्वं सल्लक्खणियं** द्रव्यं सत्तालक्षणं द्रव्यार्थिकनयेन बौद्धं प्रति **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तं पर्यायार्थिकनयेन **गुणपज्जयासयं वा** गुणपर्यायाधार-

---

द्रव्य लक्ष्य है, सत्ता लक्षण है। लक्षणसे लक्ष्य जाना जाता है। जैसे उष्णतालक्षणसे लक्ष्यस्वरूप अग्नि जानी जाती है। तैसे ही सत्ता लक्षणके द्वारा द्रव्य लक्ष्य लखिये है अर्थात् जाना जाता है। इस कारण पहिले जो सत्ताके लक्षण अस्तित्वस्वरूप, नास्तित्वस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूपसे रहित, एकस्वरूप और अनेकस्वरूप, सकलपदार्थव्यापी और एक पदार्थव्यापी, सकलरूप और एकरूप, अनन्तपर्यायरूप और एकपर्यायरूप इस प्रकार कहे थे, वे सबही पृथक् नहीं हैं, एक स्वरूप ही हैं। यद्यपि वस्तुस्वरूपको दिखानेके लिये सत्ता और द्रव्यमें भेद कहते हैं तथापि वस्तुस्वरूपसे विचार किया जाय तो कोई भेद नहीं है। जैसे उष्णता और अग्नि अभेदरूप हैं ॥९॥

आगे द्रव्यके तीन प्रकार लक्षण दिखाते हैं;—[तत्] जो [सल्लक्षणकं] सत्ता है लक्षण जिसका ऐसा है [तत्] उस वस्तुको [सर्वज्ञाः] सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं वे [द्रव्यं] द्रव्य [भणन्ति] कहते हैं [वा] अथवा [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं] उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्त द्रव्यका लक्षण कहते हैं। [वा]

---

१ संज्ञालक्षणप्रयोजनेन. २ परमार्थतः. ३ ज्ञातव्यं अवबोद्धव्यं वा. ४ द्रव्यम्।

भाव इति उत्पादव्ययध्रौव्याणि वा द्रव्यलक्षणं। एकजात्यविरोधिनि क्रमभुवां भावानां संताने पूर्वभावविनाशः समुच्छेद उत्तरभावप्रादुर्भावश्च समुत्पादः। पूर्वोत्तरभावोच्छेदोत्पादयोरपि स्वजातेरपरित्यागो ध्रौव्यं। तानि सामान्यादेशादभिन्नानि विशेषादेशाद्भिन्नानि युगपद्भावीनि स्वभावभूतानि द्रव्यस्य लक्षणं भवन्तीति। गुणपर्याया वा द्रव्यलक्षणं। अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनोऽन्वयिनो विशेषा गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायास्ते। द्रव्ये यौगपद्येन क्रमेण च प्रवर्तमानाः कथञ्चिद्भिन्नाः स्वभावभूताः द्रव्यलक्षणतामापद्यन्ते। त्रयाणामप्यमीषां द्रव्यलक्षणानामेकस्मिन्नभिहितेऽन्यदुभयमर्थादेवापद्यते। सच्चेदुत्पादव्ययध्रौव्यवच्च गुणपर्यायवच्च। उत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेत्सच्च गुणपर्यायवच्च। गुणपर्यायवच्चेत्सच्चोत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेति। सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद्ध्रुवत्वमुत्पादव्ययात्मकताश्च प्रथयति। ध्रुवत्वात्मकैर्गुणै-

---

भूतं वा सांख्यनैयायिकं प्रति जं तं भण्णंति सव्वण्हू यदेवं लक्षणत्रयसंयुक्तं तद्द्रव्यं भणंति सर्वज्ञा इति वार्तिकं तथाहि— सत्तालक्षणमित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायित्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमित्युक्ते सत्तालक्षणं गुणपर्यायित्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते गुणपर्यायवदित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणत्वं सत्तालक्षणं च नियमेन लभ्यते। एकस्मिंल्लक्षणेऽभिहिते सत्य-

---

अथवा [गुणपर्यायाश्रयं] गुणपर्यायका जो आधार है, उसको द्रव्यका लक्षण कहते हैं। **भावार्थ—** द्रव्यके तीन प्रकारके लक्षण हैं। एक तो द्रव्यका सत्तालक्षण है, दूसरा उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तलक्षण है, तीसरा गुणपर्यायाश्रित लक्षण है। इन तीनों ही लक्षणोंमें पहिले पहिले लक्षण सामान्य हैं, अगले अगले विशेष हैं, सो दिखाया जाता है। जो प्रथम ही सत्लक्षण कहा, वह तो सामान्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यका लक्षण जानना। द्रव्य अनेकान्त स्वरूप है। द्रव्यका सर्वथा प्रकार सत्ता ही लक्षण है। इस प्रकार कहनेसे लक्ष्य लक्षणमें भेद नहीं होता। इस कारण द्रव्यका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य भी जानना। एक वस्तुमें अविरोधी जो क्रमवर्त्ती पर्याय हैं, उनमें पूर्व भावोंका विनाश होता है, अगले भावोंका उत्पाद होता है, इस प्रकार उत्पादव्ययके होते हुए भी द्रव्य अपने निजस्वरूपको नहीं छोड़ता है, वही ध्रौव्य है। ये उत्पादव्ययध्रौव्य ही द्रव्यके लक्षण हैं। ये तीनों भाव सामान्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भिन्न नहीं है। विशेष कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भेद दिखाया जाता है। एक ही समयमें ये तीनों भाव होते हैं, द्रव्यके स्वाभाविक लक्षण हैं। उत्पादव्ययध्रौव्य द्रव्यका विशेष लक्षण है। इस प्रकार सर्वथा कहा नहीं जाता, इस कारण गुणपर्याय भी द्रव्य का लक्षण है। कारण कि—द्रव्य अनेकान्तस्वरूप है। अनेकान्त तब ही होता है—जब कि द्रव्यमें अनन्तगुणपर्याय हों। इस कारण गुण और पर्याय द्रव्यके विशेष स्वरूपको दिखाते हैं। जो द्रव्यसे सहभूतताकर अविनाशी हैं वे तो गुण हैं, जो क्रमवर्त्ती करके विनाशीक हैं वे पर्याय हैं। ये द्रव्योंमें गुण और पर्याय कथंचित् प्रकारसे अभेद

---

१. गुणपर्य्यायाः २. द्रव्यस्य लक्षणभूताः ३. प्राप्नुवन्ति ४. सत्ता, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वं, गुणपर्यायत्वं चेति त्रयाणाम् ५. लक्षणे ६. कथ्यते ७. अर्थानुसारात्।

रुत्पादव्ययाद् व्ययात्मकैः पर्यायैश्च सहैकत्वञ्चाख्यांति। उत्पादव्ययध्रौव्याणि तु नित्यानित्यस्वरूपं परमार्थं सदा वेदयन्ति। गुणपर्यायांश्चात्मलाभनिबन्धनभूतान् प्रथयन्ति। गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद्ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभावं परमार्थं सच्चोपलक्षयन्ति ॥१०॥

न्यलक्षणद्वयं कथं लभ्यत इति चेत्, त्रयाणां लक्षणानां परस्पराविनाभावित्वादिति। अथ मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धसत्तालक्षणं अगुरुलघुत्वषड्ढानिवृद्धिरूपेण शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं अकृतज्ञाद्यनन्तगुणलक्षणं सहजशुद्धसिद्धपर्यायलक्षणं च शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः। क्षणिकैकान्तरूपं बौद्धमतं नित्यैकान्तरूपं सांख्यमतं उभयैकान्तरूपं नैयायिकमतं मीमांसकमतं च सर्वत्र मतान्तरव्याख्यानकाले ज्ञातव्यं। क्षणिकैकान्ते किं दूषणं ? येन घटादिक्रिया प्रारब्धा स तस्मिन्नेव क्षणे गतः क्रियानिष्पत्तिर्नास्तीत्यादि। नित्यैकान्ते च योऽसौ तिष्ठति स तिष्ठत्येव, सुखी सुख्येव, दुःखी दुःख्येवेत्यादिटंकोत्कीर्णनित्यत्वेन पर्यायान्तरं न घटते, परस्परनिरपेक्षद्रव्यपर्यायोभयैकान्ते पुनः पूर्वोक्तदूषणद्वयमपि प्राप्नोति। जैनमते पुनः परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायत्वान्नास्ति दूषणं ॥१०॥

इति तृतीयस्थले द्रव्यस्य सत्तालक्षणत्रयसूचनमुख्यत्वेन गाथा गता। अथ गाथापूर्वार्द्धेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यलक्षणं उत्तरार्द्धेन पर्यायार्थिकनयेन पर्यायलक्षणं प्रतिपादयति;—उप्पत्ती य

रूप हैं और कथंचित्प्रकार भेद लिये हैं। संज्ञादि भेदकर तो भेद हैं, वस्तुतः अभेद है। यह जो पहिले ही तीन प्रकार द्रव्यके लक्षण कहे, उसमेंसे जो एक ही कोई लक्षण कहा जाय तो शेषके दो लक्षण भी उसमें गर्भित हो जाते हैं। यदि द्रव्यका लक्षण सत् कहा जाय तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुणपर्यायवान् दोनों ही लक्षण गर्भित होते हैं, क्योंकि जो 'सत्' है सो नित्य अनित्यस्वरूप है। नित्य स्वभावमें ध्रौव्यता आती है। अनित्य स्वभावमें उत्पाद और व्यय आता है। इस प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य सत्‌लक्षणके कहनेसे आते हैं। और गुणपर्याय लक्षण भी आता है। और ध्रौव्यता आती है और पर्यायके कहते उत्पाद व्यय आते हैं। और इसी प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण कहनेसे सत्‌लक्षण आता है। गुणपर्याय लक्षण भी आता है। और गुणपर्याय द्रव्यका लक्षण कहते सत्‌लक्षण आता है और उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण भी आता है, क्योंकि—द्रव्य नित्य अनित्यस्वरूप है। लक्षण नित्य अनित्य स्वरूपको सूचन करता है। इस कारण इन तीनों ही लक्षणों में सामान्य विशेषता करके तो भेद है, वास्तवमें कुछ भी भेद नहीं है ॥१०॥

आगे द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदकर द्रव्यके लक्षणका भेद दिखाते हैं;—**[द्रव्यस्य]** अनादिनिधन त्रिकाल अविनाशी गुणपर्यायस्वरूप द्रव्यका **[उत्पत्ति]** उपजना **[वा]** अथवा **[विनाशः]**

---

१. कथयति २. कर्तृणि ३. विस्तारयन्ति ४. दर्शयन्ति अवबोधयन्ति वा।

अत्रोभयनयाभ्यां द्रव्यलक्षणं प्रविभक्तम्;—

उप्पत्तीव विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो ।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया: ॥११॥

उत्पत्तिर्वा विनाशो द्रव्यस्य च नास्त्यस्ति सद्भावः ।
विगमोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति तस्यैव पर्यायाः ॥११॥

द्रव्यस्य हि सहक्रमप्रवृत्तगुणपर्यायसद्भावरूपस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेदसमुदयौ युक्तौ । अथ तस्यैव पर्यायाणां सहप्रवृत्तिभाजां केषांचित् ध्रौव्यसंभवेऽप्यपरेषां क्रमप्रवृत्तिभाजां विनाशसंभवसंभावनमुपपन्नम् । ततो द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं । तदेव पर्यायार्थार्पणायां सोत्पादं सोच्छेदं चावबोद्धव्यम् । सर्वमिदमनवद्यञ्च द्रव्यपर्यायाणामभेदात् ॥११॥

विणासो दव्वस्स य णत्थि अनादिनिधनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति । तर्हि किमस्ति । **अत्थि सब्भावो** अस्ति विद्यते । स कः । सद्भावः सत्तास्तित्वं, इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव क्षणिकैकान्तमतनिराकरणं समर्पितं । **वयमुप्पादधुवत्तं करेंदि तस्सेव पज्जायाः** तस्यैव द्रव्यस्य व्ययोत्पादध्रुवत्वंकुर्वन्ति । के कर्तारः । पर्यायाः । अनेन किमुक्तं भवति—द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यस्यैवोत्पादव्ययध्रौव्याणि न भवन्ति किं तु पर्यायार्थिकनयेन । केन दृष्टान्तेन । सुवर्णगोरसमृत्तिकाबालवृद्धकुमारादिपरिणतपुरुषेषु भंगत्रयरूपेण । इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव नित्यैकान्तमतनिराकरणं दृढीकृतं । अत्र सूत्रे शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्तिविनाशरहितमपि पर्यायार्थिकनयेन वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंभवेन सहजपरमानन्दरूपसुखरसास्वादेन स्वसंवेदनज्ञानरूपपर्यायेण परिणतं सहितं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमेवोपादेयमिति सूत्रतात्पर्यं ॥११॥

विनसना [नास्ति] नहीं है [च] और [सद्भावः] सत्तामात्रस्वरूप [अस्ति] है [तस्य एव] तिस ही द्रव्यके [पर्यायाः] नित्य अनित्य परिणाम [विगमोत्पादध्रुवत्वं] उत्पादव्ययध्रौव्यको [कुर्वन्ति] करते हैं ।**भावार्थ**—अनादि अनन्त अविनाशी टंकोत्कीर्ण गुणपर्यायस्वरूप जो द्रव्य है, सो उपजत विनशता नहीं है परन्तु उसी द्रव्यमें कई एक परिणाम अविनाशी हैं, कई एक परिणाम विनाशीक हैं । जो गुणरूप सहभावी हैं वे तो अविनाशी हैं और जो पर्यायरूप क्रमवर्त्ती हैं वे विनाशीक हैं । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यार्थिकनयसे तो द्रव्य ध्रौव्य स्वरूप है और पर्यायार्थिकनयसे-

---

१. द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्याम् । २. शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्ति विनाशरहितम् ।

अत्र द्रव्यपर्यायाणामभेदो निर्दिष्टः;—

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥१२॥

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति ।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणाः प्ररूपयन्ति ॥१२॥

दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं द्रव्यं नास्ति। गोरसवियुक्तदुग्धदधिनवनीतघृतादिवद्द्रव्यवियुक्ताः पर्याया न सन्ति । ततो द्रव्यस्य पर्य्यायाणाञ्चा-

---

एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणनयद्वयव्याख्यानेन सूत्रं गतं । अथ द्रव्यपर्यायाणां निश्चयनयेनाभेदं दर्शयति;—**पज्जयरहित दव्वं** दधिदुग्धादिपर्यायरहितगोरसवत्पर्यायरहितं द्रव्यं नास्ति । **दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि** गोरसरहितदधिदुग्धादिपर्यायवत् द्रव्यविमुक्ता द्रव्यविरहिताः पर्याया न संति । **दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति** यत एवमभेदनयेन द्रव्यपर्याययोर्भेदो नास्ति तत एव कारणात् द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं सत्तामस्तित्वस्वरूपं प्ररूपयन्ति । के कथयन्ति । श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञा इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं–द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं पदार्थं वस्तु श्रमणाः प्ररूपयन्ति । भावशब्देन कथं पदार्थो भण्यत इति चेत् । द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्विति वचनात् । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धनिश्चयनयेनोपादेयमिति भावार्थः ॥१२॥

उपजे और विनशै भी है । इस प्रकार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयोंके भेदसे द्रव्यस्वरूप निराबाध सधै है । ऐसा ही अनेकान्तरूप द्रव्यका स्वरूप मानना योग्य है ॥११॥

आगे-यद्यपि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदसे द्रव्यमें भेद हैं तथापि अभेद दिखाते हैं;—[**पर्ययवियुतं**] पर्यायरहित [**द्रव्यं न**] द्रव्य (पदार्थ) नहीं है [**च**] और [**द्रव्यविमुक्ताः**] द्रव्यरहित [**पर्यायाः**] पर्याय [**न सन्ति**] नहीं हैं [**श्रमणाः**] महामुनि जे हैं ते [**द्वयोः**] द्रव्या और पर्यायका [**अनन्यभूतं भावं**] अभेद स्वरूप [**प्ररूपयन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ**—जैसे गोरस अपने दूध दही घी आदिक पर्यायोंसे जुदा नहीं है, उसी प्रकार द्रव्य अपनी पर्यायोंसे जुदा (पृथक्) नहीं है और पर्याय भी द्रव्यसे जुदे नहीं हैं । इसी प्रकार द्रव्य और पर्यायकी एकता है । यद्यपि कथंचित् प्रकार कथनकी अपेक्षा समझाने के लिये भेद है तथापि वस्तुस्वरूपके विचारते भेद नहीं है । क्योंकि द्रव्य और पर्यायका परस्पर एक अस्तित्व है । जो द्रव्य न होय तो पर्यायका अभाव हो जाय और पर्याय नहीं होय तो द्रव्यका अभाव हो जाय । जिस प्रकार दुग्धादि पर्यायके अभावसे गोरसका अभाव है और गोरसके अभावसे दुग्धादि पर्यायोंका अभाव होता है । इसी प्रकार इन दोनों द्रव्यपर्यायोंमेंसे

---

१. निश्चयनयेन. २. रहितम्. ३. द्रव्यरहिताः ।

देशवशात्कथंचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनाम् वस्तुत्वेनाभेद इति ॥१२॥

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्टः—

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥१३॥

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति ।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात् ॥१३॥

पुद्गलभूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः संभवन्ति । स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति । ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशात्

यस्मिन् वाक्ये नयशब्दोच्चारणं नास्ति तत्र नययोः शब्दव्यवहारः कर्तव्यः क्रियाकारकयोरन्यतराध्याहारवत् स्याच्छब्दाध्याहारवृद्वा । अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति;—दव्वेण विणा ण गुणा पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण विना गुणा न संति । गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति । अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात् एककालोत्पादव्ययाविनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्न—भावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । कोऽसौ । भावस्सत्तास्तित्वं । केषां । द्रव्यगुणानां । अथवा द्वितीयव्याख्यानं—अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । स कः । भावः पदार्थो वस्तु । केषां संभवित्वेन । द्रव्यगुणानां, इत्यनेन द्रव्यगुणात्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति । निर्विकल्पसमाधिबलेन जातमुत्पन्नं वीतरागसहजपरमानन्दसुखसंवित्त्युपलब्धिप्रतीत्यनुभूतिरूपं यत्स्वसंवेदनज्ञानं

एकका अभाव होनेसे दोनोंका अभाव होता है । इस कारण इन दोनोंमें एकता (अभेद) माननी योग्य है ॥१२॥

आगे द्रव्य और गुणमें अभेद दिखाते हैं;—[द्रव्येण विना] सत्तामात्र वस्तुके विना [गुणाः] वस्तुओंके जनानेवाले सहभूतलक्षणरूप गुण [न सम्भवति] नहीं होते [गुणैः विना] गुणोंके विना [द्रव्यं] द्रव्य [न सम्भवति] नहीं होता । [तस्मात्] तिस कारणसे [द्रव्यगुणानां] द्रव्य और गुणोंका [अव्यतिरिक्तः] जुदा नहीं है ऐसा [भावः] स्वरूप [भवति] होता है । भावार्थ—द्रव्य और गुणोंकी एकता (अभिन्नता) है अर्थात् पुद्गलद्रव्यसे जुदे स्पर्श रस गन्ध वर्ण नहीं पाये जाते । सो दृष्टान्त विशेषता कर दिखाया जाता है । जैसे एक आम (आम्रफल) द्रव्य है और उसमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं । जो आम्रफल न होय तो जो स्पर्शादि गुण हैं, उनका अभाव हो जाय । क्योंकि आश्रयविना गुण कहांसे होय ? और जो स्पर्शादि गुण नहीं होय तो आमका (आम्रफलका) अभाव

---

१. द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात्. २ निश्चयनयेन ।

यथंचिद्भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥१३॥

अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभंगी;—

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥१४॥

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्त्रितयं।
द्रव्यं खलु सप्तभङ्गमादेशवशेन सम्भवति ॥१५॥

स्यादस्ति द्रव्यं स्यान्नास्ति द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं स्यादवक्तव्यं द्रव्यं स्यादस्ति चावक्तव्यं स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यमिति। अत्र[१] सर्वथात्वनिषेधकोऽनैकान्तिको द्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छन्दो

तेनैव परिच्छेद्यं प्राप्यं रागादिविभावविकल्पजालशून्यमपि केवलज्ञानादिगुणसमूहेन भरितावस्थं यत् शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्यातव्यं तदेव वचसा वक्तव्यं कायेन तदनुकूलानुष्ठानं कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यार्थः ॥१३॥

एवं गुणपर्यायरूपत्रिलक्षणप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयं। इति पूर्वसूत्रेण सह गाथात्रयसमुदायेन चतुर्थस्थलं गतं। अथ सर्वविप्रतिपत्तीनां निराकरणार्थं प्रमाणसप्तभंगी कथ्यते। "एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः। सदादिकल्पना या च सप्तभंगीति सा मता॥" सिय अत्थि स्यादस्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तीत्यर्थः १. सिय णत्थि स्यान्नास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तीत्यर्थः २. सिय अत्थिणत्थि स्यादस्तिनास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तिनास्तीत्यर्थः ३. सिय अव्वत्तव्वं

होय क्योंकि गुणके विना आमका अस्तित्व कहाँ? अपने गुणोंकर ही आमका अस्तित्व है। इसी प्रकार द्रव्य और गुणकी एकता (अभेदता) जाननी। यद्यपि किसी ही एक प्रकारसे कथनकी अपेक्षा द्रव्य और गुणमें भेद भी है, तथापि वस्तुस्वरूपकर तो अभेद ही है ॥१३॥

आगे जिसके द्वारा द्रव्यका स्वरूप निराबाध सधता है, ऐसी स्यात्पदगर्भित जो सप्तभंगिवाणी है, उसका स्वरूप दिखाया जाता है;—[खलु] निश्चयसे [द्रव्यं] अनेकान्तस्वरूप पदार्थ [आदेशवशेन] विवक्षाके वशमें [सप्तभङ्गं] सातप्रकारसे [सम्भवति] होता है। वे सात प्रकार कौन कौनसे हैं सो कहते हैं,—[स्यात् अस्ति] किस ही एक प्रकार अस्तिरूप है [स्यात् नास्ति] किस ही एक प्रकार नास्तिरूप है। [उभयं] किस ही एक प्रकार अस्तिनास्तिरूप है। [अवक्तव्यं] किस

---

१. सप्तभग्यां।

निपातः । तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टम-वक्तव्यं द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यश्च द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टं

स्यादवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपद्वक्तुमशक्यत्वात् 'क्रमप्रवृत्तिर्भारती' तिवचनात् युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया वक्तव्यमित्यर्थः ४. **पुणोवि तत्तिदयं** पुनरपि तत्त्रियं 'सिय अत्थि अव्वतव्वं' स्यादस्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्व-परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ५ 'सियणत्थि अवत्तव्वं' स्यान्नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च नास्त्य-वक्तव्यमित्यर्थः ६. 'सिय अत्थिणत्थि अवत्तव्वं' स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्ति नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ७. **संभवदि** संभवति । किं कर्तृ । **दव्वं** द्रव्यं **खु** स्फुटं । कथंभूतं । **सत्तभंगं** सप्तभंगं । केन । **आदेसवसेण** प्रश्नोत्तरवशेन । तथाहि—अस्तीत्यादिसप्तप्रश्नेषु कृतेषु सत्सु स्यादस्तीत्यादिसप्तप्रकार-

---

ही एक प्रकार वचनगोचर नहीं है । [पुनश्च] फिर भी [तत् त्रितयं] वे ही आदिके तीनों भंग अवक्तव्यसे कहिये हैं प्रथम ही—[स्यात् अस्ति अवक्तव्यं] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्तिरूप अवक्तव्य है । दूसरा भंग—[स्यात् नास्ति अवक्तव्यं] किसी एक प्रकार द्रव्य नास्तिरूप अवक्तव्य है और तीसरा भंग—[स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्ति नास्तिरूप अवक्तव्य है । ये सप्तभङ्ग द्रव्यका स्वरूप दिखानेके लिये वीतरागदेवने कहे हैं । यही कथन विशेषताकर दिखाया जाता है । १–स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव इस अपने चतुष्टयकी अपेक्षा तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है । २–परद्रव्य परक्षेत्र परकाल और परभाव इस परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नास्ति स्वरूप है अर्थात् परसदृश नहीं है । ३–उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य क्रमसे तीन कालमें अपने भावोंकर अस्तिनास्तिस्वरूप है. अर्थात् आपसा है परसदृश नहीं है । ४–और स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं है, इस कारण अवक्तव्य है । अर्थात् कहनेमें नहीं आता । ५–और वही स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्य अस्तिस्वरूप कहिये तथापि अवक्तव्य है । ६–और वही द्रव्य परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति स्वरूप है, तथापि कहा नहीं जाता । ७–और वही द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और परचतुष्टयकी अपेक्षा और एकही बार

---

१ स्याद्वादस्वरूपेऽस्तिनास्तिकथने २ तच्च स्वद्रव्यचतुष्टयं शुद्धजीवविषये कथ्यते शुद्धपर्य्यायाधारभूतं द्रव्य भण्यते, लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्य्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयकालो भण्यते शुद्धचैतन्यभावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयः ।

नास्ति चावक्तव्यं द्रव्यं । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति । नचैतदनुपपन्नम्[1] । सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अशून्यत्वात्[2]पररूपादिना शून्यत्वात्[3] उभाभ्यामशून्यशून्यत्वात् सहवाच्यात्वात्[4] भङ्गसंयोगार्पणायामशून्यवाच्यत्वात्[5] शून्यावाच्यत्वात् अशून्यशून्यावाच्यत्वाच्चेति ॥१४॥

परिहारवशेनेत्यर्थः । इति प्रमाणसप्तभंगी । एकमपि द्रव्यं कथं सप्तभङ्ग्यात्मकं भवतीति प्रश्ने परिहारमाहुः । यथैकोपि देवदत्तो गौणमुख्यविवक्षावशेन बहुप्रकारो भवति । कथमिति चेत् । पुत्रापेक्षया पिता भण्यते सोपि स्वकीयपित्रापेक्षया पुत्रो भण्यते मातुलापेक्षया भागिनेयो भण्यते स एव भागिनेयापेक्षया मातुलो भण्यते भार्यापेक्षया भर्ता भण्यते भगिन्यपेक्षया भ्राता भण्यते विवक्षापेक्षया शत्रुर्भण्यते इष्टापेक्षया मित्रं भण्यत इत्यादि । तथैकमपि द्रव्य गौणमुख्यविवक्षावशेन सप्तभंग्यात्मकं भवतीति नास्तिदोष इति सामान्यव्याख्यानं । सूक्ष्मव्याख्यविवक्षायां पुनः सदेकनित्यादिधर्मेषु मध्ये एकैकधर्मे निरुद्धे सप्तभंगा वक्तव्याः । कथमिति चेत् । स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यमित्यादि । स्यादेकं स्यादनेकं स्यादेकानेकं स्यादवक्तव्यमित्यादि स्यान्नित्यं स्यान्नित्यानित्यं स्यादवक्तव्यमित्यादि । तत्केन दृष्टान्तेनेति कथ्यते-यथैकोपि देवदत्तः स्यात्पुत्रः स्यात्पुत्रः स्यात्पुत्रापुत्र स्यात्पुत्रोऽवक्तव्यः स्यात्पुत्रापुत्रोऽववतव्यश्चेति सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यानविवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यानं ज्ञातव्यं । स्यादस्ति द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाणसप्तभंगी ज्ञायते । कथमितिचेत् । स्यादस्तीति सकलवस्तुग्राहकत्वात्प्रमाणवाक्यं स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेशग्राहकत्वान्न वाक्यं । तथाचोक्तं । सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति । अस्ति द्रव्यमिति दुःप्रमाणवाक्यं असत्येव द्रव्यमिति दुर्नयवाक्यं । एवं प्रमाणादिवाक्यचतुष्टयव्याख्यानं बोद्धव्यं । अत्र सप्तभंग्यात्मकं षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मकद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ॥१४॥

स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिस्वरूप है तथापि अवक्तव्य है । इन सप्तभङ्गोंका विशेष स्वरूप जिनागमसे (अन्यान्य जैनशास्त्रोंसे) जान लेना । हमसे अल्पज्ञोंकी वुद्धिमें विशेष कुछ नहीं आता है । कुछ संक्षेप मात्र कहते हैं । जैसे कि-एक ही पुरुष पुत्र की अपेक्षा पिता कहलाता है और वही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र कहलाता है और वही पुरुष मामाकी अपेक्षा भाणजा कहलाता है और भाणजेकी अपेक्षा मामा कहलाता है । स्त्रीकी अपेक्षा भरतार (पति) कहलाता है । बहनकी अपेक्षा भाई भी कहलाता है । तथा वही पुरुष अपने वैरीकी अपेक्षा शत्रु कहलाता है और इष्टकी अपेक्षा मित्र भी कहलाता है । इत्यादि अनेक नातोंसे एक ही पुरुष कथंचित् अनेक प्रकार कहा जाता है उसी प्रकार एक द्रव्य सप्तभङ्गके द्वारा साधा जाता है ॥१४॥

---

१ अयुक्तम् । २ अस्तित्वात् । ३ नास्तित्वात् । ४ अस्तिनास्तिरूपेण सह एकस्मिन्समावेशशून्यत्वात् । ५ ताभ्यां अस्तिनास्तिभ्यां अस्तिनास्तित्वात् । ६ [illegible]

अत्रासत्प्रादुर्भावमुत्पादस्य सदुच्छेदत्वं विगमस्य[1] निषिद्धं;—

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥१५॥

भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैव उत्पादः ।
गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति ॥१५॥

भावस्य[2] सतो हि द्रव्यस्य न द्रव्यत्वेन विनाशः । अभावस्यासतोऽन्यद्रव्यस्य न द्रव्यत्वेनोत्पादः । किं तु भावाः सन्ति द्रव्याणि सदुच्छेदमसदुत्पादं चान्तरेणैव गुणपर्यायेषु विनाशमुत्पादं चारभन्ते । यथा हि घृतोत्पत्तौ गोरसस्य सतो न विनाशः

इत्येकसूत्रेण सप्तभंगीव्याख्यानं । एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकेन प्रथमसप्तकं गतं । अथ सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्ते द्रव्यं नास्ति सप्तभंगाः कस्य भविष्यंतीति बौद्धमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहाररूपेण गाथापातनिकां करोति द्रव्यार्थिकनयेन सतः पदार्थस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीतिवचनेन क्षणिकैकान्तबौद्धमतं निषेधयति;—**भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो** यथा गोरसस्य गोरसद्रव्यरूपेणोत्पादो नास्ति विनाशोपि नास्ति **गुणपज्जएसु व भावा उप्पादवये पकुव्वंति** तथापि वर्णरसगंधस्पर्शगुणेषु वर्णरसगंधांतरादिरूपेण परिणामिषु नश्यति नवनीतपर्याय उत्पद्यते च घृतपर्यायः तथा सतो विद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेन नास्ति विनाशः, नास्त्यसतोऽविद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेनोत्पादः तथापि गुणपर्यायेष्वधिकरणभूतेषु भावाः पदार्था जीवादिषड्द्रव्याणि कर्तॄणि पर्यायार्थिकनयेन विवक्षितनरनारकादिद्व्यणुकादिगतिस्थित्यवगाहनवर्तनादिरूपेण यथासंभवमुत्पादव्ययान्

[भावस्य] सत्‌रूप पदार्थका [नाशः] नाश [नास्ति] नहीं है [च एव] और निश्चयसे [अभावस्य] अवस्तुका [उत्पादः] उपजना [नास्ति] नहीं है । यदि ऐसा है तो वस्तुके उत्पादव्यय किस प्रकार होते हैं ? सो दिखाया जाता है । [भावाः] जो पदार्थ हैं वे [गुणपर्यायेषु] गुणपर्यायोंमें ही [उत्पादव्ययान्] उत्पाद और व्यय [प्रकुर्वन्ति] करते हैं । भावार्थ—जो वस्तु है उसका तो नाश नहीं है और जो वस्तु नहीं है, उसका उत्पाद (उपजना) नहीं है । इस कारण द्रव्यार्थिकनयसे न तो द्रव्य उपजता है और न विनशता है । और जो त्रिकाल अविनाशी द्रव्यके उत्पादव्यय होते हैं, वे

---

१ व्ययस्य विनाशस्य वा. २ भावस्येति पदस्य कोऽर्थः ? तद्यथा-सतो हि द्रव्यस्येत्यनेन विद्यमानस्य द्रव्यत्वेन न विनाश इत्यर्थः ।

न चापि गोरसव्यतिरिक्तस्यार्थान्तरस्यासतः उत्पादः किंतु गोरसस्यैव सदुच्छेदमसदुत्पादश्चानुपलभ्यमानस्य स्पर्शरसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्य्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते तथा सर्वभावानामपीति ॥१५॥

अत्र भावगुणपर्याया: प्रज्ञापिता:—

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो ।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया वहुगा ॥१६॥

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोगः ।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्यायाः वहवः ॥१६॥

भावा हि जीवादयः षट् पदार्थाः । तेषाम् गुणाः पर्यायाश्च प्रसिद्धाः । तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते । गुणा हि जीवस्य ज्ञानानुभूति-

---

प्रकुर्वन्ति । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति वा पाठः । निश्चयनयेन क्रोधमानमायालोभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरभावशून्यमपि उत्पादव्ययरहितेन वा पाठः । आद्यंतरहितेन चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं ध्यातव्यमित्यभिप्रायः ॥१५॥

इति द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धं प्रति द्रव्यस्थापनार्थं सूत्रगाथा गता । अथ पूर्वगाथोक्तान् गुणपर्यायभावान् प्रज्ञापयति;—भावा जीवादीया भावाः पदार्था भवंति । कानि । जीवादिषड्द्रव्याणि,

---

पर्यायार्थिक नयकी विवक्षाकर गुणपर्यायोंमें जानने । जैसे गौरस अपने द्रव्यत्वकर उपजता विनशता नहीं है—अन्यद्रव्यरूप होकर नहीं परिणमता है, आपसरीखा ही है, परन्तु उसी गौरसमें दधि, माखन घृतादि पर्याय उपजती विनशती हैं, वे अपने स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंके परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाते हैं । इसी प्रकार द्रव्य अपने स्वरूपसे अन्यद्रव्यरूप होकरके नहीं परिणमता है । सदा आपसरीखा है । अपने अपने गुण परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाता है, इस कारण उपजते विनशते कहे जाते हैं ॥१५॥

आगे षड्द्रव्योंके गुणपर्याय कहते हैं:—[भावाः] पदार्थ [जीवाद्याः] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह जानने । इन षट् द्रव्योंके जो गुणपर्याय हैं, वे सिद्धांतोंमें प्रसिद्ध

---

१ अप्राप्यमाणस्य, २ द्रव्यगुणपर्य्याया ।

लक्षणा शुद्धचेतना, कार्यानुभूतिलक्षणा कर्मफलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चैतन्यानुविधायिपरिणामलक्षणः सविकल्पनिर्विकल्परूपः शुद्धाशुद्धतया सकलविकलतां

धर्मादिचतुर्द्रव्याणां गुणपर्यायानग्रे यथास्थानं विशेषेण कथयति । अत्र तावत् जीवगुणा अभिधीयते जीवगुणा चेदणा य उवओगो जीवगुणा भवन्ति । के ते । शुद्धाशुद्धरूपेण द्विविधा चेतना ज्ञानदर्शनो पयोगौ चेति संग्रहवाक्यं वार्तिकं समुदायकथनं तात्पर्यार्थकथनं संपिंडितार्थकथनमिति यावत् । तद्यथा । ज्ञानचेतना शुद्धचेतना भण्यते, कर्मचेतना कर्मफलचेतना अशुद्धा भण्यते सा त्रिप्रकारापि चेतना अग्रे चेतनाधिकारे विस्तरेण व्याख्यायते । इदानीमुपयोगः कथ्यते । सविकल्पो ज्ञानोपयोगो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगः । ज्ञानोपयोगोऽष्टधा, मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानीति संज्ञानपंचकं कुमतिकुश्रुत-विभंगरूपेणाज्ञानत्रयमित्यष्टधा ज्ञानोपयोगः । तत्र केवलज्ञानं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, शेषाणि सप्त मतिज्ञानादीनि क्षायोपशमिकानि सावरणत्वादशुद्धानि । दर्शनोपयोगश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शन-रूपेण चतुर्द्धा । तत्र केवलदर्शनं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, चक्षुरादित्रयं क्षायोपशमिकं सावरण-

[illegible] जीवपर्यायाः कथ्यन्ते सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा सुरनरनारक-तिर्यंचो जीवस्य विभावद्रव्यपर्याया बहवो भवन्ति । किंच । द्विधा पर्याया द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च । द्रव्यपर्यायलक्षणं कथ्यते—अनेकद्रव्यात्मिकाया ऐक्यप्रतिपत्तेर्निबन्धनकारणभूतो द्रव्यपर्यायः अनेक-द्रव्यात्मिकैकयानवत् । स च द्रव्यपर्यायो द्विविधः समानजातीयोऽसमानजातीयश्चेति । समानजातीयः कथ्यते—द्वे त्रीणि वा चत्वारीत्यादिपरमाणुपुद्गलद्रव्याणि मिलित्वा स्कंधा भवन्तीत्यचेतनस्यापरेणा-चेतनेन संबंधात्समानजातीयो भण्यते । असमानजातीयः कथ्यते—जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनो-कर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादिपर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमान-जातीयः द्रव्यपर्यायो भण्यते । एते समानजातीया असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्य-

---

हैं, तथापि इनमें जीवनामा पदार्थ प्रधान है । उसका स्वरूप जाननेके लिये असाधारण लक्षण[1] कहा जाता है । [जीवगुणाः चेतना च उपयोगः] जीव द्रव्यका निज लक्षण एक तो शुद्धाशुद्ध अनुभूतिरूप चेतना है और दूसरा शुद्धाशुद्ध चैतन्यपरिणामरूप उपयोग है । ये जीवद्रव्यके गुण हैं । [च] फिर [जीवस्य] जीवके [बहवः] नानाप्रकारके, [सुरनरनारकतिर्यञ्चः पर्यायाः] देवता मनुष्य, नारकी, तिर्यंच ये अशुद्धपर्याय जानने । **भावार्थ**—जीव द्रव्यके दो लक्षण हैं । एक तो चेतना है दूसरा उपयोग है । अनुभूतिका नाम चेतना है । वह अनुभूति ज्ञान, कर्म, कर्मफलके भेदसे तीन प्रकारकी है । जो ज्ञानाभाव-से स्वरूपका वेदना सो तो **ज्ञानचेतना** है, और जो कर्मका वेदना सो **कर्मचेतना** है, और कर्मफलका वेदना सो **कर्मफलचेतना** है । शुद्धाशुद्धजीवका सामान्य लक्षण है । जो चैतन्यभावकी परणतिरूप

---

१ कर्मणां फलानि सुखादीनि कर्मफलानि तेषामनुभूतिः अनुभवनं भुक्तिः सैव लक्षणं यस्याः सेति.
२ ज्ञानदर्शनोपयोगः ।

दधानो द्वैधोपयोगश्च । पर्य्यायास्त्वगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्ताः शुद्धाः । सूत्रोपात्तास्तु सुरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणाः परद्रव्यसंबन्धनिर्वृत्तत्वादशुद्धाश्चेति ॥१६॥

पर्याया जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति । कस्मादिति चेत् । अनेकद्रव्याणां परस्परसंश्लेषरूपेण संबंधात् । धर्माद्यन्यद्रव्याणां परस्परसंश्लेषसंबंधेन पर्यायो न घटते परद्रव्यसंबंधेनाशुद्धपर्यायोपि न घटते । इदानीं गुणपर्यायाः कथ्यन्ते । तेपि द्विधा स्वभावविभावभेदेन । गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्वप्रतिपत्तेर्निबंधनं कारणभूतो गुणपर्यायः, स चैकद्रव्यगत एव सहकारफले हरितपांडुरादिवर्णवत् । कस्य । पुद्गलस्य । मतिज्ञानादिरूपेण ज्ञानान्तरपरिणमनवज्जीवस्य । एवं जीवपुद्गलयोर्विभावगुणरूपाः पर्याया ज्ञातव्याः । स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्यसाधारणाः । एवं स्वभावविभावगुणपर्याया ज्ञातव्याः । अथवा द्वितीयप्रकारेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण द्विधा पर्याया भवन्ति । तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचरा विषया भवन्ति । व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति । एते विभावरूपा व्यंजनपर्याया जीवस्य नरनारकादयो भवन्ति, स्वभावव्यंजनपर्यायो जीवस्य सिद्धरूपः । अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धिविशुद्धिसंक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः । पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादिपरिणमनरूपाः। विभावव्यंजनपर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादिस्कंधेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्याः । शुद्धार्थपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपेण पूर्वमेव स्वभावगुणपर्यायव्याख्यानकाले सर्वद्रव्याणां कथिताः । एते चार्थव्यंजनपर्यायाः पूर्वं "जेसिं अत्थिसहाओ" इत्यादिगाथायां ये भणिता जीवपुद्गलयोः स्वभावविभावद्रव्यपर्यायाः स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च ये भणितास्तेषु मध्ये तिष्ठन्ति । अत्र गाथायां च ये द्रव्यपर्यायाः गुणपर्यायाश्च भणितास्तेषु च मध्ये तिष्ठन्ति । तर्हि किमर्थं पृथक्कथिता इति चेदेकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यंते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भण्यंते इति कालकृतभेदज्ञापनार्थं । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायपरिणतं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ॥१६॥

होकर प्रवर्तै सो उपयोग है । वह उपयोग दो प्रकारका है । एक सविकल्प और दूसरा निर्विकल्प । सविकल्प उपयोग तो ज्ञानका लक्षण है और निर्विकल्प दर्शनका लक्षण है । ज्ञान आठ प्रकारका है कुमति १ कुश्रुति २ कुअवधि ३ मति ४ श्रुति ५ अवधि ६ मनःपर्यय ७ और केवल ८ । दर्शन भी चक्षु अचक्षु अवधि और केवल इन भेदोंसे चार प्रकारका है । केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों अखंड उपयोग शुद्ध जीवके लक्षण हैं । बाकीके दश उपयोग अशुद्ध जीवके होते हैं । ये तो जीवके गुण जानने । और जीवकी पर्याय भी शुद्धाशुद्धके भेदसे दो प्रकारकी हैं । जो अगुरुलघु षड्गुणी हानिवृद्धिरूप आगम प्रमाणतासे जानी जाती हैं, वह तो शुद्ध पर्याय कहलाती हैं और जो परद्रव्यके संबंधसे चारगतिरूप नरनारकादि हैं, वे अशुद्ध आत्माकी पर्याय हैं ॥१६॥

इदं भावनाशाभावोत्पादनिषेधोदाहरणम्;—

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा ।
उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ।।१७।।

मनुष्यत्वेन नष्टो देहो देवो भवतीतरो वा ।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्यः ।।१७।।

प्रतिसमयसंभवदगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्तस्वभावपर्य्यायसंतत्यविच्छेदकेनैकेन सोपाधिना मनुष्यत्वलक्षणेन पर्य्यायेण विनश्यति जीवः । तथाविधेन देवत्वलक्षणेन नारकतिर्य्यक्त्वलक्षणेन वान्येन पर्य्यायेणोत्पद्यते । न च मनुष्यत्वेन नाशे जीवत्वेनाऽपि नश्यति । देवत्वादिनोत्पादे जीवत्वेनाप्युपपद्यते । किं तु सदुच्छेदमसदुत्पादमन्तरेणैव तथा विवर्तत इति ।।१७।।

अथ पर्यायार्थिकनयेनोत्पादविनाशयोरपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादविनाशौ न भवत इति समर्थयति;—**मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा** मनुष्यत्वेन मनुष्यपर्यायेण नष्टो विनष्टो मृतो देही संसारी जीवः पुण्यवशाद्देवो भवति स्वकीयकर्मवशादितरो वा नारकतिर्यग्मनुष्यो भवति **उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो** उभयत्र कोऽर्थः मनुष्यभवे देवभवे वा पर्यायार्थिकनयेन मनुष्यभवे नष्टे द्रव्यार्थिकनयेन न विनश्यति तथैव पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याये जाते सति द्रव्यार्थिकनयेनान्योपूर्वो न जायते नोत्पद्यते किंतु स एव । कोऽसौ । जीवभावो जीवपदार्थः । एवं पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वेपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वं नास्तीति सिद्धं । अनेन व्याख्यानेन क्षणिकैकान्तमतं नित्यैकान्तमतं च निषिद्धमिति सूत्रार्थः ।।१७।।

आगे पदार्थके नाश और उत्पादको निषेधते हैं,—[**मनुष्यत्वेन**] मनुष्य पर्यायसे [**नष्टः**] विनशा [**देही**] जीव [**देवः भवति**] देवपर्यायरूप परिणमता है । [**इतरो वा**] अथवा नारकी तिर्यंच और मनुष्य हो जाता है । भावार्थ—अनादिकालसे लेकर यह संसारी जीव मोहके वशीभूत हो अज्ञानभावरूप परिणमता है । इस कारण स्वाभाविक षट्गुणी हानिवृद्धिरूप जो अगुरुलघुपर्याय धारावाही अखंडित त्रिकाल समयवर्त्ती है, उन भाव रूप परिणमता नहीं है, विभाव भावसे परिणमन होता हुआ मनुष्य देवता होता है । अथवा नरकादि पर्यायोंको धारण करता है । पर्यायसे पर्यायांतररूप होकर उपजता विनशता है । यद्यपि ऐसा है तथापि [**उभयत्र जीवभावः**] संसारी पर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययके होतेसंते भी जीवभाव कहा जाता है । [**अन्यः**] उस आत्माके सिवाय दूसरा [**न नश्यति**] नाश नहीं होता । [**न जायते**] और न उत्पन्न होता है । द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सदा टंकोत्कीर्ण अविनाशी है । सदा निःकलंक शुद्धस्वरूप है ।।१७।।

---

१ निष्पन्न. २ सविकारेण ।

अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदाऽविनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितं;—

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥१८॥

स च एव याति मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्य्यायः ॥१८॥

यदेव [1]पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादितामुभयीमवस्थामात्मसात् कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्यमानं च द्रव्यमालक्ष्यते। तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते। पर्यायास्तु तस्य

अथ तमेवार्थं नयद्वयेन पुनरपि द्रढयति;—**सो चेव जादि मरणं** स च एव जीवपदार्थः पर्यायार्थिकनयेन देवपर्यायरूपां जातिमुत्पत्तिं जादि याति गच्छति स चैव मरणं याति **ण णट्ठो ण चेव-उप्पण्णो** द्रव्यार्थिकनयेन पुनर्न नष्टो न चोत्पन्नः। तर्हि कोऽसौ नष्टः कोऽसौ उत्पन्नः ? **उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ** पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याय उत्पन्नो मनुष्यपर्यायो विनष्टः। ननु यद्युत्पादविनाशौ तर्हि तस्यैव पदार्थस्य नित्यत्वं कथं ? नित्यत्वं तर्हि तस्यैवोत्पादव्ययद्वयं च कथं ? परस्परविरुद्धमिदं शीतोष्णवदिति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः। येषां मते सर्वथैकान्तेन नित्यं वस्तु क्षणिकं वा तेषां दूषणमिदं। कथमिति चेत्। येनैव रूपेण नित्यत्वं तेनैवानित्यत्वं न घटते, येन च रूपेणानित्यत्वं तेनैव नित्यत्वं न घटते कस्मात्। एकस्वभावत्वाद्वस्तुनस्तन्मते। जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च

आगे यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे कथंचित्प्रकारसे द्रव्य उपजता विनशता है, तथापि न उपजता है न विनशता है, ऐसा कहते हैं;—[**स च एव**] वह ही जीव [**याति**] उपजता है, जो कि [**मरणं**] मरणभावको [**याति**] प्राप्त होता है। [**न नष्टः**] स्वभावसे वही जीव न विनशा है [**च**] और [**एव**] निश्चयसे [**न उत्पन्नः**] न उपजा है। सदा एकरूप है। तब कौन उपजा विनशा है ? [**पर्यायः**] पर्याय ही [**उत्पन्नः**] उपजा [**च**] और [**विनष्टः**] विनशा है। कैसे। जैसे कि–[**देवः**] देवपर्याय उत्पन्न हुआ [**मनुष्यः**] मनुष्यपर्याय विनशा है [**इति**] यह पर्यायका उत्पाद व्यय है, जीवका ध्रौव्य जानना। **भावार्थ**—जो पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पहिले पिछले पर्यायोंसे उपजता विनशता देखा जाता है, वही द्रव्य उत्पादव्यय अवस्थाके होतेसंते भी अपने अविनाशी स्वाभाविक एक स्वभावकर सदा न तो उपजता है और न विनशता है। और जो वे पूर्व उत्तर पर्याय हैं, वे ही विनाशीक स्वभावको धरे हैं।

---

१ पूर्वोत्तरपर्य्यायौ विवेकसंपर्कौ पूर्वपर्यायस्य मनुष्यत्वलक्षणस्य विवेकः विवेचनं विनाश इति यावत्, उत्तरपर्य्यायस्य देवत्वलक्षणस्य संपर्कः संबंधः संयोगः उत्पाद इत्यर्थः। इति पूर्वोत्तरपर्य्यायविवेकसंपर्कौ ताभ्यां निष्पादिता या सा ताम्, २ उत्पादव्ययसमर्थाम्।

पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्द्दोत्तरोत्तरपरिणामोत्पादरूपाः । प्रणाशसंभवधर्म्माणोऽभिधीयन्ते ते च वस्तुत्वेन द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः । ततः पर्य्यायैः सहैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीवद्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम् । देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमया उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति ॥१८॥

अत्र सदसतोरविनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वे नोपन्यस्तौ;—

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उत्पादो ।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो ॥१९॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः ।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनामः ॥१९॥

यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते य एव जायते स एव म्रियते तदेवं सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते । यत्तु देवो जायते मनुष्यो

घटते । तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेक्षौ, तच्च सापेक्षत्वं "पज्जयरहियं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि" इत्यादि पूर्वं व्याख्यातं तेन कारणेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परगौणमुख्यभावव्याख्यानादेकदेवदत्तस्य जन्यजनकादिभाववत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यत्वं घटते नास्ति विरोध इति-सूत्रार्थः ॥१८॥

अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सतो विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति स्थितमिति निश्चिनोति;—

पहिले पर्यायोंका विनाश होता है अगले पर्यायोंका उत्पाद होता है। जो द्रव्य पहिले पर्यायोंमें तिष्ठता (रहता) है, वह ही द्रव्य अगले पर्यायोंमें विद्यमान है। पर्यायोंके भेदसे द्रव्योंमें भेद कहा जाता है। परन्तु वह द्रव्य जिस समय जिन पर्यायोंसे परिणमता है, उस समय उन ही पर्यायोंसे तन्मय है। द्रव्यका यह ही स्वभाव है जो कि परिणामोंसे एकभाव (एकता) धरता है। क्योंकि कथंचित्प्रकारसे परिणाम परिणामी (गुणगुणी) की एकता है। इसकारण परिणमनसे द्रव्य यद्यपि उपजता विनशता भी है, तथापि ध्रौव्य जानना ॥१८॥

आगे द्रव्यके स्वाभाविक ध्रौव्यभावकर 'सत्'का नाश नहीं, 'असत्'का उत्पाद नहीं, ऐसा कहते हैं;-[एवं] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [सतः] स्वाभाविक अविनाशी स्वभावका [विनाशः] नाश

---

१ उपमर्दो विनाशः. २ पर्य्यायः. ३ परमार्थेन. ४ तावदिवो, ऐसा भी पाठ है।

म्रियते इति व्यपदिश्यते[1] तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनाम्न-स्तन्मात्रत्वादविरुद्धं[3]। यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्व्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति। वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्व्वान्तरसंबन्धाभावात् अभावभाग्भवति। तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्य्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभावभाजो भवन्ति। जीवद्रव्यं तु सर्वपर्य्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसंबंधेन पर्य्यायान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति ॥१९॥

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो एवं पूर्वोक्तगाथात्रयव्याख्यानेन यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्वं घटते तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पादः। कस्य। भावस्य जीवपदार्थस्य। ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते, यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते। **तावदियो जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो** तावत्पल्यत्रयादिरूपं परिमाणं यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योऽसौ गतिनामकर्मोदयजनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोधः। तथाहि—यथा महतो वेण्डदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपर्वस्थानेष्वभावभाञ्जयविद्यमानानि भवन्ति वंशदण्डस्तु सर्वपर्वस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते, तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपाः पर्वस्थानीया

[**न अस्ति**] नहीं है। [**असतः जीवस्य**] जो स्वाभाविक जीवभाव नहीं है उसका [**उत्पादः**] उपजना [**"नास्ति"**] नहीं है [**तावत्**] प्रथम ही यह जीवका स्वरूप जानना। और [**जीवानां**] जीवोंका [**देवः मनुष्य इति**] देव है, मनुष्य है, इत्यादि कथन है सो [**गतिनामः**] गतिनामवाले नामकर्मकी विपाकअवस्थासे उत्पन्न हुआ कर्मजनित भाव है। **भावार्थ**—जीव द्रव्यका कथन दो प्रकार है। एक तो उत्पादव्ययकी मुख्यता लिये हुए, दूसरा ध्रौव्यभावकी मुख्यता लिये हुये। इन दोनों कथनोंमें जब ध्रौव्यभावकी मुख्यताकर कथन किया जाय, तब इस ही प्रकार कहा जाता है कि जो जीवद्रव्य मरता है, सो ही उपजता है, और जो उपजता है, वही मरता है। पर्यायोंकी परंपरामें

---

१ कथ्यते. २ आयुःप्रमाणम्. ३. उत्पादव्ययमात्रत्वात्. ४ स्वकीयप्रमाणपरिच्छेद्यात्. ५ उत्पत्तिभोक्तारः. ६ विनाशभाजः भवन्ति. ७ देवलक्षणोत्तरपर्य्यायसंबन्धेन. ८ मनुष्यलक्षणपूर्वपर्य्यायसंबन्धाभावात्।

अनेकपर्यायाः स्वकीयायुःकर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपर्वस्थानीयसर्वपर्यायेषुविद्यमानोपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते। स एव नित्यः स एवानित्यः कथं घटत इति चेत्। यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा, पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं, पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणं। कस्मात्? विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरमनन्तज्ञानादिरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं रागादिपरिहारेणोपादेयरूपेण भावनीयमिति भावार्थः ॥१९॥

यद्यपि अविनाशी वस्तुके कथनका प्रयोजन नहीं है, तथापि व्यवहारमात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेके लिये ऐसे ही कथन किया जाता है। और जो उत्पादव्ययकी अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजता है, और ही विनशता है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदयसे जानना। कैसें कि, जैसे—मनुष्यपर्याय विनशती है, देवपर्याय उपजती है, सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथन अविरुद्ध है; यह बात सिद्ध है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी अपेक्षासे तो वही जीव उपजता और वही जीव विनशता है और उत्पाद व्ययकी अपेक्षा अन्य जीव उपजता है और अन्य ही विनशता है। यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जाता है। जैसे—एक बड़ा बांस है, उसमें क्रमसे अनेक पौरी (गांठ) हैं। उस बांसका जो विचार किया जाता है तो दो प्रकारके विचारसे उस बांसकी सिद्धि होती है। एक सामान्यरूप बांसका कथन है, एक उसमें विशेष रूप पौरियोंका कथन है। जब पौरियोंका कथन किया जाता है तो जो पौरी अपने परिणामको लिये हुए जितनी हैं, उतनी ही हैं। अन्य पौरीसे मिलती नहीं है। अपने-अपने परिमाणको लिये हुए सब पौरी न्यारी न्यारी हैं। बांस सब पौरियोंमें एक ही है। जब बांसका विचार पौरियोंकी पृथक्तासे किया जाय, तब बाँसका एक कथन नहीं आ सकता। जिस पौरीकी अपेक्षासे बांस कहा जाता है सो उस ही पौरीका बांस होता है। उसको और पौरीका बांस नहीं कहा जाता। अन्य पौरीकी अपेक्षा वही बांस अन्य पौरीका कहा जाता है। इस प्रकार पौरियोंकी अपेक्षासे बांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सब पौरियोंमें बांसका कथन न किया जाय तो एक बांसका कथन कहा जाता है। इस कारण बांसकी अपेक्षा एक बांस है। पौरियोंकी अपेक्षा एक बांस नहीं है। इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है। उसमें क्रमवर्ती देवमनुष्यादि अनेक पर्याय हैं, सो वे पर्याय अपने अपने परिमाण लिये हुए हैं। किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलती नहीं है, सब न्यारी न्यारी हैं। जब पर्यायोंकी अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो अविनाशी एक जीवका कथन आता नहीं। और जो पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं ली जाय तो जीवद्रव्य त्रिकाल में अभेदस्वरूप एक ही कहा जाता है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि—जीवद्रव्य निजभाव से तो सदा टंकोत्कीर्ण एकस्वरूप नित्य है और पर्यायकी अपेक्षा नित्य नहीं है। पर्यायोंकी अनेकतासे अनेक होता है अन्य पर्यायकी अपेक्षा अन्य भी कहा जाता है। इस प्रकार द्रव्यके कथनकी अपेक्षा सत्का नाश नहीं और असत्का उत्पाद नहीं है। पर्यायकथनकी अपेक्षा नाश उत्पाद कहा जाता है ॥१९॥

अत्रात्यन्तासदुत्पादत्वं सिद्धस्य निषिद्धम्;—

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥२०॥

ज्ञानावरणाद्या भावा जीवेन सुष्ठु अनुबद्धाः ।
तेषामभावं कृत्वाऽभूतपूर्वो भवति सिद्धः ॥२०॥

यथा स्तोककालान्वयिषु नामकर्मविशेषोदयनिर्वृत्तेषु[1] जीवस्य देवादिपर्यायेष्वे-केस्मिन्[2] स्वकारणनिर्वृत्तौ निर्वृत्तेऽभूतपूर्व एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने नासदुत्पत्तिः[3] । तथा

एवं बौद्धमतनिराकरणार्थमेकसूत्रगाथा प्रथमस्थले पूर्वं भणिता, तस्या विवरणार्थं द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथ यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्वदैव शुद्धरूपस्तिष्ठति तथापि पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्यासदुत्पादो भवतीत्यावेदयति, अथवा यदा मनुष्यपर्याये विनष्टे देवपर्याये जाते स एव जीवस्तथा मिथ्यात्वरागादिपरिणामाभावात् संसारपर्यायविनाशे सिद्धपर्याये जाते सति जीवत्वेन विनाशो नास्त्युभयत्र स एव जीव इति दर्शयति, अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयद्वयेन पूर्वोक्तप्रकारेणानेकान्तात्मकं तत्त्वं प्रतिपाद्य पश्चात्संसारावस्थायां ज्ञानावरणादिरूपबन्धकारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणामं त्यक्त्वा शुद्धभावपरिणमनान्मोक्षं च कथयतीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ज्ञानावरणादि-भावा द्रव्यकर्मपर्यायाः संसारजीवेन सुष्ठु संश्लेषरूपेणानादिसंतानेन बद्धास्तिष्ठन्ति तावत् तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो यदा कालादिलब्धिवशोद्भेदा-भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गं लभते तदा तेषां ज्ञानावरणादिभावानां

आगे सर्वथा प्रकारसे संसारपर्यायके अभावरूप सिद्धपदको दिखाते हैं;—[ज्ञानावरणाद्याः] ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार [भावाः] कर्मपर्याय जो हैं सो [जीवेन] संसारी जीवको [सुष्ठु] अनादि कालसे लेकर राग द्वेष मोहके वशसे भलीभाँति अतिशय गाढे [अनुबद्धाः] बाँधे हुये हैं [तेषां] उन कर्मोंका [अभावं] मूलसत्तासे नाश [कृत्वा] करके [अभूतपूर्वाः] जो अनादि कालसे लेकर किसी कालमें भी नहीं हुआ था ऐसा [सिद्धः] सिद्ध परमेष्ठीपद [भवति] होता है। भावार्थ—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक भेदसे नय दो प्रकारका है। जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षा की जाती है, तब तो त्रिकाल में जीवद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण, संसार पर्याय अवस्थाके होते हुए भी उत्पाद नाशसे रहित सिद्ध समान है।

---

१ निष्पन्नेषु. २ पर्य्याये. ३ अविद्यमानोत्पत्तिर्न ।

दीर्घकालान्वयिनि[1] ज्ञानावरणादिकर्मसामान्योदयनिर्वृत्तिसंसारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारणनिर्वृत्तौ[2] निर्वृत्ते[3] समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे[4] सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति। किं च यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिताव्यवहित[5]विचित्रकिर्मीरताखचिताधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्द्धभागेऽवतारिता[6] दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति[7] तस्य[8] सर्वत्राविशु[9]द्धत्वम्[10]। तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरताखचितबहुतराधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुवि-

---

द्रव्यभावकर्मरूपपर्यायाणामभावं विनाशं कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनाभूतपूर्वसिद्धो भवति द्रव्यार्थिकनयेन पूर्वमेव सिद्धरूप इति वार्तिकं। तथाहि—यथैको महान् वेणुदण्डः पूर्वार्धभागे विचित्रचित्रेण खचितः शबलितो मिश्रितः तिष्ठति तस्मादूर्ध्वार्द्धभागे विचित्रचित्राभावाच्छुद्ध एव तिष्ठति तत्र यदा कोपि देवदत्तो दृष्ट्यावलोकनं करोति तदा भ्रान्तिज्ञानवशेन विचित्रचित्रवशादशुद्धत्वं ज्ञात्वा तस्मादुत्तरार्धभागेप्यशुद्धत्वं मन्यते तथायं जीवः संसारावस्थायां मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामवशेन व्यवहारेणाशुद्धस्तिष्ठति शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाभ्यन्तरे केवलज्ञानादिस्वरूपेण शुद्ध एव तिष्ठति।

पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे जीवद्रव्य जब जैसी देवादिकपर्यायको धारण करता है तब वैसा ही होकर परिणमता हुआ उत्पाद नाश अवस्थाको धरता है। इन ही दोनों नयोंका विलास दिखाया जाता है। अनादि कालसे लेकर संसारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंके संबंधोंसे संसारी पर्याय है। वहां भव्य जीवको काललब्धिसे सम्यग्दर्शनादि मोक्षकी सामग्री पानेसे सिद्ध पर्याय यद्यपि होती है तथापि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सिद्धपर्याय नूतन (नया) हुआ नहीं कहा जा सकता। अनादिनिधन ज्योंका त्यों ही है। कैसे? जैसे कि,—अपनी थोड़ी स्थिति लिये नामकर्मके उदयसे निर्मापित देवादिक पर्याय होते हैं, उनमें कोई एक पर्याय अशुद्ध कारणसे जीवके उत्पन्न होनेसे नवीन पर्याय हुआ नहीं कहा जाता। क्योंकि-संसारीके अशुद्धपर्यायोंकी संतान होती ही है। जो पहिले न होती तो नवीन पर्याय उत्पन्न कहा जाता। इस कारण जब तक जीव संसारमें है, तबतक पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नया संसारपर्याय उत्पन्न हुआ नहीं कहा जाता, पहिला ही है। उसी प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा नवीन सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ नहीं कहा जाता, किन्तु शाश्वत रूपसे सदा जीवद्रव्यमें आत्मीक भावरूप सिद्धपर्याय विद्यमान ही है। संसारपर्यायको नष्ट करके सिद्धपर्याय नवीन उत्पन्न हुआ, ऐसा जो कथन है सो पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे है। जैसे एक बड़ा बांस है,

---

१ बहुकालानुवर्तिनि. २ अतिक्रान्ते. ३ विनाशं गते सति. ४ पूर्वमनुत्पन्ने. ५ आच्छादितानाच्छादित. ६ आरोपिता. ७ अनुमानं करोति संकल्पयति प्रमाणयति वा. ८ वेणुदण्डस्य. ९ सर्वस्मिन्नूर्ध्वाधोभागे. १० प्रलिप्तत्वम्।

शुद्धबहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्म्मकिर्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वम्। यथा च तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिबन्धनविचित्रकिर्म्मीरतान्वयः। तथा च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयः। यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्मीरताभावात्सुविशुद्धत्वं। तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति ॥२०॥

यदा रागादिपरिणामाविष्टः सन् सविकल्परूपेन्द्रियज्ञानेन विचारं करोति तदा यथा बहिर्भागे रागाद्याविष्टमात्मानमशुद्धं पश्यति तथाभ्यन्तरेपि केवलज्ञानादिस्वरूपेप्यशुद्धत्वं मन्यते भ्रान्तिज्ञानेन। यथा वेणुदण्डे विचित्रचित्रमिश्रितत्वं भ्रान्तिज्ञानकारणं तथात्र जीवे मिथ्यात्वरागादिरूपं भ्रान्तिज्ञानकारणं भवति। यथा वेणुदण्डो विचित्रचित्रप्रक्षालने कृते शुद्धो भवति तथायं जीवोपि यदा गुरूणां पार्श्वे शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशकं परमागमं जानाति। कीदृशमिति चेत्। "एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः। बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वदा" इत्यादि। तथैव च देहात्मनोरत्यन्तभेदो भिन्नलक्षणलक्षितत्वाज्जलानलादिवदित्यनुमानज्ञानं जानाति तथैव च वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं जानाति। तदित्थंभूतागमानुमानस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानात् शुद्धो भवति। अत्राभूतपूर्वसिद्धत्वरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः ॥२०॥

उसके आधे बाँसमें तो चित्र किये हुए हैं और आधे बाँसमें चित्र किये हुए नहीं हैं। जिस आधे भागमें चित्र नहीं, वह तो ढक रक्खा है और जिस अर्धभागमें चित्र हैं सो निरावरण (उघड़ा हुआ) है। जो पुरुष इस बाँसके इस भेदको नहीं जानता हो, उसको यह बाँस दिखाया जाय तो वह पुरुष पूरे बाँसको चित्रित कहेगा, क्योंकि चित्ररहित जो अर्द्ध भाग निर्मल है, उसको जानता नहीं है। उसही प्रकार यह जीव पदार्थ एक भाग तो अनेक संसारपर्यायोंके द्वारा चित्रित हुआ बहुरूप है और एक भाग शुद्ध सिद्धपर्याय लिये हुए है। जो शुद्ध पर्याय है सो प्रत्यक्ष नहीं है। ऐसे जीव द्रव्यका स्वरूप जो अज्ञानी जीव नहीं जानता हो, सो संसारपर्यायको देखकर जीवद्रव्यके स्वरूपको सर्वथा अशुद्ध ही मानेगा। जब सम्यग्ज्ञान होवे, तब सर्वज्ञप्रणीत यथार्थ आगम ज्ञान अनुमान स्वसंवेदनज्ञान होवे तब इनके बलसे यथार्थ शुद्ध आत्मीक स्वरूपको जान, देख, आचरण कर, समस्त कर्मपर्यायोंको नाश करके सिद्ध पदको प्राप्त होता है। जैसे जलादिकसे धोनेपर चित्रित बाँस निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानकर मिथ्यात्वादि भावोंके नाश होनेसे आत्मा शुद्ध होता है ॥२०॥

---

१ चिन्तयन्ती. २ अनुमानं करोति. ३ तस्य जीवस्य. ४ सर्वस्मिन् जीवद्रव्यज्ञानावरणादित्वम्. ५ चित्ररचनासंतानः. ६ पर्यायाभावान्वयः इति पाठान्तरम्।

जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारोऽयं;[१]—

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च ।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च ।
गुणपर्ययैः सहितः संसरन् करोति जीवः ॥२१॥

द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातं । ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तं । तस्यैव[२] देवादिपर्य्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं[३] । तस्यैव च मनुष्यादिपर्य्यायरूपेण व्ययतोऽभावकर्तृत्वमाख्यातं । तस्यैव च सतो देवादिपर्य्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुपपादितं । तस्यैव चासतः[४] पुनर्मनुष्यादिपर्य्यायस्योत्पादमारभमाणस्याभावभावकर्तृत्वमभिहितं । सर्वमिदमनवद्यं द्रव्य-

---

एवं तृतीयस्थले पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्याभूतपूर्वोत्पादव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपसंहारव्याख्यानमुद्योतयति,—एवं भावमभावं एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन पूर्वं मनुष्यपर्यायस्याभावं व्ययं कृत्वा पश्चाद्देवोत्पत्तिकाले भावं देवपर्यायस्योत्पादं कुणदि करोति भावाभावं पुनरपि देवपर्यायच्यवनकाले विद्यमानस्य देवभावस्य पर्यायस्याभावं करोति अभावभावं च पश्चान्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिकाले अभावस्याविद्यमानमानुष्यपर्यायस्य भावमुत्पादं करोति । स कः कर्ता । जीवो जीवः । कथंभूतः । गुणपज्जयेहि

आगे जीवकी उत्पादव्यय दशाओं द्वारा 'सत्‌का' उच्छेद 'असत्' का उत्पाद इनकी संक्षेपतासे सिद्धि दिखाते हैं,—[एवं] इस पूर्वोक्तप्रकार पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे [संसरन्] पंचपरावर्तन अवस्थाओंसे संसारमें भ्रमण करता हुआ यह [जीवः] आत्मा [भावं] देवादिक पर्यायोंको [करोति] करता है [च] और [अभावं] मनुष्यादि पर्यायोंका नाश करता है । ['च'] तथा [भावाभावं] विद्यमान देवादिक पर्यायोंके नाशका आरंभ करता है ['च'] और [अभावभावं] जो विद्यमान नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसके उत्पादका आरंभ करता है । कैसा है यह जीव [गुणपर्ययैः] जैसी अवस्था लिये हुए है. उसही तरह अपने शुद्ध अशुद्ध गुणपर्यायोंसे [सहितः] संयुक्त है । भावार्थ—अपने द्रव्यत्वस्वरूपसे समस्त पदार्थ उपजते विनशते नहीं, किंतु नित्य हैं, इस कारण जीवद्रव्य भी अपने द्रव्यत्वसे नित्य है । उस ही जीवद्रव्यके अशुद्धपर्यायकी अपेक्षा भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव

---

१ अभिप्रायः. २ तस्य जीवस्य. ३ पर्य्यायोत्पादकत्वमुक्तम्. ४ अविद्यमानस्य ।

पर्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्यानात् । तथा हि–यदा जीवः पर्याय[1]गुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते न विनश्यति न च क्रमवृत्त्यावर्तमानत्वात् सत्पर्यायजातमुच्छिनत्ति, नासदुत्पादयति । यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति विनश्यति सत्पर्यायजातमतिवाहितस्वकाल[2]मुच्छिनत्ति, असदु[3]पस्थितं स्वकालमुत्पादयति चेति । स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोधः ॥२१॥ इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा ।

सहिदो कुमतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायसहितः । न च केवलज्ञानादिस्वभावगुणसिद्धरूपशुद्धपर्यायसहितः । कस्मादिति चेत् । तत्र केवलज्ञानाद्यवस्थायां नरनारकादिविभावपर्यायाणामसंभवात् अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं करोति नास्ति विरोधः । किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति । **संसरमाणो** संसरन् परिभ्रमन् सन् । क्व द्रव्यक्षेत्रकालभवभावस्वरूपपञ्चप्रकारसंसारे । अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये यत्सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणं तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्तः सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पादं करोति तथैव चाभावं व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथानुचरणं च निरन्तरं सर्वतात्पर्येण कर्तव्यमिति भावार्थः ॥२१॥

इन भेदोंसे चार प्रकार पर्यायका अस्तित्व कहा गया है । जहाँ देवादिपर्यायोंकी उत्पत्तिरूप होकर परिणमता है, वहाँ तो भावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहाँ मनुष्यादि पर्यायके नाशरूप परिणमता है, वहाँ अभावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहाँ विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशकी प्रारंभ दशारूप होकर परिणमता है, वहाँ भाव अभावका कर्तृत्व है । और जहाँ नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसकी प्रारंभ दशारूप होकर परिणमता है, वहाँ अभाव भावका कर्तृत्व कहा जाता है । यह चार प्रकार पर्यायकी विवक्षासे अखंडित व्याख्यान जानना । द्रव्यपर्यायकी मुख्यता और गौणतासे द्रव्योंमें भेद होता है, वह भेद दिखाया जाता है । जब जीवका कथन पर्यायकी गौणता और द्रव्यकी मुख्यतासे किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकार कर्तृत्व नहीं संभवता । और जब द्रव्यकी गौणता और पर्यायकी मुख्यतासे जीवका कथन किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकारके पर्यायका कर्तृत्व अविरुद्ध संभवता है । इस प्रकार यह मुख्य गौण भेदके कारण व्याख्यान भगवत्सर्वज्ञप्रणीत अनेकांतवादमें विरोध भावको नहीं धरता है । स्यात्पदसे अविरुद्ध साधता है । जैसे द्रव्यकी अशुद्धपर्यायके कथनसे सिद्धि की, उसीप्रकार आगम प्रमाणसे शुद्ध पर्यायोंको भी विवक्षा जाननी । अन्य द्रव्योंका भी सिद्धांतानुसार गुणपर्यायका कथन साध लेना । यह सामान्य स्वरूप षड्द्रव्योंका व्याख्यान जानना ॥२१॥

---

१ गौणत्वेन. २ उच्छेदयति. ३ असद्रूपेणावस्थितम् ।

अत्र सामान्येनोक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां मध्यात् पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापितम्;—

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा ।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्य ॥२२॥

जीवाः पुद्गलकायाः आकाशमस्तिकायौ शेषौ ।
अमया अस्तित्वमयाः कारणभूता हि लोकस्य ॥२२॥

अकृतत्वात् अस्तित्वमयत्वात् विचित्रात्मपरिणतिरूपस्य लोकस्य कारणत्वाच्चाभ्युपगम्यमानेषु षट्सु द्रव्येषु जीवपुद्गलाकाशधर्म्माधर्म्माः प्रदेशप्रचयात्मकत्वात् पञ्चास्तिकायाः । न खलु कालस्तदभावादस्तिकाय इति सामर्थ्यादवसीयत इति ॥२२॥

एवं द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवमनुष्याद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथा गता । इति स्थलचतुष्टयेन द्वितीयं सप्तकं गतं । एवं प्रथमगाथासप्तके यदुक्तं स्थलपञ्चकं तेन सह नवभिरन्तरस्थलैश्चतुर्दशगाथाभिः प्रथममहाधिकारमध्ये द्रव्यपीठिकाभिधाने द्वितीयोन्तराधिकारः समाप्तः ।

अथ कालद्रव्यप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं कथ्यते । तत्र पञ्चगाथासु मध्ये षड्गुणमध्याज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनार्थं "जीवा पुग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनन्तरं निश्चयकालकथनरूपेण "सब्भावसहावाणं" इत्यादि सूत्रद्वयं टीकाभिप्रायेण सूत्रमेकं, पुनश्च समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन "समओ णिमिसो" इत्यादि गाथाद्वयं एवं स्थलत्रयेण तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका । अथ सामान्योक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां यथोक्तस्मरणार्थमग्रे विशेषव्याख्यानार्थं वा पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापयति,—**जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा** जीवाः पुद्गलकाया आकाशं अस्तिकायिकौ शेषौ धर्माधर्मौ चेति एते पंच । कथंभूताः । **अमया** अकृत्रिमा, न केनापि पुरुषविशेषेण कृताः । तर्हि कथं निष्पन्नाः । **अत्थित्तमया** अस्तित्वमयाः स्वकीयास्तित्वेन स्वकीयसत्तया

आगे सामान्यतासे कहा जो यह षड्द्रव्योंका सामान्यवर्णन उनमेंसे पाँचद्रव्योंको पंचास्तिकाय संज्ञा स्थापन करते हैं;—[जीवाः] एक तो जीवद्रव्य कायवंत हैं [पुद्गलकायाः] दूसरा पुद्गलद्रव्य कायवंत हैं और [आकाशः] तीसरा आकाशद्रव्य कायवंत है और [शेषौ] चौथा धर्म और पाँचवाँ अधर्मद्रव्य भी [अस्तिकायौ] कायवंत हैं । ये पाँच द्रव्य कायवंत कैसे हैं [अमया] किसीके भी बनाये हुए नहीं हैं, स्वभावहीसे स्वयंसिद्ध हैं । फिर कैसे हैं ? [अस्तित्वमयाः] उत्पादव्ययध्रौव्यरूप जो सद्-

---

१ कालः खल्वस्तिकाय इति बलात्कारेणाङ्गीक्रियते न व्यवह्रियते इत्यर्थः. २ प्रदेशप्रचयात्मकस्याभावात् कायत्वाभावात्. ३ निश्चीयते ।

अत्रास्तिकायत्वेनानुक्तस्यापि कालस्यार्थापन्नत्वं द्योतितं;—

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥२३॥

सद्भावस्वभावानां जीवानां तथा च पुद्गलानां च ।
परिवर्तनसम्भूतः कालो नियमेन प्रज्ञप्तः ॥२३॥

इह हि जीवानां पुद्गलानां च सत्तास्वभावत्वादस्ति प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौ-

---

निर्वृत्ता निष्पन्ना जाता इत्यनेन पञ्चानामस्तित्वं निरूपितं । पुनरपि कथंभूताः । **कारणभूदा दु लोगस्स** कारणभूताः । कस्य । लोकस्य "जीवादिषड्द्रव्याणां समवायो मेलापको लोक" इति वचनात् । स च लोकः उत्पादव्ययध्रौव्यवान् तेनास्तित्वं लोक्यते, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति वचनात् । पुनरपि कथंभूतो लोकः? ऊर्ध्वाधोमध्यभागेन सांशः सावयवस्तेन कायत्वं कथितं भवतीति सूत्रार्थः ॥२२॥

एवं षड्द्रव्यमध्याज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनरूपेण गाथा गता । अथात्र पञ्चास्तिकाय-प्रकरणेऽस्तिकायत्वेनानुक्तोपि कालः सामर्थ्येन लब्ध इति प्रतिपादयति;- **सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च** सद्भावस्सत्ता सैव स्वभावः स्वरूपं येषां ते सद्भावस्वभावास्तेषां सद्भावस्व-भावानां जीवपुद्गलानां अथवा सद्भावानामित्यनेन धर्माधर्माकाशानि गृह्यन्ते **परियट्टणसंभूदो** परिवर्तनसंभूतः परिवर्तनं नवजीर्णरूपेण परिणमनं तत्परिवर्तनं संभूतं समुत्पन्नं यस्मात्स भवति परिवर्तनसंभूतः **कालो** कालाणुरूपो द्रव्यकालः **णियमेण** निश्चयेन **पण्णत्तो** प्रज्ञप्तः कथितः । कैः? सर्वज्ञैः, तथापि पञ्चास्तिकायव्याख्याने क्रियमाणे परमार्थकालस्यानुक्तस्याप्यर्थापन्नत्वमित्युक्तं

भाव उसके द्वारा अपने स्वरूप अस्तित्वको लिये हुए परिणामी हैं । फिर कैसे हैं? [हि] निश्चयकरके [**लोकस्य**] नाना प्रकारकी परिणतिरूप लोकके [**कारणभूताः**] निमित्तभूत हैं अर्थात् लोक इनसे ही बना हुआ है । **भावार्थ**—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं । इनमेंसे काल द्रव्यके विना पाँचद्रव्य पंचास्तिकाय हैं । क्योंकि इन पाँचों ही द्रव्योंके प्रदेशोंका समूह काय है । जहाँ प्रदेशोंका समूह हो वहाँ काय संज्ञा कही जाती है । इस कारण ये पाँचों ही द्रव्य कायवंत हैं । कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है । इस कारण वह अकाय है । यह कथन विशेष करके आगमप्रमाण-से जाना जाता है ॥२२॥

आगे यद्यपि कालको कायसंज्ञा नहीं कही तथापि द्रव्यसंज्ञा है । इसके विना सिद्धि होती नहीं । यह काल अस्तिस्वरूप वस्तु है, ऐसा कथन करते हैं;—[**सद्भावस्वभावानां**] उत्पादव्ययध्रुव-रूप अस्तिभाव जो है सो [**जीवानां**] जीवोंके [**च**] और [**तथाच**] वैसे ही [**पुद्गलानां**] पुद्गलोंके अर्थात् इन दोनों पदार्थोंके [**परिवर्तनसम्भूतः**] नवजीर्णरूप परिणमन द्वारा जो प्रगट देखनेमें आता है, ऐसा जो पदार्थ है सो [**नियमेन**] निश्चय करके [**कालः**] काल [**प्रज्ञप्तः**] भगवंत देवाधिदेवने

व्यैकवृत्तिरूपः परिणामः । से खलु सहकारिकारणसैद्भावे दृष्टः । गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत् । यस्तु सहकारिकारणं स कालस्तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते । यस्तु निश्चयकालपर्य्यायरूपो व्यवहारकालः स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्तदायत्त एवाभिगम्यत एवेति ॥२३॥

पातनिकायां तत् कथं घटते ? प्रश्ने प्रत्युत्तरमाहुः—पञ्चास्तिकायाः परिणामिनः परिणामश्च कार्यं कार्यं च कारणमपेक्षते, स च द्रव्याणां परिणतिनिमित्तभूतः कालाणुरूपो द्रव्यकालः इत्यनया युक्त्या सामर्थ्येनार्थापन्नत्वं द्योतितं । किंच समयरूपः सूक्ष्मकालः पुद्गलपरमाणुना जनितः स एव निश्चयकालो भण्यते, घटिकादिरूपः स्थूलो व्यवहारकालो भण्यते, स च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रकाष्ठपुरुषहस्तव्यापाररूपः क्रियादिविशेषेण जनितो न च द्रव्यकालेनेति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः—यद्यपि समयरूपः सूक्ष्मव्यवहारकालः पुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालश्च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रादिद्रव्यविशेषेण ज्ञायते तथापि तस्य समयघटिकादिपर्यायरूपव्यवहारकालस्य कालाणुरूपो द्रव्यकाल एवोपादानकारणं । कस्मात् ? उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । किंवदिति चेत् । कुंभकारचक्रचीवरादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य घटकार्यस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत् कुविंदतुरीवेमसलाकादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य पटकार्यस्य तंतुसमूहोपादानकारणवत् इंधनाग्न्यादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य शाल्याद्योदनकार्यस्य शाल्यादितंडुलोपादानकारणवत् कर्मोदयनिमित्तोत्पन्नस्य नरनारकादिपर्यायकार्यस्य जीवोपादानकारणवदित्यादि ॥२३॥

कहा है । भावार्थ—इस लोकमें जीव और पुद्गलके समय समयमें नवजीर्णतारूप स्वभाव ही से परिणाम है, सो परिणाम किसी एक द्रव्यकी विना सहायताके नहीं होता । कैसे ? जैसे कि गति स्थिति अवगाहना धर्मादि द्रव्यकी सहायताके विना नहीं होती, वैसेही जीव पुद्गलकी परिणति किसी ही एक द्रव्यकी सहायताके विना नहीं होती । इस कारण परिणमनको कोई द्रव्य सहाय चाहिये, ऐसा अनुमान होता है । अतएव आगम प्रमाणतासे कालद्रव्य ही निमित्त कारण वनता है । उस कालके विना द्रव्योंके परिणामकी सिद्धि नहीं होती । इस कारण निश्चयकाल अवश्य मानना योग्य है । उस निश्चयकालकी जो पर्याय है सो समयादिरूप व्यवहारकाल जानना । यह व्यवहारकाल जीव और पुद्गलकी परिणति द्वार प्रगट होता है । पुद्गलके नवजीर्णपरिणामके आधीन जाना जाता है । इन जीव पुद्गलके परिणामोंका और कालका आपसमें निमित्तनैमित्तिक भाव है । कालके अस्तित्वसे जीव पुद्गलके परिणामका अस्तित्व है । और जीव-पुद्गलके परिणामोंसे कालद्रव्यकी पर्याय जानी जाती है ॥२३॥

---

१ स परिणामः. २ अस्तित्वे सति. ३ प्रकटीक्रियमाणत्वात्. ४ जीवपुद्गलपरिणामाधीन एव गम्यते ।

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालोत्ति ॥२४॥

व्यपगतपञ्चवर्णरसो व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शश्च।
अगुरुलघुको अमूर्त्तो वर्त्तनलक्षणश्च काल इति ॥२४॥

स्पष्टम् ॥२४॥

अथ पुनरपि निश्चयकालस्य स्वरूपं कथयति;—**ववगदपणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य** पञ्चवर्णपंचरसद्विगंधाष्टस्पर्शैर्व्यपगतो वर्जितो रहितः। पुनरपि कथंभूतः। **अगुरुलहुगो** षड्ढानिवृद्धिरूपागुरुलघुकगुणः। पुनरपि किंविशिष्टः। **अमुत्तो** यत एव वर्णादिरहितस्तत एवामूर्तः, ततश्चैव सूक्ष्मोतीन्द्रियज्ञानग्राह्यः। पुनश्च किंरूपः। **वट्टणलक्खो य कालोत्ति** सर्वद्रव्याणां निश्चयेन स्वयमेव परिणामं गच्छतां शीतकाले स्वयमेवाध्ययनक्रियां कुर्वाणस्य पुरुषस्याग्निसहकारिवत् स्वयमेव भ्रमणक्रियां कुर्वाणस्य कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलासहकारिवद्बहिरङ्गनिमित्तत्वाद्वर्तनालक्षणश्च कालाणुरूपो निश्चयकालो भवति। किंच लोकाकाशाद्बहिर्भागे कालद्रव्यं नास्ति कथमाकाशस्य परिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—यथैकप्रदेशे स्पृष्टे सति लंबायमानमहावरत्रायां महावेणुदण्डे वा कुंभकारचक्रे वा सर्वत्र चलनं भवति यथैव च मनोजस्पर्शनेन्द्रियविषयैकदेशस्पर्शे कृते सति रसनेन्द्रियविषये च सर्वाङ्गेन सुखानुभवो भवति, यथैव चैकदेशे सर्पदष्टे व्रणादिके वा सर्वाङ्गेन दुःखवेदना भवति तथा लोकमध्ये स्थितेपि कालद्रव्ये सर्वत्रालोकाकाशे परिणतिर्भवति। कस्मात्। अखण्डैकद्रव्यत्वात्। कालद्रव्यमन्यद्रव्याणां परिणतिसहकारिकारणं भवति। कालस्य किं परिणतिसहकारिकारणमिति। आकाशस्याकाशाधारवत् ज्ञानादित्यरत्नप्रदीपानां स्वपरप्रकाशवच्च कालद्रव्यस्य परिणतेः काल एव सहकारिकारणं भवति। अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारी तथाशेषद्रव्याण्यपि स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारिकारणानि भविष्यन्ति कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति। परिहारमाह—सर्वद्रव्यसाधारणपरिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुणः। कथमिति चेत्। आकाशस्य

आगे निश्चयकालके स्वरूपको दिखाते हैं और व्यवहारकालकी कथंचित् प्रकारसे पराधीनता दिखाते हैं;—[कालः] निश्चय काल [इति] इस प्रकार जानना कि [व्यपगतपंचवर्णरसः] नहीं हैं पाँच वर्ण और पाँच रस जिसमें (च) और [व्यपगतद्विगंधाष्टस्पर्शः] नहीं हैं दो गंध आठ स्पर्शगुण जिसमें, फिर कैसा है? [अगुरुलघुकः] षड्गुणी हानिवृद्धिरूप अगुरुलघुगुणसंयुक्त है। [च] फिर कैसा है निश्चयकाल? [वर्त्तनलक्षणः] अन्य द्रव्योंके परिणमानेको बाह्य निमित्त है लक्षण जिसका, ऐसा यह लक्षण कालाणुरूप निश्चयकालद्रव्यका जानना। भावार्थ—कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परिणतिको सहाई है। कैसे? जैसेकि—शीतकालमें शिष्यजन पठनक्रिया अपने आप करते हैं, उनको बहिरंगमें अग्नि सहाय होती है। तथा जैसे कुंभकार का चाक आपही से फिरता है, उसके परिभ्रमणको

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्;—

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥२५॥

सर्वसाधारणावकाशदानमिव धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथा—धर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव। तदपि कथमिति चेत्। अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्राप्तेः। किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणतेरुपादानकारणवत् सहकारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैः सहकारिकारणभूतैः किं प्रयोजनं गतिस्थित्यवगाह्यः स्वयमेव भविष्यति। तथा सति किं दूषणं। जीवपुद्गलसंज्ञे द्वे एव द्रव्ये स चागमविरोधः। अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्यालाभेऽतीतानंतकाले संसारचक्रे भ्रमितोऽयं जीवः, ततः कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिरूपसंकल्पविकल्पकल्लोलमालापरिहाबलेन जीवन् स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः ॥२४॥

इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। अथ समयादिव्यवहारकालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् कथंचित्परायत्तत्वं द्योतयति;—**समओ** मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यक्तीक्रियमाणः समयः **णिमिसो**

सहाय नीचेकी कीली होती है। इसी प्रकार सब द्रव्योंकी परिणतिको निमित्तभूत कालद्रव्य है ॥२४॥

यहाँ कोई प्रश्न करे कि—लोकाकाशसे बाहर कालद्रव्य नहीं है तब आकाश किसकी सहायता से परिणमता है? उसका **उत्तर**—जैसे कुम्भकारका चाक एक जगह फिराया जाता है, परंतु वह चाक सर्वांग फिरता है। तथा जैसे—एक जगह स्पर्शेन्द्रियका मनोज्ञ विषय होता है, परंतु सुखका अनुभव सर्वांगमें होता है। तथा-सर्प एक जगह काटता है, परंतु विष सर्वाङ्गमें चढ़ता है। तथा फोड़ा आदि व्याधि एक जगह होती है, परंतु वेदना सर्वाङ्गमें होती है—वैसे ही कालद्रव्य लोकाकाशमें तिष्ठता है, परन्तु अलोकाकाशकी परिणतिको भी निमित्तकारणरूप सहाय होता है। फिर यहाँ कोई प्रश्न करे कि—कालद्रव्य अन्यद्रव्योंकी परिणतिको तो सहाय है, परंतु कालद्रव्यकी परिणतिको कौन सहाय है? **उत्तर**—कालको काल ही सहाय है। जैसे कि आकाशको आधार आकाश ही है। तथा जैसे ज्ञान सूर्य रत्नदीपादिक पदार्थ स्वपरप्रकाशक होते हैं। इनके प्रकाशको अन्य वस्तु सहाय नहीं होती है, वैसे ही कालद्रव्य भी स्वपरिणतिको स्वयं ही सहाय है। इसकी परिणतिको अन्य निमित्त नहीं है। फिर कोई प्रश्न करे कि—जैसे काल अपनी परिणतिको आप सहायक है, वैसे अन्य जीवादिक द्रव्य भी अपनी परिणतिको सहाय क्यों नहीं होते? कालकी

समयो निमिषः काष्ठा कला च नाली ततो दिवारात्रं।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः ॥२५॥

परमाणुप्रचलनायत्तः समयः नयनपुटघटनायत्तो निमिषः, तत्संख्याविशेषतः काष्ठा[1] कला[2] नाडी[3] च। गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः[4]। तत्संख्याविशेषतः मासः,

---

नयनपुटविघटनेन व्यज्यमानः संख्यातीतसमयो निमिषः कट्ठा पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा कला य त्रिंशत्काष्ठाभिः कला णालो साधिकविंशतिकलाभिर्घटिका घटिकाद्वयं मुहूर्तः तदो दिवारत्ती त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः मासो त्रिंशद्दिवसैर्मासः उडु मासद्वयमृतुः अयणं ऋतुत्रयमयनं संवत्सरोत्ति कालो अयनद्वयं वर्षं इति। इतिशब्देन पल्योपमसागरोपमादिरूपो व्यवहारकालो ज्ञातव्यः। स च मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुव्यज्यमानः समयो जलभाजनादिवहिरङ्गनिमित्तभूतपुद्गलप्रकटीक्रियमाणा घटिका, दिनकरबिंबगमनादिक्रियाविशेषव्यक्तीक्रियमाणो दिवसादिः व्यवहारकालः। कथंभूतः। परायत्तो कुम्भकारादिवहिरङ्गनिमितोत्पन्नमृत्पिण्डोपादानकारणजनितघटवन्निश्चयेन द्रव्यकालजनितोऽपि व्यवहारेण परायत्तः पराधीन इत्युच्यते। किंच अन्येन क्रियाविशेषणादित्यगत्यादिना परिच्छिद्यमानोऽन्यस्य जातकादेः परिच्छित्तिहेतुः स एव कालोऽन्यो द्रव्यकालो नास्तीति। तन्न। पूर्वोक्तसमयादिपर्यायरूप आदित्यगत्यादिना व्यज्यमानः स व्यवहारकालः यश्चादित्यगत्यादिपरिणतेः सहकारिकारणभूतः स द्रव्यरूपो निश्चयकालः। ननु आदित्यगत्यादिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं कालस्य किमायातं। नैवं। गतिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं भवति कालद्रव्यं च, सहकारि-

---

सहायता क्यों वताते हो? **उत्तर**—कालद्रव्यका विशेष गुण यही है जो कि अन्य पदार्थोंकी परिणतिको निमित्तभूत वर्त्तना लक्षण हो। जैसे आकाश धर्म अधर्म इनके विशेष गुण अन्य द्रव्योंको अवकाश, गमन, स्थानको सहाय देना है। वैसे ही कालद्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमानेको सहायक है। और उपादान अपनी परिणतिको आप ही सव द्रव्य हैं। उपादान एक द्रव्यको अन्य द्रव्य नहीं होता। कथंचित्प्रकार निमित्तकारण अन्य द्रव्यको अन्य पदार्थ होता है। अवकाश गति स्थिति परिणतिको आकाश आदिक द्रव्य कहे हैं। और जो अन्य द्रव्य निमित्त न माना जाय तो जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रह जाँय। ऐसा होनेसे आगम-विरोध होगा और लोकमर्यादा नहीं रहेगी। लोक षड्द्रव्यमयी है, यह सब कथन निश्चय कालका जानना। अब व्यवहारकालका वर्णन किया जाता है;—[कालः इति] यह व्यवहार काल [परायत्तः] यद्यपि निश्चयकालकी समयपर्याय है

---

१ पञ्चदशनिमिषैः काष्ठाः. २ विंशतिकाष्ठाभिः कला. ३ साधिकविंशतिकलाभिः घटिका. ४ त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः।

ऋतुः, अयनं, संवत्सरः इति । एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितुमशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति ॥२५॥

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित् परायत्तत्वे सदुपपत्तिरुक्ता;—

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता ।
पुग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥२६॥

कारणानि बहून्यपि भवन्ति. यतः कारणात् घटोत्पत्तौ कुम्भकारचक्रचीवरादिवत् मत्स्यादीनां जलादिवत् मनुष्याणां शकटादिवत् विद्याधराणां विद्यामन्त्रौषधादिवत् देवानां विमानवदित्यादिकालद्रव्यं गतिकारणं । कुत्र भणितं तिष्ठतीति चेत् । "पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं" क्रियावंतो भवंतीति कथयत्यग्रे । ननु यावता कालेनैकप्रदेशातिक्रमं करोति पुद्गलपरमाणुस्तत्प्रमाणेन समयव्याख्यानं कृतं, स एकसमये चतुर्दशरज्जुकाले गमनकाले यावंतः प्रदेशास्तावंतः समया भवंतीति । नैवं । एकप्रदेशातिक्रमेण या समयोत्पत्तिर्भणिता सा मंदगतिगमनेन, चतुर्दशरज्जुगमनं यदेकसमये भणितं तदक्रमेण शीघ्रगत्या कथितमिति नास्ति दोषः । अत्र दृष्टांतमाह—यथा कोपि देवदत्तो योजनशतं दिनशतेन गच्छति स एव विद्याप्रभावेण दिनेनैकेन गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति नैवैकदिनमेव तथा शीघ्रगतिगमने सति चतुर्दशरज्जुगमनेप्येकसमय एव नास्ति दोषः इति ॥२५॥

तथापि जीव पुद्गलके नवजीर्णरूप परिणामसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है । अन्यके द्वारा कालकी पर्यायका परिमाण किया जाता है, इसलिये पराधीन है, सो ही दिखाया जाता है । [समयः] मंदगतिसे परिणत जो परमाणु उसकी अतिसूक्ष्म चाल जितनेमें हो सो समय है [निमिषः] जितनेमें नेत्रकी पलक खुले उसका नाम निमिष है । असंख्यात समय जब बीतते हैं, तब एक निमिष होता है । और [काष्ठा] पंद्रह निमिष मिलें तो एक काष्टा होती है [च] और [कला] जो बीस काष्ठा हों तो एक कला होती है । और [नाली] कुछ अधिक जो बीस बीते तो एक नाली वा घडी होती है । सो जलकटोरी, घड़ियाल आदिकसे जानी जाती है । जो दो घड़ी हो तो महूर्त होता है । [ततः दिवारात्रं] जो तीस महूरत बीत जायें तो एक दिनरात्रि होती है, सो सूर्यकी गतिसे जाना जाता है । और [मासर्त्वयनसंवत्सरं] तीस दिनका महीना, दो महीने की ऋतु, तीन ऋतुका अयन, दो अयनका एक वर्ष होता है और जहाँ तक वर्ष किये जाँय, वहाँ तक संख्यातकाल कहा जाता है । इसके उपरांत पल्य, सागर आदिक असंख्यात वा अनंतकाल जानना । यह व्यवहारकाल इसी प्रकार द्रव्यके परिणमनकी मर्यादासे गिन लिया जाता है । मूल पर्याय निश्चयकाल है । सबसे सूक्ष्म 'समय' नामक कालकी पर्याय है । अन्य सब स्थूलकालकी पर्याय हैं । समयके अतिरिक्त अन्य कालका सूक्ष्म भेद कोई नहीं है । परद्रव्यके परिणमनके विना व्यवहारकालकी मर्यादा नहीं कही जाती । इस कारण यह पराधीन है । निश्चयकाल स्वाधीन है ॥२५॥

नास्ति चिरं वा क्षिप्रं मात्रारहितं तु सापि खलु मात्रा ।
पुद्गलद्रव्येण विना तस्मात्कालः प्रतीत्यभवः ॥२६॥

इह हि व्यवहारकाले निमिषसमयादौ अस्ति तावत् चिरं इति क्षिप्रं इति संप्रत्ययः । स खलु दीर्घह्रस्वकालनिबंधनं प्रमाणमंतरेण न संभाव्यते । तदपि प्रमाणं पुद्गलद्रव्यपरिणाममंतरेण नावधार्यते । ततः परिणामद्योत्यमानत्वाद्व्यवहारकालो

अथ पूर्वगाथायां यद्व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं कथितं तत्केन रूपेण संभवतीति पृष्टे युक्तिं दर्शयति;— **णत्थि** नास्ति न विद्यते । किं । **चिरं वा खिप्पं** चिरं बहुतरकालस्वरूपं क्षिप्रं शीघ्रं च । कथंभूतं । **मत्तारहियं तु** मात्रारहितं परिमाणरहितं मानविशेषरहितं च तन्मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं चिरकालस्य घटिकाप्रहारादिरिति क्षिप्रस्य सूक्ष्मकालस्य च मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं च । किं । समयावलिकादिति । **सावि खलु मत्ता पोग्गलदव्वेण विणा** सूक्ष्मकालस्य या समयादिमात्रा सा मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनादिपुद्गलद्रव्येण विना न ज्ञायते, चिरकालघटिकादिरूपा मात्रा च घटिकानिमित्तभूतजलभाजनादिद्रव्येण विना न ज्ञायते । **तम्हा कालो पडुच्च भवो** तस्मात्कारणात्समयघटिकादिसूक्ष्मस्थूलरूपो व्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन द्रव्यकालस्य पर्यायस्तथापि व्यवहारेण परमाणुजलादिपुद्गलद्रव्यं प्रतीत्याश्रित्य निमित्तीकृत्य भव उत्पन्नो जात इत्यभिधीयते। केन दृष्टान्तेन । यथा निश्चयेन पुद्गलपिंडोपादानकारणेन समुत्पन्नोपि घटः व्यवहारेण कुंभकारनिमित्तेनोत्पन्नत्वात्कुम्भकारेण कृत इति भण्यते तथा समयादिव्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन परमार्थकालोपादानकारणेन समुत्पन्नः तथापि समयनिमित्तभूतपरमाणुना घटिकानिमित्तभूतजलादिपुद्गलद्रव्येण च व्यज्यमानत्वात् प्रकटीक्रियमाणत्वात्पुद्गलोत्पन्न इति भण्यते । पुनरपि कश्चिदाह । समयरूप एव परमार्थकालो न चान्य. कालाणुद्रव्यरूप इति । परिहारमाह । समयस्तावत्सूक्ष्मकालरूपः प्रसिद्धः

आगे व्यवहारकालकी पराधीनता किस प्रकार है सो युक्तिपूर्वक समाधान करते हैं—**[मात्रारहितं]** कालके परिमाण विना **[चिरं]** बहुत काल **[क्षिप्रं वा]** शीघ्र ही ऐसा कालका अल्प बहुत्व **[नास्ति]** नहीं है । अर्थात्—कालकी मर्यादाके विना थोड़े बहुत कालका कथन नहीं होता । इस कारण कालके परिमाणका कथन अवश्य करना योग्य है । **[तु]** फिर **[सापि]** वह भी **[खलु]** निश्चयसे **[मात्रा]** कालकी मर्यादा **[पुद्गलद्रव्येण विना]** पुद्गल द्रव्यके विना **["नास्ति"]** नहीं है । अर्थात्—परमाणुकी मंदगति, आँखका खुलना, सूर्यादिककी चाल इत्यादि अनेक प्रकारसे जो पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं, उनसे ही कालका परिमाण होता है । पुद्गल द्रव्यके विना कालकी मर्यादा नहीं होती **[तस्मात्]** इस कारणसे **[कालः]** व्यवहार काल **[प्रतीत्य भवः]** पुद्गलद्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न, ऐसा कहा जाता है । **भावार्थ**—पुद्गलद्रव्यकी आदिअन्त क्रियासे व्यवहारकाल गिन लिया जाता है ।

निश्चयेनानन्याश्रितोऽपि प्रतीत्यभाव इत्यभिधीयते । तदत्रास्तिकायसामान्यप्ररूपणायामस्तिकायत्वाभावात्साक्षादनुपन्यस्यमानोऽपि जीवपुद्गलपरिणामान्यथानुपपत्त्या निश्चयरूपस्तत्परिणामायत्ततया व्यवहाररूपः कालोऽस्तिकायपञ्चकवल्लोकरूपेण परिणत इति खरतरदृष्ट्याभ्युपगम्यत इति ।।२६।।

इति समयव्याख्यायामंतर्नीति–षड्द्रव्य–पञ्चास्तिकायसामान्यव्याख्यानरूपः पीठबंधः समाप्तः ।

स एव पर्यायः न द्रव्यं । कथं पर्यायत्वमिति चेत् । उत्पन्नप्रध्वंसित्वात्पर्यायस्य "समओ उप्पण्णपद्धंसी" ति वचनात् । पर्यायस्तु द्रव्यं विना न भवति, द्रव्यं च निश्चयेनाविनश्वरं, तच्च कालपर्यायस्योपादानकारणभूतं कालाणुरूपं कालद्रव्यमेव न च पुद्गलादि । तदपि कस्मात् । उपादानकारणसदृशत्वात्कार्यस्य मृत्पिंडोपादानकारणसमुत्पन्नघटकार्यवदिति । किंच कालशब्द एव परमार्थकालवाचकभूतः स्वकीयवाच्यं परमार्थकालस्वरूपं व्यवस्थापयति साधयति । किंवत् । सिंहशब्दः सिंहपदार्थवत्, सर्वज्ञशब्दः सर्वज्ञपदार्थवत्, इन्द्रशब्द इन्द्रपदार्थवदित्यादि । पुनरप्युपसंहाररूपेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते । तद्यथा—समयादिरूपसूक्ष्मव्यवहारकालस्य घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालस्य च यद्युपादानकारणभूतकालस्तथापि समयघटिकारूपेण या विवक्षिता व्यवहारकालस्य भेदकल्पना तया रहितस्त्रिकालस्थायित्वेनानाद्यनिधनो लोकाकाशप्रदेशप्रमाणकालाणुद्रव्यरूपः परमार्थकालः । यस्तु निश्चयकालोपादानकारणजन्योपि पुद्गलपरमाणुजलभाजनादिव्यज्यमानत्वात्समयघटिकादिवसादिरूपेण विवक्षितव्यवहारकल्पनारूपः स व्यवहारकाल इति । अत्र व्याख्यानेऽतीतानंतकाले दुर्लभो योऽसौ शुद्धजीवास्तिकायस्तस्मिन्नेव चिदानंदैककालस्वभावे सम्यक्श्रद्धानं रागादिभ्यो भिन्नरूपेण भेदज्ञानं रागादिविभावरूपसमस्तसंकल्पविकल्पजालत्यागेन तत्रैव स्थिरचित्तं च कर्तव्यमिति तात्पर्यार्थः ।।२६।।

इति व्यवहारकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अत्र पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रवणेष्टांतराधिकारसहितप्रथममहाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारकालप्ररूपणाभिधानः पंचगाथाभिः स्थलत्रयेण तृतीयोंतराधिकारो गतः । एवं समयशब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका निश्चयव्यवहारकालव्याख्यानमुख्यतया चांतराधिकारत्रयेण षड्विंशतिगाथाभिः पंचास्तिकायपीठिका समाप्ता ।

परन्तु पर्याय निश्चयकालकी ही है । यद्यपि यह काल कायके अभावसे पंचास्तिकायमें नहीं कहा, तथापि जान लेना चाहिये कि—लोककी सिद्धि षड्द्रव्योंके बिना नहीं होती, क्योंकि-जीव पुद्गलकी परिणतिकी सिद्धि निश्चयकालके सहाय बिना नहीं होती । और जीव पुद्गलके नवजीर्ण परिणामकी मर्यादा विना व्यवहारकालकी सिद्धि नहीं होती । इस कारण कालद्रव्यका स्वरूप जो जिनमती हैं उनको भलीभाँति सूक्ष्मदृष्टिसे जानना चाहिये ।।२६।।

इति श्रीसमयसारके व्याख्यानमें षड्द्रव्यपंचास्तिकायका सामान्य व्याख्यान पूर्ण हुआ ।

अथामीषामेव विशेषव्याख्यानं। तत्र तावज्जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिः।

अत्र संसारावस्थस्याऽऽत्मनः सोपाधि-निरुपाधि च स्वरूपमुक्तं—

जीवोत्ति हवदि चेदा उपओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुतो ॥२७॥

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्त्ता।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्त्तः कर्मसंयुक्तः ॥२७॥

आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः[3]। व्यवहारेण द्रव्यप्राणधार-

---

अथपूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते। तद्यथा। "परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत्त किरिया य। णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरं हि यपदेसो" ॥१॥ परिणामपरिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां शेषचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावाद् मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनि। जीवशुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि। मुत्तं अमूर्तशुद्धात्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिरुच्यते तत्सद्भावात् मूर्तः पुद्गलः जीवद्रव्यं पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तं धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि। सपदेसं लोकमात्रप्रमितासंख्येय-

---

आगे इनही षड्द्रव्य पंचास्तिकायका विशेष व्याख्यान किया जाता है। सो पहिले ही संसारी जीवका स्वरूप नयविलाससे उपाधिसंयुक्त और उपाधिरहित दिखाते हैं;—[जीवः] जो सदा (त्रिकालमें) निश्चयनयसे भावप्राणों द्वारा, व्यवहार नयसे द्रव्य प्राणों द्वारा जीता है, सो [इति] यह जीवनामा पदार्थ [भवति] होता है। सो यह जीवनामा पदार्थ कैसा है? [चेतयिता] निश्चय नयकी अपेक्षा अपने चेतना गुणसे अभेद एक वस्तु है। व्यवहारसे गुणभेदसे चेतनागुणसंयुक्त है, इस कारण जाननेवाला है। फिर कैसा है? [उपयोगविशेषितः] जाननेरूप परिणामोंसे विशेषितः कहिये लखा जाता है। जो यहाँ कोई पूछे कि चेतना और उपयोग इन दोनों में क्या भेद है? उसका उत्तर यह है कि—चेतना तो गुणरूप है, उपयोग उस चेतनाकी जाननेरूप पर्याय है। यह ही इनमें भेद है।

---

१ पञ्चास्तिकायानां. २ सत्तासुखबोधचैतन्यात्. ३ आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सुखसत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति। तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति।

णाज्जीवः । निश्चयेन चिदात्मकत्वाद् व्यवहारेण चिच्छक्तियुक्तत्वाच्चेतयिता । निश्चयेनापृथग्भूतेन व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षित-

---

प्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पंचद्रव्याणि पंचास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशलक्षणं कायत्वाभावादप्रदेशं । **एय** द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति, जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि । **खेत्त** सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात्क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपंचद्रव्याण्यक्षेत्राणि । **किरिया य** क्षेत्रात् क्षेत्रांतरगमनरूपा परिस्पंदवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावंतौ जीवपुद्गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि **णिच्चं** धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि मुख्यवृत्या विभावव्यंजनपर्यायाभावान्नित्यानि; द्रव्यार्थिकनयेन च जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये । **कारण**पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वंतीति कारणानि भवन्ति; जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां किमपि न करोति इत्यकारणं । **कर्त्ता** शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति, विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति पुद्गलादीनां पञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वं वस्तुवृत्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव **सव्वगदं** लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते, लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौ च जीवद्रव्यं पुनरेकैकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कंदापेक्षया सर्वगतं शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं न भवति लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं । **इदरंहि यप्पवेसो** यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रा-

---

फिर कैसा है यह आत्मा ? [प्रभुः] आस्रव संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष इन पदार्थोंमें निश्चय करके आप भावकर्मोंकी समर्थतासंयुक्त है । व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकी ईश्वरता संयुक्त है । इस कारण प्रभु है । फिर कैसा है ? [कर्त्ता] निश्चय नयसे तो पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर जो जो परिणाम होते हैं उनका कर्त्ता है । व्यवहारसे आत्माके अशुद्ध परिणामोंका निमित्त पाकर जो पौद्गलिक कर्म परि-

---

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया वाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति. २ निश्चयेन केवलज्ञानरूपशुद्धोपयोगेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति ।

त्वादुपयोगविशेषितः। निश्चयेन भावकर्मणां व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबंधनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात्प्रभुः। निश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्मपरिणामानां व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्तपौद्गलिककर्मणां कर्तृत्वात्कर्ता। निश्चयेन

वगाहेनान्योन्यानुप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयेन चेतनाचेतनादिस्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजंतीति। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानंदैकादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥१॥ इत ऊर्ध्वं "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादिगाथायां पूर्वं पंचास्तिकाया ये सूचितास्तेषामेव विशेषव्याख्यानं क्रियते। तत्र पाठक्रमेण त्रिपंचाशद्गाथाभिर्नवांतराधिकारैर्जीवास्तिकायव्याख्यानं प्रारभ्यते। तासु त्रिपंचाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन नवाधिकारक्रमसूचनार्थं "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्याद्येकाधिकारसूत्रगाथा भवति। "तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्वं क्षेत्रमात्रता। अमूर्तत्वं च चैतन्यमुपयोगात्तथा क्रमात् ॥१॥ कर्तृता भोक्तृता कर्मयुक्तत्वं च त्रयं तथा। कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यतः ॥२॥" इति श्लोकद्वयेन भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिपूर्वकत्वेनाधिकारव्याख्यानं क्रमशः सूचितम्। तत्रादौ प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन भट्टचार्वाकमतानुसरिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं "कम्ममल" इत्यादि गाथाद्वयं भवति, तदनंतरं चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्ध्यर्थं जीवत्वव्याख्यानरूपेण "पाणेहिं चदुहिं" इत्यादि गाथात्रयं, अथ नैयायिकमीमांसकसांख्यमताश्रितशिष्यं प्रति जीवस्य स्वदेहमात्रस्थापनार्थं "जह पउम" इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनंतरं भट्टचार्वाकमतानुकूलशिष्यं प्रति जीवस्यामूर्तत्वज्ञापनार्थं "जेसिं जीवसहावो" इत्यादिसूत्रत्रयं, अथानादिचैतन्यसमर्थनव्याख्यानेन पुनरपि चार्वाकमतनिराकरणार्थं "कम्माणं फल"मित्यादि सूत्रद्वयं। एवमधिकारगाथामादिं कृत्वांतराधिकारपंचकसमुदायेन त्रयोदश गाथा गताः। अथ नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं "उवओगो खलु दुविहो" इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः कथ्यते— तत्रैकोनविंशतिगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनार्थं "उवओगो खलु" इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनार्थं "आभिणि" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ मत्यादिसंज्ञानपंचकविवरणार्थं "मदिणाण"मित्यादि पाठक्रमेण सूत्रपञ्चकं, तदनंतरमज्ञान-

---

णाम उत्पन्न होते हैं उनका कर्त्ता है। फिर कैसा है? [भोक्ता] निश्चयनयसे तो शुभ अशुभ कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुये जो सुखदुःखमय परिणाम, उनका भोक्ता है और व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मके

---

१ समर्थत्वात्. २ शुद्धनिश्चयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्परिणामानां रागद्वेषमोहानां कर्तृत्वात् कर्ता. ३ निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात्तथैवाशुद्धनिश्चयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति। भावकर्मरूपरागादिभावानां तथाचानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मणो कर्मधर्मादीनां कर्तृत्वात् कर्ता भवति।

शुभाशुभकर्मनिमित्तसुखदुःखपरिणामानां व्यवहारेण शुभाशुभकर्म्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता। निश्चयेन लोकमात्रोऽपि। विशिष्टावगाहपरिणाम-

त्रयकथनरूपेग "मिच्छत्ता अण्णाणं" इत्यादि सूत्रमेकं इति ज्ञानोपयोगसूत्राष्टकं, अथ चक्षुरादिदर्शनचतुष्टयप्रतिपादनमुख्यत्वेन "दंसणमवि" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं ज्ञानदर्शनोपयोगाधिकारगाथामादिं कृत्वांतरस्थलपंचकसमुदायेन गाथानवकं गतं। अथ गाथादशकपर्यन्तं व्यवहारेण जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन प्रदेशास्तित्वाभ्यां नैयायिकं प्रत्यभेदस्थापनं क्रियते अग्न्युष्णत्वयोरभेदवत्। जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनानां स्वरूपं कथ्यते तथापि जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति जीवद्रव्यलक्षणं, ज्ञायंते पदार्था अनेनेति ज्ञानगुणलक्षणं। जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनष्टरूपेण परिणमनं प्रयोजनं ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छित्तिमात्रमेव प्रयोजनमिति संक्षेपेण संज्ञालक्षणप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि। तत्र दशगाथासु मध्ये जीवज्ञानयोः संक्षेपेणाभेदस्थापनार्थं "ण वियप्पदि" इत्यादि सूत्रत्रयं। अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां भेदे कथंचिदभेदेपि घटंत इत्यादि समर्थनरूपेण "ववदेसा" इत्यादिगाथात्रयं, तदनंतरमेकक्षेत्रावगाहित्वेनायुतसिद्धानामभेदसिद्धानामाधाराधेयभूतानां पदार्थानां प्रदेशाभेदेपि सति इहात्मनि ज्ञानमिह तंतुषु पट इत्यादिरूपेण इहेदमिति प्रत्ययः संबंधः समवाय इत्यभिधीयते। नैयायिकमते तस्य निषेधार्थं "ण हि सो समवायाहिं" इत्यादि सूत्रद्वयं, पुनश्च गुणगुणिनोः कथंचिदभेदविषये दृष्टांतदार्ष्टांतव्याख्यानार्थं "वण्णरस" इत्यादि सूत्रद्वयमिति। दृष्टांतलक्षणमाह। दृष्टवंतौ धर्मौ स्वभावावग्निधूमयोरिव साध्यसाधकयोर्वादिप्रतिवादिभ्यां कर्तृभूताभ्याम विवादेन यत्र वस्तुनि सदृष्टांत इति। अथवा संक्षेपेण यथेति दृष्टांतलक्षणं तथेति दार्ष्टांतलक्षणमिति। एवं पूर्वोक्तगाथानवके स्थलपंचकमत्र तु गाथादशके स्थलचतुष्टयं चेति समुदायेन नवभिरंतरस्थलैरेकोनविंशतिसूत्रैरुपयोगाधिकारपातनिका। अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारसपरमसमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं सदसत्प्रतिपादनार्थं यत्र तत्रानुपूर्व्याष्टादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तत्राष्टादशगाथासु मध्ये प्रथमस्थले "जीवा अणाइणिहणा" इत्यादि गाथात्रयेण समुदायकथनं तदनंतरं द्वितीयस्थले "उदयेण" इत्याद्येकगाथायामौदयिकादिपञ्चभावव्याख्यानं, अथ तृतीयस्थले "कम्मं वेदयमाणो" इत्यादिगाथाषट्केन कर्तृत्वमुख्यतया व्याख्यानं, अथ चतुर्थस्थले "कम्मं कम्मं कुव्वदि" इत्या-

उदयसे उत्पन्न जो इष्ट अनिष्ट विषय उनका भोक्ता है। फिर कैसा है? [च स्वदेहमात्रः] निश्चय-

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानन्दरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथाचोपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिबहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति।

शक्तियुक्तत्वात् नामकर्मनिर्वृत्तमणु महच्च शरीरमधितिष्ठन् व्यवहारेण देहमात्रो व्यवहारेण कर्मभिः सहैकत्वपरिणामान्मूर्तोऽपि निश्चयेन नीरूपस्वभावत्वान्नहि मूर्तः।

द्येका पूर्वपक्षगाथा, तदनंतरं पञ्चमस्थले परिहारगाथाः सप्त। तत्र सप्तगाथासु मध्ये प्रथमं "ओगाढगाढ" इत्यादि गाथात्रयेण निश्चयेन द्रव्यकर्मणां जीवः कर्ता न भवतीति कथ्यते। तदनन्तरं निश्चयनयेन जीवस्य द्रव्यकर्तृत्वेपि "जीवा पोग्गलकाया" इत्याद्येकगाथया कर्मफले भोक्तृत्वं, अथ "तम्हा कम्मं कत्ता" इत्याद्येकसूत्रेण कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारः, तदनंतरं "एवं कत्ता" इत्यादिगाथाद्वयेन क्रमेण कर्मसंयुक्तकर्मरहितत्वं च कथयतीति परिहारमुख्यत्वेन सप्तगाथा गताः। एवं पाठक्रमेणाष्टादशगाथाभिः स्थलपंचकेनैकांतमतनिराकरणाय तथैवानेकांतमतस्थापनाय च सांख्यमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं कर्तृत्वं बौद्धमतानुयायिशिष्यं प्रतिबोधनार्थं भोक्तृत्वं सदाशिवमताश्रितशिष्यसंदेहविनाशार्थं कर्मसंयुक्तत्वमिति कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं। इत ऊर्ध्वं जीवास्तिकायसंबन्धिनवाधिकारव्याख्यानानंतरं "एक्को जेम महप्पा" इत्यादिगाथात्रयेण जीवास्तिकायचूलिका। एवं पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारसंबंधिषष्ठांतराधिकारेषु-मध्ये त्रिपञ्चाशद्गाथाप्रमितचतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा अथ—संसारावस्थस्या प्यात्मनः शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिविशुद्धभावान् तथैवाशुद्धनिश्चयेन सोपाधिभावकर्मरूपरागादिभावान् तथा चासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मोपाधिजनिताशुद्धभावांश्च यथासंभवं प्रतिपादयति,—**जीवोत्ति हवदि** आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सत्ता चैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथा चाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति तथैव चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति, **चेदा** शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया चाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति, **उवओगविसेसिदो** निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगेन तथैव चाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति, **पहू** निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात्तथैव चाशुद्धनयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति, **कत्ता** शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्मरूपरागादिभावानां तथा चानुपचरिता-

---

नयसे यद्यपि लोकमात्र असंख्यात प्रदेशी है, तथापि व्यवहार नयकी अपेक्षा संकोचविस्तारशक्तिसे नामकर्मके द्वारा निर्मापित जो लघु दीर्घ शरीर है उसके परिमाण ही होता है। इसकारण स्वदेहपरिमाण है। फिर कैसा है? [न हि मूर्त्तः] यद्यपि व्यवहारसे कर्मोंसे एक स्वभाव होनेसे मूर्तीक

---

१ निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोऽपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताऽणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति. २ असद्भूतव्यवहारेणानादिकर्मबन्धसहितत्वान्मूर्तोऽपि शुद्ध निश्चयेन वर्णादिरहितत्वादमूर्तोऽपि भवति।

निश्चयेन पुद्‌गलपरिणामानुरूपचैतन्यपरिणामात्माभिव्यवहारेण चैतन्यपरिणा-

सद्‌भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मादीनां कर्तृत्वात्कर्ता भवति, **भोत्ता** शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीत-रागपरमानंदरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथा चानुनुपचरितासद्‌भूतव्यव-हारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिबहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति, **सदेहमेत्तो** निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताणुमहच्छरीर-प्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति, **ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो** मूर्तिरहितः असद्‌भूतव्यवहारेणादिकर्मबं धसहितत्वात्कर्मसंयुक्तश्च भवति। इति शब्दार्थनयार्थाः कथिता, इदानीं मतार्थः कथ्यते-जीवत्व-व्याख्याने "वच्छक्खरं भवसारित्थसग्गणिरयपियराय। चुल्लियहंडयिपुणमयउ णव दिट्ठंता जाय।" इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यापेक्षया जीवसिद्धयर्थं अनादिचेतनागुणव्याख्यानं च तदर्थमेव। अथवा सामान्यचेतनाव्याख्यानं सर्वमतसाधारणं ज्ञातव्यं, अभिन्नज्ञानदर्शनोपयोग-व्याख्यानं तु नैयायिकमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं मोक्षोपदेशकमोक्षसाधकप्रभुत्वव्याख्यानं वीतराग-सर्वज्ञप्रणीतं वचनं प्रमाणं भवतीति "रयणदिवदिणयरुदम्हि उडु दाउपासणुसुणरुप्पफलिहउ अगणि णव दिट्ठंता जाणु" इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैर्भट्टचार्वाकमताश्रितशिष्यापेक्षया सर्वज्ञसिद्धयर्थं, शुद्धाशुद्धपरिणामकर्तृत्वव्याख्यानं तु नीत्याकर्तृत्वैकांतसांख्यमतानुयायिशिष्यसंबोधनार्थं भोक्तृत्व-व्याख्यानं कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं स्वदेहप्रमाणं व्याख्यानं नैया-यिकमीमांसककपिलमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं अमूर्तत्वव्याख्यानं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबो-धनार्थं द्रव्यभावकर्मसंयुक्तत्वव्याख्यानं च सदामुक्तनिराकरणार्थमिति मतार्थो ज्ञातव्यः। आगमार्थव्या-ख्यानं पुनर्जीवत्वचेतनादिधर्माणां संबंधित्वेन परमागमे प्रसिद्धमेव,कर्मोपाधिजनितमिथ्यात्वरागादिरूप-समस्तविभावपरिणामांस्त्यक्त्वा निरुपाधिकेवलज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकाय एव निश्चयनयेनोपा-देयत्वेन भावयितव्य इति भावार्थः। एवं शब्दनयमतागमभावार्था व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्याः। जीवास्तिकायसमुदायपातनिकायां पूर्वं चार्वाकादिमतव्याख्यानं कृतं पुनरपि किमर्थमिति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमाहुः तत्र वीतरागसर्वज्ञसिद्धे सति व्याख्यानं प्रमाणं प्राप्नोतीति व्याख्यानक्रमज्ञापनार्थं प्रभुताधिकारमुख्यत्वेनाधिकारनवकं सूचितं। तथा चोक्तं—वक्तृप्रामाण्याद्वचन-प्रामाण्यमिति। अत्र तु सति धर्मिणि धर्माश्चिंत्यंत इति वचनाच्चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणा-

विभाव परिणामरूप परिणमता है, तथापि निश्चय स्वाभाविक भावसे अमूर्त है। फिर कैसा है? [कर्मसंयुक्तः] निश्चयनयसे पुद्‌गल कर्मोका निमित्त पाकर उत्पन्न हुये जो अशुद्ध चैतन्य विभाव परिणामकर्म, उनसे संयुक्त है। व्यवहारसे अशुद्ध चैतन्य परिणामोंका निमित्त पाकर जो हुये हैं पुद्‌गलपरिणामरूप द्रव्यकर्म, उन सहित है। ऐसा यह संसारी आत्माका शुद्ध अशुद्ध कथन नयोंकी विवक्षासे सिद्धांतानुसार जान लेना ॥२७॥

मानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभिः कर्मभिः, संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त इति ॥२७॥

अत्र मुक्तावस्थस्यात्मनो निरुपाधिस्वरूपमुक्तम्;—

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥२८॥

कर्ममलविप्रमुक्त ऊर्ध्वं लोकस्यांतमधिगम्य ।
स सर्वज्ञानदर्शी लभते सुखमतीन्द्रियमनंतम् ॥२८॥

आत्मा हि परद्रव्यत्वात्कर्मरजसा साकल्येन[2] यस्मिन्नेव क्षणे[3] मुच्यते तस्मिन्नेवोर्ध्वंगमनस्वभावत्वाल्लोकांतमधिगम्य परतो गतिहेतोरभावादवस्थितः केवलदज्ञानदर्शनाभ्यां स्वरूपभूतत्वादमुक्तोऽनंतमतीन्द्रियं सुखमनुभवति । मुक्तस्य चास्य भावप्राणधारणलक्षणं[4] जीवत्वं, चिद्रूपलक्षणं चेतयितृत्वं, चित्परिणामलक्षणं उपयोगः, निर्वर्तितसमस्ताधिकारशक्तिमात्रं[5] प्रभुत्वं, समस्तवस्त्वसाधारणस्वरूप-निर्वर्तनमात्रं कर्तृत्वं, स्वरूपभूतस्वातन्त्र्यलक्षणसुखोपलम्भरूपं भोक्तृत्वं, अतीतानंतर-शरीरपरिमाणावगाहपरिणामरूपं देहमात्रत्वं, उपाधिसंबंधविविक्तमात्यन्तिकमूर्तत्वं । कर्मसंयुक्तत्वं तु द्रव्यभावकर्मविप्रमोक्षान्न भवत्येव द्रव्यकर्माणि हि पुद्गलस्कंधा भावकर्म्माणि तु चिद्विवर्ताः । विवर्तते[6] हि चिच्छक्तिरनादिज्ञानावरणादिकर्मसंपर्क-

---

माधारभूते विशेष्यलक्षणे जीवे धर्मिणि सिद्धे सति तेषां चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणां व्याख्यानं घटत इति ज्ञापनार्थं जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन मतांतरनिराकरणसहितमधिकारनवकमुपदिष्टमिति नास्ति दोषः ॥२७॥

एवमधिकारगाथा गता । अथ मोक्षसाधकत्वप्रभुत्वगुणद्वारेण सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं मुक्तावस्थस्यात्मनः

आगे मोक्षमें विराजमान जो आत्मा, उनका उपाधिरहित शुद्ध स्वरूप कहा जाता है;— ["यः"] जो जीव [कर्ममलविप्रमुक्तः] ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्म भावकर्म से सर्व प्रकारसे मुक्त हुआ है [सः] वह [सर्वज्ञानदर्शी] सबका देखने जाननेवाला शुद्ध जीव [ऊर्ध्वं] ऊँचे ऊर्ध्वगतिस्वभावसे [लोकस्य अंतं] तीन लोकसे ऊपर सिद्ध क्षेत्रको [अधिगम्य] प्राप्त होकर [अतीन्द्रियं] सविकार

---

१ शुद्धनिश्चयेन कर्मरहितोऽप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वात् तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिरूपभावकर्मसंयुक्तो भवति ।

२ द्रव्यभावरूपेण. ३ समये. ४ सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणं. ५ रचितः ६ विस्तार. ७ पर्यायाः ।

कूणितप्रचारा परिच्छेद्यस्य विश्वस्यैकदेशेषु क्रमेण व्याप्रियमाणा। यदा तु ज्ञानावरणादिकर्म्मसंपर्कः प्रणश्यति तदा परिच्छेद्यस्य विश्वस्य सर्वदेशेषु युगपद्व्यापृता कथंचित्कौटस्थ्यमवाप्य विषयांतरमनाप्नुवंती न विवर्तते। स खल्वेष निश्चितः सर्वज्ञसर्वदर्शित्वोपलम्भः। अयमेव द्रव्यकर्मनिबंधनभूतानां भावकर्मणां कर्तृत्वोच्छेदः। अयमेव च विकारपूर्वकानुभवादौपाधिकसुखदुःखपरिणामानां भोक्तृत्वोच्छेदः। इदमेव चानादिविवर्तखेदविच्छित्तिसुस्थितानंतचैतन्यस्यात्मनः स्वतंत्रस्वरूपानुभूतिलक्षणसुखस्य भोक्तृत्वमिति ॥२८॥

केवलज्ञानादिरूपं निरुपाधिस्वरूपं दर्शयति;—कम्ममलविप्पमुक्को द्रव्यकर्मभावकर्मविप्रमुक्तः सन् उड्ढं लोगस्स अन्तमधिगन्ता ऊर्ध्वंगतिस्वभावत्वाल्लोकस्यांतमधिगम्य प्राप्य सो सव्वणाणदरिसी परतो धर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन् सर्वविषये ज्ञानदर्शने सर्वज्ञानदर्शने ते विद्येते यस्य स भवति सर्वज्ञानदर्शी। एवंभूतः सन् किंकरोति। लहइ सुहमणिंदियमणंतं लभते। किं।

पराधीन इन्द्रिय सुखसे रहित ऐसे [अनंतं] अमर्यादीक [सुखं] आत्मीक स्वाभाविक अतीन्द्रिय सुखको [लभते] प्राप्त होता है। भावार्थ—यह संसारी आत्मा परद्रव्यके संबंधसे जब छूटता है, उस ही समय सिद्ध क्षेत्रमें जाकर तिष्ठता है। यद्यपि जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, तथापि आगे धर्मास्तिकाय नहीं है, इस कारण अलोकमें नहीं जाता, वहीं पर ठहर जाता है। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शनस्वरूपसंयुक्त अनंत अतीन्द्रिय सुखको भोगता है। मोक्षावस्थामें भी इसके आत्मीक अविनाशी भावप्राण हैं। उनसे सदा जीवित है। इस कारण वहाँ भी जीवत्वशक्ति होती है। और उस ही चैतन्यस्वभाव शुद्धस्वरूपके अनुभवसे चेतयिता कहलाता है। और उस ही शुद्ध जीवको चैतन्य परिणामरूप उपयोगी भी कहा जाता है और उसके ही समस्त आत्मीक शक्तियोंकी समर्थता प्रगट हुई है, इस कारण प्रभुत्व भी कहा जाता है। और निजस्वरूप अन्य पदार्थोमें नहीं, ऐसे अपने स्वरूपको सदा परिणमता है, इसलिए यही जीव कर्ता है। और स्वाधीन सुखकी प्राप्तिसे यही भोक्ता भी कहा जाता है और यही चरमशरीर अवगाहनसे किंचित् उन पुरुषाकार आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना लिए हुये है, इस कारण देहमात्र भी कहलाता है। पौद्गलिक उपाधिसे सर्वथा रहित हो गया है, इस कारण अमूर्तीक कहलाता है। और वही द्रव्यकर्म भावकर्मसे मुक्त हो गया है इस कारण कर्मसंयुक्त नहीं है। जो पहिली गाथामें संसारी जीवके विशेष कहे थे, वे ही विशेष मुक्त जीवके भी होना सम्भव हैं। परन्तु उनमेंसे एक कर्मसंयुक्तपना नहीं होता है और सब मिलते हैं।

---

१ व्याघुट्टन करोति. २ संकोचित. ३ ज्ञेयस्य. ४ चिच्छक्तिः. ५ निश्चलत्वं प्राप्य. ६ ज्ञेयरूपं परद्रव्यं अनाप्नुवंती।

इदं सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम्;—

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं ॥२९॥

जातः स्वयं स चेतयिता सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोति सुखमनंतमव्याबाधं स्वकममूर्त्तम् ॥२९॥

सुखं। कथंभूतं। अतीन्द्रियं। पुनरपि कथंभूतं। अनंतमिति। किंच पूर्वसूत्रोदितजीवतत्त्वादिनवाधिकारेषु मध्ये कर्मसंयुक्तत्वं विहाय शुद्धजीवत्वशुद्धचेतनाशुद्धोपयोगादयोष्टाधिकारा यथासंभवमागमाविरोधेनात्र मुक्तावस्थायामपि योजनीया इति सूत्राभिप्रायः ॥२८॥

अथ यदेव पूर्वोक्तं निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखस्वरूपं तस्यैव "जादो सय" मितिवचनेन पुनरपि समर्थनं करोति;—**जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य** आत्मा हि निश्चयनयेन केवल-

---

कर्म दो प्रकार का है—एक द्रव्यकर्म, दूसरा भावकर्म। जीवके संबंधसे जो पुद्गलवर्गणास्कंध हैं वे तो द्रव्यकर्म कहलाते हैं और जो चेतनाके विभावपर्याय हैं वे भावकर्म हैं ॥२८॥

यहाँ कोई पूछता है कि आत्माका लक्षण तो चेतना है सो वह विभावरूप कैसे है? उत्तर—संसारी जीवके अनादिकालसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका संबंध है। उन कर्मोंके संयोगसे आत्माकी चैतन्यशक्ति भी अपने निजस्वरूपसे गिरी हुई है। इसलिए विभावरूप होता है। जैसे कि कीचके संबंधसे जलका स्वच्छ स्वभाव था सो छोड़ दिया है। वैसेही कर्मके संबंधसे चेतना विभाव रूप हुई है, इस कारण समस्त पदार्थोंके जाननेको असमर्थ है। एकदेश कुछ ही पदार्थोंको क्षयोपशमकी यथायोग्यतासे जानता है। और जब काललब्धि होती है तब सम्यग्दर्शनादि सामग्री आकर मिल जाती है, तब ज्ञानावरणादि कर्मोंका संबंध नष्ट होता है और शुद्ध चेतना प्रगट होती है। उस शुद्ध चेतनाके प्रगट होनेपर यह जीव त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें प्रत्यक्ष जान लेता है। निश्चल कूटस्थ अवस्थाको कथंचित्प्रकार प्राप्त होता है। और भाँति नहीं होती कुछ और जानना नहीं रहा, इस कारण अपने स्वरूपसे निवृत्ति नहीं होती, ऐसी शुद्ध चेतनासे निश्चल हुआ जो यह आत्मा सो सर्वदर्शी सर्वज्ञभावको प्राप्त हो गया है, तब इसके द्रव्यकर्मके जो कारण हैं विभाव भावकर्म उनके कर्तृत्वका उच्छेद होता है। और कर्म उपाधिके उदयसे जो सुखदुःख विभाव परिणाम उत्पन्न होते हैं उनका भोगना भी नष्ट होता है। और अनादि कालसे लेकर विभाव पर्यायोंके होनेसे जो आकुलतारूप खेद हुआ था उसके विनाश होनेसे स्वरूपमें स्थिर अनंत चैतन्य स्वरूप आत्माके स्वाधीन आत्मीक स्वरूपका अनुभूतरूप जो अनाकुल अनंत सुख प्रगट हुआ है उसका अनंतकालपर्यंन्त भोग बना रहेना। यह मोक्षावस्थामें शुद्ध आत्मका स्वरूप जानना। आगे पहिले ही कह आये हैं कि जो आत्माके ज्ञान दर्शन सुखभाव उनको फिर भी आचार्य निरुपाधि शुद्धरूप कहते हैं;—[सः] वह शुद्धरूप [**चेतयिता**] चिदात्मा [**स्वयं**] आप अपने स्वाभाविक भावोंसे [**सर्वज्ञः**] सबका जाननेवाला [**च**] और [**सर्वलोकदर्शी**] सबका देखनेवाला ऐसा [**जातः**] हुआ है

आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसंकोचितात्मशक्तिः परद्रव्यसंपर्केण क्रमेण किंचित्किंचिज्जानाति पश्यति परप्रत्ययं मूर्तसंबंधं सव्याबाधं सांतं सुखमनुभवति च। यदा त्वस्य कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति,

---

ज्ञानदर्शनसुखस्वभावस्तावत् इत्थंभूतोपि संसारावस्थायां कर्मावृतः सन् क्रमकरणव्यवधानजनितेन क्षायोपशमिकज्ञानेन किमपि किमपि जानाति तथाभूतदर्शनेन किमपि किमपि पश्यति तथा चेन्द्रियजनितं बाधासहितं पराधीनं मूर्तसुखं चानुभवति स एव चेतयितात्मा निश्चयनयेन स्वयमेव कालादिलब्धिवशात्सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातः। एवं जातः सन् किं करोति। **पावदि इंदियरहिदं अव्वावाहं सगममुत्तं** प्राप्नोति लभते। किं। सुखमित्यध्याहारः। कथंभूतं सुखं। इन्द्रियरहितं। पुनरपि किं विशिष्टं। स्वकमात्मोत्थं। पुनश्च किंरूपं। मूर्तेन्द्रियनिरपेक्षत्वादमूर्तं च। अत्र स्वयं जातमिति वचनेन पूर्वोक्तमेव निरुपाधित्वं समर्थितं। तथा च स्वयमेव सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातो निश्चयनयेनेति पूर्वोक्तमेव सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च समर्थितमिति। अथ भट्टचार्वाकमतानुसारी कश्चिदाह, नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः खरविषाणवत्। तत्र प्रत्युत्तरं दीयते-कुत्र सर्वज्ञो नास्त्यत्र देशे तथा चात्रकाले किं जगत्त्रये कालत्रये वा? यद्यत्र देशे काले नास्तीति भण्यते तदा सम्मतमेव। अथ जगत्त्रये कालत्रयेपि नास्ति तत्कथं ज्ञातं भवता? जगत्त्रयकालत्रयं सर्वज्ञरहितं ज्ञातं चेद्भवता तर्हि भवानेव सर्वज्ञः। कुत इति चेत्। योऽसौ जगत्त्रयं जानाति स एव सर्वज्ञः यदि पुनः सर्वज्ञरहितं जगत्त्रयं कालत्रयं न ज्ञातं भवता तर्हि जगत्त्रये कालत्रयेपि सर्वज्ञो नास्तीति कथं निषेधः क्रियते त्वया। अथ मतं किमत्रोदाहरणं यथा कश्चिद्देवदत्तो घटरहितभूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चद्ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तमेव, अन्यः कोप्यंधः किमेवं ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्त्यपि तु नैवं। तथा योऽसौ जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति स एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो न चान्योन्ध

और वही भगवान [अनंतं] नहीं है पार जिसका और [अव्याबाधं] बाधारहित निरंतर अखंडित तथा [अमूर्त्तं] अतीन्द्रिय अमूर्त्तीक है, ऐसे [स्वकं] आत्मीक [सुखं] आकुलतारहित परम सुखको [प्राप्नोति] पाता है। **भावार्थ**—आत्मा ज्ञान-दर्शनरूप सुखस्वभाव है, सो संसार अवस्थामें अनादि कर्मबंधके कारण संक्लेशके द्वारा सावरण हुआ है। आत्मशक्ति घाती गई है। परद्रव्यके संबंधसे क्षयोपशम ज्ञानके बलसे क्रमशः कुछ कुछ जानता व देखता है। इस कारण पराधीन मूर्त्तीक इन्द्रियगोचर बाधासंयुक्त विनाशीक सुखको भोगता है। और जब इसके सर्वथा प्रकार कर्मक्लेश विनश जाते हैं, तब बाधारहित परकी सहाय के बिना आप ही एकही बारमें समस्त पदार्थोंको जानता तथा देखता है। और स्वाधीन अमूर्त्तीक-परसंयोगरहित अतीन्द्रिय अखंडित अनंत सुखको भोगता है। और इस कारण सिद्ध परमेष्ठी स्वयं जानन देखनेवाला सुखका अनुभवन करनेवाला आप ही है। और

---

१ पराधीनं वा पराश्रितं सुखं. २ आत्मनः।

तदाऽनर्गलाऽकुचितात्मशक्तिरसहायः स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति पश्यति, स्वंप्रत्ययममूर्तसंबंधमव्याबाधमनंतसुखमनुभवति च। ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च, स्वं न परेण प्रयोजनमिति ।।२९।।

इव। यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति। कस्मात्? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानसहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति। किंचानुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदयुक्तं। कथमिति चेत्। किं भवतां सर्वज्ञानुपलब्धिरुत जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा। यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति। कथमिति चेत्। परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परिचितोवृत्तयश्च भवद्भिर्यदि व ज्ञायंते तर्हि किं न सन्ति। अथ जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां सर्वज्ञानुपलब्धेस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिरिति पूर्वमेवं विचारितं तिष्ठति, इति हेतुदूषणं। यदप्युक्तं खरविषाणवदिति दृष्टांतवचनं, तदप्ययुक्तं। कथमिति चेत्। खरे विषाणं नास्ति न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते तथा सर्वज्ञेपि विवक्षितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषणं दृष्टांतदूषणं च ज्ञातव्यं। अथ मतं सर्वज्ञाभावे दूषणं दत्तं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाणं। तत्र प्रमाणं कथ्यते-अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति। अथवा द्वितीयमनुमानप्रमाणं कथ्यते। तद्यथा। सूक्ष्माव्यवहितदेशांतरितकालांतरितस्वभावांतरितार्थाः धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवंतीति साध्यो धर्मः। कस्माद्धेतोः। अनुमानविषयत्वात्। यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं दृष्टं, यथाग्न्यादि अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवंतीति संक्षेपेण

परसे कुछ प्रयोजन नहीं है। यहाँ कोई नास्तिकमती तर्क करता है कि, सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि सबका जानने देखनेवाला प्रत्यक्षमें कोई नहीं दीखता। जैसे गर्दभके सींग नहीं हैं, वैसे ही कोई सर्वज्ञ नहीं है। उत्तर—सर्वज्ञ इस देशमें नहीं कि इस कालमें ही नहीं अथवा तीन लोकमें ही नहीं या तीन कालमें ही नहीं? यदि कहो कि इस देशमें और इस कालमें नहीं तो ठीक है, क्योंकि इस समय कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता। और यदि कहो कि तीन लोकमें तथा तीन कालमें भी नहीं है, तो तुमने यह बात किस प्रकार जानी? क्योंकि तीन लोक और तीन कालकी बात सर्वज्ञके विना कोई जान ही नहीं सकता, और जो तुमने यह बात निश्चय करके जान ली कि कहीं भी सर्वज्ञ नहीं और किसी कालमें भी न तो हुआ न होगा, तो हम कहते हैं कि तुम ही सर्वज्ञ हो, क्योंकि जो तीन लोक और तीन कालकी जाने वही सर्वज्ञ है। और यदि तुम तीन लोक और तीन कालकी बात नहीं जानते तो तुमने तीन लोक और तीन कालमें सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा किस प्रकार जाना? जो सबका जानने देखने वाला हो वही सर्वज्ञका निषेध कर सकता है, और किसीकी भी शक्ति नहीं है। इस कारण तुम ही सर्वज्ञ हो। इस न्यायसे सर्वज्ञकी सिद्धि होती है, निषेध नहीं होता। जो वस्तु इस देशकालमें नहीं और सूक्ष्म परमाणु आदिक जो वस्तु हैं और जो अमूर्त्त हैं उन वस्तुओंका ज्ञाता एक सर्वज्ञ ही है, और कोई नहीं है ।।२९।।

---

१ स्वात्मोत्थं सुखम्।

जीवत्वगुणव्याख्येयम्;—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ।।३०।।

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यः खलु जीवतः पूर्वं ।
स जीवः प्राणाः पुनर्बलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वासः ।।३०।।

इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणा हि प्राणाः । तेषु[१] चित्सामान्यान्वयिनो भावप्राणाः, पुद्गलसामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणाः, तेषामुभयेषामपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसंतानत्वेन धारणात्संसारिणो जीवत्वं । मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणानां धारणात्तदवसेयमिति ।।३०।।

सर्वज्ञसद्भावे प्रमाणं ज्ञातव्यं । विस्तरेणासिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्करहेतुदूषणसमर्थनमन्यत्र सर्वज्ञसिद्धौ भणितमास्ते, अत्र पुनरध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यते । इदमेव वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं समस्तरागादिविभावत्यागेन निरंतरमुपादेयत्वेन भावनीयमिति भावार्थः ।।२९।।

एवं प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ जीवत्वगुणव्याख्यानं क्रियते;—'पाणेहिं' इत्यादि पदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते । **पाणेहिं चदुहिं जीवदि** यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धचैतन्यादिप्राणैर्जीवति तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपैस्तथाशुद्धनिश्चयनयेन भावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैः संसारावस्थायां वर्तमानकाले जीवति **जीविस्सदि** भाविकाले जीविष्यति । **जो हु** यो हि स्फुटं **जीविदो पुव्वं** जीवितः पूर्वकाले **सो जीवो** सः कालत्रयेपि प्राणचतुष्टयसहितो जीवो भवति । **पाणा**

आगे जीवत्व गुणका व्याख्यान करते हैं;—[यः] जो [चतुर्भिः प्राणैः] चार प्राणोंसे [जीवति] वर्त्तमान कालमें जीता है [जीविष्यति] आगामी काल में जियेगा । [पूर्वं जीवितः] पूर्वही जीता था [सः] वह [खलु] निश्चय से [जीवः] जीवनामक पदार्थ है । [पुनः] फिर उस जीवके [प्राणाः] चार प्राण हैं । वे कौन कौनसे हैं । [बलं] एक तो मनवचनकायरूप बल प्राण है और दूसरा [इंद्रियम्] स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्ररूप पांच इन्द्रिय प्राण हैं । तीसरा [आयुः] आयुःप्राण है, चौथा [उच्छ्वासः] श्वासोच्छ्वास प्राण है । भावार्थ—इन्द्रिय बल आयु श्वासोच्छ्वास इन

---

१ प्राणेषु २ अशुद्धनिश्चयेन भावरूपाणां, उपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपाणाम् ।

अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः;—

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥३१॥

अगुरुलघुका अनंतास्तैरनंतैः परिणताः सर्वे।
देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः ॥३१॥

पुण बलमिंदियमाउउस्सासो ते पूर्वोक्तद्रव्यभावप्राणाः पुनरभेदेन बलेन्द्रियायुरुच्छ्वासलक्षणा इति। अत्र सूत्रे मनोवाक्कायनिरोधेन पंचेंद्रियविषयव्यावर्तनबलेन च शुद्ध चेतन्यादिशुद्धप्राणसहितः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयरूपेण ध्यातव्य इति भावार्थः ॥३०॥

अथागुरुलघुत्वमसंख्यातप्रदेशत्वं व्यापकत्वाव्यापकत्वं मुक्तामुक्तत्वं च प्रतिपादयति,— **अगुरुलहुगाणंता** प्रत्येकं षट्स्थानपतितहानिवृद्धिभिरनंताविभागपरिच्छेदैः सहिता अगुरुलघवो गुणा अनंता भवन्ति। **तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे** तैः पूर्वोक्तगुणैरनंतैः परिणताः सर्वे। सर्वे के। जीवा इति संबंधः। **देसेहिं असंखादा** लोकाकाशप्रमिताखण्डप्रदेशैः सहितत्वादसंख्येयप्रदेशाः। **सियलोगं सव्वमावण्णा** स्यात्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण लोकव्यापकाः अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया

चारों ही प्राणोंमें जो चैतन्यरूप परिणति हैं वे तो भावप्राण हैं और इनकी ही जो पुद्गलस्वरूप परिणति हैं वे द्रव्यप्राण कहलाते हैं। ये दोनों जातिके प्राण संसारी जीवके सदा अखंडित संतान द्वारा प्रवर्त्तते हैं। इनही प्राणोंसे संसारमें जीवित कहलाता है। और मोक्षावस्थामें केवल शुद्धचैतन्यादि गुणरूप भावप्राणोंसे जीवित है, इस कारण वह शुद्धजीव है ॥३०॥

आगे जीवोंका स्वाभाविक प्रदेशोंकी अपेक्षा प्रमाण कहते हैं और मुक्त संसारी जीवका भेद कहते हैं;—[**अगुरुलघुकाः**] समय समयमें षट्गुणी हानिवृद्धि लिये अगुरुलघु गुण [**अनंताः**] अनंत है, वे अगुरुलघु गुण आत्माके स्वरूपमें थिरताके कारण अगुरुलघु स्वभाव हैं, उसके अविभागी अंश अति सूक्ष्म हैं। आगमकथित ही प्रमाण कहे जाते है। [**तैः अनंतैः**] उन अनंत अगुरुलघु गुणोंके द्वारा [**सर्वे**] जितने समस्त जीव हैं उतने सब ही [**परिणताः**] परणत हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अनंत अगुरुलघुगुण रहित हो, किन्तु सबमें पाये जाते हैं। और वे सब ही जीव [**देशैः**] प्रदेशोंके द्वारा [**असंख्याताः**] लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं। अर्थात्—एक एक जीवके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। उन जीवोंमेंसे कितने ही जीव [**स्यात्**] किस ही एक प्रकारसे दंडकपाटादि अवस्थाओंमें [**सर्वं लोकं**] तीनसै तेतालीस रज्जुप्रमाण घनाकाररूप समस्त लोकके प्रमाणको [**आपन्नाः**] प्राप्त हुये हैं। दंडकपाटादिमें सब ही जातिके कर्मोंके उदयसे प्रदेशोंका

केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥३२॥(जुम्मं)

केचित्तु अन्नापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः।
वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः ॥३२॥ (युग्मम्)

जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः। अगुरुलघवो गुणास्तु तेषामगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदाः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनंताः। प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा असंख्येयाः। एवंविधेषु तेषु केचित्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः। केचित्तु तदव्यापिनः इति। अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसंततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणो ये विमुक्तास्ते सिद्धास्ते च प्रत्येकं बहव इति ॥३१॥३२॥

लोकव्यापकाः। तथाचोक्तं। 'आधारे थूलाओ सुहुमेहिं णिरंतरो लोगो।" पुनरपि कथंभूतास्ते जीवाः। केचिच्च अणावण्णा केचिच्च केचन पुनर्लोकपूरणावस्थारहिता अथवा बादरैकेन्द्रिया विकलेन्द्रियादयश्चाव्यापकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः। मिच्छादंसणकसायजोगजुदा रागदिरहितपरमानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्यथासंभवं युक्ताः। न केवलं युक्ताः विजुदा य तेहिं तैरेव मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहिताश्च। उभयेपि कति संख्योपेताः। बहुगा बहवोऽनंताः। पुनरपि कथंभूताः। सिद्धा संसारिणो ये मिथ्यादर्शनकषाययोगविमुक्ता रहितास्ते सिद्धा, ये च युक्तास्ते संसारिण इति। अत्र जीविताशारूपरागादिविकल्पत्यागेन सिद्धजीवसदृशः परमाह्लादरूपसुखरसास्वादपरिणतनिजशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयमिति भावार्थः ॥३१-३२॥

विस्तार लोक प्रमाण होता है। इस कारण समुद्घातकी अपेक्षासे कई जीव लोकके प्रमाणानुसार कहे गये हैं। और [केचित्तु अनापन्नाः] कई जीव समुद्घातके विना सर्व लोकप्रमाण नहीं हैं, निज निज शरीरके प्रमाण ही हैं। उस अनंत जीवराशि में [बहवः जीवाः] अनंतानंत जीव [मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः] अनादि कालसे मिथ्यात्व कषाय योगसे संयुक्त [संसारिणः] संसारी हैं। अर्थात् जितने जीव मिथ्यादर्शनकषाययोग संयुक्त हैं वे सब संसारी कहे जाते हैं और जो [च तैः] उन मिथ्यात्व कषाय योगोंसे [वियुताः] रहित शुद्ध जीव हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध हैं। वे सिद्ध (मुक्त जीव भी) अनंत हैं। यह शुद्धाशुद्ध जीवोंका सामान्य स्वरूप जानना ॥३१-३२॥

---

१ जीवानाम्. २ अभिन्नाः।

एष देहमात्रत्वदृष्टांतोपन्यासः;—

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरं पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥३३॥

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरं ।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति ॥३३॥

यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतोऽव्यतिरिक्तप्रभास्कंधेन तद्व्याप्नोति क्षीरं, तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम् । यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्बलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कंध उद्बलते पुनर्निविशमाने निविशते च । तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाऽऽहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति, पुनरपसर्पति अप-

---

एवं पूर्वोक्त "वच्छरक्ख" इत्यादि दृष्टांतनवकेन चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ देहमात्रविषये दृष्टांतं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति । एवमग्रेपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्याथवा सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं निरूपयतीति पातनिका लक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यं;—**जह पउमरायरयणं** यथा पद्मरागरत्नं कर्तृ । कथंभूतं । **खित्तं** क्षिप्तं । क्व । **खीरे** क्षीरे दुग्धे । क्षीरे किं करोति । **पहासयदि खीरं** प्रकाशयति तत्क्षीरं । **तह देही देहत्थो** तथा देही संसारो देहस्थः सन् **सदेहमेत्तं पहासयदि** स्वदेहमात्रं प्रकाशयतीति । तद्यथा—अत्र

आगे देहमात्र जीव किस दृष्टांतसे है सो कहा जाता है:—[**यथा**] जिस प्रकार [**पद्मरागरत्नं**] पद्मरागनामक महामणि [**क्षीरे क्षिप्तं**] दूध में डालने पर [**क्षीर**] दूधको उस ही अपनी प्रभासे [**प्रभासयति**] प्रकाशमान करता है [**तथा**] वैसे ही [**देही**] संसारी जीव [**देहस्थः**] देह में रहता हुआ [**स्वदेहमात्रं**] अपनेको देहके बराबर ही [**प्रभासयति**] प्रकाशित करता है । **भावार्थ**—पद्मराग नामक रत्न दुग्धसे भरे हुये बर्त्तनमें डाला जाय तो उस रत्नमें ऐसा गुण है कि अपनी प्रभासे समस्त दुग्धको अपने रंगसे रंगकर अपनी प्रभाको दुग्धके बराबर ही प्रकाशमान करता है । उसी प्रकार यह संसारी जीव भी अनादि कषायोंके द्वारा मैला होता हुआ शरीरमें रहता है । उस शरीरमें अपने प्रदेशोंसे व्याप्त होकर रहता है । इसलिये शरीरके परिमाण होकर रहता है । और जिस प्रकार वही रत्नसहित दुग्ध अग्निके संयोगसे उबलकर बढ़ता है तो उसके साथ ही रत्नकी प्रभा भी बढ़ती है, और जब अग्निका संयोग न्यून होता है, तब रत्नकी प्रभा घट जाती है ।

सर्पन्ति च। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र प्रभूतक्षीरे क्षिप्तं स्वप्रभास्कंधविस्तारेण तद् व्याप्नोति प्रभूतक्षीरम्। तथैव हि जीवोऽन्यत्र महति शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशविस्तारेण तद् व्याप्नोति महच्छरीरं। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र स्तोकक्षीरे निक्षिप्तं स्वप्रभास्कंधोपसंहारेण तद् व्याप्नोति स्तोकक्षीरं। तथैव च जीवोऽन्यत्राणुशरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशोपसंहारेण तत् व्याप्नोत्यणुशरीरमिति ॥३३॥

पद्मरागशब्देन पद्मरागरत्नप्रभा गृह्यते न च रत्नं यथा पद्मरागप्रभासमूहः क्षीरे क्षिप्तस्तत्क्षीरं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि स्वदेहस्थो वर्तमानकाले तं देहं व्याप्नोति। अथवा यथा विशिष्टाग्निसंयोगवशात्क्षीरे वर्द्धमाने सति पद्मरागप्रभासमूहो वर्द्धते हीयमाने च हीयत इति तथा विशिष्टाहारवशाद्देहे वर्धमाने सति विस्तरन्ति जीवप्रदेशा हीयमाने च संकोचं गच्छन्ति। अथवा स एव प्रभासमूहोऽन्यत्र बहुक्षीरे निक्षिप्तो बहुक्षीरं व्याप्नोति स्तोके स्तोकं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि जगत्त्रयकालत्रयमध्यवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशेन समर्थविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावचैतन्यचमत्कारमात्राच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यात्वरागादिविकल्पैर्यदुपार्जितं शरीरनामकर्म तदुदयजनितविस्तारोपसंहारधानत्वेन सर्वोत्कृष्टावगाहपरिणतः सन् सहस्रयोजनप्रमाणं महामत्स्यशरीरं व्याप्नोति, जघन्यावगाहेन परिणतः पुनरुत्सेधघनांगुलासंख्येयभागप्रमितं लब्ध्यपूर्णसूक्ष्मनिगोतशरीरं व्याप्नोति, मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च व्याप्नोति भावार्थः ॥३३॥

इसी प्रकार स्निग्ध पौष्टिक आहारादिके प्रभावसे शरीर ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों शरीरस्थ जीवके प्रदेश भी बढ़ते रहते हैं। और आहारादिककी न्यूनतासे जैसे जैसे शरीर क्षीण होता है वैसे वैसे जीवके प्रदेश भी संकुचित होते रहते हैं। और यदि उस रत्नको बहुतसे दूधमें डाला जाय तो उसकी प्रभा भी विस्तृत होकर समस्त दूधमें व्याप्त हो जायगी। वैसे ही बड़े शरीरमें जीव जाता है तो जीव अपने प्रदेशोंको विस्तार करके उस ही प्रमाण हो जाता है, और वही रत्न जब थोड़े दूधमें डाला जाता है तो उसकी प्रभा भी संकुचित होकर दूधके प्रमाणही प्रकाश करती है। इसी प्रकार बड़े शरीरसे निकलकर छोटे शरीरमें जानेसे जीवके भी प्रदेश संकुचित होकर उस छोटे शरीरके बराबर रहेंगे। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि यह आत्मा कर्मजनित संकोचविस्ताररूप शक्तिके प्रभावसे जब जैसा शरीर धारण करता है तब वैसा ही होकर प्रवर्तित होता है। उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजनकी स्वयंभूरमण समुद्रमें महामच्छकी होती है। और जघन्य अवगाहना अलब्धपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवोंकी है ॥३३॥

---

१ प्रचुरदुग्धे. २ अन्यस्मिन्।

अत्र जीवस्य देहाद्देहांतरेऽस्तित्वं, देहात्पृथग्भूतत्वं, देहांतरसंचरणकारणं चोपन्यस्तम्; -

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो ।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥३४॥

सर्वत्रास्ति जीवो न चैक एककाये ऐक्यस्थः ।
अध्यवसायविशिष्टश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः ॥३४॥

आत्मा हि संसारावस्थायां क्रमवर्तिन्यनवच्छिन्नशरीरसंताने यथैकस्मिन् शरीरे वृत्तः, तथा क्रमेणान्येष्वपि शरीरेषु वर्तत इति तस्य सर्वत्रास्तित्वम् । न

अत्र मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यं । अथ वर्तमानशरीरवत् पूर्वापरशरीरसंतानेपि तस्यैव जीवस्यास्तित्वं देहात्पृथक्त्वं भवांतरगमनकारणं च कथयति;—सव्वत्थ अत्थि जीवो सर्वत्र पूर्वापरभवशरीरसंताने य एव वर्तमानशरीरे जीवः स एवास्ति न चान्यो नवतर उत्पद्यते चार्वाकमतवत् । ण य एक्को निश्चयनयेन देहेन सह न चैकस्तन्मयः एक्कगो य अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेनैकोपि भवति । कस्मादिति चेत् । एक्कट्ठो क्षीरनीरवदेकार्थोऽभिन्नो यस्मात् अथवा सर्वत्र देहमध्ये जीवोस्ति न चैकदेशे अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया सर्वत्र लोकमध्ये जीवसमूहोस्ति । स च यद्यपि केवलज्ञानादिगुणसादृश्येनैकत्वं लभते तथापि नानावर्णवस्त्रवेष्टितषोडशवर्णिका सुवर्णराशिवत्स्वकीयस्वकीयलोकमात्रासंख्येयप्रदेशैर्भिन्न इति । भवांतरगमनकारणं कथ्यते । अज्झवसाणविसिट्ठो चेट्ठदि मलिणो रजमलेहिं अध्यवसानविशिष्टः संश्चेष्टते मलिनो रजमलैः । तथाहि—यद्यपि शुद्धनिश्चयेनकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यध्यवसानरूपभावकर्मभिस्तज्जनकद्रव्यकर्मद्रव्यकर्ममलैश्च वेष्टितः सन् भवांतरं प्रति शरीरग्रहणार्थं चेष्टते

आगे जीवका देहसे अन्य देहमें अस्तित्व कहते हैं और देहसे जुदा दिखाते हैं तथा अन्य देहके धारण करनेका कारण भी बतलाते हैं:—[जीवः] आत्मा [सर्वत्र] संसार अवस्थामें क्रमवर्त्ती अनेक पर्यायोंमें सब जगह [अस्ति] है । अर्थात्—जैसे एक शरीरमें आत्मा प्रवर्तित है वैसे ही जब और पर्यायांतर धारण करता है, तब वहाँ भी वैसे ही प्रवर्तित होता है । इसलिये समस्त पर्यायोंकी परम्परासे वही जीव रहता है । नया कोई जीव उत्पन्न नहीं होता । [च] और [एककाये] व्यवहारनयकी अपेक्षासे यद्यपि एक शरीरमें [ऐक्यस्थः] क्षीरनीरकी तरह मिलकर एक स्वरूप धरकर रहता है तथापि [एकः न] निश्चयनयकी अपेक्षा देहसे मिलकर एकमेक नहीं होता । निजस्वरूपसे जुदा ही रहता है । और वह ही जीव जब [अध्यवसायविशिष्टः] अशुद्ध रागद्वेष मोह परिणामोंसे संयुक्त होता है तब [रजोमलैः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप मैलसे [मलिनः] मैला होता [चेष्टते] संसारमें परिभ्रमण करता है । भावार्थ—यद्यपि यह आत्मा शरीरादि परद्रव्यसे जुदा ही है तथापि संसार

चैकस्मिन् शरीरे नीरक्षीरमिवैक्येन[1] स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वात्तेन सहैक इति। तस्य देहात्पृथग्भूतत्वं अनादिबंधनोपाधिविवर्तितविविधाऽध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूल-कर्मजालमलीमसत्वाच्च चेष्टमानस्याऽऽत्मनस्तथाविधाऽध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीर-प्रवेशो भवतीति तस्य देहांतरसंचरणकारणोपन्यास इति ॥३४॥

सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम्;—

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥३५॥

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धा वाग्गोचरमतीताः ॥३५॥

वर्तत इति। अत्र य एव देहाद्भिन्नोऽनंतज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा भणितः स एव शुभाशुभसंकल्प-विकल्पपरिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिप्रायः ॥३४॥

एवं मीमांसकनैयायिकसांख्यमतानुसारिशिष्यसंशयविनाशार्थं "वेयणकसायवेगुव्वियो य मारणंतियो समुग्घादो। तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु" इति गाथाकथितसप्तसमुद्घातान् विहाय स्वदेहप्रमाणात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। अथ सिद्धानां शुद्धजीवत्वं अतीतशरीर-प्रमाणाकाशव्यापकत्वादिति व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिन्न्यूनचरमशरीरप्रमाणं च व्यवस्थाप-यति;—जेसिं जीवसहाओ णत्थि येषां कर्मजनितद्रव्यप्राणभावप्राणरूपो जीवस्वभावो नास्ति ते होंति सिद्धा ते भवन्ति सिद्धा इति सम्बन्धः। यदि तत्र द्रव्यभावप्राणा न सन्ति तर्हि बौद्धमत-

---

अवस्थामें अनादि कर्मसम्बन्धसे नानाप्रकारके विभावभाव धारण करता है। उन विभाव भावोंसे नये कर्मबन्ध होते हैं, उन कर्मोंके उदयसे फिर देहसे देहान्तरको धारण करता है जिससे संसार बढ़ता है ॥३४॥

आगे सिद्धोंके जीवका स्वभाव दिखाते हैं और उनके ही किंचित् उन चरमदेहपरिमाण शुद्ध प्रदेशस्वरूप देह कहते हैं;—[येषां] जिन जीवोंके [जीवस्वभावः] जीवकी जीवितव्यताका कारण-प्राणरूप भाव [नास्ति] नहीं है। [च] और उन ही जीवोंके [तस्य] उस ही प्राणका [सर्वथा] सब

---

१ एकस्वरूपत्वेन. २ अनादि च तदेव बंधनं च तस्योपाधिः तेन विवर्तिताः निष्पादितः ते च ते विविधा नानाप्रकाराः अध्यवसाया रागद्वेषमोहपरिणतिरूपाश्च . तैर्विशिष्टत्वात्संयुक्तत्वात्. ३ रागद्वेषमोहरूपेण विक्रियां कुर्वाणस्य. ४ जीवस्य।

सिद्धानां हि द्रव्यप्राणधारणात्मको[1] मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति । न च जीवस्वभावस्य सर्वथाभावोऽस्ति भावप्राणधारणात्मकस्य[2] जीवस्वभावस्य मुख्यत्वेन सद्भावात् । न तेषां[3] शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः । यतस्ते तत्संपर्कहेतु[4]भूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानंतरशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यंतभिन्नदेहाः[5] । वाचां गोचरमतीतश्च तन्महिमा[6] । यतस्ते लौकिकप्राणधारणमंतरेण शरीरसंबंधमंतरेण च परिप्राप्तनिरुपाधिस्वरूपाः सततं प्रतपंतीति[7] ॥ ३५ ॥

वत्सर्वथा जीवाभावो भविष्यतीत्याशंक्योत्तरमाह **अभावो य सव्वहा तत्थ णत्थि** शुद्धसत्ताचैतन्यज्ञानादिरूपशुद्धभावप्राणसहितत्वात्तत्र सिद्धावस्थायां सर्वथा जीवाभावोपि नास्ति च । सिद्धाः कथंभूताः । **भिण्णदेहा** अशरीरात् शुद्धात्मनो विपरीताः शरीरोत्पत्तिकारणभूताः मनोवचनकाययोगाः क्रोधादिकषायाश्च न संतीति भिन्नदेहा अशरीरा ज्ञातव्याः । पुनश्च कथंभूताः । **वचिगोयरमतीदा** सांसारिकद्रव्यप्राणभावप्राणरहिता अपि विजयंते प्रतपंतीति हेतोर्वचनगोचरातीतास्तेषां महिमास्वभावः अथवा सम्यक्त्वाद्यष्टगुणैस्तदंतर्गतानंतगुणैर्वा सहितास्तेन कारणेन वचनगोचरातीता इति । अथात्र यथा पर्यायरूपेणपदार्थानां क्षणिकत्वं दृष्ट्वातिव्याप्तिं कृतद्रव्यरूपेणापि क्षणिकत्वं मन्यते सौगतः तथेन्द्रियादिदर्शनप्राणसहितस्याशुद्धजीवस्याभावं दृष्ट्वा मोक्षावस्थायां केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहि-

---

तरहसे [अभावः] अभाव [नास्ति] नहीं है। कथंचित्प्रकार प्राण भी हैं [ते सिद्धाः] वे सिद्ध [भवन्ति] होते हैं। कैसे हैं वे सिद्ध ? [भिन्नदेहाः] शरीररहित अमूर्त्तीक हैं। फिर कैसे हैं ? [वाग्गोचरमतीताः] जिनकी महिमा वचनातीत है। **भावार्थ**—सिद्धांतमें प्राण दो प्रकारके कहे हैं—एक निश्चय, दूसरा व्यवहार। जितने शुद्ध ज्ञानादिक भाव हैं वे तो निश्चयप्राण हैं और जो अशुद्ध इन्द्रियादिक प्राण हैं सो व्यवहारप्राण हैं। प्राण उसको कहते हैं जिसके द्वारा जीवद्रव्यका अस्तित्व है। जीव भी संसारी और सिद्धके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो अशुद्ध प्राणोंके द्वारा जीता है सो तो संसारी है, और जो शुद्ध प्राणोंसे जीता है वह सिद्ध जीव है। इस कारण सिद्धोंके कथंचित् प्रकार प्राण हैं भी और नहीं भी हैं। जो निश्चय प्राण हैं वे तो पाये जाते हैं और जो व्यवहार प्राण हैं वे नहीं हैं। फिर उन ही सिद्धोंके क्षीरनीरके समान देहसे संबंध भी नहीं है। किंचित् उन (कम) चरम (अंतके) शरीरप्रमाण प्रदेशोंको अवगाहना है। ज्ञानादि अनंतगुणसंयुक्त अपार महिमा लिये आत्मलीन अविनाशी स्वरूपसहित विराजमान हैं ॥ ॥ ३५ ॥

---

१ द्रव्यप्राणाः इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणात्मकाः. २ भावप्राणस्य सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणस्य. ३ तेषां सिद्धानां. ४ तस्य शरीरस्य संपर्कः संयोगः तत्संपर्कहेतुभूताश्च ते कषाययोगाश्च तेषां विप्रयोगो विनाशस्तस्मात्. ५ अतिशयेन त्यक्तदेहाः. ६ तेषां सिद्धानां महिमा तन्महिमा. ७ प्रकाशयन्ति ।

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम्;—

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि चेण ण स होदि ॥३६॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥३६॥

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयाऽऽत्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्म्मरूपया च पुद्‌गलपरिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते न तथा सिद्धरूपेणापीति। सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति। यथैव च स एव संसारी भावकर्म्मरूपात्मपरिणामसंततिं, द्रव्यकर्मरूपां च पुद्‌गलपरिणामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति। सिद्धो ह्युभयकर्म्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादयन् नान्यत्किञ्चिदुत्पादयति ॥३६॥

तस्य शुद्धजीवस्याप्यभावं मन्यत इति भावार्थः ॥३५॥

अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणाभावं साधयति;—**ण कदाचिवि उप्पण्णो** संसारिजीववन्नरनारकादिरूपेण क्वापि काले नोत्पन्नः **जम्हा** यस्मात्कारणात् **कज्जं ण तेण सो सिद्धो** तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति **उप्पादेदि ण किञ्चिवि** स्वयं कर्मनोकर्मरूपं किमपि नोत्पादयति **कारणमिह तेण ण सो होहि** तेन कारणेन स सिद्धः इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारणमपि न भवतीति। अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धनिश्चयेन कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणं च न भवति स एवानंतज्ञानादिसहितः कर्मोदयजनितनवतरकर्मादानकारणभूतमनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिकाले साक्षादुपादेयो भवतीति तात्पर्यं ॥३६॥

आगे संसारी जीवके जैसे कार्यकारणभाव हैं, वैसे सिद्ध जीवके नहीं हैं, ऐसा कथन करते हैं;—**[यस्मात्]** क्योंकि **[कुतश्चित् अपि]** किसी और वस्तुसे भी **[सिद्धः]** शुद्ध सिद्धजीव **[उत्पन्नः न]** उपजा नहीं है। **[तेन]** इसलिए **[सः]** वह सिद्ध **[कार्यं]** कार्यरूप नहीं है। कार्य उसे कहते हैं जो किसी कारणसे उपजा हो; सो सिद्ध किसीसे भी नहीं उपजे, इसलिये सिद्ध कार्य नहीं हैं। और जिस कारणसे **[किंचित् अपि]** अन्य कुछ भी वस्तु **[उत्पादयति न]** उत्पन्न नहीं करता है **[तेन]** इस कारणसे **[सः]** वह सिद्ध जीव **[कारणं अपि]** कारणरूप भी **[न भवति]** नहीं है। कारण वही कहलाता है जो किसीका उपजानेवाला हो। सो सिद्ध कुछ उपजाते नहीं। इसलिये सिद्ध कारण भी नहीं हैं **भावार्थ**—जैसे संसारी जीव कार्य-कारण भावरूप है वैसे सिद्ध नहीं हैं। सो ही दिखाया जाता है। संसारी जीवके अनादि पुद्‌गल सम्बन्धके होनेसे भावकर्मरूप परिणति और

अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम्;—

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥३७॥

शाश्वतमथोच्छेदो भव्यमभव्यं च शून्यमितरच्च।
विज्ञानमविज्ञानं नापि युज्यते असति सद्भावे ॥३७॥

द्रव्यं द्रव्यतया शाश्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छेदं इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति, द्रव्य-

---

अथ जीवाभावो मुक्तिरिति सौगतमतं विशेषेण निराकरोति;—सस्सदमधमुच्छेदं सिद्धावस्थायां तावट्टंकोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेणाविनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति अथ अहो पर्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्धयपेक्षयोच्छेदोस्ति भव्वमभव्वं च निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं परिणमनं भव्यत्वं अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेनाभवनमपरिणमनम-

---

द्रव्यकर्मरूप परिणति है। इनके कारण देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी पर्यायरूप जीव उपजता है। इस कारण द्रव्यकर्म भावकर्मरूप अशुद्ध परिणति कारण है और चार गतिरूप जीवका होना कार्य है। सिद्ध कार्यरूप नहीं है, क्योंकि द्रव्यकर्म भावकर्मका जब सर्वथा प्रकारसे नाश होता है, तब ही सिद्धपद होता है। और संसारी जीव द्रव्य-भावरूप अशुद्ध परिणतिको उपजाता हुआ चारगतिरूप कार्यको उत्पन्न करता है। इस कारण संसारी जीव कारण भी कहा जाता है। सिद्ध कारण नहीं हैं, क्योंकि सिद्धोंसे चार गतिरूप कार्य नहीं होता। सिद्धके अशुद्ध परिणति सर्वथा नष्ट हो गई है। सो अपने शुद्ध स्वरूपको ही उपजाते हैं। और कुछ भी नहीं उपजाते ॥३६॥

आगे कई इक बौद्धमती जीवका सर्वथा अभाव होनेको ही मोक्ष कहते हैं। उनका निषेध करते हैं;—[सद्भावे] मोक्षावस्थामें शुद्ध सत्तामात्र जीव वस्तुके [असति] अभाव होते हुए [शाश्वतं] जीव द्रव्यस्वरूपसे अविनाशी है ऐसा कथन [नापि युज्यते] संभवित नहीं है। जब मोक्षमें जीव ही नहीं तो शाश्वत कौन होगा? [अथ] और [उच्छेदः] नित्य जीवद्रव्यके समय-समयमें पर्यायकी अपेक्षासे नाश होता है यह भी कथन नहीं बनेगा। जब मोक्षमें वस्तु ही नहीं है तो नाश किसका कहा जाय? (च) और [भव्यं] समयसमयमें शुद्ध भावोंके परिणमनका होना सो भव्य भाव है [अभव्यं] जो अशुद्ध भाव विनष्ट हुये उनका अन होना अभव्यभाव कहाता है। ये दोनों प्रकारके भव्य अभव्य भाव यदि मुक्तमें जीव नहीं हो तो किसके होगा? [च] तथा [शून्यं]

---

१ सिद्धावस्थायां तावट्टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेण विनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति. २ अथ पर्य्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्धयपेक्षयोच्छेदोऽस्ति. ३ निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं भव्यत्वं. ४ अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेन भवनं अपरिणमनमभव्यत्वं च।

मन्यद्रव्यैः सह सदा शून्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं ज्ञानं क्वचित्सांतं ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं क्वचित्सांतमज्ञानमिति । एतदन्यथानुपपद्यमानं मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥३७॥

भव्यत्वं । सुण्णमिदरं च स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वं निजपरमात्मानुगतस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरश्चाशून्यत्वं विण्णाणमविण्णाणं समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानं विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञानमिति णवि जुज्जदि असदि सब्भावे इदं तु नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोस्ति । अत्र स एवोपादेय इति भावार्थः ॥३७॥

परद्रव्यस्वरूपसे जीवद्रव्यरहित है । इसको शून्यभाव कहते हैं [इतरं] अपने स्वरूपसे पूर्ण है उसको अशून्यभाव कहते हैं । यदि मोक्षमें वस्तु ही नहीं है तो ये दोनों भाव किसके कहे जायेंगे [च] और [विज्ञानं] यथार्थ पदार्थका जानना [अविज्ञानं] औरका और जानना । ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकारके भाव यदि मोक्षमें जीव नहीं हों तो कहे नहीं जायें, क्योंकि किसी जीवमें ज्ञान अनन्त है, किसी जीवमें ज्ञान सांत है । किसी जीवमें अज्ञान अनंत है, किसी जीवमें अज्ञान सांत है । शुद्ध जीव-द्रव्यमें केवलज्ञानकी अपेक्षा अनंत ज्ञान है । सम्यग्दृष्टि जीवके क्षयोपशम ज्ञानकी अपेक्षा सांत ज्ञान है । अभव्य मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा अनंत अज्ञान है । भव्यमिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा सांत अज्ञान है । सिद्धोंमें समस्त त्रिकालवर्त्ती पदार्थोंके जाननेरूप ज्ञान है, इस कारण ज्ञानभाव कहा जाता है । और कथंचित्प्रकार अज्ञानभाव भी कहा जाता है । क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानकी सिद्धोंमें अभाव है । इसलिये विनाशीक ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञानभाव जानना । यह दोनों प्रकारके ज्ञान-अज्ञानभाव यदि मोक्षमें जीवका अभाव हो तो नहीं बन सकते । भावार्थ—जो अज्ञानी जीव मोक्ष अवस्थामें जीवका नाश मानते हैं उनको समझानेके लिये आठ भाव हैं । इन आठ भावोंसे ही मोक्षमें जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है । और जो ये आठ भाव नहीं हों तो द्रव्यका अभाव हो जाय । द्रव्यके अभावसे संसार और मोक्ष दोनों अवस्थाका अभाव हो जायगा । इस कारण इन आठों भावज्ञानोंको जानना चाहिये । ध्रौव्यभाव १, व्ययभाव २, भव्यभाव ३, अभव्यभाव ४, शून्यभाव ५, अशून्यभाव ६, ज्ञान-

---

१ स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वम्.

२ निजपरमात्मतावानुगतद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरमशून्यत्वम्.

३ समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानम्.

४ विनष्टमविज्ञानादिछद्मस्थाज्ञाने परिज्ञानादविज्ञानम्.

५ मोक्षावस्थायामिदं नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते । तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति ।

चेतयितृत्वगुणव्याख्येयम्;—

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥३८॥

कर्मणां फलमेकः एकः कार्यं तु ज्ञानमथैकः।
चेतयति जीवराशिश्चेतकभावेन त्रिविधेन ॥३९॥

एके हि चेतयितारः प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन प्रकृष्टतरज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन प्रकृष्टतरवीर्यांतरायाऽवसादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपं कर्मफलमेव प्राधान्येन चेतयंते। अन्ये तु प्रकृष्टतरमोहमलीमसेनापि प्रकृष्टज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन मनाग्वीर्यांतरायक्षयोपशमासादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखानुरूपकर्मफलानुभवनसंवलितमपि कार्यमेव प्राधान्येन चेतयंते।

एवं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं जीवस्यामूर्तत्वव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं गतं। अथ त्रिविधचेतनाव्याख्यानं प्रतिपादयति;—कम्माणं फलमेक्को चेदगभावेण वेदयदि जीवरासी निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितप्रकृष्टतरमोहमलीमसेन चेतकभावेन प्रच्छादितसामर्थ्यः सन्नेको जीवराशिः कर्मफलं वेदयति एक्को कज्जं तु अथ पुनरेकस्तेनैव चेतकभावेनोपलब्धसामर्थ्येनेहापूर्वकेष्टानिष्टविकल्परूपं कर्म कार्यं तु वेदयत्यनुभवति णाणमथ एक्को अथ पुनरेको जीवराशिस्तेनैव चेतकभावेन विशुद्धशुद्धात्मानुभूतिभावनाविनाशितकर्ममलकलंकेन केवलज्ञानमनुभवति। कतिसंख्योपेतेन तेन पूर्वोक्तचेतकभावेन। तिविहेण कर्मफलकर्मकार्यज्ञानरूपेण त्रिविधेनेति ॥३८॥

भाव ७, अज्ञानभाव ८, इन आठ भावोंसे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। और जीवद्रव्यके अस्तित्वसे इन आठोंका अस्तित्व रहता है ॥३७॥

आगे चैतन्यस्वरूप आत्माके गुणोंका व्याख्यान करते हैं;—[एकः] एक जीवराशि तो [कर्मणां] कर्मोंके [फलं] सुखदुःखरूप फलको [चेतयति] वेदती है [तु] और [एकः] एक जीवराशि ऐसी है कि कुछ उद्यम लिये [कार्यं] सुखदुखरूप कर्मोंके भोगनेके निमित्त इष्ट अनिष्ट विकल्परूप कार्यको विशेषताके साथ वेदती है [अथ] और [एकः] एक जीवराशि ऐसी है कि [ज्ञानं] शुद्धज्ञानको ही विशेषतारूप से वेदती है। [त्रिविधेन] यह पूर्वोक्त कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतना इसप्रकार तीन भेद लिये हैं [चेतकभावेन] चैतन्यभावोंसे ही [जीवराशिः] समस्त जीवराशि है। ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो इस त्रिगुणमयी चेतनासे रहित हो। इस कारण आत्माके चैतन्यगुण जान लेना। भावार्थ—अनेक जीव ऐसे हैं कि जिनके विशेषता करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनी, वीर्यान्तराय इन कर्मोंका उदय है। इन कर्मोंके उदयसे आत्मीक शक्तिसे रहित हुये

---

१ स्थावरकायाः. २ आच्छादितानुभवमाहात्म्येन. ३ आच्छादित. ४ द्वीन्द्रियादयः।

अन्यतरे तु प्रक्षालितसकलमोहकलङ्केन समुच्छिन्नकृत्स्नज्ञानावरणतयाऽत्यंतमुन्मुद्रितसमस्तानुभावेन चेतकस्वभावेन समस्तवीर्यांतरायक्षयासादितानंतवीर्या अपि निर्जीर्णकर्मफलत्वादत्यंतकृतकृत्यत्वाच्च स्वतोऽव्यतिरिक्तं स्वाभाविकं सुखं ज्ञानमेव चेतयंत इति ॥३८॥

अत्र कः किं चेतयत इत्युक्तं;—

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३९॥

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकायास्त्रसा हि कार्ययुतं ।
प्राणित्वमतिक्रांताः ज्ञानं विदन्ति ते जीवाः ॥३९॥

चेतयंतेऽनुभवन्ति उपलभंते विदंतीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युत्युपलब्धिवेदना-

---

अथात्र कः किं चेतयतीति निरूपयति इति निरूपयति इति कोर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति एवं प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः। **सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया विंदन्ति** ते सर्वे जीवाः प्रसिद्धाः[1] पंचप्रकाराः स्थावरकाया जीवा अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूपं शुभाशुभकर्मफलं विंदंत्यनुभवन्ति **तसा हि कज्जजुदं** द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानास्संतो विशेषरागद्वेषरूपा तु या कार्यचेतना तत्सहितमनुभवन्ति **पाणित्तमदिक्कता णाणं विंदंति ते जीवा** ये तु विशिष्टशुद्धात्मानुभूतिभावनासमुत्पन्नपरमानंदैक-

---

परिणमते हैं। इस कारण विशेषताकर सुखदुखरूप कर्मफलको भोगते हैं। निरुद्यमी हुये विकल्परूप इष्ट अनिष्ट कार्य करनेको असमर्थ हैं इसलिये इन जीवोंको मुख्यतासे कर्मफल चेतना गुणके धारक जानों। और जो जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोह कर्मके विशेष उदयसे अतिमलीन हुये चैतन्यशक्तिसे हीन परणमते हैं परन्तु उनके वीर्यांतराय कर्मका क्षयोपशम कुछ अधिक हुआ है, इस कारण सुखदुःखरूप कर्मफलके भोगनेको इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष मोह लिये उद्यमी हुये कार्य करनेको समर्थ हैं, वे जीव मुख्यतासे कर्मचेतनागुणसंयुक्त जानना। और जिन जीवोंके सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह और अंतरायकर्म कहे गये हैं; अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य ये गुण प्रगट हुये हैं, कर्म और कर्मफलके भोगनेमें विकल्परहित हैं और आत्मीक पराधीनतारहित स्वाभाविक सुखमें लीन हो गये हैं, वे ज्ञानचेतनागुणसंयुक्त कहलाते हैं ॥३८॥

आगे इस तीन प्रकारकी चेतनाके धारक कौन कौन जीव हैं सो दिखाया जाता है;—[खलु] निश्चयसे [सर्वे] पृथिवी काय आदि जो समस्त ही पाँच प्रकार [स्थावरकायाः] स्थावर जीव हैं वे [कर्मफलं] कर्मोंका जो दुखसुखरूप फल उसको प्रगटरूपसें रागद्वेषकी विशेषता रहित अप्रगटरूप अपनी शक्त्यनुसार [विदन्ति] वेदते हैं। क्योंकि एकेन्द्रिय जीवोंके केवलमात्र कर्मफलचेत-

---

१ सिद्धाः।

नामेकार्थत्वात् । तत्र स्थावराः कर्मफलं चेतयंते । त्रसाः कार्यं चेतयंते । केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयंत इति ॥३९॥

अथोपयोगगुणव्याख्यानम्,—

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो ।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥४०॥

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः ।
जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि ॥४०॥

आत्मनश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः । सोऽपि द्विविधः । ज्ञानोप-

---

सुखामृतसमरसीभावबलेन दशविधप्राणत्वमतिक्रांताः सिद्धजीवास्ते केवलज्ञानं विदन्ति इत्यत्र गाथाद्वये केवलज्ञानचेतना साक्षादुपादेया ज्ञातव्येति तात्पर्यं ॥३९॥

एवं त्रिविधचेतनाव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः प्रारभ्यते । तद्यथा । अथात्मनो द्वेधोपयोगं दर्शयति;—**उवओगो** आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोयं पटोयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि खलु स्फुटं **दुविहो** द्विविधः । स च कथंभूतः । **णाणेण य दंसणेण संजुत्तो** सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं ताभ्यां संयुक्तः **जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणाहि** तं चोपयोगं जीवस्य सम्बन्धित्वेन सर्वकालं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशैरभिन्नं विजानीहीति ॥४०॥

नारूप ही मुख्य है [हि] निश्चय करके [त्रसाः] द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे [कार्ययुतं] कर्मका जो फल सुखदुःखरूप है उसको रागद्वेषमोहकी विशेषता लिये उद्यमी हुये इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें कार्य करते हुए भोगते हैं इस कारण वे जीव कर्मफलचेतनाकी मुख्यतासहित जानना । और जो जीव [प्राणित्वं] दश प्राणोंसे [अतिक्रांताः] रहित हैं, अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं [ते] वे [जीवाः] शुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानी जीव [ज्ञानं] केवलज्ञान चैतन्य भावहीको [विदन्ति] साक्षात् परमानन्द सुखरूप अनुभवन करते हैं । ऐसे जीव ज्ञानचेतनासंयुक्त कहलाते हैं । ये तीन प्रकारके जीव तीन प्रकारकी चेतनाके धारक जानना ॥३९॥

आगे उपयोगगुणका व्याख्यान करते हैं;—[खलु] निश्चय से [उपयोगः] चेतनता लिये जो परिणाम है सो [द्विविधः] दो प्रकारका है । वे दो प्रकार कौन कौन से हैं ? [ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः] ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ऐसे दो भेद लिये हुए हैं । जो विशेषता लिये पदार्थोंको

---

१ अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूप शुभाशुभकर्मफलमनुभवन्ति. २ द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानाः संतो विशेषरागद्वेषानुरूपया कार्यचेतनया सहितमनुभवन्ति, ३ चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति, अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोऽयं घटोऽयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयतीति चैतन्यानुविधायी ।

योगो दर्शनोपयोगश्च । तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं । सामान्यग्राहि दर्शनम् । उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव । एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥४०॥

ज्ञानोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्,—

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि ।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥४१॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि ।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञानैः संयुक्तानि ॥४१॥

तत्राभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं, मनःपर्य्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, कुमतिज्ञानं, कुश्रुतज्ञानं, विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यात्मा । स खल्वनादिज्ञानावरणकर्म्मच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्त्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणाऽवबुध्यते तदभिनिबोधिकज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादनिन्द्रियावलंबाच्च मूर्तामूर्त-

---

एवं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनरूपेण गाथैका गता । अथ ज्ञानोपयोगभेदानां संज्ञां प्रतिपादयति;—आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पंचभेदानि भवन्ति कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभंगज्ञानमिति च मिथ्याज्ञानत्रयं भवति । अयमत्र भावार्थः ।

जानता है सो ज्ञानोपयोग कहलाता है और जो सामान्यस्वरूप पदार्थोंको जानता है सो दर्शनोपयोग कहा जाता है। सो दुविध उपयोग [जीवस्य] आत्मद्रव्यके [सर्वकालं] सदाकाल [अनन्यभूत] प्रदेशोंसे जुदा नहीं है ऐसा [विजानीहि] हे शिष्य ! तू जान। यद्यपि व्यवहारनयाश्रित गुणगुणीके भेदसे आत्मा और उपयोगमें भेद है तथापि वस्तुकी एकताके न्यायसे एक ही हैं, भेद करनेमें नहीं आता, क्योंकि गुणके नाश होनेसे गुणीका भी नाश है और गुणीके नाशसे गुणका नाश है, इस कारण एकता है ॥४०॥

आगे ज्ञानोपयोगके भेद दिखाते हैं,—[आभिनिबोधिकश्रुतविधिमनःपर्ययकेवलानि] मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल [पञ्चभेदानि ज्ञानानि] ये पांच प्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं। [च] और [कुमतिश्रुतविभङ्गानि त्रीणि अपि] कुमति, कुश्रुत, विभङ्गावधि ये तीन कुज्ञान भी [ज्ञानैः संयुक्तानि] पूर्वोक्त पांचों ज्ञानोंसहित जानना। ये ज्ञानके आठ भेद हैं। भावार्थ—स्वाभाविक भावसे यह आत्मा

---

१ अव समन्तात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमितत्वेन धीयते ध्रियते इत्यवधिः, २. परकीयमनोगतार्थे उपचारात् मनः, मनः पर्येति गच्छतीति मनःपर्ययः ।

द्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् श्रुतज्ञानं । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तदवधिज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तन्मनःपर्ययज्ञानम् । यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं विशेषेणावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानं । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमवधिज्ञानमेव विभङ्गज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम् । इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥४१॥

दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्;—

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं ।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥४२॥

यथैकोप्यादित्यो मेघावरणवशेन बहुधा भिद्यते तथा निश्चयनयेनाखंडैकप्रतिभासस्वरूपोप्यात्मा व्यवहारमयेन कर्मपटलवेष्टितः सन्मतिज्ञानादिभेदेन बहुधा भिद्यत इति ॥४१॥

इत्यष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता । अथ दर्शनोपयोगभेदानां संज्ञां स्वरूपं च प्रतिपादयति;—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति दर्शनोपयोगभेदानां नामानि ।

अपने समस्त प्रदेशव्यापी अनंतनिरावरण शुद्धज्ञानसंयुक्त है । परंतु अनादिकालसे लेकर कर्मसंयोगसे दूषित हुआ प्रवर्तित है । इसलिये सर्वांग असंख्यात प्रदेशोंमें ज्ञानावरण कर्मके द्वारा आच्छादित है । उस ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मतिज्ञान प्रगट होता है । तब मन और पांच इन्द्रियोंके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्यको विशेषताकर जिस ज्ञानके द्वारा परोक्षरूप जानता है उसका नाम मतिज्ञान है । और उस ही ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मनके अवलंबसे किंचिन्मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान है । यदि कोई यहां पूछे कि श्रुतज्ञान तो एकेन्द्रियसे लगाकर असैनी जीव पर्यंत कहा है । इसका समाधान यह है कि—उनके मिथ्याज्ञान है, इस कारण वह श्रुतज्ञान नहीं लेना, और अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी ही प्रधानता है, इस कारण भी वह श्रुतज्ञान नहीं लेना । मनके अवलंबनसे जो परोक्षरूप जाना जाय उस श्रुतज्ञानको द्रव्यभावके द्वारा जानना और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जिस ज्ञानके द्वारा एकदेशप्रत्यक्षरूप किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्य जाने उसका नाम अवधिज्ञान है । और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अन्य जीवके मनोगत मूर्त्तीक द्रव्यको एकदेश प्रत्यक्ष जिस ज्ञानके द्वारा जाने, उसका नाम मनःपर्ययज्ञान कहा जाता है । और सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे जिस ज्ञानके द्वारा समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य, गुण, पर्यायसहित प्रत्यक्ष जाने जांय उसका नाम केवलज्ञान है । मिथ्यादर्शनसहित जो मतिश्रुतअवधिज्ञान हैं, वे ही कुमति कुश्रुत कुअवधिज्ञान कहलाते हैं । यह आठ प्रकारके ज्ञान जिनागमसे विशेषतया जानने चाहिये ॥४१॥

अब दर्शनोपयोगके नाम और स्वरूपका कथन करते हैं । [चक्षुर्युतं] द्रव्यनेत्रके अवलंबनसे

दर्शनमपि चक्षुर्युतमचक्षुर्युतमपि चावधिना सहितं ।
अनिधनमनंतविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम् ॥४२॥

चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा । स खल्वनादिदर्शनावरणकर्म्मावच्छन्नप्रदेशः सन् यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदचक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदवधिदर्शनम् । यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति स्वरूपाभिधानम् ॥४२॥

अयमात्मा निश्चयनयेनानंताखंडैकदर्शनस्वभावोपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झंपितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलंबनेन यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनं, शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति वहिरंगद्रव्येन्द्रियद्रव्यमनोवलंबनेन यन्मूर्ताऽमूर्तं च वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनं, स एवात्मावधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं

जो [दर्शनं] देखना है उसका नाम चक्षुदर्शन [प्रज्ञप्तं] भगवानने कहा है [च] और [अचक्षुर्युतं] नेत्र इन्द्रियके विना अन्य चारों द्रव्यइन्द्रियोंके और मनके अवलंबनसे जो देखा जाय उसका नाम अचक्षुदर्शन है [च] और [अवधिना सहितं] अवधिज्ञानके द्वारा [अपि] निश्चयसे जो देखना है, उसको अवधिदर्शन कहते हैं। और जो [अनिधनं] अंतरहित है [अनंतविषयं] तथा समस्त अनंत पदार्थ हैं विषय जिसके वह [कैवल्यं] केवलदर्शन [प्रज्ञप्तं] कहा गया है । भावार्थ—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चार भेदों द्वारा दर्शनोपयोग जानना । दर्शन और ज्ञानमें सामान्य

---

१. अयमात्मा निश्चयनयेनाखंडैकदर्शनस्वभावोऽपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झम्पितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्बेन यन्मूर्तवस्तुनि निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनम्. २ शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति वहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्बेन यन्मूर्तामूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम्. ३ स एवात्माऽवधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं. ४. रागादिदोषरहितं चिदानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तु वस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवति ।

एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानात्मकत्वसमर्थनमेतत्;—

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि ।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं ।।४३।।

न विकल्पते ज्ञानात् ज्ञानी ज्ञानानि भवंत्यनेकानि ।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानिभिः ।।४३।।

न तावज्ज्ञानी ज्ञानात् पृथग्भवति, द्वयोरप्येकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् ।

पश्यति तदवधिदर्शनं रागादिदोषरहितचिदानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवतीति । अत्र केवलदर्शनाविनाभूतानंतगुणाधारः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इत्यभिप्रायः ॥४२॥

एवं दर्शनोपयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथात्मनो ज्ञानादिगुणैः सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेन प्रदेशाभिन्नत्वं मत्याद्यनेकज्ञानत्वं च व्यवस्थापयति सूत्रत्रयेण;—**ण वियप्पदि** न विकल्पते न भेदेन पृथक् क्रियते । कोऽसौ ? **णाणी** ज्ञानी । कस्मात्सकाशात् । **णाणादो** ज्ञानगुणात् । तर्हि ज्ञानमप्येकं भविष्यति । नैवं । **णाणाणि होंति णेगाणि** मत्यादिज्ञानानि भवंत्यनेकानि यस्मादनेकानि ज्ञानानि भवन्ति **तम्हा दु विस्सरूवं भणियं** तस्मात्कारणादनेकज्ञानगुणापेक्षया

और विशेषका भेदमात्र है । जो विशेषरूप जाने उसको ज्ञान कहते हैं । इस कारण दर्शनका सामान्य जानना लक्षण है । आत्मा स्वाभाविक भावोंसे सर्वांग प्रदेशोंमें निर्मल अनंतदर्शनमयी है परन्तु वही आत्मा अनादि दर्शनावरण कर्मके उदयसे आच्छादित है, इसकारण दर्शन शक्तिसे रहित है । उसही आत्माके अंतरंग चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्रके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखा जाय उसका नाम चक्षुदर्शन कहा जाता है । और अंतरंगमें अचक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्र इन्द्रियके बिना चार इन्द्रियों और द्रव्यमनके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक द्रव्य अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखे जांय उसका नाम अचक्षुदर्शन कहा जाता है । और जो अवधि दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्योंको प्रत्यक्ष देखे उसका नाम अवधिदर्शन है । और जिसके द्वारा सर्वथा प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखा जाय उसको केवलदर्शन कहते हैं । इस प्रकार दर्शनका स्वरूप जानना ॥४२॥

आगे कहते हैं कि एक आत्माके अनेक ज्ञान होते हैं, इसमें कुछ दूषण नहीं है—[ज्ञानात्] ज्ञानगुणसे [ज्ञानी] आत्मा [न विकल्पते] भेद भावको प्राप्त नहीं होता है । अर्थात्—परमार्थसे तो

---

१ आत्मा. २ आत्मज्ञानयोः ।

द्वयोरप्यभिन्नप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् । द्वयोरप्येकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् । द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात् । न चैवमुच्यमानेप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिबोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यंते द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात् । द्रव्यं हि सहक्रमप्रवृत्तानंतगुणपर्य्यायाधारतयाऽनंतरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥४३॥

विश्वरूपं नानारूपं भणितं । किं । दवियत्ति जीवद्रव्यमिति । कैर्भणितं । णाणीहिं हेयोपादेयतत्त्व विचारज्ञानिभिरिति मत्यादि । तथाहि—एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् एकप्रदेशनिर्वृत्तत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् मूर्तैकजडस्वरूपत्वेनैकस्वभावत्वाच्च परमाणोर्वर्णादिगुणैःसह यथा भेदो नास्ति तथैवैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् एकचैतन्यनिर्वृत्तत्वेनैकस्वभावत्वाच्च-ज्ञानादिगुणैः सह जीवद्रव्यस्यापि भेदो नास्ति । अथवा शुद्धजीवापेक्षया शुद्धैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकशुद्धप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रपरिणतिरूपवर्तमानैकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् निर्मलैकचिज्ज्योतिःस्वरूपेणैकस्वभावत्वात् च सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनंतगुणैः सह शुद्धजीवस्यापि भेदो नास्तीति भावार्थः ॥४३॥

अथ मत्यादिपंचज्ञानानां क्रमेण गाथापंचकेन व्याख्यानं करोति, तथाहि;—

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो ।
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ॥१॥

मदिणाणं अयमात्मा निश्चयनयेन तावदखण्डैकविशुद्धज्ञानमयः व्यवहारनयेन संसारावस्थायां कर्मावृतः सन्मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति पंचभिरिन्द्रियैर्मनसा च मूर्तामूर्तं वस्तु विकल्परूपेण यज्जानाति तन्मतिज्ञानं **पुण तिविहं** तच्च पुनस्त्रिविधं **उवलद्धी भावणं च उवओगो** उपलब्धिर्भावना

गुणगुणीमें भेद नहीं होता है, क्योंकि द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुणगुणी एक है। जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुणीका है वही गुणका है और जो गुणका है सो गुणीका है। इसी प्रकार अभेदनयकी अपेक्षा एकता जानना। भेदनयसे आत्मामें [ज्ञानानि] मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पाँच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे [अनेकानि] दो तीन चार [भवन्ति] होते हैं। भावार्थ—यद्यपि आत्मद्रव्य और ज्ञानगुणकी एकता है तथापि ज्ञानगुणके अनेक भेद करनेमें कोई विरोध व दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्य कथंचित्-प्रकार भेद अभेद स्वरूप है। अनेकांतके विना द्रव्यकी सिद्धि नहीं है [तस्मात् तु] इस कारणसे [ज्ञानीभिः] जो अनेकांत विद्याके जानकार ज्ञानी जीवोंके द्वारा [द्रव्यं] पदार्थ है सो [विश्वरूपं] अनेक प्रकारका [भणितं] कहा गया है [इति] इस प्रकार वस्तुका स्वरूप जानना। **भावार्थ—** यद्यपि द्रव्य अनंतगुण अनंतपर्यायके आधारसे एक वस्तु है, तथापि वही द्रव्य अनेक प्रकार भी कहा जाता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि अभेदसे आत्मा एक है, अनेक ज्ञानके पर्यायभेदोंसे अनेक है ॥४३॥

तथोपयोगश्च, मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरुपलब्धिर्ज्ञातेर्थे पुनः पुनश्चिंतनं भावना नीलमिदं पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः तह एव चदुवियप्पं तथैवावग्रहेहावायधारणाभेदेन चतुर्विधं वरकोष्ठबीजपदानुसारिसंभिन्नश्रोतृताबुद्धिभेदेन वा **दंसणपुव्वं हवदि णाणं** तच्च मतिज्ञानं सत्तावलोकदर्शनपूर्वकमिति । अत्र निर्विकारशुद्धानुभूत्यभिमुखं यन्मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानंतसुखसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥१॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव ।
उवओगणयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स ॥२॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति स एव पूर्वोक्तात्मा श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति यन्मूर्तामूर्तं वस्तु परोक्षरूपेण जानाति तत्पुनः श्रुतज्ञानं ज्ञानिनो भणन्ति । तच्च कथंभूतं । **लद्धी य भावणा चेव** लब्धिरूपं च भावनारूपं चैव । पुनरपि किंविशिष्टं । **उवओगणयवियप्पं** उपयोगविकल्पं नयविकल्पं च उपयोगशब्देनात्र वस्तुग्राहकं प्रमाणं भण्यते, नयशब्देन तु वस्त्वेकदेशग्राहको ज्ञातुरभिप्रायो विकल्पः । तथा चोक्तं । नयो ज्ञातुरभिप्रायः । केन कृत्वा वस्तुग्राहकं प्रमाणं वस्त्वेकदेशग्राहको नय इति चेत् । **णाणेण य** ज्ञातृत्वेन परिच्छेदकत्वेन ग्राहकत्वेन **वत्थु अत्थस्स** सकलवस्तुग्राहकत्वेन प्रमाणं भण्यते अर्थस्य वस्त्वेकदेशस्य । कथंभूतस्य । गुणपर्यायरूपस्य ग्रहणेन पुनर्नय इति । अत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणाभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्वसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥२॥

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च ।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥३॥

ओहिं तहेव घेप्पदु अयमात्मावधिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तदवधिज्ञानं भवति, तावत् यथापूर्वमुपलब्धिभावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा साप्यवधिर्भावनां विहाय त्रिधा गृह्यतां ज्ञायतां भवद्भिः । **देसं परमं च ओहि सव्वं च** अथवा देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदेन त्रिधावधिज्ञानं किन्तु परमावधिसर्वावधिद्वयं चिदुच्छलननिर्भरानंदरूपपरमसुखामृतरसास्वादसमरसीभावपरिणतानां चरमदेहतपोधनानां भवति तथाचोक्तं— "परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स" । **तिण्णिवि गुणेण णियमा** त्रयोप्यवधयो विशिष्टसम्यक्त्वादिगुणेन निश्चयेन भवन्ति । **भवेण देसं तहा णियदं** भवप्रत्ययेन योऽवधिर्देवनारकाणां स देशावधिरेव नियमेनेत्यभिप्रायः ॥३॥

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं ।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥४॥

विउलमदी अयमात्मा पुनः मनपर्ययज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति परकीयमनोगतं मूर्तं वस्तु

यत्प्रत्यक्षेण जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं तच्च कतिविधं ? **विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं** ऋजुमतिविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्ययज्ञानं, तत्र विपुलमतिज्ञानं परकीयमनोवचनकायगतमर्थं वक्रावक्रं जानाति, ऋजुमतिश्च प्राञ्जलमेव निर्विकारात्मोपलब्धिभावनासहितानां चरमदेहमुनीनां विपुलमतिर्भवति। **एदे संजमलद्धी** एतौ मनःपर्ययौ संयमलब्धी उपेक्षासंयमे सति लब्धिर्ययोरतौ संयमलब्धी मनःपर्ययौ भवतः। तौ च कस्मिन् काले समुत्पद्येते ? **उवओगे** उपयोगे विशुद्धपरिणामे। कस्य। **अप्पमत्तस्स** वीतरागात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनासहितस्य। "विकहा तहा कसाया" इत्यादि गाथोक्तपंचदशप्रमादरहितस्याप्रमत्तमुनेरिति। अत्रोत्पत्तिकाल एवाप्रमत्तनियमः पश्चात्प्रमत्तस्यापि संभवतीति भावार्थः ॥४॥

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ॥५॥

केवलणाणं णाणं णेयणिमित्तं ण होदि केवलज्ञानं यज्ज्ञानं तद्घटपटादिज्ञेयार्थमाश्रित्य नोत्पद्यते। तर्हि श्रुतज्ञानस्वरूपं भविष्यति। **ण होदि सुदणाणं** यथा केवलज्ञानं ज्ञेयनिमित्तं न भवति तथा श्रुतज्ञानस्वरूपमपि न भवति। **णेयं केवलणाणं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञेयं ज्ञातव्यं केवलज्ञानं। अयमत्रार्थः। यद्यपि दिव्यध्वनिकाले तदाधारेण गणधरदेवादीनां श्रुतज्ञानं परिणमति तथापि तच्छ्रुतज्ञानं गणधरदेवादीनामेव न च केवलिनां केवलज्ञानमेव। **णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो** न केवलं श्रुतज्ञानं नास्ति केवलिनां ज्ञानाज्ञानं च नास्ति, क्वापि विषये ज्ञानं क्वापि विषये पुनरज्ञानमेव न किंतु सर्वत्र ज्ञानमेव। अथवा मतिज्ञानादिभेदेन नानाभेदं ज्ञानं नास्ति किंतु केवलज्ञानमेकमेवेति। अत्र मतिज्ञानादिभेदेन यानि पंचज्ञानानि व्याख्यातानि तानि व्यवहारेणेति, निश्चयेनाखंडैकज्ञानप्रतिभास एवात्मा निर्मेघादित्यवदिति भावार्थः ॥५॥ एवं मत्यादिपंचज्ञानव्याख्यानरूपेण गाथापंचकं गतं।

अथाज्ञानत्रयं कथयति;—

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा।
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च ॥६॥

मिच्छत्ता अण्णाणं द्रव्यमिथ्यात्वोदयात्सकाशाद्भवतीति क्रियाध्याहारः। किं भवति ? **अण्णाणं अविरदिभावो य** ज्ञानमप्यज्ञानं भवति। अत्राज्ञानशब्देन कुमत्यादित्रयं ग्राह्यं। न केवलमज्ञानं भवति। अविरतिभावश्च अव्रतपरिणामश्च। कथंभूतान्मिथ्यात्वोदयादज्ञानमविरतिभावश्च भवति। **भावावरणा** भावस्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं भावसम्यक्त्वं तस्यावरणं झंपनं भावावरणं तस्माद्भावावरणाद्भावमिथ्यात्वादित्यर्थः। पुनरपि किं भवति मिथ्यात्वात् ? **तह दुण्णय दुप्पमाणं च** यथैवाज्ञानमविरतिभावश्च भवति तथा सुनयो दुर्नयो भवति, प्रमाणं दुःप्रमाणं च भवति। कदा भवति ? **काले** तत्त्वविचारकाले। किं कृत्वा ? **पडुच्च** प्रतीत्याश्रित्य। किमा-

द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे, गुणानां च द्रव्याद्भेदे दोषोपन्यासोऽयम्;—

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥४४॥

यदि भवति द्रव्यमन्यद्गुणतश्च गुणाश्च द्रव्यतोऽन्ये।
द्रव्यानंत्यमथवा द्रव्याभावं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥

गुणा हि क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्द्रव्यम्। तच्चेदन्यद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्द्रव्यं। तदपि अन्यच्चेद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रिताः तद्द्रव्यम्। तदप्यन्यदेव गुणेभ्यः। एवं

श्रित्य ? णेयं ज्ञेयभूतं जीवादिवस्त्विति। अत्र मिथ्यात्वाद्विपरीतं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं निश्चयसम्यक्त्वकारणभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं तस्य फलभूतं निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्त्वं चोपादेयं भवतीति भावार्थः ॥६॥

अथ द्रव्यस्य गुणेभ्य एकांतेन प्रदेशास्तित्वभेदे सति गुणानां च द्रव्याद्भेदे सति दोषं दर्शयति;—जदि हवदि दव्वमण्णं यदि चेत् द्रव्यमन्यद्भवति। केभ्यः ? गुणदो हि गुणेभ्यः। गुणा य दव्वदो अण्णे गुणाश्च द्रव्यतो यद्यन्ये भिन्ना भवन्ति। तदा किं दूषणं ? दव्वाणंतियं गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्यापि आनंत्यं प्राप्नोति। अहवा दव्वाभावं पकुव्वंति अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं कुर्वंतीति। तद्यथा—गुणाः साश्रया वा निराश्रया वा ? साश्रयपक्षे दूषणं दीयते। अनंतज्ञानादयो गुणास्तावत् क्वचिच्छुद्धात्मद्रव्ये समाश्रिताः यत्रात्मद्रव्ये समाश्रिताः तदन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिज्जीवद्रव्यांतरे समाश्रितास्तदप्यन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिदात्मद्रव्यांतरे समाश्रिता। एवं शुद्धात्मद्रव्यादनंतज्ञानादिगुणानां भेदे सति

आगे, यदि सर्वथा प्रकार द्रव्यसे गुण भिन्न हों और गुणोंसे द्रव्य भिन्न हों तो बड़ा दोष लगता है, ऐसा कथन करते हैं;—[च] और सर्वथा प्रकार [यदि] जो [द्रव्यं] अनेक गुणात्मक वस्तु [गुणतः] अंशरूप गुणसे [अन्यत्] प्रदेशभेदसे अलग [भवति] हो (च) और [द्रव्यतः] अंशीस्वरूप द्रव्यसे [गुणाः] अंशरूप गुण [अन्ये] प्रदेशोंसे भिन्न हों तो [द्रव्यानंत्यं] एक द्रव्यके अनंतद्रव्य हो जाँय। अथवा यदि अनंत द्रव्य न हों तो [ते] वे गुण अलग होते हुये [द्रव्याभावं] द्रव्यके अभावको [प्रकुर्वन्ति] करते हैं। भावार्थ—आचार्योंने भी गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद दिखाया है। यदि उनमें सर्वथा प्रकार भेद हो तो एक द्रव्यके अनंत भेद हो जाते हैं, सो दिखाया जाता है। गुण अंशरूप है गुणी अंशी है। अंशसे अंशी अलग नहीं हो सकता, अंशीके आश्रय ही अंश रहते हैं। और यदि यह कहो कि अंशसे अंशी अलग होता है तो वे अंश आधारके विना किस अंशीके आश्रयसे

---

१. यस्मिन्वस्तुनि आश्रितास्तद्द्रव्य स्यात्।

द्रव्यस्य गुणेभ्यः भेदे भवति द्रव्यानंत्यम्। द्रव्यं हि गुणानां समुदायः। गुणाश्चेदन्ये समुदायात्, को नाम समुदायः? एवं गुणानां द्रव्याद् भेदे भवति द्रव्याभाव इति ॥४४॥

द्रव्यगुणानां स्वोचितानन्यत्वोक्तिरियम्;—

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥४५॥

अविभक्तमनन्यत्वं द्रव्यगुणानां विभक्तमन्यत्वं।
नेच्छन्ति निश्चयज्ञास्तद्विपरीतं हि वा तेषां ॥४५॥

अविभक्तप्रदेशत्वलक्षणं द्रव्यगुणानामनन्यत्वमभ्युपगम्यते। विभक्तप्रदेशत्व-

---

भवति शुद्धात्मद्रव्यानंत्यं। अथोपादेयभूतपरमात्मद्रव्ये गुणगुणिभेदे सति द्रव्यानंत्यं व्याख्यातं तथा हेयभूताशुद्धजीवद्रव्येपि पुद्गलादिष्वपि योजनीयं। अथवा गुणगुणिभेदैकांते सति विवक्षिताविवक्षितैकैकगुणस्य विवक्षिताविवक्षितैकैकद्रव्याधारे सति भवति द्रव्यानंत्यं द्रव्यात्सकाशान्निराश्रयभिन्नगुणानां भेदे द्रव्याभावः कथ्यते। गुणानां समुदायो द्रव्यं भण्यते। गुणसमुदायरूपद्रव्याद्गुणानां भेदैकांते सति गुणसमुदायरूपं द्रव्यं क्वास्ति? न क्वापीति भावार्थः ॥४४॥

द्रव्यगुणानां यथोचितमभिन्नप्रदेशमनन्यत्वं प्रदर्शयति;—अविभत्तमणण्णत्तं अविभक्तमनन्यत्वं मन्यत इति क्रियाध्याहारः। केषां? दव्वगुणाणं द्रव्यगुणानामिति। तथाहि—यथा परमाणोर्वर्णादि-

---

रहे? उसके लिये अन्य कोई अंशी चाहिये कि जिसके आधार पर अंश रहें। और यदि कहो कि अन्य अंशी है उसके आधार से रहते हैं, तो उस अंशीसे भी अंश जुदे कहने होंगे। और यदि कहोगे कि उससे भी अंश जुदे हैं, तो फिर अन्य अंशीकी कल्पना कीं जायगी। इसप्रकार कल्पना करनेसे गणगुणीकी स्थिति नहीं होगी। क्योंकि गुण अनंत हैं। जुदा कहनेसे द्रव्य भी अनंत होंगे, सो एक दोष तो यह आयेगा और, दूसरा दोष यह है कि—द्रव्यका अभाव हो जायगा। क्योंकि द्रव्य वह कहलाता है जो गुणोंका समूह हो। इसलिये द्रव्यसे गुण जुदा हो तो द्रव्यका अभाव होता है। इसलिए सर्वथा प्रकार गुणगुणीका भेद नहीं है। कथंचित्प्रकारसे भेद है ॥४४॥

[द्रव्यगुणानां] द्रव्य और गुणोंका [अनन्यत्वं] एक भाव है सो [अविभक्तं] प्रदेशभेदसे रहित है। द्रव्यके नाश होनेसे गुणोंका अभाव और गुणोंके नाश होनेसे द्रव्यका अभाव, ऐसा एकभाव है।

---

१ गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्याप्यानत्यं प्राप्नोति। अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं प्रकुर्वन्ति, २ "अङ्गीकारोऽभ्युपगमः" इति हैमः। तेन अंगीक्रियते इत्यर्थः।

लक्षणं त्वन्यत्वमनन्यत्वं च नाभ्युपगम्यते । तथाहि—यथैकस्य परमाणोरेकेनात्मप्रदेशेन सहाविभक्तत्वादनन्यत्वं, तथैकस्य परमाणोस्तद्वर्तिनां स्पर्शरसगंधवर्णादिगुणानां चावि-

---

गुणैः सहानन्यत्वमभिन्नत्वं । कथंभूतं तत् ? अविभक्तमभिन्नप्रदेशत्वं तथा शुद्धजीवद्रव्ये केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः स्वभावगुणानां तथैवाशुद्धजीवे मतिज्ञानादिव्यक्तिरूपविभावगुणानां शेपद्रव्याणां गुणानां च यथासंभवमभिन्नप्रदेशलक्षणमनन्यत्वं ज्ञातव्यं । विभत्तमण्णत्तं णेच्छंति विभक्तमन्यत्वं नेच्छन्ति । तद्यथा । अन्यत्वं भिन्नत्वं न मन्यंते । कथंभूतं तत् ? विभक्तं भिन्नप्रदेशं सह्यविंध्ययोरिव । के नेच्छन्ति ? णिच्चयण्हू निश्चयज्ञा जैनाः न केवलं भिन्नप्रदेशमन्यत्वं नेच्छन्ति तव्विवरीदं हि वा तद्विपरीतं वा तेसिं तेषां द्रव्यगुणानां तस्मादन्यत्वाद्विपरीतं तद्विपरीतमनन्यत्वमित्यर्थः । तदपि किं विशिष्टं नेच्छन्ति ? एकक्षेत्रावगाहेपि भिन्नप्रदेशं, भिन्नतोयपयसोरिव । कस्मान्नेच्छंतीति चेत्सह्यविंध्ययोरिव तोयपयसोरिव, तेषां द्रव्यगुणानां भिन्नप्रदेशाभावादिति । अथवा अन्यत्वमभिन्नत्वं नेच्छन्ति द्रव्यगुणानां । कथंभूतं तत् ? अविभक्तं एकांतेन यथा प्रदेशरूपेणाभिन्नं तथा संज्ञादिरूपेणाप्यभिन्नं नेच्छन्ति । न केवलमित्थंभूतं अनन्यत्वं नेच्छन्ति, अन्यत्वं भिन्नत्वमपि नेच्छंति । कथंभूतं ? विभक्तं एकांतेन यथा संज्ञादिरूपेण भिन्नं तथा प्रदेशरूपेणापि भिन्नं । न केवलमेकांते-

---

अर्थात् जैसे एक परमाणुकी अपने एक प्रदेशसे पृथक्ता नहीं है और जैसे उसही परमाणुमें स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंकी पृथक्ता नहीं है वैसे ही समस्त द्रव्योंमें प्रदेशभेदरहित गुणपर्यायका अभेद भाव जानो । ऐसी प्रदेशभेदरहित द्रव्यगुणोंकी एकता आचार्यजी ने अंगीकार की है, और [निश्चयज्ञाः] जो गुणगुणीमें कथंचित् भेदसे निश्चयस्वरूपके जाननेवाले हैं, वे [अन्यत्वं] द्रव्यगुणोंमें भेदभाव [विभक्तं] प्रदेशभेदसे रहित [न इच्छंति] नहीं चाहते हैं । भावार्थ—द्रव्य और गुणोंमें संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिसे यद्यपि भेद है तथापि ऐसा भेद नहीं है कि जिससे प्रदेशोंकी पृथक्ता हो। अतएव यह बात सिद्ध हुई कि गुणगुणीमें वस्तुरूप विचारसे प्रदेशोंकी एकतासे कुछ भी भिन्नता नहीं है । संज्ञामात्रसे भिन्नता है । एक द्रव्यमें भेद अभेद इसी प्रकार जानो [वा] अथवा [हि] निश्चयसे [तेषां] उन द्रव्यगुणोंके [तद्विपरीत] उस पूर्वोक्त प्रकार भेद अभेदसे जो और प्रकार भेद अभेद है उसको [न इच्छन्ति] जो तत्त्वस्वरूपके वेत्ता हैं वे वस्तुमें नहीं मानते । भावार्थ—वस्तुमें कथंचित् गुणगुणीका जो भेद अभेद है, उसको वस्तुको साधनके वास्ते मानते हैं और जो उपचारमात्र पदार्थोंमें भेद अभेद लोकव्यवहारसे है उसको आचार्य नहीं मानते, क्योंकि लोकव्यवहारसे कुछ वस्तुका स्वरूप सधता नहीं है । सो दिखाया जाता है । जैसे—लोकव्यवहारसे विंध्याचल और हिमालयमें बड़ा भेद कहा जाता है, क्योंकि हिमाचल कहीं है और विंध्याचल कहीं है । इसको

---

१ स्वकीयप्रदेशेन ।

भक्तप्रदेशत्वादनन्यत्वं । यथा त्वत्यंतविप्रकृष्टयोः सह्यविंध्ययोरत्यंतसंन्निकृष्टयोश्च मिश्रितयोस्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्वं च । न तथा द्रव्यगुणानां विभक्तप्रदेशत्वाभावादन्यत्वमनन्यत्वं चेति ॥४५॥

व्यपदेशादीनामेकांतेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबन्धनत्वमत्र प्रत्याख्यातम्;—

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते ॥४६॥

व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्चभवन्ति ते बहुकाः ।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यंते ॥४६॥

यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेशः, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य

नानन्यत्वमन्यं च नेच्छंति "तव्विवरीदे हि वा तेसि" मिति पाठांतरं तद्विपरीताभ्यां वा ताभ्यां परस्परसापेक्षानन्यत्वान्यत्वाभ्यां विपरीते निरपेक्षे तद्विपरीते ताभ्यां तद्विपरीताभ्यां वा कृत्वा तेषां द्रव्यगुणानामनन्यत्वान्यत्वे नेच्छन्ति किंतु परस्परसापेक्षत्वेनेच्छंतीत्यर्थः । अत्र गाथासूत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वादन्यत्वरूपा ये विषयकषायास्तै रहितानां तस्मादेव परमचैतन्यरूपात् परमात्मतत्त्वात् यदनन्यत्वस्वरूपं निर्विकल्पपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादानुभवनं तत्सहितानां च पुरुषाणां यदेव लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशैः सह केवलज्ञानादिगुणानामनन्यत्वं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥४५॥

इति गुणगुणिनोः संक्षेपेण भेदाभेदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानामेकांतेन भिन्नत्वं न साधयंतीति समर्थयति;—ववदेसा संठाणा संखा विसया य व्यपदेशाः

नामभेद कहते हैं। तथा मिले हुये दुग्धजलको अभेद कहते हैं। परमार्थसे जल जुदा है, दुग्ध जुदा है। लोकव्यवहारसे एक माना जाता है, क्योंकि दुग्ध और जलमें प्रदेशोंकी ही पृथक्ता है। इसप्रकार लोकव्यवहार कथित गुणगुणीमें भेदाभेद नहीं माने, किंतु प्रदेशभेदरहित जो गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद अभेद परमार्थ दिखानेके लिये कृपावंत आचार्योंने दिखाया है सो भले प्रकार जानना चाहिये ॥४५॥

आगे व्यपदेश, संस्थान, संख्या, विषय इन चार भेदोंसे सर्वथा प्रकार द्रव्य और गुणमें भेद दिखाते हैं;—[तेषां] उन द्रव्य और गुणोंके [ते] जिनसे गुणगुणीमें भेद होता है वे [व्यपदेशाः] कथनके भेद और [संस्थानानि] आकारभेद [संख्या] गणना [च] और [विषयाः] जिनमें रहें ऐसे आधार भाव, ये चार प्रकारके भेद [बहुकाः] बहुत प्रकारके [भवन्ति] होते हैं। और [ते] वे

---

१. अत्यंतभिन्नयोः, २. मिलितयोः ।

गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा देवदत्तः फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेशः । तथा मृत्तिका घटभावं स्वयं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्यात्माऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि । यथा प्रांशोर्देवदत्तस्य प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे संस्थानं । तथा प्रांशोर्वृक्षस्य प्रांशुः शाखाभरो, मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव

संस्थानानि संख्या विषयाश्च होंति भवन्ति ते ते पूर्वोक्तव्यपदेशादयः कतिसंख्योपेताः बहुगा प्रत्येकं बहवः ते तेसिमणण्णत्ते विज्जंते ते व्यपदेशादयस्तेषां द्रव्यगुणानां कथंचिदनन्यत्वे विद्यंते । न केवलमनन्यत्वे विद्यंते । अण्णत्ते चावि कथंचिदन्यत्वे चापि । नैयायिकाः किल वदन्ति द्रव्यगुणानां यद्येकांतेन भेदो नास्ति तर्हि व्यपदेशादयो न घटंते । तत्रोत्तरमाहुः । द्रव्यगुणानां कथंचिद्भेदे तथैवाभेदेपि व्यपदेशादयः संतीति । तद्यथा । षट्कारकभेदेन संज्ञा द्विविधा भवति । देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे व्यपदेशः, तथैव वृक्षस्य शाखा जीवस्यानंतज्ञानादिगुणा इत्यनन्यत्वेपि व्यपदेशः । कारकसंज्ञा कथ्यते–देवदत्तः कर्ता फलं कर्मतापन्नमंकुशेन करणभूतेन धनदत्ताय निमित्तं वृक्षात्सकाशाद्वाटिकायामधिकरणभूतायामवच्छिनोत्यन्यत्वे कारकसंज्ञा तथैवात्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते ध्यायतीत्यनन्यत्वेपि कारकसंज्ञा । दीर्घस्य देवदत्तस्य दीर्घो गौरित्यन्यत्वे संस्थानं दीर्घस्य वृक्षस्य दीर्घशाखाभारः मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यभेदे च संस्थानं । संख्या कथ्यते । देवदत्तस्य दशगाव इत्यन्यत्वे संख्या तथैव वृक्षस्य दशशाखा द्रव्यस्यानंतगुणा इत्यभेदेपि । विषयः कथ्यते—गोष्ठे गावः इति भेदे विषयः तथैव द्रव्ये गुणा इत्यभेदेऽपि । एवं व्यपदेशादयो भेदाभेदाभ्यां घटंते तेन कारणेन द्रव्यगुणानामेकांतेन भेदं न

व्यपदेशादिक चार प्रकारके भेद [अनन्यत्वे] कथंचित्प्रकार अभेद भावमें [च] और [अन्यत्वे] कथंचित् प्रकार भेद भावमें [अपि] भी [विद्यन्ते] प्रवर्तित हैं । **भावार्थ**—ये चार प्रकारके व्यपदेशादिक भाव अभेदमें भी हैं और भेदमें भी हैं । इनकी दो प्रकारकी विवक्षा है । जब एक द्रव्यकी अपेक्षासे कथन किया जाय तब तो ये चार भाव अभेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं और जब अनेक द्रव्यकी अपेक्षासे कथन किया जाय तब ये ही व्यपदेशादिक चार भाव भेदकथनकी अपेक्षा से कहे जाते हैं । आगे ये ही दोनों भेद दृष्टांतसे दिखाये जाते हैं । जैसे किसी पुरुषकी गाय कहना, यह भेदमें व्यपदेश है, वैसे ही वृक्षकी शाखा, द्रव्यके गुण, यह अभेदमें व्यपदेश जानो । और यह व्यपदेश षट्कारककी अपेक्षासे भी है, सो दिखाया जाता है । जैसे कोई पुरुष फलको अंकुसीसे धनवंतपुरुषके निमित्त वृक्षसे बाड़ीमें तोड़ता है, यह भेदमें व्यपदेश है । और मृत्तिका जैसे अपने घटभावको आपही अपने निमित्त आपसे आपमें करती है, वैसे ही आत्मा आपको अपने द्वारा अपने निमित्त आत्मासे

---

१. पुष्टस्य. २ पुष्टः. ३ पुष्टस्य वा महतः. ४ महान्.

इत्यन्यत्वे संख्या। तथैकस्य वृक्षस्य दश शाखाः, एकस्य द्रव्यस्यानंता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। यथा गोष्ठे गाव इत्यन्यत्वे विषयः। तथा वृक्षे शाखाः, द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां वस्तुत्वेन भेदं साधयंतीति ॥४६॥

वस्तुत्वभेदाभेदोदाहरणमेतत्;—

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥४७॥

ज्ञानं धनं च करोति धनिनं यथा ज्ञानिनं च द्विविधाभ्यां।
भणंति तथा पृथक्त्व मेकत्वं चापि तत्त्वज्ञाः ॥४७॥

साधयंतीति। अत्र गाथायं नामकर्मोदयजनितनरनारकादिरूपव्यपदेशाभावेपि शुद्धजीवास्तिकायशब्देन व्यपदेश्यं वाच्यं निश्चयनयेन समचतुरस्रादिषटसंस्थानरहितमपि व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिदूनचरमशरीराकारेण संस्थानं। केवलज्ञानाद्यनंतगुणरूपेणानंतसंख्यानमपि लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशरूपेणासंख्यातसंख्यानं पंचेन्द्रियविषयसुखरसास्वादरतानामविषयमपि पंचेन्द्रियविषयातीतशुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागसदानंदैकसुखरूपसर्वात्मप्रदेशपरमसमरसीभावपरिणतध्यानविषयं च यच्छुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यं ॥४६॥

अथ निश्चयेन भेदाभेदोदाहरणं कथ्यते;—**णाणं धणं च कुव्वदि** ज्ञानं कर्तृ धनं च कर्तृ करोति। किं करोति। **धणिणं णाणिणं च** धनिनं ज्ञानिनं च करोति **दुविहेहिं** द्वाभ्यां नयाभ्यां

आपमें जानता है। सो यह अभेदमें व्यपदेश जानो। और जैसे वड़े पुरुषकी गाय बड़ी है, यह भेदसंस्थान है, वैसे ही वड़े वृक्षकी बड़ी शाखा, मूर्तीक द्रव्यके मूर्तीक गुण, यह अभेद संस्थान जानो। और जैसे किसी पुरुषकी दस गायें हैं, ऐसा कहना सो भेदसंख्या है। वैसे ही एक वृक्षकी दश शाखायें, एक द्रव्यके अनंत गुण, यह अभेद संख्या जानो। और जैसे गोकुलमें गाय है, ऐसा कहना भेद-विषय है, वैसे ही वृक्षमें शाखा, द्रव्यमें गुण अभेद-विषय है। व्यपदेश, संस्थान, संख्या, विषय ये चार प्रकारके भेद द्रव्यगुणमें अभेदरूप दिखाये जाते हैं, अन्यद्रव्यसे भेदकर दिखाये जाते हैं। यद्यपि द्रव्यगुणमें व्यपदेशादिक कहे जाते हैं, तथापि वस्तुके विचारसे नहीं हैं ॥४६॥

आगे भेद अभेद कथनका स्वरूप प्रगट कर दिखाया जाता है;—[यथा] जैसे [धनं] द्रव्य [धनिनं] पुरुषको धनवान् [करोति] करता है अर्थात् धन जुदा है पुरुष जुदा है, परंतु धनके संबंधसे पुरुष धनी या धनवान् नाम पाता है [च] और [ज्ञानं] चैतन्यगुणसे [ज्ञानिनं] आत्मा 'ज्ञानी' कहलाता है। ज्ञान और आत्मामें प्रदेशभेदरहित एकता है, परंतु गुणगुणीके कथनकी अपेक्षा ज्ञान-

---

१ गावः तिष्ठंत्यत्रेति गोष्ठं गवां स्थानं तस्मिन्।

यथा धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तम् भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य, पुरुषस्य धनीति व्यपदेशं पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते । यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्याभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंस्थानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते । तथान्यत्राऽपि । यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशोऽस्ति तत्र पृथक्त्वं, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥४७॥

व्यवहारनिश्चयाभ्यां जह यथा भण्णंति भणन्ति तह तथा। किं भणंति ? पुधत्तं एयत्तं चावि पृथक्त्वमेकत्वं चापि। के भणंति। तच्चण्हू तत्वज्ञा इति। तद्यथा—भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य भिन्नव्यपदेशं भिन्नव्यपदेशस्य भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य धनं कर्तृ पृथक्त्वप्रकारेण धनीति व्यपदेशं करोति यथा तथैव चाभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य अभिन्नव्यपदेशमभिन्नव्यपदेशस्य अभिन्नसंस्थानमभिन्नसंस्थानस्य अभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्य अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य ज्ञानं कर्तृ पुरुषस्यापृथक्त्वप्रकारेण ज्ञानीति व्यपदेशं करोति। दृष्टांतव्याख्यानं गतं तथान्यत्र दार्ष्टांतपक्षेपि यत्र विवक्षितद्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेन भेदो ज्ञातव्यः पूर्वगाथाकथितक्रमेण देवदत्तस्य गौरित्यादि। यत्र पुनरपि व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेनाभेदो ज्ञातव्यः वृक्षस्य शाखा जीवस्य वानंतज्ञानादयो गुणा इत्यादि वदिति। अत्र सूत्रे यदेव जीवेन सहाभिन्नव्यपदेशं अभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंख्यं अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकं च तज्जीवं ज्ञानिनं करोति यस्यैवालाभादनादिकालं नरनारकादिगतिषु भ्रमितोयं जीवो

गुणके द्वारा आत्मा 'ज्ञानी' नाम धारण करता है [तथा] वैसे ही [द्विविधाभ्यां] इन दो प्रकारके भेदाभेद कथनद्वारा [तत्त्वज्ञाः] वस्तुस्वरूपके जाननेवाले पुरुष [पृथक्त्वं] प्रदेशभेदकी पृथक्तासे जो संबंध है उसको पृथक्त्व कहते हैं। [च] और [अपि] निश्चयसे [एकत्वं] प्रदेशोंकी एकतासे संबंध है उसका नाम एकत्व है, ऐसे दो भेद [भणन्ति] कहते हैं। भावार्थ—व्यवहार दो प्रकारका है। एक पृथक्त्व और दूसरा एकत्व। जहाँ भिन्न द्रव्योंमें एकता का संबंध दिखाया जाय उसका नाम पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है, और एक वस्तुमें भेद दिखाया जाय उसका नाम एकत्व व्यवहार कहा जाता है। यह दोनों प्रकारका संबंध धन धनी, ज्ञान ज्ञानीमें व्यपदेशादिक चार प्रकारसे दिखाया जाता है। धन अपने नाम, संस्थान, संख्या और विषय इन चारों भेदोंसे जुदा है, और पुरुष अपने नाम, संस्थान, संख्या, विषयरूप चार भेदोंसे जुदा है। परंतु धनके संबंधसे पुरुष धनी कहलाता है। इसीको पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है। ज्ञान और ज्ञानीमें एकता है परंतु नाम,

---

१ संज्ञाम्।

द्रव्यगुणानामर्थांतरभूतत्वे दोषोऽयम्;—

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स ।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥४८॥

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थांतरिते त्वन्योऽन्यस्य ।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग जिनावमतं ॥४८॥

ज्ञानी ज्ञानाद्यर्थांतरभूतस्तदा स्वकरणांशमंतरेण परशुरहितदेवदत्तवत्करण-

---

यदेव मोक्षवृक्षस्य बीजभूतं यस्यैव भावनाबलादक्रमसमाक्रांतः समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावजातं तस्यैव फलभूतं सकलविमलकेवलज्ञानं जायते तदेव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं भावनीयं ज्ञानिभिरित्य-भिप्रायः ॥४७॥

अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे दोषं दर्शयति;—**णाणी** ज्ञानी जीवः **णाणं च तहा** ज्ञानगुणोपि तथैव **अत्थंतरिदो दु** अर्थांतरितो भिन्नस्तु यदि भवति । कथं । **अण्णमण्णस्स** अन्योन्यसंबंधित्वेन । तदा किं दूषणं । **दोण्हं अचेदणत्तं** द्वयोर्ज्ञानज्ञानिनोरचेतनत्वं जडत्वं **पसयदि** प्रसजति प्राप्नोति । तच्च जडत्वं कथंभूतं । **सम्मं जिणावमदं** सम्यक्प्रकारेण जिनानामवमतमसंमतमिति । तथाहि । यथाग्ने-र्गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणो गुणो दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थविच्छित्ति प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो

संख्या, संस्थान विषयोंसे ज्ञानका भेद किया जाता है । वस्तुस्वरूपको भली भाँति जाननेके कारण उस ज्ञानके संबंधसे ज्ञानी नाम पाता है । इसको एकत्व व्यवहार कहते हैं । ये दो प्रकारका संबंध समस्त द्रव्योंमें चार प्रकारसे जानो ॥४७॥

आगे ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार यदि भेद ही माना जाय तो बड़ा दोष आता है, ऐसा कथन करते हैं;—[ज्ञानी] आत्मा [च] और [ज्ञानं] चैतन्यगुणका [सदा] सदाकाल [अर्थांतरिते] सर्वथा प्रकार भेद हो [तु अन्योन्यस्य] तो परस्पर [द्वयोः] ज्ञानी और ज्ञानके [अचेतनत्वं] जड़भाव [प्रसजति] होता है [सम्यक्] यथार्थमें यह [जिनावमतं] जिनेन्द्र भगवान्का कथन है । **भावार्थ—** जैसे अग्निद्रव्यमें उष्णता गुण है । यदि इस अग्नि और उष्णतागुणमें पृथक्ता होती तो ईंधन को जला नहीं सकती । यदि प्रथमसे ही उष्ण गुण जुदा होता तो किससे जलाती ? और यदि अग्नि जुदी होती तो उष्ण गुण किसके आश्रय रहता ? निराश्रय होकर वह भी जलानेकी क्रियासे रहित

---

१ ज्ञान विना ।

व्यापारासमर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात् । ज्ञानञ्च यदि ज्ञानिनोऽर्थांतरभूतं तदा तत्कर्त्रंशमंतरेण देवदत्तरहितपरशुवत्तत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतनमेव स्यात् । न च ज्ञानज्ञानिनोर्युतसिद्धयोस्संयोगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति ॥४८॥

भवति । अथ मतं यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवतीति । नैवं वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषस्य शक्तिविशेषस्तत्राभ्यंतरोपकरणं शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हस्तव्यापारे च सति छेदनक्रिया नास्ति तथा प्रकाशोपाध्यायादिवहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति । अत्र यस्य ज्ञानस्याभावाज्जीवो जडः सन् वीतरागसहजसुन्दरानंदस्यन्दि पारमार्थिकसुखमुपादेयमजानन् संसारे परिभ्रमति तदेव रागादिविकल्परहितं निजशुद्धात्मानुभूतिज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः ॥४८॥

हो जाता । क्योंकि गुणगुणी परस्पर जुदा होनेपर कार्य करनेमें असमर्थ होते हैं । यदि दोनोंकी एकता हो तो जलानेकी क्रियामें समर्थ हों । उसीप्रकार ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर जाननेकी क्रियामें असमर्थता होती है । ज्ञानके विना ज्ञानी कैसे जाने ? और ज्ञानीके विना ज्ञान निराश्रय होता तो वह भी जाननेरूप क्रियामें असमर्थ होता । ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर दोनों अचेतन होते हैं । और यदि कोई यहाँ यह कहे कि पृथक्‌रूप दांतसे काटनेपर पुरुष ही काटनेवाला कहलाता है, इसीप्रकार यदि पृथक्‌रूप ज्ञानके द्वारा आत्माको जाननेवाला मानो तो इसमें क्या दोष है ? इसका उत्तर—काटनेकी क्रियामें दांत बाह्य निमित्त है, उपादान काटनेकी शक्ति पुरुषमें है । यदि पुरुषमें काटनेकी शक्ति न होती तो दांत कुछ कार्यकारी नहीं होते । इसलिये पुरुषका गुण प्रधान है । उस अपने गुणसे पुरुषके एकता है । उसी कारण ज्ञानी और ज्ञानके एक संबंध है । पुरुष और दांतकासा संबंध नहीं है । गुणगुणी वे ही कहलाते हैं जिनके प्रदेशोंकी एकता हो । ज्ञान और ज्ञानीमें संयोगसंबंध नहीं है, तन्मयभाव है ॥४८॥

---

१ यथाऽग्नेर्गुणिनः सकाशादत्यतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणगुणोऽग्नेर्दहनक्रियां प्रत्ययमसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा जीवात् गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नो ज्ञानगुणः पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्ययमसमर्थः सन्नियमेन जडो भवति । यथोष्णगुणादत्यन्तभिन्नः सन् वह्निर्गुणी दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः सद् जीवो गुणी पदार्थपरिच्छित्ति प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो भवति । अथ मतं । यथाभिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति इति नैव वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं वाह्योपकरणं । वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषशक्तिविशेषस्त्वभ्यंतरोपकरणं । शक्तेरभावे दात्रोपकरणे हि तद्व्यापारे च सति यथा छेदनक्रिया नास्ति, तथा प्रकाशोपाध्यायादिवहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति ।

ज्ञानज्ञानिनोः समवायसंबंधनिरासोऽयम्;—

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी ।
अण्णाणीति य वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि ॥४९॥

न हि सः समवायादर्थांतरितस्तु ज्ञानतो ज्ञानी ।
अज्ञानीति च वचनमेकत्वसाधकं भवति ॥४९॥

न खलु ज्ञानादर्थांतरभूतः पुरुषो ज्ञानसमवायात् ज्ञानी भवतीत्युपपन्नं । स खलु ज्ञानसमवायात्पूर्वं किं ज्ञानी किमज्ञानी ? यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो निष्फलः । अथाज्ञानी तदा किमज्ञानसमवायात्, किमज्ञानेन सहैकत्वात् ? न तावद-

---

एवं व्यपदेशादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसंबंधेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति;—**सो** स जीवः कर्ता **ण हि णाणी** ज्ञानी न भवति हि स्फुटं । कस्मात्सकाशात् ? **समवायादो** समवायसंबंधात् । कथंभूतः सन् ? **अत्थंतरिदो दु** अर्थांतरितस्त्वेकांतेन भिन्नः । कस्मात्सकाशात् ? **णाणादो** ज्ञानात् । **अण्णाणित्ति य वयणं एयत्तपसाहगं होदि** अज्ञानी चेति वचनं गुणगुणिनोरेकत्वप्रसाधकं भवतीति । तद्यथा—ज्ञानसमवायात्पूर्वं जीवो ज्ञानी किंवाऽज्ञानीति विकल्पद्वयमवतरति । तत्र यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो व्यर्थो, यतो ज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति, अथवाऽज्ञानी तत्रापि विकल्पद्वयं किमज्ञानगुणसमवायादज्ञानी किं स्वभावेन वा ? न

आगे ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार भेद है । परंतु मिलापसे एक है, ऐसी एकताका निषेध करते हैं;—[सः] वह [हि] निश्चयसे [ज्ञानी] चैतन्यस्वरूप आत्मा [समवायात्] अपने मिलापसे [ज्ञानतः] ज्ञानगुणसे [अर्थांतरितस्तु] भिन्नस्वरूप तो [न] नहीं है, क्योंकि [अज्ञानी] आत्मा अज्ञानगुणसंयुक्त है । [इति वचनं] यह कथन [एकत्वप्रसाधकं] गुणगुणीमें एकताका साधनेवाला [भवति] होता है । भावार्थ—ज्ञानी और ज्ञानगुणकी प्रदेशभेदरहित एकता है । और यदि कहो कि एकता नहीं है, ज्ञानसंबंधसे ज्ञानी पृथक् है, तो जब ज्ञान-गुणका संबंध ज्ञानीके पूर्व ही नहीं था, तब ज्ञानी अज्ञानी था यह ज्ञानी ? यदि कहोगे कि ज्ञानी था, तो ज्ञान-गुणके कथनका कुछ प्रयोजन नहीं, स्वरूपसे ही ज्ञानी था । और यदि कहोगे कि पहिले अज्ञानी था पीछेसे ज्ञानका संबंध होनेसे ज्ञानी हुआ है, तो जब अज्ञानी था तो अज्ञान गुणके संबंधसे अज्ञानी था कि अज्ञानगुणसे एकमेक था ? यदि कहोगे कि—अज्ञानगुणके संबंधसे ही अज्ञानी था तो वह अज्ञानी था, अज्ञानके संबंधसे कुछ प्रयोजन नहीं है, स्वभावसे ही अज्ञानी ठहरता है । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि—

---

१. अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसंबंधेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति, २ त्वया अङ्गीकृतं चेत्तर्हि शृणु ।

ज्ञानसमवायात् । अथाज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः । ज्ञानित्वं तु ज्ञानसमवायाभावात् नास्त्येव । ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव । सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनाऽपि सहैकत्वमवश्यं सिद्धयतीति ॥४९॥

[1]समवायस्य पदार्थांतरत्वनिरासोऽयम्;—

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य ।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा ॥५०॥

समवर्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च ।
तस्माद्द्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा ॥५०॥

तावदज्ञानगुणसमवायादज्ञानिनो जीवस्याज्ञानगुणसमवायो वृथा येन कारणेनाज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवा स्वभावेनाज्ञानित्वं तथैव ज्ञानित्वमपि स्वभावेनैव गुणत्वादिति । अत्र यथा मेघपटलावृते दिनकरे पूर्वमेव प्रकाशस्तिष्ठति पश्चात्पटलविघटनानुसारेण प्रकटो भवति तथा जीवे निश्चयनयेन क्रमकरणव्यवधानरहितं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तवस्तुगतानंतधर्मप्रकाशकमखंडप्रतिभासमयं केवलज्ञानं पूर्वमेव तिष्ठति, किंतु व्यवहारनयेनानादिकर्मावृतः सन्न ज्ञायते । पश्चात्कर्मपटलविघटनानुसारेण प्रकटं भवति, न च जीवाद्वहिर्भूतं ज्ञानं किमपीति पश्चात्समवायसंबंधबलेन जीवे संबद्धं न भवतीति भावार्थः ॥४९॥

ज्ञानगुणका यदि प्रदेशभेदरहित ज्ञानीसे एकभाव माना जाय तो आत्माके अज्ञानगुणसे एकभाव होते हुये अज्ञानी पद ठहरता है । इस कारण ज्ञान और ज्ञानीमें अनादिकी अनंत एकता है । ऐसी एकता है कि ज्ञानके अभावसे ज्ञानीका अभाव हो जाता है, और ज्ञानीके अभावसे ज्ञानका अभाव हो जाता है । और यदि यों नहीं माना जाय तो आत्मा अज्ञानभावकी एकतासे अवश्यमेव अज्ञानी कहलायेगा । और यदि ऐसा कहा जाता है कि अज्ञानका नाश करके आत्मा ज्ञानी होता है, सो यह कथन कर्म-उपाधि-संबंधसे व्यवहारनयकी अपेक्षासे है । जैसे सूर्य मेघपटल द्वारा आच्छादित होनेसे प्रभारहित कहा जाता है, परंतु उस प्रभावसे सूर्य अपने स्वभावसे त्रिकाल पृथक् नहीं होता पटलकी उपाधिसे प्रभासे हीन-अधिक कहा जाता है। वैसे ही यह आत्मा अनादि पुद्गल-उपाधिसंबंधसे अज्ञानी हुआ प्रवर्तित है । परन्तु वह आत्मा अपने स्वाभाविक अखंड केवलज्ञान स्वभावसे-स्वरूपसे किसी कालमें भी पृथक् नहीं होता । कर्मकी उपाधिसे ज्ञानकी हीनता-अधिकता कही जाती है । इस कारण निश्चयसे ज्ञानीसे ज्ञानगुण पृथक् नहीं है । कर्म-उपाधिके वश अज्ञानी कहा जाता है, कर्मके घटनेसे ज्ञानी होता है । यह कथन व्यवहारनयकी अपेक्षासे है ॥४९॥

---

१. अथ गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति ।

द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादनादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्तित्वम्। स एव समवायो जैनानाम्। तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम्। तदेव युतसिद्धिनिबंधनस्यास्तित्वांतरस्याभावादयुतसिद्धत्वम्। ततो द्रव्यगुणानां समवर्तित्वलक्षणसमवायभाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति[1] ॥५०॥

अथ गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति;—**समवत्ती** समवृत्तिः सहवृत्तिर्गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वेनादितादात्म्यसंबंध इत्यर्थः **समवाओ** स एव जैनमते समवायो नान्यः कोऽपि परिकल्पितः **अपुधब्भूदो य** तदेव गुणगुणिनोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशभेदाभावादपृथग्भूतत्वं भण्यते **अजुदसिद्धा य** तदेव दंडदंडिवद्भिन्नप्रदेशलक्षणयुतसिद्धत्वाभावादयुतसिद्धत्वं भण्यते **तम्हा** तस्मात्कारणात् **दव्वगुणाणं** द्रव्यगुणानां **अजुदा सिद्धित्ति** अयुतासिद्धिरिति कथंचिदभिन्नत्वसिद्धिरिति **णिद्दिट्ठा** निर्दिष्टा कथितेति। अत्र व्याख्याने यथा ज्ञानगुणेन सहानादितादात्म्यसंबंध प्रतिपादितो द्रष्टव्यो जीवेन सह तथैव च यदव्याबाधरूपमप्रमाणमविनश्वरं स्वाभाविकं रागादिदोषरहितं परमानंदैकस्वभावं पारमार्थिकसुखं तत्प्रभृतयो ये अनंतगुणाः केवलज्ञानांतर्भूतास्तैरपि सहानादितादात्म्यसंबंधः श्रद्धातव्यो ज्ञातव्यः तथैव च समस्तरागादिविकल्पत्यागेन निरंतरं ध्यातव्य इत्यभिप्रायः ॥५०॥

आगे गुण-गुणीमें एकभावके बिना और किसी प्रकारका संबंध नहीं है, ऐसा कथन करते हैं [समवर्तित्वं] द्रव्य और गुणोंके एक अस्तित्वसे अनादि अनंत धारावाहीरूप जो प्रवृत्ति है उसका नाम जिन मतमें [समवायः] समवाय है। **भावार्थ**—संबंध दो प्रकारके हैं एक संयोगसंबंध और दूसरा समवायसंबंध। जैसे—जीव-पुद्गलका संबंध है सो तो संयोगसंबंध है। और समवायसंबंध वहां होता है जहां अनेक भावोंका एक अस्तित्व होता है, जैसे गुणगुणीमें संबंध है। गुणोंके नाश होनेसे गुणीका नाश और गुणीके नाश होनेसे गुणोंका नाश होता है। इसी प्रकार अनेक भावोंका जहां संबंध हो उसीका नाम समवायसंबंध कहा जाता है। [च अपृथग्भूतं] और वही गुणगुणीका समवायसंबंध प्रदेशभेदरहित जानना चाहिये। यद्यपि संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनादिकसे गुणगुणीमें भेद है तथापि जैसे सुवर्णके और पीतादि गुणके समवायसंबंधमें प्रदेशभेद नहीं है, इसीप्रकार गुणगुणीकी एकता है। [च] और [अयुतसिद्धत्वं] वही गुणगुणीका समवायसंबंध मिलकर नहीं हुआ है, अनादिसिद्ध एकही है [तस्मात्] इस कारणसे [द्रव्यगुणानां] गुणगुणीमें वह समवाय संबंध [अयुता सिद्धिः] अनादिसिद्ध [इति] इसप्रकार [निर्दिष्टा] भगवंतदेवने दिखाया है। ऐसा गुणगुणीमें समवायसंबंध जानना चाहिये ॥५०॥

---

१ एवं समवायनियमकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

दृष्टांतदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थांतरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्;—

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि ।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ।।५१।।
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि ।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो ।।५२।।जुम्मं ।

वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषा हि ।
द्रव्यतश्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति ।।५१।।
दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते ।
व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुते हि नो स्वभावात् ।।५२।। युग्मम् ।

वर्णरसगंधस्पर्शा हि परमाणोः प्ररूप्यंते । ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्यत्वेऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने

एवं समवायनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण द्रव्यगुणानां कथंचिदभेदव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते;—**वण्णरसगंधफासा** वर्णरसगंधस्पर्शाः **परमाणुपरूविदा** परमाणुद्रव्यप्ररूपिताः कथिताः । कैः कृत्वा ? **विसेसेहिं** विशेषैः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदैः अथवा 'विसेसो हि' इति पाठांतरं विशेषा विशेषगुणधर्माः स्वभावा हि स्फुटं । ते कथंभूताः ? **दव्वादो य** परमाणुद्रव्याच्च सकाशात् **अणण्णा** निश्चयनयेनानन्ये **अण्णत्तपयासगा होंति** पश्चाद्व्यवहारनयेन संज्ञादिभेदेनान्यत्वप्रकाशका भवन्ति यथा । इति दृष्टांतगाथा गता । **दंसणणाणाणि** तहा दर्शनज्ञाने द्वे तथा ।

आगे दृष्टांतसहित गुणगुणीकी एकताका कथन संक्षेपसे करते हैं;—[हि] निश्चयसे [परमाणुप्ररूपिताः] परमाणुओंमें कहे गये [वर्णरसगंधस्पर्शाः] वर्णरसगंधस्पर्श ऐसे, चार [विशेषाः] गुण [द्रव्यतः अनन्याः] पुद्गलद्रव्यसे पृथक् नहीं हैं । भावार्थ—निश्चयनयकी अपेक्षा वर्ण रस गंध स्पर्श ये चार गुण समवायसंबंधसे पुद्गलद्रव्यसे पृथक नहीं हैं [च] और ये ही चारों वर्णादिक गुण [अन्यत्वप्रकाशकाः भवन्ति] व्यवहारकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्यसे पृथकताको भी प्रकट करते हैं । भावार्थ—यद्यपि ये वर्णादिक गुण निश्चयसे पुद्गलसे एक हैं, तथापि व्यवहारनयकी अपेक्षा संज्ञाभेदसे भेद भी कहा जाता है । प्रदेशभेदसे भेद नहीं है । [तथा] और जैसे पुद्गलद्रव्यसे वर्णादिक गुण अभिन्न है, वैसेही निश्चयनयसे [जीवनिबद्धे] जीवसे समवायसंबंधयुक्त [दर्शनज्ञाने] दर्शन ज्ञान

---

१ कथञ्चिद्भिन्नत्वम् ।

अण्योण्णंति, संबद्धं आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनाऽनन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधैर्विशेषैः पृथक्त्वमासादयतः । स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रतः ॥५१।५२॥

इति उपयोगगुणव्याख्यानं समाप्तं । अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् । तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्घातः ।

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो ।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य ॥५३॥

जीवा अनादिनिधनाः सांता अनंताश्च जीवभावात् ।
सद्भावतोऽनंताः पञ्चाग्रगुणप्रधानाः च ॥५३॥

जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात् स्वभावानां कर्त्तारो भविष्यन्ति ।

कथंभूते ? जीवणिबद्धाणि जीवनिबद्धे द्वे । पुनरपि कथंभूते ? अणण्णभूदाणि निश्चयनयेन प्रदेशरूपेणानन्यभूते । इत्थंभूते ते किं कुरुतः ? ववदेसदो पुधत्तं व्यपदेशतः संज्ञादिभेदतः पृथक्त्वं नानात्वं कुव्वंति कुरुतः हु स्फुटं णो सहावादो नैव स्वभावतो निश्चयनयेन इति । अस्मिन्नधिकारे यद्यप्यष्टविधज्ञानोपयोगचतुर्विधदर्शनोपयोगव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धविवक्षा न कृता तथापि निश्चयनयेनादिमध्यांतवर्जिते परमानंदमालिनि परमचैतन्यशालिनि भगवत्यात्मनि यदनाकुलत्वलक्षणं पारमार्थिकसुखं तस्योपादेयभूतस्योपादानकारणभूतं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तदेवोपादेयमिति श्रद्धेयं ज्ञेयं तथैवार्तरौद्रादिसमस्तविकल्पजालत्यागेन ध्येयमिति भावार्थः ॥५१॥५२॥

एवं दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण गाथाद्वयं गतं । अत्र प्रथमं 'उवओगो दुवियप्पो' इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण दर्शनज्ञानकथनरूपेणांतरस्थलपंचकेन गाथानवकं, तदनंतरं 'ण वियप्पदि णाणादो' इत्यादि पाठक्रमेण नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदनिराकरणरूपेणांतरस्थलचतुष्टयेन गाथादशकमिति समुदायेनैकोनविंशति-

---

असाधारण गुण भी [अनन्यभूते] जुदे नहीं हैं [व्यपदेशतः] संज्ञादि-भेदके कथनसे आचार्य आत्मा और ज्ञान-दर्शनमें [पृथक्त्वं] भेदभाव [कुरुते] करते हैं, तथापि [हि] निश्चयसे [स्वभावात्] निजस्वरूपसे [नो] भेद संभवित नहीं है । भगवंतका मत अनेकांत है, दो नयोंसे सधता है । इस कारण निश्चय-व्यवहारसे भेद-अभेद गुणगुणीका स्वरूप परमागमसे विशेषरूप जानना चाहिये । यह चार प्रकार दर्शनोपयोग, आठ प्रकार ज्ञानोपयोग, शुद्ध अशुद्ध भेद कथनसे सामान्यस्वरूप पूर्वोक्त प्रकारसे जानना चाहिये । यह उपयोग-गुणका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥५१॥५२॥

आगे कर्तृत्वका अधिकार कहते हैं । जिसमेंसे जीव निश्चयनयसे परभावोंके कर्त्ता नहीं हैं, अपने स्वभावके ही कर्ता होते हैं । वे ही जीव अपने परिणामोंको करते हुये अनादि-अनंत हैं या सादि-सांत हैं, अथवा सादि-अनंत हैं, और ऐसे अपने भावोंको परिणमित होते हैं कि नहीं

तांश्च कुर्वाणाः किमनादिनिधनाः, किं सादिसनिधनाः, किं साद्यनिधनाः, किं तदाकारेण परिणताः, किमपरिणताः भविष्यंतीत्याशङ्क्येदमुक्तम् । जीवा हि सहज-चैतन्यलक्षणपारिणामिकभावेनाऽनादिनिधनाः । त एवौदयिकक्षायोपशमिकौपशमिक-भावैः सादिसनिधनाः । त एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः । न च सादित्वात् सनिधनत्वं क्षायिकभावस्याशङ्क्यम्[१] । स[२] खलूपाधिनिवृत्तौ प्रवर्तमानः सिद्धभाव इव सद्भाव एव । जीवस्य सद्भावेन चानंता[३] एव जीवाः प्रतिज्ञायंते न च तेषामनादिनिधनसहज-चैतन्यलक्षणैकभावानां सादिसनिधनानि साद्यनिधनानि भावांतराणि नोपपद्यंत

गाथाभिर्जीवाधिकारव्याख्यानरूपनवाधिकारेषु मध्ये षष्ठ "उपयोगाधिकारः समाप्तः" । अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारससमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशात् भिन्नं यत्कर्म कर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं तस्य संबन्धित्वेन पूर्वमष्टादशगाथासमुदायपातनिकारूपेण यत्सूचितं व्याख्यातं तस्येदानीं 'जीवा अणाइणिहणा' इत्यादि पाठक्रमेणांतरस्थलपंचकेन विवरणं करोति । तद्यथा । येषां जीवानामग्रे कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयं कथ्यते तेषां पूर्वं तावत्स्वरूपं संख्यां च प्रतिपादयति;—**जीवा अणाइणिहणा** जीवा हि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धचैतन्यरूपेणानाद्यनिधनाः । पुनश्च कथंभूताः ? **संता** औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावत्रया-पेक्षया सादिसनिधनाः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? **अणंता य** साद्यनंताः । कस्मात्सकाशात् ? **जीव-भावादो** जीवभावतः क्षायिको भावस्तस्मात् । नहि क्षायिकभावस्य सादित्वादंतोपि किल भविष्यती-

---

परिणमित होते ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य समाधान करते हैं;—[जीवाः] जो आत्मद्रव्य हैं [अनादिनिधनाः] सहजशुद्ध चेतन पारिणामिकभावोंसे अनादि अनंत हैं । स्वाभाविक-भावकी अपेक्षा जीव तीनों कालोंमें टंकोत्कीर्ण अविनाशी हैं [च] और वे ही जीव [सांताः] सादि-सांत भी हैं और [अनंताः] सादि-अनंत भी हैं । औदयिक और क्षायोपशमिक भावोंसे सादि-सांत है, क्योंकि [जीव-भावात्] जीवके कर्मजनित भाव होनेसे औदयिक और क्षायोपशमिकभाव कर्मजनित हैं । कर्म बंधते भी हैं और निर्जराको भी प्राप्त होते हैं, इसलिये कर्म आदि अंत लिये हुये हैं । उन कर्मजनित भावोंकी अपेक्षा जीव सादि-सांत जानना चाहिये । और वे ही जीव क्षायिक भावोंकी अपेक्षा सादि-अनंत हैं, क्योंकि कर्मके क्षयसे क्षायिक भाव उत्पन्न होते हैं, इस कारण सादि हैं । आगे अनंतकालपर्यन्त रहेंगे, इस कारण अनंत हैं । ऐसा क्षायिक भाव सादि-अनंत है । सो क्षायिकभाव जैसे शुद्ध सिद्धका भाव अविनाशी निश्चलरूप है, वैसा अनंतकाल तक रहेगा [सद्भावतः] सत्ता-स्वरूपसे जीवद्रव्य [अनंताः] अनंत हैं । भव्य अभव्यके भेदसे जीवराशि अनंत है । अभव्य जीव अनंत हैं । उनसे अनंतगुणी अधिक भव्यराशि है । यदि कोई यहाँ प्रश्न करे कि आत्मा तो अनादि-अनंत सहज चैतन्यभावोंसे संयुक्त है, उसके सादि-सांत, सादि-अनंत भाव कैसे हो सकते हैं ? इसका

---

१. इति नाशङ्क्यम् । २ क्षायिकभावः । ३ विनाशरहिताः ।

इति वक्तव्यम् । ते खल्वनादिकर्ममलीमसाः पंकसंपृक्ततोयवत्तदाकारे परिणतत्वात्पञ्चप्रधानगुणप्रधानत्वेनैवानुभूयंत इति ॥५३॥

जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वे साद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम्;—

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो ।
इदि जिणवरेहिं भणियं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥५४॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः ।
इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम् ॥५४॥

एवं हि पञ्चभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्याऽस्य जीवस्य कदाचिदौदयिकेनै-

---

त्याशंकनीयं स हि कर्मक्षये सति क्षायिकभावः केवलज्ञानादिरूपेण समुत्पद्यमानः सिद्धभाव इव जीवस्य सद्भाव एव स च स्वभावस्य विनाशो नास्ति चेति अनाद्यनिधनसहजशुद्धपारिणामिकैकभावानां सादि—सनिधनान्यप्यौदयिकादिभावांतराणि कथं संभवंतीति ? चेत्, **पंचग्गगुणप्पहाणा य** यद्यपि स्वभावेन शुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यंत इति स्वरूपव्याख्यानं गतं । इदानीं संख्यां कथयति । **सब्भावदो अणंता** द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनंताः । सांतानंतशब्दयोर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते-सहांतेन संसारविनाशे वर्तंते सांता भव्याः न विद्यतेंतः संसारविनाशो येषां ते पुनरनंता अभव्यास्ते चाभव्या अनंतसंख्यास्तेभ्योपि भव्याः अनंतगुण संख्यास्तेभ्योप्यभव्यसमानभव्या अनंतगुणा इति । अत्र सूत्रे अनादिनिधना अनंतज्ञानादिगुणाधारा शुद्धजीवा एव सादिसनिधनमिथ्यात्वरागादिदोषपरिहारपरिणतानां भव्यानामुपादेया इति तात्पर्यार्थः ॥५३॥

अथ यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन विनाशोत्पादौ भवतः तथापि द्रव्यार्थिकनयेन न भवत इति पूर्वापरविरोधो नास्तीति कथयति;—**एवं सदो विणासो** एवं पूर्वगाथाकथितप्रकारेणौदयिकभावे-

---

उत्तर-अनादि कर्मसंबंधसे यह आत्मा अशुद्धभावसे परिणमन कर रहा है, इसलिए सादि-सांत, सादि-अनंतभाव होता है । जैसे कीचसे मिला हुआ जल अशुद्ध होता है । उस कीचके मिलाप होने या न होनेसे अशुद्ध या शुद्ध जल कहा जाता है, वैसे ही इस आत्माके कर्म संबंध होने या न होनेके कारण सादि-सांत, सादि-अनंत भाव कहे जाते हैं [च] और [पञ्चाग्रगुणप्रधानाः] औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन पांच भावोंकी प्रधानता सहित प्रवर्तित होते हैं ॥५३॥

आगे जीवोंके पांच भावोंसे यद्यपि सादि-सांत, अनादि-अनंत भाव हैं, तथापि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे विरोध नहीं है, ऐसा कथन करते हैं;—[एवं] इस पूर्वोक्त प्रकारके भावोंसे

---

१ कर्दमसंमिश्रजलवत् २ यद्यपि स्वभावेन विशुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यंते ।

केन मनुष्यत्वादिलक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथा परेणौदयिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत उत्पादो भवत्येव। एतच्च 'न सतो विनाशो नासत उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धमपि न विरुद्धम्। यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पादः। तस्यैव पर्यायार्थिकनयादेशेन सत्प्रणाशोऽसदुत्पादश्च। न चैतदनुपपन्नम्। नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्वदर्शनादिति ॥५४॥

जीवस्य सदसद्भावोच्छित्त्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत्;—

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ॥५५॥

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुताः प्रकृतयः।
कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पादं ॥५५॥

नायुरुच्छेदवशान्मनुष्यपर्यायरूपेण सतो विद्यमानस्य विनाशो भवति असदो जीवस्स हवदि उप्पादो असतोऽविद्यमानस्य देवादिजीवस्य पर्यायस्य गतिनामकर्मोदयाद्भवत्युत्पादः इदि जिणवरेहिं भणियं इति जिनवरैर्वीतरागसर्वज्ञैर्भणितं, इदं तु व्याख्यातं। कथंभूतं? अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं अन्योन्यविरुद्धमप्यविरुद्धं। कथमिति चेत्? द्रव्यपीठिकायां सतो जीवस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति भणितं। अत्र सतो जीवस्य विनाशो भवत्यसत उत्पादो भवतीति भणितं तेन कारणेन विरोधः। तन्न। तत्र द्रव्यपीठिकायां द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ निषिद्धौ। अत्र तु पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ भवत इति नास्ति विरोधः। तदपि कस्मादिति चेत्? द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परसापेक्षत्वादिति। अत्र यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन सादिसनिधनं जीवद्रव्यं व्याख्यातं तथापि शुद्धनिश्चयेन यदेवानादिनिधनं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं निर्विकारसदानंदैकस्वरूपं च तदेवोपादेयमित्यभिप्रायः ॥५४॥

परिणमित जो जीव हैं उनके जब उत्पादव्ययकी अपेक्षा करते हैं। तब [सतः] विद्यमान मनुष्यादिक पर्यायका तो [विनाशः] विनाश और [असतः] अविद्यमान [जीवस्य] जीवकी [उत्पादः] देवादिक पर्यायकी उत्पत्ति [भवति] होती है [इति जिनवरैः] इस प्रकार जिनेंद्र भगवानके द्वारा [अन्योऽन्यविरुद्धं] परस्पर विरुद्ध होने पर भी [अविरुद्धं] विरोधरहित [भणितं] कहा गया है। **भावार्थ—** भगवानके मतमें दो नय हैं, एक द्रव्यार्थिक नय, दूसरा पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका न तो उत्पाद है और न नाश है। और पर्यायार्थिक नयसे नाश भी है और उत्पाद भी है। जैसे कि जल नित्य-अनित्यस्वरूप है। द्रव्यकी अपेक्षा तो जल नित्य है और कल्लोलोंकी अपेक्षा उपजना विनशना होनेके कारण अनित्य है। इसी प्रकार द्रव्य नित्य-अनित्यस्वरूप कथंचित्प्रकार जानना चाहिये ॥५४॥

---

१ अविद्यमानस्य भावस्य।

यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्विभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति। तथा जीवस्याऽपि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वंतीति ॥५५॥

जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत्;—

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा ॥५६॥

उदयेनोपशमेन च क्षयेण च द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन।
युक्तास्ते जीवगुणा बहुषु चार्थेषु विस्तीर्णाः ॥५६॥

अथ पूर्वसूत्रे जीवस्योत्पादव्ययस्वरूपं यद्भणितं तस्य नरनारकादिगतिनामकर्मोदयकारणमिति कथयति;—णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवा इति नामसंयुक्ताः पयडी 'नामकर्मप्रकृतयः कर्तृ कुव्वंति कुर्वन्ति। कं? सदो णासं सतो विद्यमानस्य भावस्य पर्यायस्य नाशं असदो भावस्स उप्पत्ती असतो भावस्य पर्यायस्योत्पत्तिमिति। तथाहि—यथा समुद्रस्य समुद्ररूपेणाविनश्वरस्यापि कल्लोला उत्पादव्ययद्वयं कुर्वन्ति तथा जीवस्य सहजानंदैकटंकोत्कीर्णज्ञायकस्वभावेन नित्यस्यापि व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशान्निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिच्युतस्य नरकगत्यादिकर्मप्रकृतय उत्पादव्ययं च कुर्वंतीति। तथा चोक्तं—"अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं। उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले॥" अत्र यदेव शुद्धनिश्चयनयेन मूलोत्तरप्रकृतिरहितं वीतरागपरमाह्लादैकरूपचैतन्यप्रकाशसहितं शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥५५॥

एवं कर्मकर्तृत्वादित्रयपीठिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण प्रथममंतरस्थलं गतं। अथ पीठि-

---

आगे जीवके उत्पाद-व्ययका कारण कर्म-उपाधि दिखाते हैं;—[नारकतिर्यङ्मनुष्याः देवाः] नरक तिर्यञ्च मनुष्य देव [इति नामसंयुताः] इन नामोंसे संयुक्त [प्रकृतयः] नामकर्मसम्बन्धिनी प्रकृतियाँ [सतः] विद्यमानपर्यायिका [नाशं] विनाश [कुर्वन्ति] करती हैं। और [असतः] अविद्यमान [भावस्य] पर्यायकी [उत्पादं] उत्पत्ति [कुर्वन्ति] करती हैं। भावार्थ—जैसे समुद्र अपने जलसमूहसे उत्पादव्यय अवस्थाको प्राप्त नहीं होता, अपने स्वरूपसे स्थिर है, परन्तु चारों ही दिशाओंकी पवन आनेसे कल्लोलोंका उत्पाद-व्यय होता रहता है, वैसे ही जीवद्रव्य अपने आत्मीक स्वभावोंसे उपजता विनशता नहीं है, सदा टंकोत्कीर्ण है। परन्तु उस ही जीवके अनादिकर्मोपाधिके वशसे चार गति नामकर्मका उदय उत्पादव्ययदशाको करता है ॥५५॥

आगे जीवके पाँच भावोंका वर्णन करते हैं;—[ये] जो भाव [उदयेन] कर्मके उदयसे [च]

---

१. अनुपलभ्यमानस्य. २ वायवः।

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः। अनुद्भूतिरुपशमः। उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः। अत्यन्तविश्लेषः क्षयः। द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः। तत्रोदयेन युक्त औदयिकः। उपशमेन युक्त औपशमिकः। क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः। क्षयेण युक्तः क्षायिकः। परिणामेन युक्तः पारिणामिकः। त एते पञ्च जीवगुणाः[2] तत्रोपाधि-

---

कायां पूर्वं जीवस्य यदौदयिकादिभावपंचकं सूचितं तस्य व्याख्यानं करोति;-जुत्ताः युक्ताः। के? ते जीवगुणा ते परमागमप्रसिद्धाः जीवगुणाः जीवभावाः परिणामाः। केन केन युक्ताः? उदयेण कर्मोदयेन उवसमेण कर्मोपशमेन च खयेण कर्मक्षयेण दुहि मिस्सिदेण द्वाभ्यां क्षयोपशमाभ्यां मिश्रत्वेन परिणामे प्राकृतलक्षणवलात्सप्तम्यंतं तृतीयांतं व्याख्यायते परिणामेन करणभूतेन इतिव्युत्पत्तिरूपेणौदयिक औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिक एवं पंचभावा ज्ञातव्याः। ते च कथंभूताः? बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा बहुश्रुतशास्त्रेषु तत्त्वार्थादिषु विस्तीर्णाः औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकास्त्रयो भावाः कर्मजनिताः क्षायिकस्तु केवलज्ञानादिरूपो यद्यपि वस्तुवृत्त्या शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावः तथापि कर्मक्षयेणोत्पन्नत्वादुपचारेण कर्मजनित एव, शुद्धपारिणामिकः पुनः साक्षात्कर्मनिरपेक्ष एव। अत्र व्याख्यानेन मिश्रौपशमिकक्षायिकः मोक्षकारणं मोहोदयसहित औदयिको वन्धकारणं शुद्धपारि-

---

और [उपशमेन] कर्मोंके उपशम होनेसे [च] तथा [क्षयेण] कर्मोंके क्षयसे [द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां] उपशम और क्षय इन दोनों जातिके मिले हुये कर्मपरिणामोंसे [च] और [परिणामेन] आत्माके निजभावोंसे [युक्ताः] संयुक्त हैं [ते] वे भाव [जीवगुणाः] जीवके सामान्यतासे पाँच भाव जानो। वे भाव कैसे हैं? [बहुषु अर्थेषु] नाना प्रकारके भेदोंमें [विस्तीर्णाः] विस्तारको लिये हुये हैं। भावार्थ—सिद्धांतमें जीवके पाँच भाव कहे हैं—१, औदयिक २, औपशमिक ३, क्षायिक ४, क्षायोपशमिक और ५, पारिणामिक। जो शुभाशुभ कर्मके उदयसे जीवके भाव हों उनको औदयिकभाव कहते हैं। और कर्मोंके उपशमसे जीवके जो जो भाव होते हैं उनको औपशमिकभाव कहते हैं। जैसे कीचड़के नीचे वैठनेसे जल निर्मल होता है, उसी प्रकार कर्मोंके उपशम होनेसे औपशमिक भाव होते हैं। और जो भावकर्मके उदय-अनुदयसे हों वे क्षायोपशमिक भाव कहलाते हैं। और जो भाव सर्वप्रकार कर्मोंके क्षय होनेसे होते हैं उनको क्षायिक भाव कहते है। जिनके द्वारा जीव अस्तित्वरूप है वे पारिणामिक भाव हैं। ये पाँच भाव जीवके होते हैं। इनमेसे ४ भाव कर्मोपाधिके निमित्तसे होते हैं। एक पारिणामिक भाव कर्मोपाधिरहित स्वाभाविक भाव है। कर्मोपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेद होनेसे ये ही पाँच भाव नानाप्रकारके होते हैं। औदयिक, औपशमिक

---

१ कर्मणां फलदानसमर्थतयाऽनुद्भूतिरनुदयः. २ नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्म्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि कर्म तदुदयागतं व्यवहारेणैव. ३ उपाधिचतुर्विधत्वं निवंधनं कारणं येषां ते।

चतुर्विधत्वनिबंधनाश्चत्वारः स्वभावनिबंधन एकः। एते चोपाधिभेदात् स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यंत इति ॥५६॥

जीवस्यौदयिकादिभावानां कर्तृत्वप्रकारोक्तिरियम्,—

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥५७॥

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादृशकं।
स तेन तस्य कर्त्ता भवतीति च शासने पठितं ॥५७॥

णामिकस्तु बन्धमोक्षयोरकारणमिति भावार्थः। तथा चोक्तं—"मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रोपशमिकक्षायिकाभिधाः। बंधमौदयिका भावा नि क्रियाः पारिणामिकाः॥" ॥५६॥

एवं द्वितीयांतरस्थले पंचभावकथनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं। तृतीयस्थलं कथ्यते। अथानंतरं प्रथमगाथायां निश्चयेन रागादिभावानां जीवस्य कर्तृत्वं कथ्यते। द्वितीयगाथायां तदुदयागतद्रव्यकर्मणो व्यवहारेण रागादिभावकर्तृत्वमिति स्वतन्त्रगाथाद्वयं। तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवस्य यद्येकांतेनोदयागतद्रव्यकर्मरागादिविभावानां कर्तृ भवति तदा जीवस्य सर्वप्रकारेणाकर्तृत्वं प्राप्नोतीति कथयति। द्वितीयगाथायां तु पूर्वोक्तदूषणस्य परिहारं ददातीति पूर्वपक्षपरिहारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं। तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवः पुद्गलकर्मणां निश्चयेन कर्ता न भवतीत्यागमसंवादं दर्शयति। द्वितीयायां पुनः कर्मणो जीवस्य चाभेदषट्कारकीं कथयतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं। इति तृतीयांतरस्थले कर्तृत्वमुख्यत्वेन समुदायेन गाथाषट्कं कथयतीति। तद्यथा। औदयिकादिभावात् केन

और क्षायोपशमिक ये तीन भाव कर्मजनित हैं, क्योंकि ये कर्मके उदयसे, उपशमसे और क्षयोपशमसे होते हैं। इस कारण कर्मजनित कहे जाते हैं। यद्यपि क्षायिक भाव शुद्ध हैं, अविनाशी हैं, तथापि कर्मके नाश होनेसे होते हैं, इस कारण इनको भी कर्मजनित कहते हैं। और पारिणामिक भाव कर्मजनित नहीं हैं, क्योंकि वे शुद्ध पारिणामिक भाव जीवके स्वभाव ही हैं। इस कारण कर्मजनित नहीं हैं। और इन परिणामिकोंके भेद—भव्यत्व अभव्यत्व दो भाव हैं। वे भी कर्मजनित नहीं हैं। यद्यपि कर्मकी अपेक्षा भव्य-अभव्य स्वभाव जाने जाते हैं। जिसके कर्मका नाश होना है, सो भव्य कहा जाता है। जिसके कर्मका नाश नहीं होना है सो अभव्य कहा जाता है। तथापि वे कर्मसे उपजे नहीं कहे जा सकते। क्योंकि कोई भव्य-अभव्य कर्म नहीं है। इस कारण कर्मजनित नहीं है। भवस्थितिके ऊपर जैसा कुछ केवलज्ञानमें प्रतिभास रहा है, जिस जीवका जैसा स्वभाव है, वैसा ही होता है, इस कारण भव्य अभव्यस्वभाव भवस्थितिके ऊपर है, कर्मजनित नहीं है। ये तीन प्रकारके पारिणामिक भाव स्वभावजनित हैं ॥५६॥

---

१. अविद्यमानस्य भावस्य।

जीवेन हि द्रव्यकर्म व्यवहारनयेनानुभूयते। तच्चानुभूयमानं जीवभावानां निमित्तमात्रमुपवर्ण्यते। तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृत्वभूतेनात्मनः कर्म्मभूतो भावः क्रियते। अमुना यो येन प्रकारेण जीवेन भावः क्रियते, स जीवस्तस्य भावस्य तेन प्रकारेण कर्त्ता भवतीति ॥५७॥

[1]द्रव्यकर्मणां निमित्तमात्रत्वेनौदयिकादिभावकर्तृत्वमत्रोक्तम्;—

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्झदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥५८॥

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा।
क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः ॥५८॥

रूपेण जीवः करोतीति पृष्टे सत्युत्तरं ददाति;—**कम्मं वेदयमाणो** कर्म वेदयमानः नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तदुदयागतं व्यवहारेण वेदयमानः। कोऽसौ? **जीवो** जीवःकर्ता **भावं करेदि जारिसयं** भावं परिणामं करोति यादृशकं **सो तस्स तेण कत्ता** सः तस्य तेन कर्ता, स जीवस्तस्य रागादिपरिणामस्य कर्मतापन्नस्य तेनैव भावेन करणभूतेनाशुद्धनिश्चयेन कर्ता **हवदित्ति य सासणे पढिदं** भवतीति शासने परमागमे पठितमित्यभिप्रायः इति ॥५७॥

जीवो निश्चयेन कर्मजनितरागादिविभावानां स्वशुद्धात्मभावनाच्युतः सन् कर्ता भोक्ता

आगे इन औदयिकादि पाँच भावोंका कर्त्ता जीवको दिखाते हैं;—[कर्म वेदयमानः] उदय अवस्थाको प्राप्त हुये द्रव्यकर्मको अनुभवकर्त्ता [जीवः] आत्मा [यादृशकं भावं] जैसा अपने परिणामको [करोति] करता है [सः] वह आत्मा [तस्य] उस परिणामका [तेन] उस कारणसे [कर्त्ता] करनेवाला [भवति] होता है [इति] इस प्रकार कथन [शासने] जिनेन्द्र भगवानके मतमें [पठितं] तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है। **भावार्थ**—इस संसारी जीवके अनादिसंबंध द्रव्यकर्मका संबंध है। यह उस द्रव्यकर्मका व्यवहारनयसे भोक्ता है। जीव जब जिस द्रव्यकर्मको भोगता है, तव उस ही द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर जीवके जीवमयी चिद्विकाररूप परिणाम होते हैं। वह परिणाम जीवकी करतूत है। इस प्रकार कर्मका कर्त्ता आत्मा कहा जाता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिन भावोंसे आत्मा परिणमित होता है, उन भावोंका अवश्य कर्त्ता होता है। कर्ता, कर्म, क्रिया, इन तीन प्रकारसे कर्तृत्वकी सिद्धि होती है। जो परिणमित हो सो कर्त्ता, जो परिणाम सो कर्म, और जो करतूत सो क्रिया कही जाती है ॥५७॥

आगे द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर औदयिकादि भावोंका कर्त्ता आत्मा है, यह कथन किया

---

१ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं दर्शयति।

न खलु कर्मणा विना जीवस्योदयोपशमौ क्षयक्षायोपशमावपि विद्येते । ततः क्षायिकक्षायोपशमिकश्चौदयिकौपशमिकश्च भावः कर्मकृतोऽनुमंतव्यः । पारिणामिकस्त्वनादिनिधनो निरुपाधिः स्वाभाविक एव । क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनंतोऽपि कर्मणः क्षयेनोत्पद्यमानत्वात् सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः । औपशमिकस्तु कर्मणामुपशमे समुत्पद्यमानत्वादनुपशमे समुच्छिद्यमानत्वात् कर्मकृत एवेति । अथवा उदयोपशमक्षयक्षयोपशमलक्षणाश्चतस्रो द्रव्यकर्म्मणामेवावस्थाः । न पुनः परिणामलक्षणै-

---

भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं भवतीति दर्शयति;—**कम्मेण विणा** कर्मणा विना शुद्धज्ञानदर्शनलक्षणाद्भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविलक्षणात्परमात्मनो विपरीतं यदुदयागतं द्रव्यकर्म तेन विना **उदयं जीवस्स ण विज्जदे** रागादिपरिणामरूप औदयिकभावो जीवस्य न विद्यते न केवलमौदयिकभावः **उवसमं वा** औपशमिकभावो वा न विद्यते तेनैव द्रव्यकर्मोपशमेन विना **खइयं खओवसमियं** क्षायिकभावः क्षायोपशमिकभावस्तस्यैव द्रव्यकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन विना न भवति **तम्हा भावं तु कम्मकदं** तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः यस्माच्छुद्धपारिणामिकभावं मुक्त्वा पूर्वोक्तमौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभावचतुष्टयं द्रव्यकर्मणा विना न भवति तस्मादेवं ज्ञायते जीवस्यौदयिकादिभावचतुष्टयमनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकृतमिति । अत्र सूत्रे सामान्येन केवलज्ञानादिक्षायिकनवलब्धिरूपो विशेषेण तु केवलज्ञानांतर्भूतं यदनाकुलत्वलक्षणं निश्चयसुखं तत्प्रभृतयो येऽनंतगुणास्तेषामाधारभूतो योऽसौ क्षायिको भावः स एव सर्वप्रकारेणोपादेयभूत इति मनसा श्रद्धेयं ज्ञेयं मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निरंतरं ध्येयमिति भावार्थः ॥५८॥

जाता है;—[कर्मणा विना] द्रव्यकर्मके विना [जीवस्य] आत्माके [उदयः] रागादि विभावोंका उदय [वा] अथवा [उपशमः] द्रव्यकर्मके विना उपशम भाव भी [न विद्यते] नहीं है । जब उदयकर्म ही नहीं होगा तो उपशमता किसकी होगी ? और औपशमिकभाव कहांसे होगा ? [वा क्षायिकः] अथवा क्षायिकभाव भी द्रव्यकर्मके विना नहीं होगा । जब द्रव्यकर्म ही नहीं होगा तो क्षय किसका होगा ? तथा क्षायिकभाव भी कहांसे होगा ? [वा] अथवा [क्षायोपशमिकः] द्रव्यकर्मके विना क्षायोपशमिक भाव भी नहीं होंगे । क्योंकि जो द्रव्यकर्म नहीं है तो क्षायोपशमिक दशा किसकी होगी ? और क्षायोपशमिक भाव कहांसे होगा ? [तस्मात्] इस कारणसे [भावः तु] ये चार प्रकारके जीवके भाव [कर्मकृतः] कर्मने ही किये हैं । **भावार्थ**—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये चारों ही भाव कर्मजनित जानो । ये कर्मके निमित्त विना नहीं होते हैं । इस कारण आत्माके स्वाभाविक भाव जानो । यद्यपि इन चारों ही भावोंका भावकर्मकी अपेक्षासे आत्मा कर्त्ता है, तथापि व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म इनका कर्ता है । क्योंकि उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय ये चारों अवस्थायें द्रव्यकर्मकी हैं । द्रव्यकर्म अपनी शक्तिसे इन चारों अवस्थाओंको परिणमता है । इस कारण इन चारों अव-

कावस्थस्य जीवस्य । तत उदयादिसंजातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूततथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद्‌द्रव्यकर्मापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत इति ॥५८॥

जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम्;—

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता ।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥५९॥

भावो यदि कर्मकृतः आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्त्ता ?
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यं स्वकं भावं ॥५९॥

यदि खल्वौदयिकादिरूपो जीवस्य भावः कर्मणा क्रियते तदा जीवस्तस्य कर्त्ता न

इति तेषामेव भावनामनुपचरितासद्‌भूतव्यवहारेण कर्म कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । एवं निश्चयेन रागादिभावानां जीवः कर्ता पूर्वगाथायां भणितमत्र तु व्यवहारेण कर्म कर्तृ भवतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं । अथ जीवस्यैकांतेन कर्माकर्तृत्वे दूषणद्वारेण पूर्वपक्षं करोति;—**भावो जदि कम्मकदो** भावो यदि कर्मकृतः यद्येकांतेन रागादिभावः कर्मकृतो भवति **आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता** तदात्मा द्रव्यकर्मणः कथं कर्ता भवति ? यतः कारणाद्रागादिपरिणामाभावे सति द्रव्यकर्म नोत्पद्यते । तदपि कथमितिचेत् । **ण कुणदि अत्ता किंचिवि** न करोत्यात्मा किमपि । किंकृत्वा ? **मुत्ता अण्णं सगं भावं** स्वकीयचैतन्यभावं मुक्त्वान्यत् द्रव्यकर्मादिकं न करोतीत्यात्मनः सर्वथाप्यकर्तृत्वदूषणद्वारेण पूर्वपक्षेऽग्रे द्वितीयगाथायां परिहार इत्येकं व्याख्यानं तावत् द्वितीय-

---

स्थाओंका निमित्त पाकर आत्मा परिणमता है। व्यवहारनयसे इन चारों भावोंका कर्ता द्रव्यकर्म जानो, निश्चयनयसे आत्माको कर्त्ता जानो ॥५८॥

आगे सर्वथा प्रकारसे यदि जीवभावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म कहा जाय तो दूषण है, ऐसा कथन किया जाता है;—[यदि] यदि सर्वथा प्रकार [भावः] भावकर्म [कर्मकृतः] द्रव्यकर्मके द्वारा किया हो तो [आत्मा] जीव [कर्मणः] भावकर्मका [कथं] कैसे [कर्त्ता] करनेवाला [भवति] होता है ? भावार्थ—यदि सर्वथा द्रव्यकर्मको औदयिकादि भावोंका कर्त्ता कहा जाय तो आत्माके अकर्त्ता होनेसे संसारका अभाव हो जायगा। और यदि कहा जाय कि आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता है, इस कारण संसारका अभाव नहीं होगा तो द्रव्यकर्म पुद्गलका परिणाम है, उसको आत्मा कैसे करेगा ? क्योंकि [आत्मा] जीवद्रव्य [स्वकं भावं] अपने भावकर्मको [मुक्त्वा] छोड़कर [अन्यत्] अन्य [किंचित् अपि] कुछ भी परद्रव्यसंबंधी भावको [न करोति] नहीं करता है। भावार्थ—सिद्धांतमें

भवति। न च जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते। ततः पारिशेष्येण द्रव्यकर्मणः कर्त्ताऽऽपद्यते। तत्तु कथं ? यतो निश्चयनयेनात्मा स्वभावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोति ॥५९॥

पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धांतोऽयम्;—

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता, ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥६०॥

भावः कर्मनिमित्तः कर्म पुनर्भावकारणं भवति।
न तु तेषां खलु कर्त्ता न विना भूतास्तु कर्त्तारं ॥६०॥

व्याख्याने पुनरत्रैव पूर्वपक्षोऽत्रैव परिहारो द्वितीयगाथायां स्थितपक्ष एव। कथमिति चेत्। पूर्वोक्तप्रकारेणात्मा कर्मणां कर्ता न भवतीति दूषणे दत्ते सति सांख्यमतानुसारिशिष्यो वदति। "अकर्ता निर्गुणः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽक्रियः। अमूर्त्तश्चेतनो भोक्ता जीवः कपिलशासने ॥" इति वचनादस्माकं मते आत्मनः कर्माकर्तृत्वं भूषणमेव न दूषणं। अत्र परिहारः। यथा शुद्धनिश्चयेन रागाद्यकर्तृत्वमात्मनः तथा यद्यशुद्धनिश्चयेनाप्यकर्तृत्वं भवति तदा द्रव्यकर्मबंधाभावस्तदभावे संसाराभावः संसाराभावे सर्वदैव मुक्तप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इत्यभिप्राय ॥५९॥

एवं प्रथमव्याख्याने पूर्वपक्षद्वारेण द्वितीयव्याख्याने पुनः पूर्वपक्षपरिहारद्वारेणेति गाथा गता। अथ पूर्वसूत्रे आत्मन कर्माकर्तृत्वे सति दूषणरूपेण पूर्वपक्षस्तस्य परिहारं ददाति द्वितीयव्याख्यानपक्षे

कार्यकी उत्पत्तिके लिये दो कारण कहे हैं। एक 'उपादान' और दूसरा 'निमित्त'। द्रव्यकी शक्तिका नाम उपादान है। सहकारी कारणका नाम निमित्त है। जैसे घटकार्यकी उत्पत्तिके लिये मृत्तिकाकी शक्ति तो उपादान कारण है और कुम्भकार दंडचक्रादि निमित्त कारण हैं। इससे निश्चय करके मृत्तिका (मिट्टी) घटकार्यकी कर्त्ता है। व्यवहारसे कुम्भकार कर्त्ता है। क्योंकि निश्चयसे तो कुम्भकार अपने चेतनमयी घटाकर परिणामोंका ही कर्ता है। व्यवहारसे कुम्भकार घटके परिणामोंका कर्त्ता है। जहाँ उपादानकारण है, वहाँ निश्चयनय है और जहाँ निमित्तकारण है वहाँ व्यवहारनय है। और यदि यों कहा जाय कि चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता सर्वथा प्रकार निश्चयनयसे घट ही है कुम्भकार नहीं है, तो अचेतन घट चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता कैसे होगा ? चैतन्यद्रव्य अचेतन परिणामोंका कर्त्ता होता है, अचेतनद्रव्य चैतन्यपरिणामोंका कर्त्ता नहीं होता। वैसें ही आत्मा और कर्मोंमें उपादान निमित्तका कथन जानो। इस कारण शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि यदि सर्वथा प्रकार द्रव्यकर्म ही भावकर्मोंका कर्त्ता माना जाय तो आत्मा अकर्त्ता हो जायगा। द्रव्यकर्मको करनेके लिये फिर निमित्त कौन होगा ? इस कारण आत्माके भावकर्मोंका निमित्त पाकर द्रव्यकर्म होता है। द्रव्यकर्मसे संसार होता है। आत्मा द्रव्यकर्म कर्ता नहीं है, क्योंकि अपने भावकर्मके विना और परिणामोंका कर्त्ता आत्मा कदापि नहीं होता ॥५९॥

व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्त्ता। निश्चयेन तु न जीवभावानां कर्म कर्तृ, न कर्मणो जीवभावः। न च ते कर्त्तारमंतरेण संभूयते। यतो निश्चयेन जीवपरिणामानां जीवः कर्त्ता, कर्मपरिणामानां कर्म कर्तृ इति ॥६०॥

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥६१॥

स्थितपक्षं दर्शयति;—भावो निर्मलचिज्ज्योतिःस्वभावाच्छुद्धजीवास्तिकायात्प्रतिपक्षभूतो भावो मिथ्यात्वरागादिपरिणामः। स च किंविशिष्टः ? **कम्मणिमित्त** कर्मोदयरहिताच्चैतन्यचमत्कारमात्रात्परमात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतं यदुदयागतं कर्म तन्निमित्तं यस्य स भवति कर्मनिमित्तः **कम्मं पुण** ज्ञानावरणादिकर्मरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वादिलक्षणं यद्भावि द्रव्यकर्म पुनः। तत्कथंभूतं ? **भावकारणं हवदि** निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिभावात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ रागादिभावः स कारणं यस्य तद्भावकरणं भवति **ण दु** नैव तु पुनः **तेसिं** तयोर्जीवगतरागादिभावद्रव्यकर्मणोः। किं नैव ? **कत्ता** परस्परोपादानकर्तृत्वं खलु स्फुटं **ण विणा** नैव विना [१]**भूदा दु** भूते संजाते तु पुनस्ते द्रव्यभावकर्मणी द्वे। कं विना ? **कत्तारं** उपादानकर्तारं विना किंतु जीवगतरागादिभावानां जीव एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मणां कर्मवर्गणायोग्यपुद्गल एवेति। द्वितीयव्याख्याने तु यद्यपि जीवस्य शुद्धनयेनाकर्तृत्वं तथापि विचार्यमाणमशुद्धनयेन कर्तृत्वं स्थितमिति भावार्थः ॥६०॥

एवं पूर्वगाथायां प्रथमव्याख्यानपक्षे तत्र पूर्वपक्षोत्र पुनरुत्तरमिति गाथाद्वयं गतं। अथैव

आगे शिष्यके इस प्रश्नका उत्तर कहा जाता है;—[भावः] औदयिकादि भाव [**कर्मनिमित्तः**-कर्मका निमित्त पाकर होते हैं [**पुनः**] फिर [**कर्म**] ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म [**भावकारणं**] औदयिकादि भावकर्मोंका निमित्त [**भवति**] होता है [**तु**] और [**तेषां**] उन द्रव्यकर्म-भावकर्मोंका [**खलु**] निश्चयसे [**कर्त्ता न**] आपसमें द्रव्य कर्ता नहीं है। न पुद्गल भावकर्मका कर्त्ता है और न जीव द्रव्यकर्मका कर्त्ता है [**तु**] और वे द्रव्यकर्म भावकर्म [**कर्त्तारं विना**] कर्त्ताके विना [**नैव**] निश्चयसे नहीं [**भूताः**] हुये हैं। अर्थात् वे द्रव्य-भावकर्म कर्त्ताके विना भी नहीं हुये। **भावार्थ**—निश्चयनयसे जीवद्रव्य अपने चिदात्मक भावकर्मोंका कर्त्ता है और पुद्गलद्रव्य भी निश्चयसे अपने द्रव्यकर्मका कर्त्ता है। व्यवहारनयकी अपेक्षासे जीव द्रव्यकर्मके विभावभावके कर्त्ता हैं। और द्रव्यकर्म जीवके विभावभावोंके कर्त्ता हैं। इस प्रकार उपादान निमित्त कारणके भेदसे जीवकर्मका कर्तृत्व निश्चय-व्यवहार नयोंसे आगम प्रमाणसे जान लेना चाहिये। शिष्यने जो पूर्व गाथामें प्रश्न किया था, गुरुने इसप्रकार उसका समाधान किया है ॥६०॥

आगे फिर भी दृढ़ कथनके निमित्त आगमप्रमाण दिखाते हैं कि निश्चयसे जीवद्रव्य अपने

---

१. भावकर्मणी अत्र द्विवचनम्।

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्त्ता स्वकस्य भावस्य ।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम् ॥६१॥

निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥६१॥

अत्र निश्चयेनाभिन्नकारकत्वात् कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम्;—

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६२॥

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानं ।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन ॥६२॥

कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कंधरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं कर्मत्व-

---

तदेव व्याख्यानमागमसंवादेन दृढयति;—कुव्वं कुर्वाणः । कं ? **सगं सहावं** स्वकं स्वभावं चिद्रूपं । अत्र यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानादिशुद्धभावाः स्वभावा भण्यंते तथापि कर्मकर्तृत्वप्रस्तावादशुद्धनिश्चयेन रागादयोपि स्वभावा भण्यंते, तान् कुर्वन् सन् **अत्ता कत्ता सगस्स भावस्य** आत्मा कर्ता स्वकीयभावस्य **ण हि पोग्गलकम्माणं** नैव पुद्गलकर्मणां हु स्फुटं निश्चयनयेन कर्ता **इदि जिणवयणं मुणेदव्वं** इति जिनवचनं मंतव्यं ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यशुद्धभावानां कर्तृत्वं स्थापितं तथापि ते हेयास्तद्विपरीता अनंतसुखादिशुद्धभावा उपादेया इति भावार्थः ॥६१॥

इत्यागमसंवादरूपेण गाथा गता । अथ निश्चयेनाभेदषट्कारकीरूपेण कर्मपुद्गलः स्वकीयस्वरूपं करोति जीवोपि तथैवेति प्रतिपादयति,—**कम्मंपि सयं** कर्मकर्तृ स्वयमपि स्वयमेव **कुव्वदि** करोति । किं करोति ? **सम्ममप्पाणं** सम्यग्यथा भवत्यात्मानं द्रव्यकर्मस्वभावं । केन कारणभूतेन ? **सगेण भावेण** स्वकीयस्वभावेनाभेदषट्कारकीरूपेण **जीवोवि य तारिसओ** जीवोपि च तादृशः । केन कृत्वा । **कम्मसहावेण भावेण** कर्मस्वभावेनाशुद्धभावेन रागादिपरिणामेनेति । तथाहि—कर्मपुद्गलः

भावकर्मोंका ही कर्ता है पुद्गलकर्मोंका कर्त्ता नहीं है;—[स्वकं] आत्मीक [स्वभावं] परिणामको [कुर्वन्] करता हुआ [आत्मा] जीवद्रव्य [स्वकस्य] अपने [भावस्य] परिणामोंका [कर्त्ता] करनेवाला होता है । [पुद्गलकर्मणां] पुद्गलमयी द्रव्यकर्मोंका कर्ता [हि] निश्चयसे [न] नहीं है [इति] इस प्रकार [जिनवचनं] जिनेन्द्र भगवानकी वाणी [ज्ञातव्यं] जानो । भावार्थ—आत्मा निश्चयसे अपने भावोंका कर्त्ता है, परद्रव्यका कर्त्ता नहीं है ॥६१॥

आगे निश्चयनयसे उपादानकारणकी अपेक्षा कर्म अपने स्वरूपका कर्त्ता है, ऐसा कथन करते हैं;—[कर्म] कर्मरूप परिणत पुद्गलस्कंध [अपि] निश्चयसे [स्वेन स्वभावेन] अपने स्वभावसे

गमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वंत् प्राप्यकर्मत्वपरिणामरूपेण कर्मतां कलयत् पूर्वभावव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालंबनादुपात्तापादानत्वमुपजायमानपरिणामरूपकर्मणा-श्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वमाधीयमानपरिणामाधारत्वद्गृहीताधिकरणत्वं स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकांतरमपेक्षते। एवं जीवोऽपि भावपर्यायेण प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो भावपर्यायगमनशक्तिरूपेण करणतामात्म-सात्कुर्वन्, प्राप्यभावपर्यायरूपेण कर्मतां कलयन्, पूर्वभावपर्यायव्यपायेऽपि ध्रुवत्वा-लंबनादुपात्तापादानत्वः, उपजायमानभावपर्यायरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसं-प्रदानत्वः, आधीयमानभावपर्यायाधारत्वाद्गृहीताधिकरणत्वः स्वयमेव षट्कारकी-रूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकांतरमपेक्षते। अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति ॥६२॥

कर्ता कर्मपुद्गलं कर्मतापन्नं कर्मपुद्गलेन करणभूतेन कर्मपुद्गलाय निमित्तं कर्मपुद्गलात्सकाशात्कर्म-पुद्गलेऽधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण परिणममानः कारकांतरं नापेक्षते, तथा जीवोपि आत्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानः कारकांतरं नापेक्षते। अयमत्र भावार्थः। यथैवाशुद्ध-षट्कारकीरूपेण परिणममानः सन्नशुद्धमात्मानं करोति तथैव शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठान-रूपेणाभेदषट्कारकीभावेन परिणममानः शुद्धमात्मानं करोतीति ॥६२॥

[सम्यक्] यथार्थ—जैसेका तैसा [स्वकं] अपने [आत्मानं] स्वरूपको [करोति] करता है [च] फिर [जीवः अपि] जीव पदार्थ भी [कर्मस्वभावेन] कर्मरूप [भावेन] भावोंसे [तादृशकः] जैसे द्रव्यकर्म आप अपने स्वरूपके द्वारा अपना ही कर्त्ता है वैसे ही आप अपने स्वरूप द्वारा आपको करता है। भावार्थ—जीव और पुद्गलमें अभेद षट्कारक हैं, सो विशेषतासे दिखाये जाते हैं। कर्मयोग्य पुद्गल-स्कंधको करता है इस कारण पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है। ज्ञानावरणादि परिणाम कर्मको करते हैं इस कारण पुद्गलद्रव्य कर्मकारक भी है। कर्मभाव परिणमनको समर्थ ऐसी अपनी स्वशक्तिसे परिणमित होता है इस कारण वही पुद्गलद्रव्य करणकारक भी है। और अपना स्वरूप आपको ही देता है इसलिये संप्रदाना है। आपसे आपको करता है इस प्रकार आपही अपादानकारक है। अपने ही आधारसे अपने परिणामको करता है इस कारण आपही अधिकरणकारक है। इसप्रकार पुद्गलद्रव्य आप षट्कारकरूप परिणमित होता है, अन्य द्रव्यके कर्तृत्वको निश्चयसे नहीं चाहता है। इस प्रकार जीव द्रव्य भी अपने औदयिकादि भावोंसे षट्कारकरूप होकर परिणमित होता है और अन्य द्रव्यके कर्तृत्वको नहीं चाहता है। इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि न तो जीव कर्मका कर्त्ता है और न कर्म जीवका कर्त्ता है ॥६२॥

---

१ अन्यषट्कारकाणि न वांछते. २ रागद्वेषरूपेण भावकर्मणा. ३ निश्चयतः।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं ।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥६३॥

कर्म कर्म करोति यदि स आत्मा करोत्यात्मानं ।
कथं तस्य फलं भुङ्क्ते आत्मा कर्म च ददाति फलं ॥६३॥

कर्मजीवयोरन्योन्याकर्तृत्वेऽन्यदत्तफलान्योपभोगलक्षणदूषणपुरःसरः पूर्वपक्षोऽयम् ॥६३॥

अथ सिद्धांतसूत्राणि;—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहमेहिं वादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥६४॥

एवमागमसंवादरूपेणाभेदषट्कारकीरूपेण च स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं । इति समुदायेन गाथाषट्केन तृतीयांतरस्थलं समाप्तं । अथ पूर्वोक्तप्रकारेणाभेदषट्कारकीव्याख्याने कृते सति निश्चयनयेनेदं व्याख्यानं कृतमिति नयविचारमजानन्नेकांतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति;—**कम्मं** कर्म कर्तृ **कम्मं कुव्वदि जदि** यद्येकांतेन जीवपरिणामनिरपेक्षं सद्द्रव्यकर्म करोति "**जदि**" **सो अप्पा करेदि अप्पाणं** यदि च स आत्मात्मानमेव करोति न च द्रव्यकर्म **किह तस्स फलं भुंजदि** कथमेतस्याकृतकर्मणः फलं भुंक्ते । स कः । **अप्पा** आत्मा कर्ता **कम्मं च देदि फलं** जीवेनाकृतं कर्म च कर्तृ कथमात्मने ददाति फलं न कथमपीति ॥६३॥

आगे कर्म और जीवोंका अन्य कोई कर्त्ता है और इनको अन्य जीवद्रव्य फल देता है, ऐसा जो दूषण है, उसके लिये शिष्य प्रश्न करता है—[यदि] यदि [कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म-समूह [कर्म] अपने परिणामको [करोति] करता है और यदि [सः] वह संसारी [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मानं] अपने स्वरूपको [करोति] करता है [तदा] तो [तस्य] उस कर्मका [फलं] उदय अवस्थाको प्राप्त हुआ जो फल उसको [आत्मा] जीवद्रव्य [कथं] किस प्रकार [भुङ्क्ते] भोगता है ? [च] और [कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म [फलं] अपने विपाकको [कथं] कैसे [ददाति] देता है ? भावार्थ—यदि कर्म अपने कर्मस्वरूपका कर्त्ता है और आत्मा अपने स्वरूपका कर्त्ता है तो आत्मा जड़स्वरूप कर्मको कैसे भोगेगा ? और कर्म चैतन्यस्वरूप आत्माको फल कैसे देगा ? निश्चयनयकी अपेक्षा किसी प्रकार न तो कोई कर्म भोगता है और न भुगतवाता है, ऐसा शिष्यने प्रश्न किया, उसका गुरु समाधान करते हैं कि—आप ही जब आत्मा रागी द्वेषी होकर अनादि अविद्यासे परिणमित होता है, तब परद्रव्य संबंधी सुख दुःख मान लेता है और कर्म फल देता है ऐसा कहता है ॥६३॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चानंतानंतैर्विविधैः ॥६४॥

कर्मयोग्यपुद्गला अञ्जनचूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोकव्यापित्वाद्यत्रात्मा तत्रानानीता एवावतिष्ठंत इत्यत्रोक्तम् ॥६४॥

अन्याकृतकर्मसंभूतिप्रकारोक्तिरियम्;—

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥६५॥

चतुर्थस्थले पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता । अथ परिहारमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तत्र गाथासु सप्तसु मध्ये पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वमुख्यत्वेन "ओगाढगाढ" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन च "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं बंधप्रभुत्वेन मोक्षप्रभुत्वेन च "एवं कत्ता भोक्ता" इत्यादि गाथाद्वयं । एवं समुदायेन परिहारगाथासूत्राणि सप्त । तद्यथा । यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञानाद्यनंतगुणपरिणतैः सूक्ष्मजीवैर्निरंतरं लोकोभृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपीति निरूपयति;—ओगाढगाढणिचिदो अवगाढगाढनिचितः यथा पृथ्वीकायिकादिपंचविधसूक्ष्मस्थावरैरंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेनावगाढगाढरूपेण नैरंतर्येण निचितो भृतः । कोऽसौ ? लोगो लोकः पोग्गलकायेहि तथा पुद्गलकायैश्च । कथं ? सव्वदो सर्वप्रदेशेषु । कथंभूतैः पुद्गलकायैः ? सुहुमेहि बादरेहि य सूक्ष्मैर्दृष्टयगोचरैर्बादरैर्दृष्टिविषयैश्च । कतिसंख्योपेतैः ? अणंताणंतेहिं अनंतानंतै । किंविशिष्टैः ? विविहेहिं विविधैरंतर्भेदेन बहुभेदैरिति । अत्र कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यत्रात्मा तिष्ठति तत्रानानीता एव पूर्वं तिष्ठन्ति बंधकाले पश्चादागमिष्यंत्येव । यद्यपि पूर्वं ते तत्रात्मावगाढगाढक्षेत्रे क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठन्ति तथापि ते हेयास्तेभ्यो भिन्नः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः ॥६४॥

आगे शिष्यने जो यह प्रश्न किया है उसका विशेष कथन किया जाता है। अब पहिले यह कहते हैं कि कर्मयोग्य पुद्गल समस्त लोकमें भरपूर होकर रह रहे हैं;—[लोकः] समस्त त्रैलोक्य [सर्वतः] सब जगह [पुद्गलकायः] पुद्गलस्कंधोंके द्वारा [अवगाढगाढनिचितः] अतिशय भरपूर गाढा भरा हुआ है । जैसे कज्जलकी कज्जलदानी अंजनसे भरी होती है उसी प्रकार सर्वत्र पुद्गलोंसे लोक भरपूर रहता है । कैसे हैं पुद्गल ? [सूक्ष्मैः] अतिशय सूक्ष्म हैं [च] तथा [बादरैः] अतिशय बादर हैं। फिर कैसे हैं पुद्गल ? [अनंतानंतैः) अपरिमाण संख्याको लिये हुये हैं । फिर कैसे हैं पुद्गल ? (हि विविधैः) निश्चयसे कर्मपरमाणु स्कंध आदि अनेक प्रकारके हैं ॥६४॥

---

१. 'समुद्गकः' इत्युक्ते 'संपुटकः' इत्यर्थो भवति; तथाचोक्तममरकोशे नृवर्गे "समुद्गकः संपुटकः" इति । अञ्जनवर्णेन मर्दिताञ्जनेन यथा समुद्गकः संपुटकः कज्जलधरसंभृतो भवति तथा षड्द्रव्यैर्लोकः संभृतोऽस्तीति भावः ।

आत्मा करोति स्वभावं तत्र गताः पुद्गलाः स्वभावैः ।
गच्छन्ति कर्मभावमन्योन्यावगाहावगाढाः ॥६५॥

आत्मा हि संसारावस्थायां पारिणामिकचैतन्यस्वभावमपरित्यजन्नेवानादिबंधनबद्धत्वादनादिमोहरागद्वेषस्निग्धैरविशुद्धैरेव भावैर्विवर्तते । स खलु यत्र यदा मोहरूपं, रागरूपं वा स्वस्य भावमारभते, तत्र तदा तमेव निमित्तीकृत्य जीवप्रदेशेषु परस्परावगाहेनानुप्रविष्टाः स्वभावैरेव पुद्गलाः कर्मभावमापद्यंत इति ॥६५॥

अथात्मनो मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला निश्चयेनोपादानरूपेण स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमंतीति प्रतिपादयति;—**अत्ता** आत्मा **कुणदि** करोति । कं करोति ? **सहावं** स्वभावं रागद्वेपमोहसहितं परिणामं । ननु रागद्वेषमोहरहितो निर्मलचिज्ज्योतिःसहितश्च वीतरागानंदरूपः स्वभावपरिणामो भण्यते रागादिविभावपरिणामः कथं स्वभावशब्देनोच्यत इति परिहारमाह-वंधप्रकरणवशादशुद्धनिश्चयेन रागादिभावपरिणामोपि स्वभावो भण्यते इति नास्ति दोषः । **तत्थ गया** तत्रात्मशरीरावगाढक्षेत्रे गताः स्थिताः । के ते ? **पोग्गला** कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंदाः **गच्छंति कम्मभावं** गच्छन्ति परिणमन्ति कर्मभावं द्रव्यकर्मपर्यायं । कैः करणभूतैः ? **सहावेहिं** निश्चयेन स्वकीयोपादानकारणैः । कथं गच्छन्ति ? **अण्णोण्णागाहं** अन्योन्यावगाहसंबंधो यथा भवति । कथंभूताः संतः ? **अवगाढा** क्षीरनीरन्यायेन संश्लिष्टा इत्यभिप्रायः ॥६५॥

अथ कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यथा स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति तथा दृष्टांतमाह;—**जह**

आगे कहते हैं कि अन्यसे कर्मकी उत्पत्ति नहीं है । जब रागादि भावोंसे आत्मा परिणमित होता है तव पुद्गलका वंध होता है । [आत्मा] जीव [स्वभावं] अशुद्ध रागादि विभाव-परिणामोंको [करोति] करता है [तत्र गताः पुद्गलाः] जहाँ जीवद्रव्य रहता है वहाँ वर्गणारूप पुद्गल रहते हैं, वे [स्वभावैः] अपने परिणामोंके द्वारा [कर्मभावं] ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप भावको [गच्छन्ति] प्राप्त होते हैं । कैसे हैं वे पुद्गल ? [अन्योन्यावगाहावगाढाः] परस्पर एक क्षेत्र अवगाहना करके अतिशय गाढे भर रहे हैं । **भावार्थ**—यह आत्मा संसार अवस्थामें अनादि कालसे लेकर परद्रव्यके संवंधसे अशुद्ध चेतनात्मक भावोंसे परिणमित होता है । वही आत्मा जब मोह-राग-द्वेषरूप अपने विभाव भावोंसे परिणमित होता है, तब इन भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल अपनी ही उपादान शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मभावोंसे परिणमित होता है, तत्पश्चात् जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाहनारूप वंधते हैं । इससे यह वात सिद्ध हुई कि पूर्व वंधे हुये द्रव्यकर्मोंका निमित्त पाकर जीव अपनी अशुद्ध चैतन्यशक्तिके द्वारा रागादि भावोंका कर्त्ता होता है तब पुद्गलद्रव्य रागादिभावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मोंका कर्त्ता होता है । परद्रव्यसे निमित्त-नैमित्तिक भाव हैं, उपादान अपने आप हैं ॥६५॥

आगे कर्मोंकी विचित्रताके उपादानकारणसे अन्यद्रव्य कर्त्ता नहीं है पुद्गल ही है ऐसा कथन

१. आत्मा. २ रागद्वेषरूपमात्मभावम् ।

अनन्यकृतत्वं कर्मणां वैचित्र्यस्यात्रोक्तम्;—

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती ।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥६६॥

यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंधनिर्वृत्तिः ।
अकृता परैर्दृष्टा तथा कर्मणां विजानीहि ॥६६॥

यथा हि स्वयोग्यचंद्रार्कप्रभोपलंभे संध्याभ्रेंद्रचापपरिवेषप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः पुद्गलस्कंधविकल्पाः कर्त्रंतरनिरपेक्षा एवोत्पद्यंते तथा स्वयोग्यजीवपरिणामोपलंभे ज्ञानावरणप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः कर्माण्यपि कर्त्रंतरनिरपेक्षाण्येवोत्पद्यंते इति ॥६६॥

निश्चयेन जीवकर्मणोस्वैककर्तृत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुध्यत इत्यत्रोक्तम्;—

जीवा पुग्गलकाया अण्णाण्णागाढगहणपडिबद्धा ।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥६७॥

पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंदणिप्पत्ती अकदा परेहिं दिट्ठा यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंदनिष्पत्तिरकृता परैर्दृष्टा तह कम्माणं वियाणाहि तथा कर्मणामपि विजानीहि, हे शिष्य त्वमिति। तथाहि। यथा चंद्रार्कप्रभोपलंभे सति अभ्रसंध्यारागेंद्रचापपरिवेपादिभिर्बहुभिः प्रकारैः परेणाकृता अपि स्वयमेव पुद्गलाः परिणमन्ति लोके तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणभावनारूपाभेदरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररहितानां जीवानां मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला जीवेनोपादानकारणभूतेनाकृता अपि स्वकीयोपादानकारणैः कृत्वा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिरूपैर्बहुभेदैः परिणमन्ति इति भावार्थः ॥६६॥

करते हैं;—[यथा] जैसे [पुद्गलद्रव्याणां] पुद्गलद्रव्योंके [बहुप्रकारैः] नानाप्रकारके भेदोंसे (स्कंधनिवृत्तिः] स्कंधोंकी परिणति [दृष्टा] देखी जाती है। कैसी है स्कंधोंकी परिणति ? [परैः] अन्य द्रव्योंके द्वारा [अकृता] नहीं की हुई अपनी शक्तिसे उत्पन्न हुई है [तथा] वैसेही [कर्मणां] कर्मोंकी विचित्रता [विजानीहि] जानो। भावार्थ—जैसे चन्द्रमा या सूर्यकी प्रभाका निमित्त पाकर संध्याके समय आकाशमें अनेक वर्ण, बादल, इन्द्रधनुष, मंडलादिक नाना प्रकारके पुद्गलस्कंध अन्यकर विना किये ही अपनी शक्तिसे अनेक प्रकार होकर परिणमित होते हैं, वैसेही जीवद्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणायें अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मदशारूप होकर परिणमित होती हैं ॥६६॥

---

१. अन्यकर्तारं विना। २ उपदानरूपेण निजनिजस्वरूपकर्तृत्वेऽपि.

जीवाः पुद्गलकायाः अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः ।
काले वियुज्यमानाः सुखदुःखं ददति भुञ्जन्ति ॥६७॥

जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात्पुद्गलस्कंधाश्च स्वभावस्निग्धत्वाद्बंधावस्थायां परमाणुद्वंद्वानीवान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठंते । यदा तु ते[1] परस्परं वियुज्यंते, तदोदितप्रच्यवमाना निश्चयेन सुखदुःखरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकायाः सुखदुःखरूपं फलं प्रयच्छन्ति । जीवाश्च निश्चयेन निमित्तमात्रभूतद्रव्यकर्मनिर्वर्तितसुखदुःखस्वरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेण

एवं पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथाकृतकर्मणः कथं फलं भुंक्ते जीव इति योऽसौ पूर्वपक्षः कृतस्तत्र फलभोक्तृत्वविषये नयविभागेन युक्ति दर्शयति;—**जीवा पोग्गलकाया** जीवकायाः पुद्गलकायाश्च । कथंभूताः ? **अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा** अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः स्वकीयस्वकीयरागादिस्निग्धरूक्षादिपरिणामनिमित्तेन पूर्वमेवान्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः संतः तिष्ठन्ति तावत् **काले विजुज्जमाणा** उदयकाले स्वकीयफलं दत्त्वा वियुज्यमाना निर्जरां गच्छंतः । किं कुर्वन्ति ? **दिंति** निर्विकारचिदानंदैकस्वभावजीवस्य मिथ्यात्वरागादिभिः सहैकत्वरुचिरूपं मिथ्यात्वं तैरेव सहैकत्वप्रतिपत्तिरूपं मिथ्याज्ञानं तदैवैकत्वपरिणतिरूपं मिथ्याचारित्रमिति मिथ्यात्वादित्रयपरिणतजीवानां पुद्गलाः कर्तारो ददति प्रयच्छंति । किं ददति ? **सुहदुक्खं** अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विपरीतं परमाकुलत्वोत्पादकमभ्यंतरे निश्चयेन हर्षविषादरूपं व्यवहारेण पुनर्बहिर्विषये विविधेष्टानिष्टेन्द्रियविषयप्राप्तिरूपं कटुकविषरसास्वादस्वभावं सांसारिकसुख-

---

आगे निश्चयनयकी अपेक्षा यद्यपि जीव और पुद्गल अपने भावोंके कर्त्ता हैं. तथापि व्यवहारसे कर्मद्वारा दिये हुये सुखदुःखके फलको जीव भोगता है, यह कथन भी विरोधी नहीं है, ऐसा कहते हैं;—[जीवाः] जीवद्रव्य [पुद्गलकायाः] पुद्गलवर्गणाके पुञ्ज [अन्योऽन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः] परस्पर अनादि कालसे लेकर अत्यंत सघन मिलापसे बंध अवस्थाको प्राप्त हुये हैं । वे ही जीव पुद्गल [काले] उदयकाल अवस्थामें [वियुज्यमानाः अपना रस देकर खिरते हैं तब [सुखदुःखं] साता असाता [ददति] देते हैं और [भुञ्जन्ति] भोगते हैं । **भावार्थ**—जीव पूर्वबंधसे मोहरागद्वेषरूप भावोंसे स्निग्धरूक्ष हैं और पुद्गल अपने स्वभावसे ही स्निग्धरूक्ष परिणामों द्वारा प्रवर्तित होता है । आगमप्रमाणमें गुण अंशसे जैसी कुछ बंध अवस्था कही गई है, उस ही प्रकार अनादिकालसे लेकर आपसमें बंध रहे हैं । और जब फलकाल आता है तब पुद्गल कर्मवर्गणायें जीवके जो बंध रही हैं वे सुखदुःखरूप होती हैं । निश्चयसे आत्माके परिणामोंको निमित्तमात्र सहाय है । व्यवहारसे शुभअशुभ जो बाह्य पदार्थ हैं उनको भी कर्म निमित्त कारण हैं, सुखदुःख-फलको देते हैं । और जीव

१, जीवपुद्गलस्कंधाः ।

द्रव्यकर्मोदयापादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वात्तथाविधं फलं भुञ्जते इति। एतेन जीवस्य भोक्तृत्वगुणोऽपि व्याख्यातः ॥६७॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्;—

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स ।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥६८॥

तस्मात्कर्म कर्ता भावेन हि संयुतमथ जीवस्य ।
भोक्ता तु भवति जीवश्चेतकभावेन कर्मफलं ॥६८॥

तत् एतत् स्थितं निश्चयेनात्मनः-कर्म-कर्तृ-व्यवहारेण जीवभावस्य। जीवोऽपि निश्चयेनात्मभावस्य कर्ता व्यवहारेण कर्मण इति। यथात्रोभयनयाभ्यां कर्म-कर्तृ, तथैकेनापि नयेन न भोक्तृ। कुतः? चैतन्यपूर्वकानुभूतिसद्भावाभावात्। ततश्चेत-

---

दुःखं भुंजंति वीतरागपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादभोजनरहिता जीवा निश्चयेन भावरूपं व्यवहारेण द्रव्यरूपं भुजंते सेवंत इत्यभिप्रायः ॥६७॥

एवं भोक्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता। अथ कर्तृत्वभोक्तृत्वोपसंहारः कथ्यते;—**तम्हा** यस्मात्पूर्वोक्तनयविभागेन जीवकर्मणोः परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्ति तस्मात्कारणात् **कम्मं कत्ता** कर्म कर्तृ भवति। केषां? निश्चयेन स्वकीयभावानां, व्यवहारेण रागादिजीवानां, जीवोपि व्यवहारेण द्रव्यकर्मभावानां निश्चयेन स्वकीयचेतकभावानां। कथंभूतं सत्कर्म स्वकीयभावानां कर्तृ भवति? **संजुदा** संयुक्तं अध अथो। केन संयुक्तं? **भावेण** मिथ्यात्वरागादिभावेन परिणामेन **जीवस्य** जीवस्य जीवोपि कर्मभावेन संयुक्त इति **भोक्ता दु** भोक्ता पुनः **हवदि** भवति। कोसौ। **जीवो** निर्विकारचिदानंदैकानुभूतिरहितो जीवः। केन कृत्वा। **चेदगभावेण** परमचैतन्यप्रकाशविपरीतेनाशुद्धचेतक-

---

अपने निश्चयसे तो सुखदुःखरूप परिणामोंके भोक्ता हैं और व्यवहारसे द्रव्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुये जो शुभ-अशुभ पदार्थ उनको भोगते हैं। जीवमें भोगनेका गुण है। कर्ममें यह गुण नहीं है, क्योंकि कर्म जड़ है। जड़में अनुभवनशक्ति नहीं है ॥६७॥

आगे कर्तृत्व-भोक्तृत्वका व्याख्यान संक्षेपमात्र कहा जाता है;—[तस्मात्] उस कारणसे [हि] निश्चयसे [कर्म] द्रव्यकर्म [कर्ता] अपने परिणामोंका कर्ता है। कैसा है द्रव्यकर्म? [जीवस्य] आत्मद्रव्यका [भावेन] अशुद्ध चेतनात्मपरिणामोंसे [संयुतं) संयुक्त है। भावार्थ—द्रव्यकर्म अपने ज्ञानावरणादिक परिणामोंका उपादानरूप कर्त्ता है। और आत्माके अशुद्ध चेतनात्मक परिणामोंको निमित्त मात्र है। इस कारण व्यवहारसे जीव भावोंका भी कर्त्ता कहा जाता है [अथ) फिर इसी प्रकार जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका उपादानरूप कर्ता है। ज्ञानावरणादिक द्रव्य-

१. स्वकीयस्य।

नत्वात्केवल एव जीवः कर्मफलभूतानां कथंचिदात्मनः सुखदुःखपरिणामानां कथंचिदिष्टानिष्टविषयाणां भोक्ता प्रसिद्ध इति ॥६८॥

कर्मसंयुक्तमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत्; —

एवं कत्ता भोत्ता होज्झं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं ।
हिंडति पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥६९॥

एवं कर्त्ता भोक्ता भवन्नात्मा स्वकैः कर्मभिः ।
हिंडते पारमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥६९॥

एवमयमात्मा प्रकटितप्रभुत्वशक्तिः स्वकैः कर्मभिर्गृहीतकर्तृत्वभोक्तृत्वाधि-

---

भावेन । किं भोक्ता भवति ? कम्मफलं शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्नं यत्सहजशुद्धपरमसुखानुभवनफलं तस्माद्विपरीतं सांसारिकसुखदुःखानुभवनरूपं शुभाशुभकर्मफलमिति भावार्थः ॥६८॥

एवं पूर्वगाथा कर्मभोक्तृत्वमुख्यत्वेन, इयं तु गाथा कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारमुख्यत्वेनेति गाथाद्वयं गतं । अथ पूर्वं भणितमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन दर्शयति;–एवं कत्ता भोत्ता होज्जं निश्चयेन कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितोपि व्यवहारेणैवं पूर्वोक्तनयविभागेन कर्ता भोक्ता च भूत्वा। स कः ? अप्पा आत्मा । कै: कारणभूतैः ? सगेहि कम्मेहिं स्वकीयशुभाशुभद्रव्यभावकर्मभिः । एवंभूतः सन् किं करोति ? हिंडदि हिंडते भ्रमति । कं ? संसारं निश्चयनयेनानंतसंसारव्याप्तिरहितत्वेनानंतज्ञानादिगुणाधारात्परमात्मनो विपरीतं चतुर्गतिसंसारं । पुनरपि किं विशिष्टं । पारमपारं भव्यापेक्षया

कर्मको अशुद्ध चेतनात्मक भाव निमित्तभूत हैं। इस कारण व्यवहारसे जीव द्रव्यकर्मका भी कर्त्ता है [तु] और [जीवः] आत्मद्रव्य जो है सो [चेतकभावेन] अपने अशुद्ध चेतनात्मक रागादि भावोंसे [कर्मफलं] साता असातारूप कर्मफलका [भोक्ता] भोगनेवाला [भवति] होता है। भावार्थ—जैसे जीव और कर्म निश्चय-व्यवहारनयोंके द्वारा दोनों परस्पर एक दूसरे के कर्त्ता हैं वैसे ही दोनों भोक्ता नहीं हैं। भोक्ता केवल मात्र एक जीवद्रव्य ही है, क्योंकि आप चैतन्यस्वरूप है इस कारण पुद्गलद्रव्य अचेतन स्वभावसे निश्चय व्यवहार दोनों नयोंमेंसे एक भी नयसे भोक्ता नहीं है। इस कारण जीवद्रव्य निश्चय नयकी अपेक्षा अपने अशुद्ध चेतनात्मक सुखदुःखरूप परिणामोंका भोक्ता है। व्यवहारनयसे इष्टानिष्ट पदार्थोंका भोक्ता कहा जाता है ॥६८॥

आगे कर्मसंयुक्त जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्व गुणका व्याख्यान करते हैं;—(स्वकैः) अनादि अविद्यासे उत्पन्न किये हुये अपने (कर्मभिः) ज्ञानावरणादिक कर्मोंके उदयसे (आत्मा) जीवद्रव्य (एवं) इस प्रकार (कर्त्ता) करनेवाला (भोक्ता) भोगनेवाला (भवन्) होता हुआ (पारं) भव्यकी अपेक्षासे सांत (अपारं) अभव्यकी अपेक्षासे अनंत (संसारं) पंचपरावर्त्तनरूप संसारको धारण कर अनेक स्वरूप-

कारोऽनादिमोहावच्छिन्नत्वादुपजातविपरीताभिनिवेशः प्रत्यस्तमितसम्यग्ज्ञानज्योतिः सांतमनंतं वा संसारं परिभ्रमतीति ॥६९॥

कर्मवियुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत्;—

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥७०॥

उपशांतक्षीणमोहो मार्गं जिनभाषितेन समुपगतः ।
ज्ञानानुमार्गचारी निर्वाणपुरं व्रजति धीरः ॥७०॥

अयमेवात्मा यदि जिनाज्ञया मार्गमुपगम्योपशांतक्षीणमोहत्वात्प्रहीणविपरी-

---

सपारं अभव्यापेक्षया त्वपारं। पुनरपि कथंभूतः स आत्मा ? विपरीताभि निवेशोत्पादकमोहरहितत्वेन निश्चयनयेनानंतसद्दर्शनादिशुद्धगुणोपि व्यवहारेण दर्शनचारित्रमोहसंछन्नः प्रच्छादित इत्यभिप्रायः ॥६९॥

एवं कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन गाथा गता। अथात्रापि पूर्वोक्तमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मरहितत्वं मुख्यत्वेन प्रतिपादयति;—**उवसंतखीणमोहो** उपशांतक्षीणमोहः अत्रोपशमशब्देनौपशमिकसम्यक्त्वं क्षीणशब्देन क्षायिकसम्यक्त्वं द्वाभ्यां तु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिति ग्राह्यं। **मग्गं** भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं **समुवगदो** समुपगतः प्राप्तः। केन ? **जिणभासिदेण** वीतरागसर्वज्ञभाषितेन **णाणं** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं अभेदेन तदाधारं शुद्धात्मानं वा अणु अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य ते ज्ञानगुणमात्मानं वा **मग्गचारी** पूर्वोक्तनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गचारी। एवंगुणविशिष्टो भव्यवरपुण्डरीकः **वजदि** व्रजति गच्छति। किं ? **णिव्वाणपुरं** अव्याबाधसुखाद्यनंतगुणास्पदं शुद्धात्मो-

---

से चतुर्गतिमें (हिंडते) भ्रमण करता है। कैसा है यह संसारी जीव ? **(मोहसंछन्नः)** मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप अशुद्ध परिणति द्वारा आच्छादित है। **भावार्थ**—यह जीव अपनी ही भूलसे संसारमें अनेक विभाव पर्याय धरधरकर नाचता है अर्थात् असत् वस्तुमें 'सत्' रूप मानता है। जैसे मदमत्त अगम्य पदार्थोमें प्रवृत्त होता है वैसी चेष्टा करता हुआ अपना शुद्धभाव भूल जाता है ॥६९॥

आगे कर्मसंयोगरहित जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्वगुणका व्याख्यान करते हैं;—**[उपशांतक्षीणमोहः]** अपनी फलविपाक दशारहित उपशम भावको अथवा मूलसत्तासे विनाशभावको प्राप्त हुआ है असत् वस्तुमें प्रतीतिरूप मोहकर्म जिसका ऐसा **[धीरः]** अपने स्वरूपमें निश्चल सम्यग्दृष्टी जीव **[निर्वाणपुरं]** मोक्षनगरमें **[व्रजति]** गमन करता है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव गुणस्थान-परिपाटीके क्रमसे मोहका उपशम तथा क्षय करके मुक्त होकर अनंत आत्मीक सुखका भोक्ता है। कैसा है वह सम्यग्दृष्टी जीव ? **[जिनभाषितेन मार्गं समुपगतः]** सर्वज्ञप्रणीत आगमके द्वारा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्षमार्गको प्राप्त हुआ है। फिर कैसा है ? **[ज्ञानानुमार्गचारी]** स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान-

ताभिनिवेशः समुद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिः कर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारं परिसमाप्य सम्यक्प्रकटितप्रभुत्वशक्तिर्ज्ञानस्यैवानुमार्गेण चरति, सदा विशुद्धात्मतत्त्वोपलंभनरूपमपवर्गनगरं विगाहत इति ॥७०॥

अथ जीवविकल्पा उच्यंते;—

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो त्तिलक्खणो होदि ।
चदु चंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पधाणो य ॥७१॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभङ्गसब्भावो ।
अट्ठासओ णवत्थो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥७२॥जुम्मं ।

एक एव महात्मा स द्विविकल्पस्त्रिलक्षणो भवति ।
चतुश्चंक्रमणो भणितः पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च ॥७१॥

पलंभलक्षणं निर्वाणनगरं । पुनरपि किंविशिष्टः स भव्यः ? धीरो धीरः घोरोपसर्गपरीषहकालेपि निश्चयरत्नत्रयलक्षणसमाधेरच्युतः पाण्डवादिवदिति भावार्थः ॥७०॥

इति कर्मरहितत्वव्याख्यानेन द्वितीयगाथा गता । एवं "ओगाढगाढ" इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण परिहारगाथासप्तकं गतं । इति जीवास्तिकायव्याख्यानरूपेषु प्रभुत्वादिनवाधिकारेषु मध्ये पंचभिरंतरस्थलैः समुदायेन "जीवा अणाइणिहणा" इत्याद्यष्टादशगाथाभिः कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्य यौगपद्यव्याख्यानं समाप्तं । अथ तस्यैव नवाधिकारकथितजीवास्तिकायस्य पुनरपि दशविकल्पैर्विंशतिविकल्पैर्वा विशेषव्याख्यानं करोति;—एक्को चेव महप्पा सर्वसुवर्णसाधारणेन षोडशवर्णिकगुणेन यथा सुवर्णराशिरेकः तथा सर्वजीवसाधारणकेवलज्ञानाद्यनंतगुणसमूहेन शुद्धजीवजातिरूपेण संग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा अथवा उवजुत्तो सर्वजीवसाधारणलक्षणेन केवलज्ञानदर्शनोपयोगेनोपयुक्तत्वात्परिणतत्वादेकः । कश्चिदाह । यथैकोपि चंद्रमा बहुषु जलघटेषु भिन्नभिन्नरूपो दृश्यते

मार्गमें प्रवृत्ति करता है भावार्थ—जो जीव काललब्धि पाकर अनादि अविद्याको विनाश करके यथार्थ पदार्थोंकी प्रतीतिमें में प्रवृत्त होता है, प्रगट भेदविज्ञान ज्योतिसे कर्तृत्व-भोक्तृत्वरूप अंधकारको विनाश कर आत्मीक शक्तिरूप अनंत स्वाधीन बलसे स्वरूपमें प्रवृत्त होता है । वह जीव अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त होकर मोक्ष अवस्थाको पाता है ॥७०॥

आगे जीवद्रव्यके भेद करते हैं;—[सः जीवः] वह जीवद्रव्य [महात्मा] अविनाशी चैतन्य उपयोगसंयुक्त है, इस कारण [एक एव] सामान्य नयसे एक ही है । जो जीव है सो चैतन्यस्वरूप है, इस कारण जीव एक ही कहा जाता है । वह ही जीवद्रव्य [द्विविकल्पः] ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकार भी कहा जाता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [त्रिलक्षणः] कर्मचेतना, कर्मफलचेतना,

---

१. निराकृत्य ।

षट्कापक्रमयुक्तः उपयुक्तः सप्तभङ्गसद्भावः ।
अष्टाश्रयो नवार्थो जीवो दशस्थानको भणितः ॥७२॥ युग्मम् ।

स खलु जीवो महात्मा नित्यचैतन्योपयुक्तत्वादेक एव । ज्ञानदर्शनभेदाद्द्विविकल्पः । कर्मफलकार्यज्ञानचेतनाभेदेन लक्ष्यमाणत्वात्त्रिलक्षणः । ध्रौव्योत्पादविनाशभेदेन वा । चतसृषु गतिषु चंक्रमणत्वाच्चतुश्चङ्क्रमणः । पञ्चभिः पारिणामिकौदयिकादिभिरग्रगुणैः प्रधानत्वात् पञ्चाग्रगुणप्रधानः । चतसृषु दिक्षूर्ध्वमधश्चेति भवांतरसंक्रमणषट्केनापक्रमेण युक्तत्वात् षट्कापक्रमयुक्तः । अस्तिनास्त्यादिभिः सप्तभङ्गैः सद्भावो यस्येति सप्तभङ्गसद्भावः । अष्टानां कर्मणां गुणानां वा आश्रयत्वा-

---

तथैकोपि जीवो बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरूपेण दृश्यत इति । परिहारमाह । बहुषु जलघटेषु चंद्रकिरणोपाधिवशेन जलपुद्गला एव चंद्राकारेण परिणता न चाकाशस्थचंद्रमाः । अत्र दृष्टांतमाह । यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणानां पुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणमति, यदि परिणमति तदा दर्पणस्थं मुखप्रतिबिंबं चैतन्यं प्राप्नोति न च तथा तथैकचंद्रमा अपि नानारूपेण न परिणमतीति । किं च न चैकब्रह्मनामा कोपि दृश्यते प्रत्यक्षेण यश्चंद्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः । **सो दुवियप्पो** दर्शनज्ञानभेदद्वयेन संसारिमुक्तद्वयेन भव्याभव्यभव्यद्वयेन वा स द्विविकल्प **तिलक्खणो हवदि** ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनात्रयेणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयेण द्रव्यगुणपर्यायत्रयेण वा त्रिलक्षणो भवति । **चदुसंकमो य भणिदो** यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निर्विकारचिदानंदैकलक्षणसिद्धगतिस्वभावस्तथापि व्यवहारेण मिथ्यात्वरागादिपरिणतः सन्नरकादिचतुर्गतिसंक्रमणो भणितः । **पंचग्गगुणप्पहाणो य** यद्यपि निश्चयेन क्षायिकशुद्धपारिणामिकभावद्वयलक्षणस्तथापि सामान्येनौदयिकादिपंचाग्रगुणप्रधानश्च ॥ **छक्कापक्कमजुत्तो** षट्केनापक्रमेण युक्तः अस्य वाक्यस्यार्थः कथ्यते—अपगतो विनष्टः विरुद्धक्रमः प्रांजलत्वं यत्र स भवत्यपक्रमो वक्र इति ऊर्ध्वाधोमहादिकचतुष्टयगमनरूपेण षड्विधेनापक्रमेण मरणांते युक्त इत्यर्थः । सा चैवानुश्रेणिगतिरिति । **सत्तभंगसब्भावो** स्यादस्तीत्यादि सप्तभंगीसद्भावः । **अट्ठासवो** यद्यपि निश्चयेन वीतरागलक्षणनिश्चयसम्यक्तवाद्यष्टगुणाश्रयस्तथापि व्यवहारेण ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मास्रवः **णवट्ठो**

ज्ञान चेतना इन तीन भेदोंसे संयुक्त होनेसे तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य गुण संयुक्त होनेसे तीन प्रकार भी [भवति] होता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [**चतुश्चंक्रमणा भणितः**] चार गतियोंमें परिभ्रमण करता है, इस कारण चार प्रकार भी कहा जाता है । फिर वह ही जीव [**पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च**] पांच औदयिकादि भावोंसे संयुक्त है इस कारण पांच प्रकारका भी कहा जाता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [**षट्कापक्रमयुक्तः**] छह दिशाओंमें गमन करनेवाला है अतः चार दिशायें और एक ऊपर, एक नीचा इन छह दिशाओंके भेदसे छह प्रकारका भी है । फिर वही जीव **सप्तभङ्गसद्भावः उपयुक्तः**] सप्तभङ्गी वाणीसे साधा जाता है, इस कारण सात प्रकार भी कहा जाता है । फिर वही जीव

दष्टाश्रयः । नवपदार्थरूपेण वर्तनान्नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपेषु दशसु स्थानेषु गतत्वाद्दशस्थानग इति ॥७१॥७२॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥७३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः सर्वतो मुक्तः ।
ऊर्ध्वं गच्छति शेषा विदिग्वर्ज्जां गतिं यांति ॥७३॥

यद्यपि निर्विकल्पसमाधिस्थानां निश्चयेन सर्वजीवसाधारणत्वेनाखण्डैकज्ञानरूपः प्रतिभाति तथापि व्यवहारेण नानावर्णिकागतसुवर्णवन्नवपदार्थरूप. **दह ठाणियो भणियो** यद्यपि निश्चयेन शुद्धबुद्धैकलक्षणस्तथापि व्यवहारेण पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणवनस्पतिद्वयद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियरूपदशस्थानगतः । स कः ? **जीवो** जीवपदार्थः एवं दशविकल्परूपो भवति । अथवा द्वितीयव्याख्यानेन पृथगिमानि दशस्थानानि उपयुक्तपदस्य पृथग्व्याख्याने कृते सति तान्यपि दशस्थानानि भवंतीत्युभयमेलापकेन विंशभेदः स्यादिति भावार्थः ॥७१॥७२॥

अथ मुक्तस्योर्ध्वगतिः संसारिणां मरणकाले षड्गतय इति प्रतिपादयति;--**पयडिट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधेहि सव्वदो मुक्को** प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैर्विभावरूपैः समस्तरागादिविभावरहितेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणध्यानबलेन सर्वतो मुक्तोपि **उड्ढं गच्छदि** स्वाभाविकानंतज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणाविग्रहगत्योर्ध्वं गच्छति **सेसा** शेषाः संसारिणो जीवाः **विदिसावज्जं गदिं जंति** मरणान्ते विदिग्वर्ज्यां पूर्वोक्तषट्कापक्रमलक्षणमनुश्रेणिसंज्ञां गतिं गच्छन्ति इति । अत्र गाथासूत्रे "सदसिव संखो मंडलि बुद्धो णइयाइगो य वइसेसा । ईसर मस्सरि पूरण विदूसणट्ठं कयं अट्ठं" इति

[**अष्टाश्रयः**] आठ सिद्धोंके गुण अथवा कर्म के आश्रय होनेसे आठ प्रकारका भी है । फिर वही जीव [**नवार्थः**] नौ पदार्थोंके भेदोंसे नौ प्रकारका भी है । फिर वही जीवद्रव्य [**दशस्थानकः**] पृथिवीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, प्रत्येक, साधारण, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इस प्रकार दश भेदोंसे दश प्रकार भी [**भणितः**] कहा गया है ॥७१॥७२॥

आगे कहते हैं कि जो जीव मुक्त होता है उसकी ऊर्ध्वगति होती है और जो अन्य जीव हैं वे छहों दिशाओंमें गति करते हैं । [**प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः**] प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध, इन चार प्रकारके बंधोंसे [**सर्वतः**] सर्वांग असंख्यातप्रदेशोंसे [**मुक्तः**] छूटा हुआ शुद्ध जीव [**ऊद्ध्वं**] सिद्धगतिको [**गच्छति**] जाता है । **भावार्थ**—जो जीव अष्टकर्मरहित होता है वह एक ही समयमें अपने ऊर्ध्वगतिस्वभावसे श्रेणिबद्ध प्रदेशोंके द्वारा मोक्षस्थानमें जाता है [**शेषाः**] अन्य संसारी जीव [**विदिग्वर्ज्जां**] विदिशाओं को छोड़कर अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार

बद्धजीवस्य षड्गतयः कर्मनिमित्तः। मुक्तस्याप्यूर्ध्वगतिरेका स्वाभाविकीत्यत्रोक्तम् ॥७३॥

इति जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम्। अथ पुद्‌गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम्। पुद्‌गलद्रव्यविकल्पादेशोऽयम्।

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू।
इति ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥७४॥

स्कंधाश्च स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाश्च भवन्ति परमाणवः।
इति ते चतुर्विकल्पाः पुद्‌गलकाया ज्ञातव्याः ॥७४॥

पुद्‌गलद्रव्याणि हि कदाचित् स्कंधपर्यायेण, कदाचित् स्कंधदेशपर्य्यायेण,

---

गाथोक्ताष्टमतांतरनिषेधार्थं "अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा। अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा" इति द्वितीयगाथोक्तलक्षणं सिद्धस्वरूपमुक्तमित्यभिप्रायः ॥७३॥

इति जीवास्तिकायसंबंधे नवाधिकाराणां चूलिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं ज्ञातव्यं। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्यादि नवाधिकारसूचनार्थं गाथैका, प्रभुत्वमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, जीवत्वकथनेन गाथात्रयं, स्वदेहप्रमितिरूपेण गाथाद्वयं, अमूर्तगुणज्ञापनार्थं गाथात्रयं, त्रिविधचैतन्यकथनेन गाथाद्वयं तदनंतरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयज्ञापनार्थं गाथा एकोनविंशतिः, कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा अष्टादश, चूलिकारूपेण गाथात्रयमिति सर्वसमुदायेन त्रिपंचाशद्‌गाथाभिः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकरमध्ये जीवास्तिकायनामा 'चतुर्थोतराधिकारः' समाप्तः। अथानंतरं चिदानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्भिन्ने हेयरूपे पुद्‌गलास्तिकायाधिकारे गाथादशकं भवति। तद्यथा। पुद्‌गलस्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन "खंदा य खंददेसा" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथापंचकं, तत्र पंचकमध्ये परमाणुस्वरूपकथनेन "सव्वेसिं खंदाण" मित्यादिगाथासूत्रमेकं। अथ परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणार्थं "आदेसमत्त" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं शब्दस्य पुद्‌गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनमुख्यत्वेन "सद्दो खंदप्पभवो" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारेण समयादिव्यवहारकाल-

---

दिशाओं और ऊर्ध्व तथा अधः इन छहों दिशाओंमें (**गति**) गति (**यांति**) करते हैं। **भावार्थ**—जो जीव मोक्षगामी हैं उनको छोड़कर अन्य जितने जीव हैं वे समस्त छहों दिशाओंमें ऋजु-वक्र गतिको धारण करते हैं। चार विदिशाओंमें उनकी गति नहीं होती ॥७३॥

यह जीवद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ। आगे पुद्‌गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान करते हैं, जिसमें प्रथम ही पुद्‌गलके भेद कहे जाते हैं। [**स्कंधाः**] एक पुद्‌गल पिंड तो स्कंध जातिके हैं

कदाचित् स्कंधप्रदेशपर्य्यायेण, कदाचित् परमाणुत्वेनात्र तिष्ठन्ति । नान्या गतिरस्ति। इति तेषां चतुर्विकल्पत्वमिति ॥७४॥

पुद्‌गलद्रव्यविकल्पनिर्देशोऽयम्;—

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति ।
अद्धद्धं च पदेशो परमाणू चेव अविभागी ॥७५॥

स्कंधः सकलसमस्तस्तस्य त्वर्धं भणन्ति देश इति ।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशः परमाणुश्चैवाविभागी ॥७५॥

अनंतानंतपरमाण्वारब्धोऽप्येकः स्कंधनाम पर्य्यायः । तदर्धं स्कंधदेशो नाम

मुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्या कथनेन च "णिच्चो णाणवगासो" इत्यादि सूत्रमेकं । तदनंतरं परमाणुद्रव्ये रसवर्णादिव्याख्यानमुख्यत्वेन "एयरस वण्ण" इत्यादि गाथासूत्रमेकं । एवं परमाणुद्रव्यप्ररूपणद्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं । अथ पुद्‌गलास्तिकायोपसंहाररूपेण "उवभोज्ज" इत्यादि सूत्रमेकं ।

एवं गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्‌गलाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । पुद्‌गलद्रव्यविकल्पचतुष्टयं कथ्यते;—खंदा य खंद देसा खंदपदेसा य होंति स्कंदाः स्कंददेशाः स्कंदप्रदेशाश्चेति त्रयः स्कंदा भवन्ति परमाणू परमाणवश्च भवन्ति इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा इति स्कंदत्रयं परमाणवश्चेति भेदेन चतुर्विकल्पास्ते पुद्‌गलकाया ज्ञातव्या इति । अत्रोपादेयभूतानंतसुखरूपाच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणत्वाद्धेयतत्वमिदमिति भावार्थः ॥७४॥

अथ पूर्वोक्तस्कंदादिचतुर्विकल्पानां प्रत्येकलक्षणं कथयति;—खंदं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं

[च] और [स्कंधदेशाः] दूसरे पुद्‌गलपिंड स्कंधदेश नामके हैं [च] तथा [स्कंधप्रदेशाः] एक पुद्‌गल स्कंधप्रदेश नामके हैं और एक पुद्‌गल [परमाणवः] परमाणु जातिके [भवन्ति] होते हैं । [इति] इस प्रकार [ते] वे पूर्वमें कहे हुये [पुद्‌गलकायाः] पुद्‌गलकाय [चतुर्विकल्पाः] चार प्रकारके [ज्ञातव्याः] जानने जाहिये । भावार्थ—पुद्‌गलद्रव्यका चार प्रकार परिणमन है । इन चार प्रकारके पुद्‌गल परिणामोंके सिवाय और कोई भेद नहीं है । इनके सिवाय अन्य जो कोई भेद हैं वे इन चारों भेदोंमें ही गर्भित हैं ॥७४॥

आगे इन चार प्रकार पुद्‌गलोंका लक्षण कहते हैं । [स्कंधः] पुद्‌गलकाय जो स्कंध भेद हैं सो [सकलसमस्तः] अनंत समस्त परमाणुओंका मिलकर एक पिंड होता है [तु] और [तस्य] उस पुद्‌गल स्कंधका [अर्द्धं] अर्द्धभाग [देश इति] स्कंधदेश नामका [भणंति] अरहंतदेव कहते हैं [च] फिर [अर्द्धार्द्धं] उस स्कंधके आधेका आधा चौथाई भाग (स्कंधप्रदेशः) स्कंधप्रदेश नामका है (च एव)

---

१ लौके ।

पर्य्यायः। तदर्धार्धं स्कंधप्रदेशो नाम पर्य्यायः। तदर्धं स्कंधदेशो नाम पर्य्यायः। तदर्धार्धं स्कंधदेशो नाम पर्य्यायः। एवं भेदवशाद्व्द्यणुकस्कंधादनंताः स्कंधप्रदेशपर्यायाः। निर्विभागैकप्रदेशः स्कंधस्याभेदपरमाणुरेकः। पुनरपि द्वयोः परमाण्वोः संघातादेको द्व्यणुकस्कंधपर्य्यायः। एवं संघातवशादनंताः स्कंधपर्य्यायाः। एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवतीति ॥७५॥

भणंति देसोत्ति अद्धद्धं च पदेसो सकलसमस्तलक्षणः स्कंदो भवति, तदर्थलक्षणो देशो भवति, अर्द्धार्द्धलक्षणः प्रदेशो भवति। तथाहि—समस्तोपि विवक्षितघटपटाद्यखण्डरूपः सकल इत्युच्यते तस्यानंतपरमाणुपिंडस्य स्कंदसंज्ञा भवति। तत्र दृष्टांतमाह—षोडशपरमाणुपिंडस्य स्कंदकल्पना कृता तावत् एकैकपरमाणोरपनयेन नवपरमाणुपिंडे स्थिते ये पूर्वविकल्पा गतास्तेपि सर्वे स्कंदा भण्यंते, अष्टपरमाणुपिंडे जाते देशो भवति तत्राप्येकैकापनयेन पंचपरमाणुपिंडपर्यंतं ये विकल्पा गतास्तेषामपि देशसंज्ञा भवति, परमाणुचतुष्टयपिंडे स्थिते प्रदेशसंज्ञा भण्यते पुनरप्येकैकापनयेन द्व्यणुकस्कंदे स्थिते ये विकल्पा गतास्तेपामपि प्रदेशसंज्ञा भवति परमाणू चेव अविभागी परमाणुश्चैवाविभागीति। पूर्वं भेदेन स्कंदा भणिता, इदानीं संघातेन कथ्यंते, परमाणुद्वयं संघातेन द्व्यणुकस्कंदो भवति, त्रयाणां संघातेन त्र्यणुक इत्याद्यनंतपर्यंता ज्ञातव्या। एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति। अत्रोपादेयभूतात्परमात्मतत्वात्पुद्गलानां यद्भिन्नत्वेन परिज्ञानं तदेव फलमिति तात्पर्यं ॥७५॥

निश्चयसे अविभागी) जिसका दूसरा भाग नहीं होता उसका नाम (परमाणुः) पुद्गलपरमाणु कहलाता है। भावार्थ—स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश इन तीन पुद्गलस्कंधोंमें अनंत अनंत भेद हैं। परमाणुका एक ही भेद है। दृष्टांतके द्वारा इस कथनको प्रगट कर दिखाया जाता है। अनंतानंत परमाणुओंके स्कंधकी निशानी सोलहका अंक जानना चाहिये। क्योंकि समझानेके लिये थोड़ासा गणित द्वारा दिखाते हैं। सोलह परमाणुका उत्कृष्ट स्कंध कहा जाता है। उसके आगे एक एक परमाणु घटाते जावें। नवके अंक तक परमाणुओंका जघन्य स्कंध है। नवसो पंद्रहसे लेकर दश तक मध्यम भेद जानो। इसी प्रकार स्कंधके भेद एक एक परमाणुकी कमीसे अनंत जानो। और आठ परमाणुका उत्कृष्ट स्कंधदेश जानो। पांच परमाणुका जघन्य स्कंधदेश जानो। सातसे लेकर छह तक मध्यन स्कंधदेशके भेद जानो। इसी प्रकार एक एक परमाणुकी कमीसे स्कंधदेशके भेद अनंत जानो। तथा चार परमाणुका उत्कृष्ट स्कंधप्रदेश जानो। दो परमाणुओंका जघन्य स्कंधप्रदेश होता है। तीनसे लेकर मध्यम स्कंधप्रदेशके भेद होते हैं। इसी प्रकार स्कंधप्रदेश भेद एक एक परमाणुकी कमीसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदोंसे अनंत जानो। और परमाणु अविभागी है। इसमें भेद कल्पना नहीं है। ये चार प्रकार भेदके द्वारा जानो और ये ही चार भेद मिलापके द्वारा भी गिने जाते हैं। मिलाप नाम संघातका है। दो परमाणुके मिलनेसे जघन्य स्कंधप्रदेश होता है। इसी प्रकार एक एक अधिक परमाणु मिलानेसे इन तीन स्कंधोंके भेद उत्कृष्ट स्कंध तक जानने चाहिये। भेद संघातके

स्कंधानां पुद्गलव्यवहारसमर्थनमेतत्;—

बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पुग्गलोत्ति ववहारो।
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥७६॥

बादरसौक्ष्म्यगतानां स्कंधानां पुद्गलः इति व्यवहारः।
ते भवन्ति षट्प्रकारास्त्रैलोक्यं यैः निष्पन्नं ॥७६॥

स्पर्शरसवर्णगंधगुणविशेषैः षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिः पूरणगलनधर्मत्वात् स्कंधव्यक्त्याविर्भावतिरोभावाभ्यामपि च पूरणगलनोपपत्तेः परमाणवः पुद्गला इति निश्चीयंते। स्कंधास्त्वनेकपुद्गलमयैकपर्यायत्वेन पुद्गलेभ्योऽनन्यत्वात्पुद्गला इति

अथ स्कंदानां व्यवहारेण पुद्गलत्वं व्यवस्थापयति; —बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलोत्ति ववहारो बादरसूक्ष्मगतानां स्कंदानां पुद्गल इति व्यवहारो भवति। तद्यथा। यथा शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति स किल सिद्धरूपो जीवः व्यवहारेण पुनरायुःप्रभृत्यशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति गुणस्थानमार्गणादिभेदेन भिन्नः सोऽपि जीवः तथा "वर्णगन्धरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्। कुर्वन्ति स्कंदवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः" इति श्लोककथितलक्षणाः परमाणवः किल निश्चयेन पुद्गला भण्यंते व्यवहारेण पुनर्द्व्यणुकाद्यनन्तपरमाणुपिंड रूपाः बादरसूक्ष्मगतस्कंदा अपि पुद्गला इति व्यवह्रियन्ते ते होंति छप्पयारा ते भवन्ति षट्प्रकाराः। यैः किं कृतं ? णिप्पण्णं जेहिं तेलोक्कं यैर्निष्पन्नं त्रैलोक्यमिति। इदमत्र तात्पर्यं—लोक्यंते जीवादिपदार्था यत्र स लोक

द्वारा इन तीनों स्कंधोंके भेद परमागममें विशेषता कर गिने गये हैं। एक पृथ्वीपिंडमें ये चारों ही भेद होते हैं। सकलपिंडका नाम स्कंध कहा जाता है, आधेका नाम स्कंधदेश. चौथाईका नाम स्कंधप्रदेश कहा जाता है, अविभागीका नाम परमाणु कहा जाता है। इसी प्रकार खण्ड खण्ड करने पर भेदोंसे अनन्त भेद होते हैं। दो परमाणुके मिलापसे लेकर सकल पृथ्वीखण्डपर्यंत संघातसे अनन्त भेद होते हैं। भेदसंघातसे पुद्गलकी अनन्तपर्यायें होती हैं ॥७५॥

आगे इन स्कंधोंका नाम पुद्गल कहा जाता है, इसलिये पुद्गलका अर्थ दिखलाते हैं [बादरसौक्ष्म्यगतानां] बादर और सूक्ष्म परिणमनको प्राप्त [स्कंधानां] पुद्गलवर्णणा पिंडका [पुद्गलः] पुद्गल [इति] ऐसा नाम [व्यवहारः] लोकभाषामें कहा जाता है। भावार्थ—पूर्वमें ही जो चार प्रकारके स्कंधादिक भेद कहे हैं इनमें पूरण-गलन स्वभाव है इसलिये इनका नाम पुद्गल कहा जाता है। जो बढ़े घटे उसको पुद्गल कहते हैं। परमाणु अपने स्पर्शरसवर्णगन्ध गुणके भेदोंसे

---

१. अस्तित्वप्रमेयत्वादयस्तु सामान्यगुणास्सर्वेषां द्रव्याणां मध्ये साधारणरूपेण विद्यंते। पुन. स्पर्शरसगंधवर्णगुणास्तु पुद्गलद्रव्ये एव विद्यंते। अत एव गुणविशेषाः कथ्यंते. २ वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं कुर्वन्ति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गला परमाणवः. ३ द्विप्रदेशादिस्कंधानां पुद्गलत्वग्रहणं प्रदेशपूरणगलनरूपत्वात्।

व्यवह्रियंते। तथैव च बादरसूक्ष्मत्वपरिणामविकल्पैः षट्प्रकारतामापद्य त्रैलोक्यरूपेण निष्पद्य स्थितवंत इति। तथाहि-बादरबादराः, बादराः, बादरसूक्ष्माः, सूक्ष्मबादराः, सूक्ष्माः, सूक्ष्मसूक्ष्माः इति। तत्र छिन्नाः स्वयं संधानासमर्थाः काष्ठपाषाणादयो बादरबादराः। छिन्नाः स्वयं संधानसमर्थाः क्षीरघृततैलतोयरसप्रभृतयो बादराः। स्थूलोपलंभा अपि छेत्तुं भेत्तुमादातुमशक्या छायाऽऽतपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्माः। सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलंभाः स्पर्शरसगंधवर्णशब्दाः सूक्ष्मबादराः सूक्ष्मत्वेऽपि हि करणानुपलभ्याः कर्मवर्गणादयः सूक्ष्माः। अत्यंतसूक्ष्माः कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्व्यणुकस्कंधपर्यंताः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति ॥७६॥

इतिवचनात्पुद्गलादिषड्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोकः न चान्येन केनापि पुरुषविशेषेण क्रियते ह्रीयते ध्रीयते वेति ॥७६॥

अथ तानेव षड्भेदान् विवृणोति;—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा येवं छब्भेया पोग्गला होंति ॥१॥

पृथिवी जलं च छाया चक्षुर्विषयं विहाय चतुरिन्द्रियविषयाः कर्मप्रायोग्याः कर्मातीता इति षड्भेदाः पुद्गला भवन्ति। ते च कथंभूताः? स्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माः सूक्ष्मस्थूलाः

षट्गुणी हानिवृद्धिके प्रभावसे पुद्गल नाम पाता है। और उस ही परमाणुमें किसी कालमें स्कन्ध होनेकी प्रगट शक्ति है। जो कभी नहीं होती तथापि परमाणुकी पुद्गल संज्ञा है। और तीन प्रकारके जो स्कन्ध हैं वे अनन्त परमाणु मिलकर एक पिंड अवस्थाको करते हैं। इस कारण उनमें भी पूरण-गलन स्वभाव है और उनका भी नाम पुद्गल कहा जाता है [ते] वे पुद्गल [षट्प्रकाराः] छह प्रकारके [भवन्ति] होते हैं। [यैः] जिन पुद्गलोंसे [त्रैलोक्यं] तीन लोक [निष्पन्नं] निर्मापित हैं। भावार्थ—वे छह प्रकारके पुद्गलस्कन्ध अपने स्थूल सूक्ष्म परिणामोंके भेदोंसे तीन लोककी रचनामें प्रवर्त्तते हैं। वे छह प्रकार कौन कौन से हैं सो बतलाते हैं। १, बादरबादर २, बादर ३, बादरसूक्ष्म ४, सूक्ष्मबादर ५, सूक्ष्म ६, सूक्ष्मसूक्ष्म, ये छह प्रकार हैं। १. जो पुद्गलपिंड दो खंड करने पर अपने आप फिर नहीं मिलें ऐसे काष्ठपाषाणादिकको बादरबादर कहते हैं, और २. जो पुद्गलस्कंध खण्ड खण्ड किये हुए अपने आप मिल जायें ऐसे दुग्ध घृत तैलादिक पुद्गलोंको बादर कहते हैं और ३. जो देखनेमें तो स्थूल हों किन्तु खण्ड खण्ड करनेमें नहीं आयें, हस्तादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आयें ऐसे धूप, चन्द्रमाकी चाँदनी आदिक पुद्गल बादरसूक्ष्म कहलाते हैं और ४ जो स्कंध हैं तो सूक्ष्म परन्तु स्थूलसे प्रतिभासित होते हैं ऐसे स्पर्श रस गन्ध शब्दादिक पुद्गल सूक्ष्मबादर कहलाते हैं और ५. जो स्कंध अति सूक्ष्म हैं, इन्द्रियोंसे ग्रहण करनेमें नहीं आते ऐसे कर्मवर्गणादिक सूक्ष्मपुद्गल कहलाते हैं और ६. जो कर्मवर्गणाओंसे भी अति सूक्ष्म द्व्यणुकस्कंध

परमाणुव्याख्येयम्,—

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागि मुत्तिभवो ॥७७॥

सर्वेषां स्कंधानां योऽन्त्यस्तं विजानीहि परमाणुं ।
स शाश्वतोऽशब्दः एकोऽविभागी मूर्तिभवः ॥७७॥

उक्तानां स्कंधपर्य्यायाणां योऽन्त्यो भेदः स परमाणुः । स तु पुनर्विभागाभावादविभागी । निर्विभागैकप्रदेशत्वादेकः । मूर्तद्रव्यत्वेन सदाप्यविनश्वरत्वान्नित्यः ।

सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्माः इति । तद्यथा—ये छिन्नाः संतः स्वयमेव संधातुमसमर्थास्ते स्थूलस्थूलाः भूपर्वतादयः । ये तु छिन्नाः संतः तत्क्षणादेव संधानेन स्वयमेव समर्थास्ते स्थूलाः सर्पिस्तैलजलादयः । ये तु हस्तेनादातुं देशांतरं नेतु अशक्यास्ते स्थूलसूक्ष्माः छायातपादयः, ये पुनर्लोचनविषया न भवन्ति ते सूक्ष्मस्थूलाश्चतुरिन्द्रियविषयाः । ये तु ज्ञानावरणादिकर्मवर्गणायोग्यास्ते सूक्ष्मा इन्द्रियज्ञानाविषयाः । ये चात्यंतसूक्ष्मत्वेन कर्मवर्गणातीतास्ते सूक्ष्मसूक्ष्माः कर्मवर्गणातीतेभ्यो (योग्येभ्यः) अत्यंतसूक्ष्मा द्व्यणुकस्कंदपर्यंता इति तात्पर्यं ॥७६॥

एवं प्रथमस्थले स्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं समाप्तं । तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापंचकं कथ्यते । तथाहि । शास्वतादिगुणोपेतं परमाणुद्रव्यं प्रतिपादयति;— **सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू** यथा य एव कर्मस्कंधानामंतो विनाशस्तमेव शुद्धात्मानं विजानीहि तथा य एव षड्विधस्कंदानामंतोऽवसानो भेदस्तं परमाणुं विजानीहि । **सो** स च । कथंभूतः ? **सस्सदो** यथा परमात्मा टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन द्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरत्वात् शाश्वतः तथा पुद्गलत्वेनाविनश्वरत्वात्परमाणुरपि नित्यः, **असद्दो** यथा शुद्धजीवास्तिकायो निश्चयेन स्वसंवेदनज्ञानविषयोपि शब्दविषयः शब्दरूपो वा न भवतीत्यशब्दः तथा हि परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोपि व्यक्तिरूपेण शब्दपर्यायरूपो न भवतीत्यशब्दः, **एक्को** यथा शुद्धात्मद्रव्यं निश्चयेन परोपाधिरहितत्वेन केवलमसहायमेकं भण्यते तथा परमाणुद्रव्यमपि द्व्यणुकादिपरोपाधिरहितत्वा-

---

तक हैं वे सूक्ष्मसूक्ष्म कहलाते हैं ॥७६॥

आगे परमाणुका स्वरूप कहते हैं; [सर्वेषां] समस्त [स्कंधानां] स्कंधोंका [यः] जो [अंत्यः] अंतका भेद है [तं] उसको [परमाणुं] परमाणु [विजानीहि] जानो । अर्थात्–ये जो पूर्वमें छह प्रकारके स्कंध कहे उनमेंसे जो अंतका भेद (अविभागी खंड) है वह परमाणु कहलाता है [सः] वह परमाणु [शाश्वतः] त्रिकाल अविनाशी है । यद्यपि स्कंधोंके मिलापसे एक पर्यायसे पर्यायांतरको प्राप्त होता है तथापि अपने द्रव्यत्वसे सदा टंकोत्कीर्ण नित्य द्रव्य है । और कैसा है वह परमाणु ? [अशब्दः] शब्दरहित है । यद्यपि स्कंधके मिलापसे शब्द पर्यायको धारण करता है तथापि व्यक्तरूप शब्द पर्यायसे रहित है । और कैसा है परमाणु ? [एकः] एकप्रदेशी है, द्व्यणुकादि स्कंधरूप नहीं है ।

अनादिनिधनरूपादिपरिणामोत्पन्नत्वान्मूर्तिभवः । रूपादिपरिणामोत्पन्नत्वेऽपि शब्दस्य परमाणुगुणत्वाभावात्पुद्गलस्कंधपर्यायत्वेन वक्ष्यमाणत्वाच्चाशब्दो निश्चीयत इति ।।७७।।

परमाणूनां जात्यंतरत्वनिरासोऽयम्;—

आदेशमत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु ।
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ।।७८।।

आदेशमात्रमूर्त्तः धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु ।
स ज्ञेयः परमाणुः परिणामगुणः स्वयमशब्दः ।।७८।।

परमाणोर्हि मूर्तत्वनिबंधनभूताः स्पर्शरसगंधवर्णा आदेशमात्रेणैव भिद्यंते, वस्तुतस्तु यथा तस्य स एव प्रदेश आदिः, स एव मध्यः, स एवांतः इति । एवं द्रव्यगुणयोरविभक्तप्रदेशत्वात् य एव परमाणोः प्रदेशः स एव स्पर्शस्य, स एव

त्केवलमसहायमेकं भवत्येकप्रदेशत्वाद्वा **अविभागी** यथा परमात्मद्रव्यं निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशमपि विवक्षिताखंडैकद्रव्यत्वेन भागाभावादविभागी तथा परमाणुद्रव्यमपि निरंशत्वेन भागाभावादविभागी । पुनश्च कथंभूतः स परमाणुः ? **मुत्तिभवो** अमूर्तात्परमात्मद्रव्याद्विलक्षणा या तु स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिस्तया समुत्पन्नत्वात् मूर्तिभव इति सूत्राभिप्रायः ।।७७।।

इति परमाणुस्वरूपकथनेन द्वितीयस्थले प्रथमगाथा गता । अथ पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवो न संतीति निश्चिनोति;—**आदेसमेत्तमुत्तो** आदेशमात्रमूर्तः, आदेशमात्रेण संज्ञादिभेदेनैव परमाणोर्मूर्तत्वनिबंधनभूता वर्णादिगुणा भिद्यंते पृथक् क्रियंते न च सत्ताप्रदेशभेदेन । वस्तुतस्तु य एव परमाणोरादिमध्यांतभूतप्रदेशः स एव रूपादिगुणानामपि । अथवा मूर्तं इत्यादिश्यते कथ्यते न च दृष्ट्या दृश्यते तेनादेशमात्रमूर्तः, **धाउचउक्कस्स कारणं जो दु** निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावैरपि पृथिव्यादिजीवैर्व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशेन यानि पृथिव्यप्तेजोवायुधातुचतुष्कसंज्ञानि शरीराणि

फिर कैसा है ? [**अविभागी**] जिसका दूसरा भाग न हो ऐसा निरंश है । फिर कैसा है ? [**मूर्त्तिभवः**] सदाकाल रूप रस स्पर्श गंध इन चार गुणोंसे भेद ज्ञात होता है । इस प्रकार परमाणुका स्वरूप जानो ।।७७।।

आगे पृथ्वी आदि जातिके परमाणु भिन्न नहीं हैं ऐसा कथन करते हैं; [**यः**] जो [**आदेशमात्रमूर्त्तः**] गुणगुणीके संज्ञादि भेदोंसे मूर्त्तीक है [**सः**] वह [**परमाणुः**] परमाणु [**ज्ञेयः**] जानो । वह परमाणु कैसा है ? [**धातुचतुष्कस्य**] पृथिवी जल अग्नि वायु इन चार धातुओंका [**कारणं**]

---

१. पृथक् क्रियंते ।

गंधस्य, स एव रूपस्येति । ततः क्वचित्परमाणो गंधगुणे, क्वचित् गंधरसगुणयोः, क्वचित् गंधरसरूपगुणेषु अपकृष्यमाणेषु तदविभक्तप्रदेशः परमाणुरेव विनश्यतीति । न तदपकर्षो युक्तः । ततः पृथिव्यप्तेजोवायुरूपस्य धातुचतुष्कस्यैक एव परमाणुः कारणं । परिणामवशात् विचित्रो हि परमाणोः परिणामगुणः क्वचित्कस्यचिद्गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वेन विचित्रां परिणतिमादधाति । यथा च तस्य परिणामवशादव्यक्तो गंधादिगुणोऽस्तीति प्रतिज्ञायते न तथा शब्दोऽप्यव्यक्तोऽतीति ज्ञातुं शक्यते । तस्यैकप्रदेशस्यानेकप्रदेशात्मकेन शब्देन सहैकत्वविरोधादिति ॥७८॥

गृहीतानि तिष्ठन्ति तेषामन्येषां च जीवेनागृहीतानां हेतुत्वेन निमित्तत्वाद्धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु **सो णेओ परमाणू** यः पूर्वं कथित एकोपि परमाणुः पृथिव्यादिधातुचतुष्करूपेण कालांतरेण परिणमति स परमाणुरिति ज्ञेयः, **परिणामगुणो** औदयिकादिभावचतुष्टयरहितत्वेन पारिणामिकगुणः । पुनः किंविशिष्टः ? **समयसद्दो** एकप्रदेशत्वेन कृत्वानंतपरमाणुपिंडलक्षणेन शब्दपर्यायेण सह विलक्षणत्वात्स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्द इति सूत्रार्थः ॥७८॥

कारण है। ये चार धातु इन परमाणुओंसे ही पैदा होते हैं। फिर कैसा है ? **[परिणामगुणः]** परिणमन स्वभाववाला है **[स्वयं अशब्दः]** आप अशब्द है, किंतु शब्दका कारण है। **भावार्थ—** परमाणु तो द्रव्य है, उसमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये चार गुण हैं। इन चारों ही गुणोंसे परमाणु मूर्त्तीक कहलाता है। परमाणु निर्विभाग है क्योंकि जो प्रदेश आदिमें है वही मध्य और अंतमें है। इस कारण परमाणुका दूसरा भाग नहीं होता। द्रव्य गुणमें प्रदेशभेद नहीं होता। इसकारण जो प्रदेश परमाणुका है वही प्रदेश स्पर्श रस गंध वर्णका जानना चाहिये। ये चार गुण परमाणुमें सदा काल पाये जाते हैं, परंतु गौण मुख्यके भेदसे इन गुणोंका न्यूनाधिक भी कथन किया जाता है। पृथिवी जल अग्नि वायु ये चारों ही पुद्गलजातियाँ परमाणुओंसे उत्पन्न हैं। इनके परमाणुओंकी जाति पृथक् नहीं है। पर्यायके भेदसे भेद होता है। पृथिवी जातिके परमाणुओंमें चारोंही गुणोंकी मुख्यता है। जलमें गंध गुणकी गौणता है, अन्य तीन गुणोंकी मुख्यता है। अग्निमें गंध और रसकी गौणता है, स्पर्श और वर्णकी मुख्यता है। वायुमें तीन गुणोंकी गौणता है, स्पर्श गुणकी मुख्यता है। पर्यायोंके कारण परमाणुमें नाना प्रकारके परिणाम गुण होते हैं। कहीं पर किसी एक गुणकी प्रगटता अप्रगटताके कारण नाना प्रकारकी परिणतिको धारण करते हैं। प्रश्न—जिस प्रकार परमाणुओंके परिणमनसे गंधादिक गुण हैं उसी प्रकार शब्द भी प्रगट होता होगा ? यदि कोई ऐसी शंका करे तो उसका समाधान यह है कि—परमाणु एकप्रदेशी है इसलिये शब्द प्रगट नहीं होता। शब्द अनेक परमाणुओंके स्कंधोंसे उत्पन्न होता है इस कारण परमाणु अशब्दमय है ॥७८॥

---

१. पूर्वोक्तेषु एतेषु गुणेषु अपकृष्यमाणेषु गौणतां प्राप्तेषु सत्सु. २ तस्य परमाणोरपकर्षो विनाशो न युक्तः. ३ परमाणोः ।

शब्दस्य पुद्गलस्कंधपर्यायत्वख्यापनमेतत्;—

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥७९॥

शब्दः स्कंधप्रभवः स्कंधः परमाणुसङ्गसङ्घातः।
स्पृष्टेषु तेषु जायते शब्द उत्पादको नियतः ॥७९॥

इह हि बाह्यश्रवणेन्द्रियावलम्बितो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः। स खलु स्वरूपेणानंतपरमाणूनामेकस्कंधो नाम पर्य्यायः। बहिरङ्गसाधनीभूतमहास्कंधेभ्यः तथाविधपरिणामेन समुत्पद्यमानत्वात् स्कन्धप्रभवः। यतो हि परस्पराभिहतेषु[2] महास्कंधेषु शब्दः समुपजायते। किंच स्वभावनिर्वृत्ताभिरेवानंतपरमाणुमयीभिः

एवं परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणकथनेन द्वितीयगाथा गता। अथ शब्दस्य पुद्गलस्कंदपर्यायत्वं दर्शयति;—**सद्दो** श्रवणेन्द्रियावलम्बनो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिविशेषः शब्दः। स च किंविशिष्टः ? **खंदप्पभवो** स्कंदेभ्यः सकाशादुत्पन्नः प्रभवः इति स्कंदप्रभवः। स्कंदलक्षणं कथ्यते। **खंदो परमाणुसंगसंघादो** स्कंदो भवति। कथंभूतः ? परमाणुसंगसंघातः अनंतपरमाणुसंगानां समूहानामपि संघातः समुदायः। इदानीं स्कंदेभ्यः सकाशाच्छब्दस्य प्रभवत्वमुत्पत्तिं कथयति। **पुट्ठेसु तेसु** स्पृष्टेषु तेषु पूर्वोक्तेषु स्कंदेषु स्पृष्टेषु लग्नेषु परस्परं संघट्टितेषु सत्सु **जायदि** जायते प्रभवति। स कः ? कर्ता। **सद्दो** पूर्वोक्तशब्दः। अयमत्राभिप्रायः। द्विविधाः स्कंदा भवन्ति भाषावर्गणायोग्या ये तेऽभ्यंतरे कारणभूताः सूक्ष्मास्ते च निरंतरं लोके तिष्ठन्ति ये तु वहिरंगकारणभूतास्ताल्वोष्टपुटव्यापारघंटाभिघातमेघादयस्ते स्थूलाः क्वापि क्वापि तिष्ठन्ति न सर्वत्र यत्रेयमुभयसामग्री समुदिता तत्र भाषावर्गणाः शब्दरूपेण परिणमन्ति न सर्वत्र। स च शब्दः किं विशिष्टः ? **उप्पादिगो णियदो** भाषावर्गणास्कंदेभ्य उत्पद्यते इत्युत्पादकः नियतो निश्चितः न चाकाशद्रव्यरूप-

---

आगे शब्दको पुद्गलका पर्यायत्व दिखाते हैं। [शब्दः] शब्द [स्कन्धप्रभवः] स्कंधसे उत्पन्न है. [परमाणुसङ्गसङ्घातः] अनंत परमाणुओंके मिलापका समूह [स्कंधः] स्कंध होता है। [तेषु स्पृष्टेषु] उन स्कंधोंके परस्पर स्पर्श होनेपर [नियतः] निश्चित [उत्पादकः] अन्य वर्गणाओंको शब्दायमान करनेवाला [शब्दः] शब्द [जायते] उत्पन्न होता है। **भावार्थ**—द्रव्यकरणेन्द्रियके आधारसे भावकर्णेन्द्रियके द्वारा जो ध्वनि सुनी जाय उसे शब्द कहते हैं। वह शब्द अनंत परमाणुओंका पिंड अर्थात् स्कंधोंमे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि जब परस्पर महास्कंधोंका संघट्ट

---

१. शब्दपर्य्यायेण, २. अन्योन्यसंघटितेषु।

शब्दयोग्यवर्गणाभिरन्योन्यमनुप्रविश्य समंततोऽभिव्याप्य पूरितेऽपि सकले लोके यत्र यत्र बहिरंगकारणसामग्री समुदेति तत्र तत्र ताः शब्दत्वेन स्वयं व्यपरिणमंत इति शब्दस्य नियतमुत्पाद्यत्वात् स्कन्धप्रभवत्वमिति ॥७९॥

स्तद्गुणो वा यद्याकाशगुणो भवति तर्हि श्रवणेन्द्रियविषयो न भवति। कस्मात्। आकाशगुणस्यामूर्तत्वादिति। अथवा "उप्पादिगो" प्रायोगिकः पुरुषादिप्रयोगप्रभवः "णियदो" नियतो वैश्रसिको मेघादिप्रभवः। अथवा भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतादिरूपेणार्यम्लेच्छभाषाहेतुः, अनक्षरात्मको द्विन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च। इदानीमभाषात्मकः कथ्यते। सोपि द्विविधो प्रायोगिको वैश्रसिकश्चेति। प्रायोगिकस्तु ततविततं घनसुपिरादिः। तथा चोक्तं। "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकं। घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः।" वैश्रसिकस्तु मेघादिप्रभवः पूर्वोक्त एव। इदं सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्नं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥७९॥

होता है, तब शब्दकी उत्पत्ति होती है। और स्वभावहीसे उत्पन्न अनंत परमाणुओंका पिंड ऐसी शब्द योग्य वर्गणायें परस्पर मिलकर इस लोकमें सर्वत्र (फैल) रही हैं। जहाँ जहाँ शब्दके उत्पन्न करनेको बाह्य सामग्रीका संयोग मिलता है वहाँ वहाँ वे शब्दयोग्य वर्गणायें स्वयमेव ही शब्दरूप होकर परिणमित हो जाती हैं। इस कारण शब्द निश्चयसे पुद्गलस्कंधों से ही उत्पन्न होता है। कोई मतावलंवी शब्दको आकाशका गुण मानते हैं किन्तु वह आकाशका गुण कदापि नहीं हो सकता। यदि आकाशका गुण माना जाय तो कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आता, क्योंकि आकाश अमूर्तीक है, अमूर्तीक पदार्थका गुण भी अमूर्तीक होता है। इन्द्रियां मूर्तीक हैं, मूर्त्तीक पदार्थकी ही ज्ञाता हैं। इस लिये यदि शब्द आकाशका गुण होता तो कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण करनेमें नहीं आता। वह शब्द दो प्रकार का है—एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। जो शब्द पुरुषादिके संबंधसे उत्पन्न होता है उसको प्रायोगिक कहते हैं। और जो मेघादि से उत्पन्न होता है वह वैश्रसिक कहलाता है। अथवा वही शब्द भाषा अभाषाके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे भाषात्मक शब्द अक्षर अनक्षरके भेदसे दो प्रकारका है। संस्कृत, प्राकृत, आर्य म्लेच्छादि भाषादिरूप जो शब्द हैं वे सब अक्षरात्मक हैं। और द्वीन्द्रियादिक जीवोंके शब्द तथा केवलीकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक शब्द हैं। अभाषात्मक शब्दोंके भी दो भेद हैं - एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। प्रायोगिक तत, वितत, घन, सुपिरादिरूप होते हैं। तत शब्द उसे कहते हैं जो वीणादिसे उत्पन्न है। वितन शब्द ढोल दमामादिसे उत्पन्न होते हैं। और झांझ करतालादिसे उत्पन्न शब्द घन कहा जाता है। और बांसादिसे उत्पन्न शब्द सुषिर कहलाता है। इस प्रकार ये ४ भेद हैं। और जो मेघादिसे उत्पन्न होते हैं वे वैश्रसिक अभाषात्मक शब्द होते हैं ये समस्त प्रकारके ही शब्द पुद्गलस्कंधोंसे उत्पन्न होते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥७९॥

---

१. शब्दयोग्यपुद्गलवर्गणा।

परमाणोरेकप्रदेशत्वख्यापनमेतत्;—

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेत्ता ।
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥८०॥

नित्यो नानवकाशो न सावकाशः प्रदेशतो भेत्ता ।
स्कंधानामपि च कर्ता प्रविभक्ता कालसंख्यायाः ॥८०॥

परमाणुः स खल्वेकेन प्रदेशेन रूपादिगुणसामान्यभाजा सर्वदैवाविनश्वरत्वा-

---

एवं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनामुख्यत्वेन तृतीयगाथा गता। अथ परमाणोरेकप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति;—**णिच्चो** नित्यः । कस्मात् । **पदेसदो** प्रदेशतः परमाणोः खलु एकेन प्रदेशेन सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यो भवति **णाणवगासो** नानवकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन स्वकीयवर्णादिगुणानामवकाशदानात्सावकाशः **ण सावगासो** न सावकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन द्वितीयादिप्रदेशाभावान्निरवकाशः **भेत्ता खंधाणं** भेत्ता स्कंदानां **कत्ता अवि य** कर्ता अपि च स्कंदानां जीववत् । तद्यथा । यथायां जीवः स्वप्रदेशगतरागादिविकल्परूपनिस्नेहभावेन परिणतः सन् कर्मस्कंदानां भेत्ता विनाशको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशगतनिस्नेहभावेन परिणतः सन् स्कंदानां विघटनकाले भेत्ता भेदको भवति । यथा स एव जीवो निस्नेहात्परमात्मतत्त्वाद्विपरीतेन स्वप्रदेशगतमिथ्यात्वरागादिस्निग्धभावेन परिणतः सन्नवतरज्ञानावरणादिकर्मस्कंदानां कर्ता भवति तथा स एव परमाणुरेकप्रदेशगतस्निग्धभावेन परिणतः सन् द्वयणुकादिस्कंदानां कर्ता भवति । अत्र योसौ स्कंदानां भेदको भणितः स कार्यपरमाणुरुच्यते यस्तु कारकस्तेषां स कारणपरमाणुरिति कार्यकारणभेदेन द्विधा परमाणुर्भवति । तथा चोक्तं । "स्कंधभेदाद्भवेदाद्यः स्कंदानां जनकोपरः ।" अथवा भेदविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते ।

अब परमाणुके एकप्रदेशत्व दिखाते हैं;—परमाणु कैसा है ? [**नित्यः**] सदा अविनाशी है । अपने एक प्रदेशसे रूपादिक गुणोंसे भी कभी त्रिकालमें रहित नहीं होता । फिर कैसा है ? [**न अनवकाशः**] जगह देनेके लिये समर्थ है. परमाणुके प्रदेशसे जो स्पर्शादि गुण जुदे नहीं हैं उनको अवकाश देनेके लिये समर्थ है । फिर कैसा है ? [**न सावकाशः**] जगह देता भी नहीं, अपने एकप्रदेशसे आदि मध्य अन्तमें निर्विभाग एक ही है । इस कारण दो आदि प्रदेशोंकी समाई (जगह) उसमें नहीं है । इसलिये अवकाशदान देनेको असमर्थ भी है । फिर कैसा है ? [**प्रदेशतः भेत्ता**] अपने एक ही प्रदेशसे स्कंधोंका भेद करनेवाला है । जब अपने विघटनका समय पाता है उस समय स्कंधसे निकल जाता है, इस कारण स्कंधका खंड करनेवाला कहा जाता है । फिर कैसा है ? [**स्कंधानां**] स्कंधोंका [**कर्त्ता अपि**] कर्त्ता भी है, अर्थात् अपना काल पाकर अपनो मिलनशक्तिसे

न्नित्यः । एकेन प्रदेशेन तदविभक्तवृत्तीनां स्पर्शादिगुणानामवकाशदानान्नानवकाशः । एकेन प्रदेशेन द्व्यादिप्रदेशाभावादात्मादिनात्ममध्येनात्मांतेन न सावकाशः । एकेन प्रदेशेन स्कंधानां भेदनिमित्तत्वात् स्कन्धानां भेत्ता । एकेन प्रदेशेन स्कन्धसंघातनिमित्तत्वात्स्कन्धानां कर्त्ता । एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तितद्गतिपरिणामापन्नेन समयलक्षणकालविभागकरणात् कालस्य प्रविभक्ता । एकेन प्रदेशेन तत्सूत्रितद्व्यादिभेदपूर्विकायाः स्कंधेषु द्रव्यसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तदवच्छिन्नैकाकाशप्रदेशपूर्विकायाः, क्षेत्रसंख्यायाः एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तिततद्गतिपरिणामावच्छिन्नसमयपूर्विकायाः कालसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तद्विवर्तिजघन्यवर्णादिभावावबोधपूर्विकाया भावसंख्यायाः प्रविभागकरणात् प्रविभक्ता संख्याया अपीति ॥८०॥

परमाणुरयं । कस्मात् ? एकप्रदेशत्वेन बहुप्रदेशस्कंदाद्भिन्नत्वात्, स्कंदोयं । कस्मात् ? बहुप्रदेशत्वेनैकप्रदेशत्वेनैकप्रदेशपरमाणोर्भिन्नत्वादिति पविभत्ता कालसंखाणं प्रविभक्ता कालसंख्ययोर्जीववदेव । यथा एकप्रदेशस्थकेवलज्ञानांशेनैकसमयेन भगवान् केवली समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता परिच्छेदको ज्ञायको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशेन मंदगत्याऽणोरण्वंतरव्यतिक्रमणलक्षणेन कृत्वा समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता भेदको भवतीति । संख्या कथ्यते । द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण संख्या चतुर्विधा भवति, सा च जघन्योत्कृष्टभेदेन प्रत्येकं द्विविधा । एकपरमाणुरूपा जघन्या द्रव्यसंख्येति अनंतपरमाणुपुंजरूपोत्कृष्टद्रव्यसंख्येति, एकप्रदेशरूपा जघन्या क्षेत्रसंख्या, अनंतप्रदेशरूपोत्कृष्टा क्षेत्रसंख्या, एकसमयरूपा जघन्या व्यवहारकालसंख्या, अनंतसमयरूपोत्कृष्टव्यवहारकालसंख्या, परमाणुद्रव्ये वर्णादीनां सर्वजघन्या तु या शक्तिः सा जघन्या भावसंख्या, तस्मिन्नेव परमाणुद्रव्ये सर्वोत्कृष्टा तु या वर्णादिशक्तिः सा तूत्कृष्टा भावसंख्येति । एवं जघन्योत्कृष्टा प्रत्येकं

स्कंधोंमें जाकर मिल जाता है इसकारण इसको स्कंधोंका कर्त्ता भी कहा गया है । फिर कैसा है ? [कालसंख्यायाः] कालकी संख्याका [प्रविभक्ता] भेद करनेवाला है । एक आकाशके प्रदेशमें रहनेवाले परमाणुको दूसरे प्रदेशमें गमन करते जो समयरूप कालपरिणाम प्रगट होता है उसको भेद करता है, इस कारण कालअंशका भी कर्त्ता है । फिर यह परमाणु द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकी संख्याके भेदको भी करता है, सो दिखाया जाता है । यही परमाणु अपने एकप्रदेश परिमाणसे द्व्यणुकादि स्कंधोंमें द्रव्यसंख्याका भेद करता है । और यही परमाणु अपने एकप्रदेशके परिमाणसे दो आदि प्रदेशोंसे लेकर अनंत प्रदेशपर्यंत क्षेत्रसंख्याका भेद करता है । फिर यही परमाणु अपने एकप्रदेशके द्वारा प्रदेशसे प्रदेशांतरगतिपरिणामसे दो समयसे लेकर अनंतकालपर्यंत कालसंख्याके भेद को करता है । फिर यही परमाणु अपने एकप्रदेशमें जो वर्णादिक भाव जघन्य हैं उत्कृष्ट भेदसे उस भेद

---

१. अवकाशरहित इत्यर्थः । २ आकाशसहित इत्यर्थः ।

परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायवृत्तिप्ररूपणमेतत्;—

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं ।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणेहि ॥८१॥

एकरसवर्णगंधं द्विस्पर्शं शब्दकारणमशब्दं ।
स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुं तं विजानीहि ॥८१॥

सर्वत्रापि परमाणौ रसवर्णगंधस्पर्शाः सहभुवो गुणाः । ते च क्रमप्रवृत्तैस्तत्र स्वपर्य्यायैर्वर्तते । तथाहि-पञ्चानां रसपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते । पञ्चानां वर्णपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते । उभयोर्गंधपर्य्याययोरन्यतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते । चतुर्णां शीतस्निग्धशीतरूक्षोष्णस्निग्धोष्णरूक्षरूपाणां स्पर्शपर्य्यायद्वंद्वानामन्यतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते । एवमयमुक्तगुणवृत्तिः परमाणुः शब्दस्कंध-

---

द्रव्यक्षेत्रकालभावसंख्या ज्ञातव्याः ॥८०॥

एवं परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारं कृत्वा समयादिव्यवहारकालकथनमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च द्वितीयस्थले चतुर्थगाथा गता । अथ परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायस्वरूपं कथयति;—**एयरसवण्णगंधं दोफासं** एकरसवर्णगंधद्विस्पर्शः । तथाहि—तत्र परमाणौ तिक्तादिपंचरसपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते, शुक्लादिपंचवर्णपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा वर्णोवर्तते, सुरभिदुरभिरूपगंधपर्याययंद्वयोरेकतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते, शीतस्निग्धशीतरूक्षउष्णस्निग्धउष्णरूक्षरूपाणां चतुर्णां स्पर्शपर्यायद्वंद्वानामेकतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते, **सद्दकारणमसद्दं** शब्दकारणोप्यशब्द आत्मवत् । यथात्मा व्यवहारेण ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दकारणभूतोपि निश्चयेनातीन्द्रियज्ञानविषयत्वाच्छब्दज्ञानविषयो न भवति शब्दादिपुद्गलपर्यायरूपो वा न भवति तेन कारणेनाशब्दः तथा परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोप्येकप्रदेशत्वेन शब्दव्यक्त्यभावादशब्दः, **खंदतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि** यमेवमुक्तवर्णादिगुण-

---

संख्याको भी करता है । यह चार प्रकारका भेदमात्र संख्या परमाणुजनित जानो ॥८०॥

आगे परमाणु द्रव्यमें गुणपर्यायका स्वरूपकथन करते हैं;—हे शिष्य ! ['यत्'] जो द्रव्य [**एकरसवर्णगंधं**] एक है रस वर्ण गंध जिसमें ऐसा [**द्विस्पर्शं**] दो स्पर्श गुणवाला है । [**शब्दकारणं**] शब्दकी उत्पत्तिका कारण है [**अशब्दं**] अपने एक प्रदेशसे शब्दत्व रहित है [**स्कंधांतरितं**] पुद्गलपिंडसे पृथक् है [**तं द्रव्यं**] उस द्रव्यको [**परमाणुं**] परमाणु [**विजानीहि**] जानो । **भावार्थ—**एक परमाणुमें पुद्गलके वीस गुणोंमें से जो पाँच रस हैं, उनमेंसे कोई एक रस पाया जाता है । पाँच वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण होता है । इसी प्रकार दो गंधोंमेंसे कोई एक गंध तथा शीतस्निग्ध, शीतरूक्ष, उष्णस्निग्ध, उष्णरूक्ष, इन चार स्पर्शके युगलोंमेंसे एक कोई युगल होता है । इस प्रकार एक परमाणु

परिणतिशक्तिस्वभावात् शब्दकारणं। एकप्रदेशत्वेन शब्दपर्यायपरिणतिवृत्त्यभावादशब्दः। स्निग्धरूक्षत्वप्रत्ययबंधवशादनेकपरमाण्वेकत्वपरिणतिरूपस्कंधांतरितोऽपि स्वभावमपरित्यजन्नुपात्तसंख्यत्वादेकमेव द्रव्यमिति ॥८१॥

सकलपुद्गलविकल्पोपसंहारोऽयम्;—

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे ॥८२॥

उपभोग्यमिन्द्रियैश्चेन्द्रियः काया मनश्च कर्माणि।
यद्भवति मूर्त्तमन्यत् तत्सर्वं पुद्गलं जानीयात् ॥८२॥

शब्दादिपर्यायवृत्तिविशिष्टस्कंदांतरितं द्रव्यरूपस्कंदपरमाणुं विजानीहि परमात्मवदेव। तद्यथा—यथा परमात्मा व्यवहारेण द्रव्यभावरूपकर्मस्कंन्दांतर्गतोपि निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव तथा परमाणुरपि व्यवहारेण स्कंदांतर्गतोपि निश्चयनयेन स्कंदवहिर्भूतशुद्धद्रव्यरूप एव। अथवा स्कंदांतरित इति कोऽर्थः? स्कंदात्पूर्वमेव भिन्न इत्यभिप्रायः॥८१॥

एवं परमाणुद्रव्यवर्णादिगुणस्वरूपशब्दादिपर्यायस्वरूपकथनेन पंचमगाथा गता। इति परमाणुद्रव्यरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं। अथ सकलपुद्गलभेदानामुपसंहारमावेदयति;—**उवभोज्जमिंदियेहिं य** वीतरागातींद्रियसुखास्वादरहितानां जीवानां यदुपभोग्यं पंचेन्द्रियविषयस्वरूपं **इंदियकाया** अतीन्द्रियात्मस्वरूपाद्विपरीतानीन्द्रियाणि अशरीरात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूता औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंज्ञाः पंचकायाः **मणोय** मनोगतविकल्पजालरहितात् शुद्धजीवास्तिकायाद्विपरीतं मनश्च **कम्माणि** कर्मरहितात्मद्रव्यात् प्रतिकूलानि ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माणि **जं हवदि मुत्तिमण्णं** अमूर्तात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतमन्यदपि यन्मूर्तं प्रत्येकानंतसंख्येयासंख्येयानंताणुस्कंदरूप-

---

में पांच गुण जानो। यह परमाणु स्कंधभावको परिणमित हुआ शब्दपर्यायका कारण है। और जब स्कंधसे पृथक् होता है तब शब्दसे रहित है। यद्यपि अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंका कारण पाकर अनेक परमाणुरूप स्कंधपरिणतिको धारण कर एक होता है तथापि अपने एकरूपसे स्वभावको नहीं छोड़ता, सदा एक ही द्रव्य रहता है ॥८१॥

आगे समस्त पुद्गलोंके भेद संक्षेपमें दिखाये जाते हैं;—['यत्'] जो [इन्द्रियैः] पांचों इन्द्रियोंसे [उपभोग्यं] स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दरूप पांच प्रकारके विषय भोगे जाते हैं [च] और [इन्द्रियः] स्पर्श जीभ नासिका कर्ण नेत्र यह पांच प्रकारकी द्रव्यइन्द्रियां [कायाः] औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण यह पांच प्रकारके शरीर [च] और [मनः] पौद्गलीक द्रव्यमन तथा [कर्माणि] द्रव्यकर्म, नोकर्म और [यत्] जो कुछ [अन्यत्] और कोई [मूर्त्तं] मूर्तीक पदार्थ [भवति] है [तत्सर्वं] वह सब [पुद्गलं] पुद्गलद्रव्य [जानीयात्] जानो। **भावार्थ**—पांच प्रकार इन्द्रियोंके विषय, पांच

इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगंधवर्णशब्दाश्च, द्रव्येन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि, कायाः औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानि, द्रव्यमनोद्रव्यकर्माणि नोकर्माणि, विचित्रपर्यायोत्पत्तिहेतवोऽनंताऽनंताणुवर्गणाः, अनंताऽसंख्येयाणुवर्गणाः, अनंताः संख्येयाणुवर्गणाः, द्व्यणुकस्कंधपर्यंताः परमाणवश्च, यदन्यदपि मूर्तं तत्सर्वं पुद्गलविकल्पत्वेनोपसंहर्तव्यमिति ॥८२॥ इति पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् । धर्मस्वरूपाख्यानमेतत्;—

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥८३॥

धर्मास्तिकायोऽरसोऽवर्णगंधोऽशब्दोऽस्पर्शः ।
लोकावगाढः स्पृष्टः पृथुलोऽसंख्यातप्रदेशः ॥८३॥

धर्मो हि स्पर्शरसगंधवर्णानामत्यंताभावादमूर्तस्वभावः । तत एव चाशब्दः । सकललोकाकाशाभिव्याप्यावस्थितत्वाल्लोकावगाढः । अयुतसिद्धप्रदेशत्वात् स्पृष्टः ।

मनंतविभागिपरमाणुराशिरूपं च तं सव्वं पोग्गलं जाणे तत्सर्वमन्यच्च नोकर्मादिकं पुद्गलं जानीहि । इति पुद्गलद्रव्योपसंहारः ॥८२॥

एवं पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथैका गता । इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारे गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलास्तिकायनामा पंचमोत्तराधिकारः समाप्तः ॥ अथानंतरमनंतकेवलज्ञानादिरूपादुपादेयभूतात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्ने हेयरूपे धर्माधर्मास्तिकायाधिकारे गाथासप्तकं भवति । तत्र गाथासप्तकमध्ये धर्मास्तिकायस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "धम्मत्थिकायमरसं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं । तदनंतरमधर्मास्तिकायस्वरूपनिरूपणमुख्यत्वेन "जह हवदि" इत्यादि गाथासूत्रमेकं । अथ धर्माधर्मोभयसमर्थनमुख्यत्वेन तयोरस्तित्वाभावे दूषणमुख्यत्वेन च "जादो अलोग" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयमिति । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण

प्रकारकी इन्द्रियां, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म, नोकर्म तथा इनके अतिरिक्त और जो अनेक पर्यायोंकी उत्पत्तिके कारण नाना प्रकारकी अनंतानंत पुद्गलवर्गणा हैं, अनंती असंख्येयाणुवर्गणा हैं और अनंती व असंख्याती संख्येयाणुवर्गणा हैं, दो अणुके स्कंध तक और परमाणु. अविभागी इत्यादि जो भेद हैं वे समस्त ही पुद्गलद्रव्यमयी जानो । यह पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥८२॥

आगे धर्म, अधर्म, द्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है, जिसमेंसे प्रथमही धर्म द्रव्यका स्वरूप कहा जाता है;—[धर्मास्तिकायः] धर्मद्रव्य काय सहित प्रवर्तमान है। वह धर्मद्रव्य कैसा है ?

---

१. अङ्गीकर्तव्यम् ।

स्वभावादेव सर्वतो विस्तृतत्वात्पृथुलः । निश्चयनयेनैकप्रदेशोऽपि व्यवहारनयेनाऽसंख्यातप्रदेश इति ॥८३॥

धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपाख्यानमेतत्;—

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं ।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥८४॥

अगुरुलघुकैः सदा तैः अनंतैः परिणतः नित्यः ।
गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः स्वयमकार्यः ॥८४॥

अपि च धर्मः अगुरुलघुभिर्गुणैरगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैः

धर्माधर्मास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा—धर्मास्तिकायस्वरूपं कथयति; **धम्मत्थिकायं** धर्मास्तिकायो भवति **अरसमवण्णमगंधमसद्दमप्फासं** रसवर्णगंधशब्दस्पर्शरहितः **लोगागाढं** लोकव्यापकः **पुट्ठं** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणतजीवप्रदेशेषु परमानंदैकलक्षणसुखरसास्वादसमरसीभाववत् सिद्धक्षेत्रे सिद्धराशिवत् पूर्णघटे जलवत् तिलेषु तैलवद्वा स्पृष्टः परस्परप्रदेशव्यवधानरहितत्वेन निरंतरः न च निर्जनप्रदेशे भावितात्ममुनिसमूहवन्नगरे जनचयवद्वा सांतरः, बहुलं अभव्यजीवप्रदेशेषु मिथ्यात्वरागादिवल्लोके नभोवद्वा पृथुलोऽनाद्यंतरूपेण स्वभावविस्तीर्णः न च केवलिसमुद्घाते जीवप्रदेशवल्लोके वस्त्रादिप्रदेशविस्तारवद्वा पुनरिदानीं विस्तीर्णः । पुनरपि किंविशिष्टः ? **असंखादियपदेसं** निश्चयेनाखंडैकप्रदेशोऽपि सद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशप्रमितासंख्यातप्रदेश इति सूत्रार्थः ॥८३॥

अथ धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपं प्रतिपादयति;—**अगुरुगलहुगेहि सदा तेहि अणंतेहि परिणदं**

[अरसः] पाँच प्रकारके रसरहित [अवर्णगंध] पाँच प्रकारके वर्ण और दो प्रकारके गंधरहित [अशब्दः] शब्दपर्यायसे रहित [अस्पर्शः] आठ प्रकारके स्पर्श गुणरहित है । फिर कैसा है ? [लोकावगाढः] समस्त लोकको व्याप्त होकर रहता है [स्पृष्टः] अपने प्रदेशोंके स्पर्शसे अखंडित है [पृथुलः] स्वभावसेही सब जगह विस्तृत है । और [असंख्यातप्रदेशः] यद्यपि निश्चयनयसे एक अखंडित द्रव्य है तथापि व्यवहारसे असंख्यातप्रदेशी है । भावार्थ—धर्मद्रव्य स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंसे रहित है इस कारण अमूर्तीक है, क्योंकि स्पर्श रस गंध वर्णवती वस्तु सिद्धांतमें मूर्तीक ही है । ये चार गुण जिसमें नहीं हों उसीका नाम अमूर्तीक है इस धर्मद्रव्यमें शब्द भी नहीं है क्योंकि शब्द भी मूर्तीक होते हैं, इस कारण शब्दपर्यायसे रहित है । लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है । यद्यपि अखंडद्रव्य है परंतु भेद दिखानेके लिये परमाणुओं द्वारा असंख्यातप्रदेशी गिना जाता है ॥८३॥

आगे फिर भी धर्मद्रव्यका स्वरूप कुछ विशेषतासे दिखाया जाता है;—[सदा] सदा काल [तैः] उन द्रव्योंके अस्तित्व करनेवाले [अगुरुलघुकैः] अगुरुलघु नामक [अनंतैः] अनंत गुणोंसे [परिणतः] समय समयमें परिणमता है ? फिर कैसा है । [नित्यः] टंकोत्कीर्ण अविनाशी वस्तु है ।

सदापरिणतत्वादुत्पादव्ययभावेऽपि स्वरूपादप्रच्यवन्नान्नित्यः गतिक्रियापरिणतानामुदासीनाऽविनाभूतसहायमात्रत्वात्कारणभूतः । स्वास्तित्वमात्रनिर्वृत्तत्वात् स्वयमकार्य इति ॥८४॥

धर्मस्य गतिहेतुत्वे दृष्टांतोऽयम्;—

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए ।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं वियाणेहि ॥८५॥

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके ।
तथा जीवपुद्गलानां धर्मं द्रव्यं विजानीहि ॥८५॥

अगुरुलघुकैः सदा तैरनंते परिणतः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंततैरविभागपरिच्छेदैः परिणतः येऽगुरुलघुकगुणाः स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनभूतास्तैः कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययपरिणतोपि द्रव्यार्थिकनयेन **णिच्चं** नित्यं **गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं** गतिक्रियायुक्तानां कारणभूत । यथा सिद्धो भगवानुदासीनोपि सिद्धगुणानुरागपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति तथाः धर्मोपि स्वभावेनैव गतिपरिणतजीवपुद्गलानामुदासीनोपि गतिसहकारिकारणं भवति **सयमकज्जं** स्वयमकार्यं । यथा सिद्धः स्वकीयशुद्धास्तित्वेन निष्पन्नत्वादन्येन केनापि न कृत इत्यकार्यः तथा धर्मोपि स्वकीयास्तित्वेन निष्पन्नत्वादकार्य इत्यभिप्रायः ॥८४॥

अथ धर्मस्य गतिहेतुत्वे लोकप्रसिद्धदृष्टांतमाह;—उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके तथैव जीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यं विजानीहि हे शिष्य ! तथाहि—यथा हि जलं स्वयमगच्छन्मत्स्यान-

---

फिर कैसा है ? [**गतिक्रियायुक्तानां**] गमन अवस्था सहित जीव पुद्गलों के लिये [**कारणभूतं**] निमित्तकारण है । फिर कैसा है ? [**स्वयमकार्यः**] किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है । **भावार्थ**—धर्मद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण वस्तु है । यद्यपि अपने अगुरुलघु गुणसे षट्गुणी हानिवृद्धिरूप परिणमता है, परिणामसे उत्पादव्ययसंयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूपसे चलायमान नहीं होता, क्योंकि द्रव्य वही है जो उपजे विनशे स्थिर रहे । इस कारण यह धर्मद्रव्य अपने ही स्वभावको परिणमित पुद्गल को उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र गतिमें कारणभूत है । और यह अपनी अवस्थासे अनादि अनंत है, इस कारण कार्यरूप नहीं है । कार्य उसे कहते हैं जो किसीसे उपजा हो । गतिको निमित्त पाकर सहाई है, इसलिये यह धर्मद्रव्य कारणरूप है, किंतु कार्य नहीं है ॥८४॥

आगे धर्मद्रव्य गतिको निमित्तमात्र सहाय किस दृष्टांतसे है सो दिखाया जाता है;—[**लोके**] इस लोकमें [**यथा**] जैसे [**उदकं**] जल [**मत्स्यानां**] मछलियोंको [**गमनानुग्रहकरं**] गमनके उपका-

---

१. धर्म विना गमनं नास्ति । २. जीवपुद्गलानाम् ।

यथोदकं स्वयमगच्छदगमयच्च[1] स्वयमेव गच्छतां मत्स्यानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति, तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छन् अगमयंश्च स्वयमेव गच्छतां जीवपुद्गलानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति इति ॥८५॥

अधर्मस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥८६॥

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथा तज्जानीहि द्रव्यमधर्माख्यं ।
स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं तु पृथिवीव ॥८६॥

प्रेरयत्सत्तेषां स्वयं गच्छतां गतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वयमगच्छत्परानप्रेरयंश्च स्वयमेव गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानां सिद्धगतेः पुण्यवत्। तद्यथा—यथा रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मो यद्यपि सिद्धगतेरुपादानकारणं भव्यानां भवति तथा निदानरहितपरिणामोपार्जिततीर्थंकरप्रकृत्युत्तमसंहननादिविशिष्टपुण्यरूपधर्मोपि सहकारिकारणं भवति, तथा यद्यपि जीवपुद्गलानां गतिपरिणतेः स्वकीयोपादानकारणमस्ति तथापि धर्मास्तिकायोपि सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानामभव्यानां वा यथा चतुर्गतिगमनकाले यद्यप्यभ्यंतरशुभाशुभपरिणाम उपादानकारणं भवति तथापि द्रव्यलिङ्गादि दानपूजादिकं वा वहिरंगशुभानुष्ठानं च बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां यद्यपि स्वयमेव निश्चयेनाभ्यंतरेऽन्तरंगसामर्थ्यमस्ति तथापि व्यवहारेण धर्मास्तिकायोपि गतिकारणं भवतीति भावार्थः ॥८५॥

रको निमित्तमात्र सहाय [भवति] होता है [तथा] वैसे ही [जीवपुद्गलानां] जीव और पुद्गलोंके गमनका सहाय [धर्मद्रव्यं] धर्म नामक द्रव्य [विजानीहि] जानो। भावार्थ—जैसे जल मछलियोंके गमन करते समय न तो आप उनके साथ चलता है और न मछलियोंको चलाता है, किंतु उनके गमनमें निमित्तमात्र सहायक है, ऐसा ही कोई एक स्वभाव है। मछलियां जलके विना चलनेमें असमथ हैं इस कारण जल निमित्तमात्र है। इसी प्रकार जीव और पुद्गल धर्मद्रव्यके विना गमन करनेमें असमर्थ हैं। जीव-पुद्गलोंके चलते हुये धर्मद्रव्य आप नहीं चलता और न उनको प्रेरणा करके चलाता है। आप तो उदासीन है परंतु कोई एक ऐसा ही अनादिनिधनस्वभाव है कि जीव-पुद्गल गमन करें तो उनमें निमित्तमात्र सहायक होता है ॥८५॥

---

१. अन्यमगमयत्।

यथा धर्मः प्रज्ञापितस्तथाऽधर्मोपि प्रख्यापनीयः। अयं तु विशेषः। स गतिक्रियायुक्तानामुदकवत्कारणभूतः एषः पुनः स्थितिक्रियायुक्तानां पृथिवीवत्कारणभूतः। यथा पृथिवी स्वयं पूर्वमेव तिष्ठंती परमस्थापयंती च स्वयमेव तिष्ठतामश्वादीनामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन स्थितिमनुगृह्णाति (१) ॥८६॥

धर्माधर्मसद्भावे हेतूपन्यासोऽयम्;—

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥८७॥

एवं प्रथमस्थले धर्मास्तिकायव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं। अथाधर्मास्तिकायस्वरूपं कथ्यते;—यथा भवति धर्मद्रव्यं तथार्थं कर्तुं जानीहि हे शिष्य! द्रव्यधर्माख्यं। तच्च कथंभूतं ? स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं पृथिवीवत्। तथाहि–यथा पूर्वमरसादिविशेषणविशिष्टं धर्मद्रव्यं व्याख्यातं अधर्मद्रव्यमपि तद्रूपं ज्ञातव्यं, अयं तु विशेषः तन्मत्स्यानां जलवज्जीवपुद्गलानां गतेर्बहिरंगसहकारिकारणं इदं तु यथा पृथिवी स्वयं पूर्वं तिष्ठंती परं स्थापयंती तुरंगादीनां स्थितेर्बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां स्थापयत्स्वयं च पूर्वं तिष्ठत्सत् स्थितेस्तेषां कारणमिति पथिकानां छायावद्वा। अथवा शुद्धात्मस्वरूपे या स्थितिस्तस्या निश्चयेन वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनं कारणं व्यवहारेण पुनरर्हत्सिद्धादिपरमेष्ठिगुणस्मरणं च यथा तथा जीवपुद्गलानां निश्चयेन स्वकीयस्वरूपमेव स्थितेरुपादानकारणं व्यवहारेण पुनरधर्मद्रव्यं चेति सूत्रार्थः ॥८६॥

आगे धर्मद्रव्यका स्वरूप दिखाया जाता है;—[यथा] जैसे [तत्] जिसका स्वरूप पहिले कह आये वह [धर्मद्रव्यं] धर्मद्रव्य [भवति] है [तथा] वैसे ही [अधर्माख्यं] अधर्मनामक [द्रव्यं तु] द्रव्य [स्थितिक्रियायुक्तानां] स्थिर होनेकी क्रियासे युक्त जीव-पुद्गलोंको [पृथिवी इव] पृथिवीके समान सहकारी [कारणभूतं] कारण [जानीहि] जानो। **भावार्थ**—जैसे भूमि अपने स्वभावहीसे अपनी अवस्थाको लिये पहिले ही विद्यमान है, स्थिर है, और घोड़ा आदि को बलात् नहीं ठहराती; घोड़ा आदि यदि स्वयं ही ठहरना चाहें तो पृथिवी सहज अपनी उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र स्थितिमें सहायक है। इसी प्रकार अधर्मद्रव्य अपनी साहजिक अवस्थासे अपने असंख्यात प्रदेश लिये लोकाकाश प्रमाणतासे अविनाशी है, अनादि कालसे विद्यमान है, उसका स्वभाव भी जीव-पुद्गलोंकी स्थिरताको निमित्तमात्र कारण है, परंतु वह अन्य द्रव्यको बलात् नही ठहराता। आपहीसे यदि जीव-पुद्गल स्थिर अवस्थारूप परिणमै तो आप अपनी स्वाभाविक उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र सहाय होता है। जैसे धर्मद्रव्य निमित्तमात्र गतिमें सहायक है उसी प्रकार अधर्मद्रव्य स्थिरतामें सहकारी कारण जानो। यह संक्षेपमें धर्म अधर्म द्रव्यका स्वरूप कहे ॥८६॥

१. अधर्मः।

जातमलोकलोकं ययोः सद्भावतश्च गमनस्थितिः।
द्वावपि च मतौ विभक्तावविभक्तौ लोकमात्रौ च ॥८७॥

धर्माधर्मौ विद्येते। लोकालोकविभागान्यथानुपपत्तेः। जीवादिसर्वपदार्थानामेकत्र वृत्तिरूपो लोकः। शुद्धैकाकाशवृत्तिरूपोऽलोकः। तत्र जीवपुद्गलौ स्वरसत[1] एव गतितत्पूर्वस्थितिपरिणाममापन्नौ। तयोर्यदि[2] गतिपरिणामं तत्पूर्वस्थितिपरिणामं वा स्वयमनुभवतोर्बहिरङ्गहेतू धर्माधर्मौ न भवेताम्, तदा तयोर्निरर्गलगतिस्थितिपरिणामत्वादलोकेऽपि वृत्तिः केन वार्येत? ततो न लोकालोकविभागः सिध्येत। धर्माधर्मयोस्तु जीवपुद्गलयोर्गतितत्पूर्वस्थित्योर्बहिरङ्गहेतुत्वेन सद्भावेऽभ्युपगम्यमाने[3] लोकालोकविभागो जायत इति। किञ्च धर्माधर्मौ द्वावपि परस्परं पृथग्भूतास्तित्व

एवमधर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथासूत्रमेकं गतं। अथ धर्माधर्मसद्भावे साध्ये हेतुं दर्शयति;--जादो जातं। किं कर्तृ? अलोगलोगो लोकालोकद्वयं। कस्माज्जातं? जेसिं सब्भावदो य ययोर्धर्माधर्मयोः स्वभावतश्च। न केवलं लोकालोकद्वयं जातं। गमणठिदी गतिस्थितिश्चेति द्वौ। कथंभूतौ? दोवि य मया द्वौ धर्माधर्मौ मतौ संमतौ स्तः अथवा पाठांतरं "अमया" अमयौ न केनापि कृतौ विभत्ता विभक्तौ भिन्नौ अविभत्ता अविभक्तौ लोयमेत्ता य लोकमात्रौ चेति। तद्यथा-धर्माधर्मौ विद्येते लोकालोकसद्भावात्, षड्द्रव्यसमूहात्मको लोकः तस्माद्बहिर्भूतं शुद्धमाकाशमलोकः, तत्र लोके गतिं तत्पूर्वकस्थितिमास्कंदतोः स्वीकुर्वतोर्जीवपुद्गलयोर्यदि बहिरंगहेतुभूतधर्माधर्मौ न स्यातां तदा लोकाद्बहिर्भूतबाह्यभागेपि गतिः केन नाम निषिध्यते? न केनापि। ततो लोकालोकविभागादेव ज्ञायते धर्माधर्मौ विद्येते। तौ च किंविशिष्टौ? भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वान्निश्चयनयेन

अब यदि कोई कहे कि धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं, तो उसका समाधान करनेके लिये आचार्य कहते हैं;—[ययोः] जिन धर्माधर्म द्रव्यके [सद्भावतः] अस्तित्व होनेसे [अलोकलोकं] लोक और अलोक [जातं] हुआ है [च] और जिनसे [गमनस्थिति] गति-स्थिति होती है वे [द्वौ अपि] दोनों ही [विभक्तौ मतौ] अपने अपने स्वरूपसे जुदे जुदे कहे गये हैं, किन्तु [अविभक्तौ] एकक्षेत्र अवगाहसे जुदे जुदे नहीं हैं। [च] और [लोकमात्रौ] असंख्यातप्रदेशी लोकमात्र हैं। भावार्थ—यहाँ प्रश्न किया था कि—धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं, आकाश ही गति स्थितिमें सहायक है, उसका समाधान इस प्रकार हुआ कि—धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं। यदि यह दोनों नहीं होते तो लोक अलोकका भेद नहीं होता। लोक उसको कहते हैं जहाँ जीवादिक समस्त पदार्थ हों। जहाँ एक आकाश ही है वह अलोक है। इसलिये जीव पुद्गलकी गति-स्थिति लोकाकाशमें है, अलोकाकाशमें नहीं है। यदि इन धर्म-अधर्मके गति-स्थिति निमित्तका गुण नहीं होता तो लोक-अलोकका भेद दूर हो जाता। जीव

---

१. स्वभावतः, २. जीवपुद्गलयोः, ३. अङ्गीक्रियमाणे सति।

निर्वृत्तत्वाद्विभक्तौ। एकक्षेत्रावगाढत्वादविभक्तौ। निष्क्रियत्वेन सकललोकवर्तिनोर्जीवपुद्गलयोर्गतिस्थित्युपग्रहणकरणाल्लोकमात्राविति ॥८७॥

धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वेऽप्यत्यंतौदासीन्याख्यापनमेतत्;—

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गती स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ॥८८॥

न च गच्छति धर्मास्तिको गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य।
भवति गतेः सः प्रसरो जीवानां पुद्गलानां च ॥८८॥

यथा हि गतिपरिणतः प्रभञ्जनो[1] वैजयंतीनां[2] गतिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः। स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपरिणाममेवापद्यते। कुतोऽस्य[3] सहकारित्वेन परेषां गतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं? किंतु सलिलमिव मत्स्यानां जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतेः प्रसरो[4] भवति। अपि च

पृथग्भूतौ एकक्षेत्रावगाहत्वादसद्भूतव्यवहारनयेन सिद्धराशिवदभिन्नौ सर्वदैव निःक्रियत्वेन लोकव्यापकत्वाल्लोकमात्राविति सूत्रार्थः ॥८७॥

अथ धर्माधर्मौ गतिस्थितिहेतुत्वविषयेत्यंतोदासीनाविति निश्चिनोति;—**ण य गच्छदि** नैव गच्छति। स कः? **धम्मत्थी** धर्मास्तिकायः **गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स** गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य **हवदि** तथापि भवति। स कः? **पसरो** प्रसरः प्रवृत्तिः। कस्याश्च? **गदिस्स य** गतेश्च। केषां गतेः?

और पुद्गल, दोनों ही द्रव्य गति-स्थिति अवस्थाको धारण करते हैं। इनकी गति-स्थितिमें बहिरंग कारण धर्म-अधर्म द्रव्य लोकमें ही हैं। यदि ये धर्म-अधर्म द्रव्य लोकमें नहीं होते तो लोक-अलोकका भेद ही नहीं होता। सब जगह ही लोक होता। इसलिये धर्म-अधर्म द्रव्य अवश्य हैं। जहाँ तक जीव पुद्गल गति-स्थितिको करते हैं वहाँ तक लोक है, उससे परे अलोक जानो। इसी न्याय से लोक-अलोकका भेद धर्म-अधर्म द्रव्यसे जानो। ये धर्म-अधर्म द्रव्य दोनों ही अपने-अपने प्रदेशोंको लिये हुये जुदे जुदे हैं। एक लोकाकाश क्षेत्रकी अपेक्षा जुदे जुदे नहीं हैं। क्योंकि लोकाकाशके जिन प्रदेशोंमें धर्मद्रव्य है उन ही प्रदेशोंमें अधर्मद्रव्य भी है। दोनों ही हलनचलनरूप क्रियासे रहित सर्वलोकव्यापी हैं। समस्त लोकव्यापी जीवपुद्गलोंको गति-स्थितिमें सहकारी कारण हैं। इसलिये दोनों ही द्रव्य लोकमात्र असंख्यातप्रदेशी हैं ॥८७॥

आगे धर्म-अधर्म द्रव्य प्रेरक होकर गति स्थितिमें कारण नहीं हैं, अत्यन्त उदासीन हैं, ऐसा कथन करने को गाथा कहते हैं। **[धर्मास्तिकः]** धर्मास्तिकाय **[न]** नहीं **[गच्छति]** चलता है। **[च]** और **[अन्यद्रव्यस्य]** अन्य जीव पुद्गलका प्रेरक होकर **[गमनं]** हलन चलन क्रियाको **[न]** नहीं **[करोति]** करता है **[सः]** वह धर्मद्रव्य **[जीवानां]** जीवोंकी और **[पुद्गलानां]** पुद्गलोंकी **[गतेः]**

---

१. वायुः २. पताकानाम् ३. धर्मद्रव्यस्य ४. प्रवर्तको भवति, न प्रेरकतया प्रेरकः।

यथा गतिपूर्वस्थितिपरिणतस्तुरङ्गोऽश्ववारस्य स्थितिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः। स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपूर्वस्थितिपरिणाममेवापद्यते। कुतोऽस्य सहस्थायित्वेन परेषां गतिपूर्वस्थितिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं ? किंतु पृथिवीवत्तुरङ्गस्य जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतिपूर्वस्थितेः प्रसरो भवतीति ॥८८॥

जीवाणां पोग्गलाणं च जीवानां पुद्गलानां चेति। तथाहि–यथा तुरंगमः स्वयं गच्छन् स्वकीयारोहकस्य गमनहेतुर्भवति न तथा धर्मास्तिकायः। कस्मात् ? निष्क्रियत्वात्, किन्तु यथा जलं स्वयं तिष्ठति सति वा तिष्ठत्सत्स्वयं गच्छतां मत्स्यानामौदासीन्येन गतेर्निमित्तं भवति तथा धर्मोपि स्वयं तिष्ठन्सन् स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानामप्रेरकत्वेन बहिरंगनिमित्तं भवति। यद्यपि धर्मास्तिकायो य उदासीनो जीवपुद्गलगतिविषये तथापि जीवपुद्गलानां स्वकीयोपादानबलेन जले मत्स्यानामिव गतिहेतुर्भवति, अधर्मस्तु पुनः स्वयं तिष्ठतामश्वादीनां पृथिवीवत्पथिकानां छायावद्वा स्थितेर्बहिरंगहेतुर्भवतीति भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानामभिप्रायः ॥८८॥

हलन चलन क्रियाका [प्रसरः] प्रवर्त्तक [भवति] होता है। [च] फिर इस प्रकार ही अधर्म द्रव्य भी स्थितिमें निमित्तमात्र कारण जानो। भावार्थ—जैसे पवन अपने चंचल स्वभावसे ध्वजाओंकी हलन चलन क्रियाका कर्त्ता देखनेमें आता है, वैसे धर्मद्रव्य नहीं है। धर्मद्रव्य स्वयं हलन-चलनरूप क्रियासे रहित है, किसी कार्यमें भी आप गति-परिणतिको (गमनक्रियाको) धारण नहीं करता। इसलिये जीव-पुद्गलकी गति-परिणतिमें सहायक किस प्रकार होता है ? इसका दृष्टांत देते हैं। जैसे कि निष्कम्प सरोवरमें 'जल' मछलियोंकी गतिमें सहकारी कारण है,—जल स्वयं प्रेरक होकर मछलियोंको नहीं चलाता, मछलियाँ अपने ही गति-परिणाम के उपादान कारणसे चलती हैं, परन्तु जलके विना नहीं चल सकतीं, जल उनको निमित्तमात्र कारण है। उसी प्रकार जीव-पुद्गलोंकी गति अपने उपादान कारणसे है। धर्मद्रव्य स्वयं चलता नहीं है किन्तु अन्य जीव-पुद्गलोंकी गतिके लिये निमित्तमात्र होता है। इसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी निमित्तमात्र है। जैसे घोड़ा प्रथम ही गति क्रियाको करके फिर स्थिर होता है किन्तु असवारकी स्थितिका कर्त्ता दिखाई देता है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य प्रथम स्वयं चलकर जीव-पुद्गलकी स्थिरक्रियाका स्वयं कर्त्ता नहीं है, किन्तु स्वयं निःक्रिय है, इसलिये गतिपूर्वस्थिति परिणाम अवस्थाको प्राप्त नहीं होता है। यदि परद्रव्यकी क्रियासे इसकी गति पूर्वक्रिया नहीं होती तो किस प्रकार स्थिति क्रियाका सहकारी कारण होता है ? जैसे घोड़ेकी स्थिति क्रियाका निमित्त कारण भूमि (पृथिवी) होती है। भूमि चलती नहीं, परन्तु गतिक्रियाके करनेवाले घोड़ेकी स्थितिक्रियामें सहकारिणी है। उसी प्रकार अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गलकी स्थितिमें उदासीन अवस्थासे स्थितिक्रियामें सहायक है ॥८८॥

---

१. अधर्मद्रव्यस्य २. सहचलनरूपेण।

धर्माधर्मयोरौदासीन्ये हेतूपन्यासोऽयम्;—

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि ।
ते सगपरणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥८९॥

विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ।
ते स्वकपरिणामैस्तु गमनं स्थानं च कुर्वन्ति ॥८९॥

धर्मः किल न जीवपुद्गलानां कदाचिद्गतिहेतुत्वमभ्यस्यति, न कदाचित्स्थितिहेतुत्वमधर्मः । तौ हि परेषां गतिस्थित्योर्यदि मुख्यहेतू स्यातां तदा येषां गतिस्तेषां गतिरेव, न स्थितिः, येषांस्थितिस्तेषां स्थितिरेव, न गतिः । तत एकेषामपि गतिस्थितिदर्शनादनुमीयते न तौ तयोर्मुख्यहेतू । किंतु व्यवहारनयव्यवस्थापितौ उदासीनौ ।

अथ धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वोदासीनविषये युक्तिमुद्योतयति;—विद्यते तेषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ते जीवपुद्गलाः स्वकपरिणामैरेव स्थानं गमनं च कुर्वतीति । तथाहि—धर्मस्तावत्कापि काले गतिहेतुत्वं न त्यजति न चाधर्मः स्थितिहेतुत्वं तौ यदि गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू स्यातां तदा गतिस्थितिकाले परस्परं मत्सरो भवति । कथमिति चेत् ? येषां गतिस्तेषां सर्वदैव गतिरेव न च स्थितिः येषां पुनः स्थितिस्तेषां सर्वदैव स्थितिरेव न च गतिः । न तथा दृश्यते । किंतु ये गतिं कुर्वन्ति त एव पुनरपि स्थितिं कुर्वन्ति, ये स्थितिं कुर्वन्ति त एव पुनर्गतिं कुर्वन्ति । ततो ज्ञायते न तौ धर्माधर्मौ गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू । यदि मुख्यहेतू न भवेतां तर्हि गतिस्थितिमतां जीवपुद्गलानां

आगे धर्म अधर्म द्रव्यको गतिस्थितिका उपादानकारण मुख्यतासे नहीं है, उदासीनमात्र भावसे निमित्तकारणमात्र कहा जाता है। धर्मद्रव्य अकेला स्वयं ही किसी कालमें भी गतिकारणरूप अवस्थाको धारण नहीं करता और अधर्मद्रव्य भी अकेला किसी कालमें भी स्थितिकारणरूप अवस्थाको धारण नहीं करता, किंतु गति-स्थितिपरिणतिके कारण हैं। यदि दोनों धर्म अधर्म द्रव्य गतिस्थितिके उपादानरूप मुख्य कारण होते तो [येषां]. जिन जीवपुद्गलोंका [गमनं] चलना [स्थानं] स्थिर होना [विद्यते] होता है [पुनः] फिर [तेषां] उन ही द्रव्योंका [एव] निश्चयसे चलना व स्थिर होना [सम्भवति] होता है। यदि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण होकर जबरदस्तीसे जीवपुद्गलोंको चलाते और स्थिर करते तो सदाकाल जो चलते वे सदा चलते ही रहते और जो स्थिर होते वे सदा स्थिर ही रहते। इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं। [ते] वे जीवपुद्गल [स्वकपरिणामैः तु] अपने गतिस्थितिपरिणामके उपादानकारणरूपसे तो [गमनं] चलना [च] और [स्थानं] स्थिर होना

---

१. एकस्वरूपसरूपसमूहजीवपुद्गलानाम् ।

कथमेवं गतिस्थितिमतां पदार्थानां गतिस्थितो भवत इति चेत्, सर्वे हि गतिस्थितिमंतः पदार्थाः स्वपरिणामैरेव निश्चयेन गतिस्थिती कुर्वंतीति ॥८९॥ इति धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् । अथाकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

आकाशस्वरूपाख्यानमेतत्;—

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥

सर्वेषां जीवानां शेषाणां तथैव पुद्गलानां च ।
यद्ददाति विवरमखिलं तल्लोके भवत्याकाशं ॥९०॥

कथं गतिस्थिती इति चेत् ? ते निश्चयेन स्वकीयपरिणामैरेव गतिं स्थितिं च कुर्वंतीति । अत्र सूत्रे निर्विकारचिदानंदैकस्वभावादुपादेयभूतात् शुद्धात्मतत्त्वाद्भिन्नत्वाद्धेयतत्त्वमित्यभिप्रायः ॥८९॥

एवं धर्माधर्मोभयव्यवस्थापनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतं । इति गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेण पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये धर्माधर्मव्याख्यानरूपेण षष्ठांतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं शुद्धबुद्धैकस्वभावान्निश्चयमोक्षकारणभूतात्सर्वप्रकारोपादेयरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्न आकाशास्तिकायः सप्तगाथापर्यन्तं कथ्यते । तत्र गाथासप्तकमध्ये प्रथमतस्तावल्लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "सव्वेसिं जीवाणं" इत्यादि गाथाद्वयं । अथ आकाशमेव गतिस्थितिद्वयं करिष्यति धर्माधर्माभ्यां किं प्रयोजनमिति पूर्वपक्षनिराकरणमुख्यत्वेन "आगासं अवगासं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं । तदनंतरं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चासद्भूतव्यवहारेणैकत्वं भिन्नलक्षणत्वान्निश्चयेन पृथक्त्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "धम्माधम्मागासा" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । आकाशस्वरूपं कथयति;—**सव्वेसिं जीवाणं** सर्वेषां जीवानां **सेसाणं तह य** शेषाणां तथैव च धर्माधर्मकालानां **पोग्गलाणं च** पुद्गलानां च **जं देदि** यत्कर्तृ ददाति । किं ? **विवरं** विवरं छिद्रं अवकाशमवगाहं अखिलं समस्तं तं तत्पूर्वोक्तं **लोगे** लोकविषये **हवदि अगासं**

[कुर्वन्ति] करते हैं । इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं । व्यवहार नयकी अपेक्षासे उदासीन अवस्थासे निमित्तकारण हैं निश्चय करनेसे जीव-पुद्गलोंकी गतिस्थितिमें उपादानकारण अपने ही परिणाम हैं ॥८९॥

यहाँ धर्म अधर्मास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ । आगे आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है;—[सर्वेषां] समस्त [जीवानां] जीवोंको [तथैव] वैसेही [शेषाणां] धर्म अधर्म काल इन तीन द्रव्योंको [च] और [पुद्गलानां] पुद्गलोंको [यत्] जो [अखिलं] समस्त [विवरं] जगहको

षड्द्रव्यात्मके लोके सर्वेषां शेषद्रव्याणां यत्समस्तावकाशनिमित्तं विशुद्धक्षेत्ररूपं तदाकाशमिति [९०]

लोकाद्बहिराकाशसूचनेयं;—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा ।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥९१॥

जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च लोकतोऽनन्ये ।
ततोऽनन्यदन्यदाकाशमंतव्यतिरिक्तं ॥९१॥

आकाशं भवति । अत्राह शिवकुमारमहाराजनामा हे भगवन् ! लोकस्तावदसंख्यातप्रदेशः, तत्र लोके निश्चयनयेन नित्यनिरंजनज्ञानमयपरमानंदैकलक्षणाः अनंतानंतजीवास्तेभ्योप्यनंतगुणः पुद्गला लोकाकाशप्रमितप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो धर्माधर्मौ चेति सर्वे कथमवकाशं लभंत ? इति । भगवानाह—एकापवरके अनेकप्रदीपप्रकाशवदेकगूढनागरसगद्याणके बहुसुवर्णवदेकस्मिन्नुष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटवदेकस्मिन् भूमिगृहे जयघंटादिशब्दवद्विशिष्टावगाहगुणेनासंख्येयप्रदेशेपि लोके अनंतसंख्या अपि जीवादयोऽवकाशं लभंत इत्यभिप्रायः ॥९०॥

अथ षड्द्रव्यसमवायो लोकस्तस्माद्बहिरनंतमाकाशमलोक इति प्रकटयति;—**जीवा** जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मद्वयं चकारात्कालश्च । एते सर्वे कथंभूताः ? **लोगदो अणण्णा** लोकात्सकाशादनन्ये **तत्तो** तस्माल्लोकाकाशात् **अणण्णमण्णं आगासं** अनन्यदन्यच्चाकाशं यदन्यदलोकाकाशं । तत्किं प्रमाणं ? **अंतवदिरित्तं** अन्तव्यतिरिक्तमनंतमिति । अत्र सूत्रे यद्यपि सामान्येन पदार्थानां लोकादनन्यत्वं भणितं तथापि निश्चयेन मूर्तिरहितत्वकेवलज्ञानत्वसहजपरमानंदत्वनित्यत्वरंजनत्वादि

[ददाति] देता है [तत्] वह द्रव्य [लोके] इस लोकमें [आकाशं] आकाशद्रव्य (भवति) होता है । **भावार्थ**—इस लोकमें पांच द्रव्योंको जो अवकाश देता है उसको आकाश कहते हैं ॥९०॥

आगे, लोकसे बाहर अलोकाकाश है, उसका स्वरूप कहते हैं;—[जीवाः] अनंत जीव [पुद्गलकायाः] अनंत पुद्गलपिंड [च] और [धर्माधर्मौ] धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य [लोकतः अनन्ये] लोकसे बाहर नहीं हैं । ये पाँच द्रव्य लोकाकाशमें हैं । [ततः] उस लोकाकाशसे [अन्यत्] जो और है [अनन्यत्] और नहीं भी है, ऐसा [आकाशं] आकाशद्रव्य है सो [अंतव्यतिरिक्तं] अनंत है । **भावार्थ**—आकाश लोक अलोकके भेदसे दो प्रकारका है । लोकाकाश उसे कहते हैं जो जीवादि पांच द्रव्योंसे सहित है । और अलोकाकाश वह है जहाँ पर आप एक आकाश ही है । वह अलोकाकाश एक द्रव्यकी अपेक्षा लोकसे जुदा नहीं है, और वह अलोकाकाश पांच द्रव्यसे रहित है, जब यह अपेक्षा ली जाय तब जुदा है, अलोकाकाश अनंतप्रदेशी है, लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है । यहाँ कोई प्रश्न करे कि लोकाकाशका क्षेत्र किंचिन्मात्र है, तो उसमें अनंत जीवादि पदार्थ कैसे समा रहे

१. पञ्चद्रव्याणाम् ।

जीवादीनि शेषद्रव्याण्यवधृतपरिमाणत्वाल्लोकादनन्यान्येव। आकाशं त्वनंतत्वाल्लोकादनन्यदन्यच्चेति ॥९१॥

आकाशस्यावकाशैकहेतोर्गतिस्थितिहेतुत्वशङ्कायां दोषोपन्यासोऽयम्;—

आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥९२॥

आकाशमवकाशं गमनस्थितिकारणाभ्यां ददाति यदि।
ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः सिद्धाः तिष्ठन्ति कथं तत्र ॥९२॥

यदि खल्वाकाशमवगाहिनामवगाहहेतुर्गतिस्थितिमतां गतिस्थितिहेतुरपि

लक्षणेन शेषद्रव्येभ्यो जीवानामन्यत्वं स्वकीयस्वकीयलक्षणेन शेषद्रव्याणां च जीवेभ्यो भिन्नत्वं। तेन कारणेन ज्ञायते संकरव्यतिकरदोषो नास्तीति भावः ॥९१॥

एवं लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपसमर्थनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतं। अथाकाशं जीवादीनां यथावकाशं ददाति तथा यदि गतिस्थिती अपि ददाति तदा दोषं दर्शयति;—आयासं आकाशं कर्तृ देदि जदि ददाति यदि चेत्। किं? अवगासं अवकाशमवगाहं। कथं सह काभ्यां? गमणट्ठिदिकारणेहिं गमनस्थितिकारणाभ्यां। तदा किं दूषणं? उड्ढं गदिप्पधाणा निर्विकारविशिष्टचैतन्यप्रकाशमात्रेण कारणसमयसारभावनाबलेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिविनाशं कृत्वा पश्चात्स्वभाविकोर्ध्वगतिस्वभावाः संतः। के ते? सिद्धा स्वभावोपलब्धिसिद्धिरूपाः सिद्धा भगवंतः चेट्ठंति किह तिष्ठन्ति

हैं? उत्तर—एक घरमें जिस प्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समा रहा है और जिसप्रकार एक छोटेसे गुटकेमें बहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है, उसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी आकाशमें साहजिक अवगाहना-स्वभावसे अनंत जीवादि पदार्थ समा रहे हैं। वस्तुओंके स्वभाव वचनगम्य नहीं हैं। सर्वज्ञदेव ही जानते हैं। इस कारण जो अनुभवी हैं वे सन्देह उत्पन्न नहीं करते, वस्तुस्वरूपमें सदा निश्चल होकर आत्मीक अनंत सुख का वेदन करते हैं ॥९१॥

आगे कोई प्रश्न करे कि धर्म-अधर्मद्रव्य को गतिस्थितिमें कारण क्यों कहते हो? आकाशको ही गति-स्थितिका कारण क्यों नहीं कह देते? उसे दूषण दिखाते हैं;—[यदि] यदि [आकाशं] आकाश नामक द्रव्य [गमनस्थितिकारणाभ्यां] चलन और स्थिरताके कारण धर्म-अधर्म द्रव्योंके गुणोंसे [अवकाशं] जगह [ददाति] देता है [तदा] तो [ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः] ऊर्ध्वगतिवाले प्रसिद्ध जो [सिद्धाः] मुक्त जीव हैं वे [तत्र] सिद्धक्षेत्रमें [कथं] कैसे [तिष्ठन्ति] रहते हैं? भावार्थ—यदि गमनस्थितिका कारण आकाशको ही मान लिया जाय तो धर्म अधर्मका अभाव होनेसे सिद्ध परमेष्ठीका

---

१. जीवपुद्गलानाम्।

स्यात्, तदा सर्वोत्कृष्टस्वाभाविकोर्ध्वगतिपरिणता भगवंतः सिद्धा बहिरङ्गांतरङ्ग-साधनसामग्र्यां सत्यामपि कुतस्तत्राकाशे तिष्ठंत इति ॥९२॥

स्थितिपक्षोपन्यासोऽयम्;—

जह्मा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
तह्मा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥९३॥

यस्मादुपरिस्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
तस्माद्गमनस्थानमाकाशे जानीहि नास्तीति ॥९३॥

यतो गत्वा भगवंतः सिद्धाः लोकोपर्यवतिष्ठंते, ततो गतिस्थितिहेतुत्वमाकाशे नास्तीति निश्चेतव्यम् । लोकालोकावच्छेदकौ धर्माधर्मावेव गतिस्थितिहेतू मंतव्याविति ॥९३॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे हेतूपन्यासोऽयम्;—

जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं ।
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी ॥९४॥

कथं ? कुत्र ? तत्थ तत्र लोकाग्र इति । अत्र सूत्रे लोकाद्बहिर्भागेप्याकाशं तिष्ठति तत्र किं न गच्छन्तीति भावार्थः ॥९२॥

अथ स्थितपक्षं प्रतिपादयति;—यस्मादुपरि स्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं तस्माद्गमनस्थानमाकाशे नास्ति जानीहीति । तथाहि—यस्मात्पूर्वगाथायां भणितं लोकाग्रेऽवस्थानं । केषां ? अंजनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धदिग्विजयसिद्धखड्गसिद्धादिलौकिकसिद्धविलक्षणानां सम्यक्त्वाद्यष्टगुणांतर्भूतनिर्नामनिर्गोत्रामूर्तत्वाद्यनंतगुणलक्षणानां सिद्धानां तस्मादेव ज्ञायते नभसि गतिस्थितिकारणं नास्ति किन्तु धर्माधर्मादेव गतिस्थित्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥९३॥

अलोकमें भी गमन होगा, इसलिये धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । उनसे ही लोककी मर्यादा है । लोकसे आगे गमनस्थिति नहीं है ॥९२॥

आगे लोकाग्रमें सिद्धोंकी थिरता दिखाते हैं;—[जिनवरैः] वीतराग सर्वज्ञ देवोंने [यस्मात्] जिस कारणसे सिद्धानां सिद्धोंका [स्थानं] निवासस्थान [उपरि] लोकके ऊपर [प्रज्ञप्तं] कहा है [तस्मात्] इस कारणसे [आकाशे] आकाश द्रव्यमें [गमनस्थानं] गतिस्थिति निमित्त गुण [नास्ति] नहीं है । [इति] यह [जानीहि] हे शिष्य ! तू जान । **भावार्थ**—यदि सिद्धपरमेष्ठीका गमन अलोकाकाश में होता तो आकाशका गुण गतिस्थिति निमित्त होता, सो नहीं है । गतिस्थितिनिमित्त गुण धर्म अधर्म द्रव्यमें ही है, क्योंकि धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाशमें हैं, आगे नहीं है, यही संक्षेप अर्थ जानो ॥९३॥

यदि भवति गमनहेतुराकाशं स्थानकारणं तेषां।
प्रसजत्यलोकहानिर्लोकस्य चांतपरिवृद्धिः ॥९४॥

नाकाशं गतिस्थितिहेतुः लोकालोकसीमव्यवस्थायास्तथोपपत्तेः। यदि गतिस्थित्योराकाशमेव निमित्तमिष्येत्, तदा तस्य[1] सर्वत्र सद्भावाज्जीवपुद्गलानां गतिस्थित्योर्निःसीमत्वात् प्रतिक्षणमलोको हीयते। पूर्वं पूर्वं व्यवस्थाप्यमानश्चांतो[2] लोकस्योत्तरोत्तरपरिवृद्ध्या विघटते। ततो न तत्र[3] तद्धेतुरिति[4] ॥९४॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वनिरासव्याख्योपसंहारोऽयम्—

तह्मा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥९५॥

अथाकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे साध्ये पुनरपि कारणं कथयति;—जदि हवदि यदि चेद्भवति। स कः? गमणहेदू गमनहेतुः। किं? आयासं आकाशं, न केवलं गमनहेतुः ठाणकारणं स्थितिकारणं। केषां? तेसिं तेषां जीवपुद्गलानां। तदा किं दूषणं भवति? पसयदि प्रसजति प्राप्नोति। सा का? अलोगहाणी अलोकहानि, न केवलमलोकहानिः लोगस्स य अंतपरिवड्ढी लोकस्य चांतपरिवृद्धिरिति। तद्यथा। यद्याकाशं गतिस्थित्योः कारणं च भवति तदा तस्याकाशस्य लोकबहिर्भागेपि सद्भावात्तत्रापि जीवपुद्गलानां गमनं भवति ततश्चालोकस्य हानिर्भवति लोकांतस्य तु वृद्धिर्भवति न च तथा, तस्मात्कारणात् ज्ञायते नाकाशं स्थितिगत्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥९४॥

आगे आकाश गतिस्थिति में निमित्त क्यों नहीं है सो दिखाते हैं;—[यदि] यदि [आकाशं] आकाश द्रव्य [तेषां] उन जीवपुद्गलोंको [गमनहेतुः] गमन करनेके लिये सहकारी कारण तथा [स्थानकारणं] स्थितिमें सहकारी कारण [भवति] हो ['तदा'] तो [अलोकहानिः] अलोकाकाशके नाशका [प्रसजति] प्रसंग आता है [च] और [लोकस्य] लोकके [अंतपरिवृद्धिः] अंतकी (पूर्णताकी) वृद्धि होती है। भावार्थ—आकाश गतिस्थितिका कारण नहीं है, क्योंकि यदि आकाश कारण हो जाय तो लोक अलोकको मर्यादा (हद्द) नहीं रहेगी अर्थात् सर्वत्र ही जीव पुद्गलकी गतिस्थिति हो जायगी। इसलिये लोक-अलोककी मर्यादाका कारण धर्म अधर्म द्रव्य ही है। आकाश द्रव्यमें गतिस्थिति गुणका अभाव है। यदि ऐसा न होता तो अलोकाकाश अभाव हो जाता और लोकाकाश असंख्यातप्रदेश प्रमाणवाले धर्म अधर्म द्रव्योंसे अधिक हो जाता अर्थात् समस्त अलोकाकाशमें जीवपुद्गल फैल जाते। अतएव गतिस्थिति गुण आकाशका नहीं है, किंतु धर्म अधर्म द्रव्यका है। जहाँ तक ये दोनों द्रव्य अपने असंख्यात प्रदेशोंसे स्थित हैं वहाँ तक लोकाकाश है और वहीं तक गमनस्थिति है ॥९४॥

---

१. आकाशस्य. २. लोकस्यांतो. ३. आकाशे. ४. गमनस्थित्योः कारणं न।

तस्माद्धर्म्माधर्म्मौ गमनस्थितिकारणे नाकाशं ।
इति जिनवरैः भणितं लोकस्वभावं श्रृण्वंताम् ॥९५॥

धर्माधर्मावेव गतिस्थितिकारणे नाकाशमिति ॥९५॥

धर्माधर्मलोकाकाशानामवगाहवशादेकत्वेऽपि वस्तुत्वेनान्यत्वमत्रोक्तम्,—

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।
पुधगुवलद्धिविसेसा करन्ति एगत्तमण्णत्तं ॥९६॥

धर्माधर्माकाशान्यपृथग्भूतानि समानपरिमाणानि ।
पृथगुपलब्धिविशेषाणि कुर्वंत्येकत्वमन्यत्वं ॥९६॥

धर्माधर्मलोकाकाशानि हि समानपरिमाणत्वात्सहावस्थानमात्रेणैवैकत्व-

---

अथाकाशस्य गतिस्थितिकारणनिराकरणव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते;—तस्माद्धर्माधर्मौ। गमनस्थितिकारणे न चाकाशं इति जिनवरैर्भणितं। केषां संवन्धित्वेन ? भव्यानां। किं कुर्वतां - समवशरणे लोकस्वभावं श्रृण्वतामिति भावार्थः ॥९५॥

एवं धर्माधर्मौ गतिस्थित्योः कारणं न चाकाशमिति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतं। अथ धर्माधर्माकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वाद्व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेन भिन्नत्वं दर्शयति;—**धम्माधम्मागासा** धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याणि भवन्ति। किंविशिष्टानि ? **अपुधभूदा समाणपरिमाणा** व्यवहारनयेनापृथग्भूतानि तथा समानपरिमाणानि च। पुनश्च किंरूपाणि ? **पुधगुवलद्धिविसेसा** निश्चयेन पृथग्रूपेणोपलब्धविशेषाणि। इत्थंभूतानि संति किं कुर्वन्ति ? **करेंति** कुर्वन्ति **एयत्तमण्णत्तं** व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेनान्यत्वं चेति। तथाहि—यथायं जीवः पुद्गलादिपंचद्रव्यैः सह शेषजीवांत

आगे आकाशमें गति-स्थितिका कारण गुण नहीं है, सो संक्षेपमें बताते हैं:—**[तस्मात्]** इसलिये **[धर्माधर्मौ]** धर्म अधर्म द्रव्य **[गमनस्थितिकारणे]** गमन और स्थितिमें निमित्त-कारण हैं **[आकाशं]** आकाश गमनस्थितिमें कारण **[न]** नहीं है **[इति]** इस प्रकार **[जिनवरैः]** जिनेश्वर वीतराग सर्वज्ञने **[लोकस्वभावं]** लोकके स्वभावको **[श्रृण्वतां]** सुनने वाले जीवोंको **[भणितं]** कहा है ॥९५॥

आगे धर्म अधर्म, आकाश ये तीनों ही द्रव्य एक क्षेत्रावगाहसे एक हैं, परंतु निजस्वरूपसे तीनों पृथक् पृथक् हैं, ऐसा कहते हैं;—**[धर्म्माधर्म्माकाशानि]** धर्म, अधर्म और लोकाकाश ये तीन द्रव्य व्यवहार नयकी अपेक्षा **[अपृथग्भूतानि]** एकक्षेत्रावगाही हैं अर्थात् जहाँ आकाश है वहाँ ही धर्म अधर्म ये दोनों द्रव्य हैं। **[समानपरिमाणानि]** और उपरोक्त तीनों द्रव्य समान असंख्यात प्रदेश वाले हैं तथा **[पृथगुपलब्धिविशेषाणि]** निश्चयनयकी अपेक्षा भिन्न भिन्न भेद वाले हैं। अर्थात् निज स्वभावसे टंकोत्कीर्ण अपनो जुदी जुदी सत्ता लिये हुये हैं। अत एव ये तीनों ही द्रव्य **[एकत्वं]** व्यवहारनयकी अपेक्षा एकक्षेत्रावगाही हैं, इसलिये एकभावको और **[अन्यत्वं]** निश्चयनयकी अपेक्षा ये तीनों

भाञ्जि । वस्तुतस्तु व्यवहारेण गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वरूपेण निश्चयेन विभक्तप्रदेशत्वरूपेण विशेषेण पृथगुपलभ्यमानेनान्यत्वभाज्ज्येव भवंतीति ॥९६॥ इत्याकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

अथ चूलिका । अत्र द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं चोक्तम्;—

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥९७॥

आकाशकालजीवा धर्माधर्मौ च मूर्तिपरिहीनाः ।
मूर्तं पुद्गलद्रव्यं जीवः खलु चेतनस्तेषु ॥९७॥

स्पर्शरसगंधवर्णसद्भावस्वभावं मूर्तं । स्पर्शरसगंधवर्णाभावस्वभावममूर्तं, चैतन्यसद्भावस्वभावं चेतनं । चैतन्याभावस्वभावमचेतनं । तत्रामूर्तमाकाशं, अमूर्तः

रेश्चैकक्षेत्रावगाहित्वाद्व्यवहारेणैकत्वं करोति निश्चयेन तु समस्त वस्तुगतानंतधर्मयुगपत्प्रकाशेन परमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणेन भिन्नत्वं च तथा धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याण्येकक्षेत्रावगाहेनाभिन्नत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चोपरितासद्भूतव्यवहारेण परस्परमेकत्वं कुर्वन्ति निश्चयनयेन गतिस्थित्यवगाहरूपस्वकीयस्वकीयलक्षणैर्नानात्वं चेति सूत्रार्थः ॥९६॥

एवं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकत्वान्यत्वकथनरूपेण तृतीयस्थले गाथासूत्रं गतं । इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्यानरूपः सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः । तदनंतरमष्टगाथापर्यन्तं पंचास्तिकायषड्द्रव्यचूलिकाव्याख्यानं करोति । तत्र गाथाष्टकमध्ये चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन 'आयासं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं, पुनश्च प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तत्वकथनमुख्यत्वेन "जो खलु इंदियगेज्झा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नवजीर्णपर्यायादिस्थितिरूपो व्यवहारकालः जीवपुद्गलादीनां पर्यायपरिणतेः सहकारिकारणभूतः कालाणुरूपो निश्चयकाल इति कालद्वयव्याख्यानमुख्यत्वेन "कालो परिणामभवो" इत्यादि गाथाद्वयं, तस्यैव कालस्य द्रव्यलक्षणसंभवात् द्रव्यत्वं द्वितीयादिप्रदेशाभावादकायत्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "एदे कालागासा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ पंचास्तिकायांतर्गतस्य केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धजीवास्तिकायस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरि-

---

अपनी जुदी जुदी सत्ताके द्वारा भेदभावको [कुर्वन्ति] करते हैं। इस प्रकार इन तीनों द्रव्योंके व्यवहार निश्चय नयसे अनेक भेद जानो ॥९६॥

यह आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ। आगे द्रव्योंके मूर्त्तत्व, अमूर्त्तत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व इस प्रकार चार भाव दिखाते हैं;—[आकाशकालजीवाः] आकाशद्रव्य कालद्रव्य और जीवद्रव्य [च] और [धर्म्माधर्म्मौ] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [मूर्तिपरिहीनाः] स्पर्श, रस, गंध, वर्ण

कालः अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि, अमूर्तो धर्मः, अमूर्तोऽधर्मः, मूर्तः पुद्गल एवैक इति । अचेतनमाकाशं, अचेतनः कालः, अचेतनो धर्मः, अचेतनोऽधर्मः, अचेतनः पुद्गलः चेतनो जीव एवैक इति ॥९७॥

अत्र सक्रियत्वनिष्क्रियत्वमुक्तम्;—

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।
पुग्गलकाया जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥९८॥

जीवाः पुद्गलकायाः सह सक्रिया भवन्ति न च शेषाः ।
पुद्गलकरणा जीवाः स्कंधाः खलु कालकरणास्तु ॥९८॥

प्रदेशांतरप्राप्तिहेतुः परिस्पंदनरूपपर्यायः क्रिया । तत्र सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः जीवाः । सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः पुद्गलाः । निष्क्रियमाकाशं,

---

णतिकाले निश्चयमोक्षमार्गभूतस्य भावनाफलप्रतिपादनरूपेण "एवं पवयणसारं" इत्यादि गाथाद्वयं । इत्यष्टगाथाभिः षट्स्थलैश्चूलिकायां समुदायपातनिका । तद्यथा । द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं प्रतिपादयति;—स्पर्शरसगंधवर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्ता भवन्ति । ते के ? आकाशकालजीवधर्माधर्माः; किंतु जीवो यद्यपि निश्चयेनामूर्ताखंडैकप्रतिभासमयत्वादमूर्तस्तथापि रागादिरहितसहजानंदैकस्वभावात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं मूर्तं कर्म तत्संसर्गाद्व्यवहारेण मूर्तोपि भवति स्पर्शरसगंधवर्णवत्त्वान्मूर्तं पुद्गलद्रव्यं संशयादिरहितत्वस्वपरपरिच्छित्तिसमर्थानंतचैतन्यपरिणतत्वाज्जीवः खलु चेतकस्तेषु स्वपरप्रकाशकचैतन्याभावात् शेषाण्यचेतनानीति भावार्थः ॥९७॥

एवं चेतनाचेतनमूर्तामूर्तप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासूत्रं गतं । अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वं कथयति;—जीवाः पुद्गलकाया सह **सक्किरिया हवंति** सक्रिया भवंति । कथं ? सह । सह कोऽर्थः ? वहिरंगसहकारिकारणैः सहिताः । **ण य सेसा** न च जीवपुद्गलाभ्यां शेषद्रव्याणि सक्रियाणि । जीवानां सक्रियत्वे वहिरंगनिमित्तं कथ्यते **पोग्गलकरणा जीवा** मनोवचनकायव्यापार-

---

इन चार गुणरहित अमूर्त्तीक हैं । [पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्य एक [मूर्त्त] मूर्त्तीक है अर्थात् स्पर्शरसगंधवर्णवान् है । [तेषु] उनमेंसे [जीवः] जीवद्रव्य [खलु] निश्चयसे [चेतनः] ज्ञानदर्शनरूप चेतन है । और अन्य पाँच द्रव्यधर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये अचेतन हैं ॥९७॥

आगे इनही षड्द्रव्योंकी सक्रिय निष्क्रिय अवस्था दिखाते हैं;—[जीवाः] जीवद्रव्य [पुद्गलकायाः] पुद्गलद्रव्य [सह सक्रियाः] निमित्तभूत परद्रव्यकी सहायतासे क्रियावंत [भवन्ति] होते हैं । [च] और [शेषाः] शेष चार द्रव्य क्रियावंत [न] नहीं हैं । सो आगे क्रियाका कारण विशेषतासे

---

१. स्वभावेन, २. कर्मनोकर्मसंयोगात् ।

निष्क्रियो धर्मः, निष्क्रियोऽधर्मः, निष्क्रियः कालः । जीवानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्ग-साधनं कर्मनोकर्मोपचयरूपाः पुद्गला इति । ते पुद्गलकरणाः । तदभावान्निःक्रियत्वं सिद्धानां । पुद्गलानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्गसाधनं परिणामनिर्वर्तकः काल इति ते कालकरणाः । नच कर्मादीनामिव कालस्याभावः । ततो न सिद्धानामिव निष्क्रियत्वं पुद्गलानामिति ॥९८॥

मूर्तामूर्तलक्षणाख्यानमेतत्;—

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं होंति ते मुत्ता ।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥९९॥

रूपक्रियापरिणतैर्निःक्रियनिर्विकारशुद्धात्मानुभूतिभावनाच्युतैर्जीवैर्ये समुपार्जिताः कर्मनोकर्मपुद्गलास्त एव करणं कारणं निमित्तं येषां ते जीवाः पुद्गलकरणा भण्यंते खंदा स्कंधाः स्कंधशब्देनात्र स्कंधाणु-भेदभिन्नाद्द्विधा पुद्गला गृह्यंते । ते च कथंभूताः ? सक्रियाः । कैः कृत्वा ? कालकरणेहिं परिणाम-निर्वर्तककालाणुद्रव्यैः खलु स्फुटं । अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मक्षये जाते कर्मनोकर्मपुद्गला-नामभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात् ? कालस्य सर्वदैव वर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्तः विद्यमानत्वादिति भावार्थः ॥९८॥

एवं सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ पुनरपि प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपं कथ-

दिखाते हैं कि [जीवाः] जीवद्रव्य [पुद्गलकरणाः] पुद्गलका निमित्त पाकर क्रियावंत होते हैं । [तु] और जो [स्कंधाः] पुद्गलस्कंध हैं वे [खलु] निश्चयसे [कालकरणाः] कालद्रव्यके निमित्तसे क्रियावंत होकर नाना प्रकारकी अवस्थाको धारण करते हैं । **भावार्थ**—एक प्रदेशसे प्रदेशांतरमें गमन करनेका नाम क्रिया है । षट्द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य प्रदेशसे प्रदेशांतरमें गमन करते हैं और कंपरूप अवस्थाको धारण करते हैं इसलिये क्रियावंत कहे जाते हैं । और शेष चार द्रव्य निष्क्रिय, निष्कम्प हैं । जीव द्रव्यकी क्रियामें निमित्त बहिरंगमें कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल हैं । इनकी ही संगतिसे जीव अनेक विकाररूप होकर परिणमता है । और जब काल पाकर पुद्गलमयी कर्म नोकर्मका अभाव होता है तब साहजिक निष्क्रिय निष्कंप स्वाभाविक अवस्थारूप सिद्ध पर्यायको धारण करता है । इसकारण पुद्गलका निमित्त पाकर जीव क्रियावान् जानो । और कालका बहिरंग कारण पाकर पुद्गल अनेक स्कंधरूप विकारको धारण करता है । इसकारण काल पुद्गलकी क्रियामें सहकारी कारण जानो । परंतु इतना विशेष है कि जीवद्रव्यकी भाँति पुद्गल निष्क्रिय कभी भी नहीं होता । जीव शुद्ध होने के बाद क्रियावान् किसी कालमें भी नहीं होगा । पुद्गलका यह नियम नहीं है । सदा क्रियावान् परसहायसे रहता है ॥९८॥

आगे मूर्त्त-अमूर्त्तका लक्षण कहते हैं;—[ये] जो [जीवैः] जीवोंसे [खलु] निश्चयसे [इन्द्रिय-

१ जीवाः. २ पुद्गलकरणाभावात्. ३ निष्पादकः. ४ अत्र यथा शुद्धात्माऽनुभूतिबलेन कर्मपुद्गलानाम-भावात्सिद्धानां निष्क्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात्कालस्यैव सर्वत्रैव विद्यमानत्वादित्यर्थः ।

ये खलु इन्द्रियग्राह्या विषया जीवैर्भवन्ति ते मूर्त्ताः ।
शेषं भवत्यमूर्त्तं चित्तमुभयं समाददाति ॥९९॥

इह हि जीवैः[1] स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्भिरिन्द्रियैस्तद्विषयभूताः स्पर्शरसगंधवर्णस्वभावा अर्था गृह्यंते । श्रोत्रेन्द्रियेण तु त[3] एव तद्विषयहेतुभूतशब्दाकारपरिणता गृह्यंते । [5]ते कदाचित्स्थूलस्कंधत्वमापन्नाः कदाचित्सूक्ष्मत्वमापन्नाः कदाचित्परमाणुत्वमापन्नाः इन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावाद् गृह्यमाणा अगृह्यमाणा वा मूर्ता इत्युच्यंते शेषमितरत् समस्तमप्यर्थसंजातं स्पर्शरसगंधवर्णाभावस्वभावमिन्द्रियग्रहणयोग्यताया

यति;—**जे खलु इंदियगेज्झा विसया** ये खलु इन्द्रियैः करणभूतैर्ग्राह्या विषयाः कर्मतापन्नाः । कैः ? कर्तृभूतैः । जीवेहिं विषयसुखानंदरतैर्नीरागनिर्विकल्पनिजानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादच्युतैर्बहिर्मुखजीवैः होंति ते **मुत्ता** भवन्ति ते मूर्ताः विषयातीतस्वाभाविकसुखस्वभावात्मतत्त्वविपरीतविषयास्ते च सूक्ष्मत्वेन केचन यद्यपीन्द्रियविषयाः वर्तमानकाले न भवन्ति तथापि कालांतरे भविष्यंतीतीन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावादिन्द्रियग्रहणयोग्या भण्यंते **सेसं हवदि अमुत्तं** अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखादिगुणाधारं यदात्मद्रव्यं तत्प्रभृति पंचद्रव्यरूपं पुद्गलादन्यत् यच्छेषं तद्भवत्यमूर्तं **चित्तं उभयं समादियदि** । चित्तमुभयं समाददाति । चित्तं हि मतिश्रुतज्ञानयोरुपादानकारणभूतमनियतविषयं च तच्च श्रुतज्ञान-

---

ग्राह्याः] इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य **[विषयाः]** पुद्गलजनित पदार्थ हैं **[ते]** वे **[मूर्त्ताः]** मूर्त्तीक **[भवन्ति]** होते हैं **[शेषं]** पुद्गलजनित पदार्थोंसे जो भिन्न है सो **[अमूर्त्तं]** अमूर्त्तीक **[भवति]** होता है । **अर्थात्**—इस लोकमें जो स्पर्श-रस-गंध-वर्णवंत पदार्थ स्पर्शन जीभ नासिका नेत्र इन चारों इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जांय और जो कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्दाकार परिणत पदार्थ ग्रहण किये जांय और जो पुद्गल किसी कालमें स्थूल स्कंधभाव परिणत हैं और जो पुद्गलस्कंध किसही काल सूक्ष्मभाव परिणत हैं और किसही काल जो पुद्गल, परमाणुरूप परिणत हैं वे सबही मूर्त्तीक कहलाते हैं । कोई-एक सूक्ष्मभाव परिणतिरूप पुद्गलस्कंध अथवा परमाणु यद्यपि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आते तथापि इन पुद्गलोंमें ऐसी शक्ति है कि यदि वे स्थूलताको धारण करें तो इन्द्रियग्रहण करने योग्य होते हैं । अतएव कैसी भी सूक्ष्मताको धारण करें, सब इन्द्रियग्राह्य ही कहे जाते हैं । और जीव धर्म अधर्म आकाश काल ये पाँच पदार्थ हैं वे स्पर्श रस गंध वर्ण गुणसे रहित हैं, क्योंकि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आते । इसीलिये इनको अमूर्त्तीक कहते हैं । **[चित्तं]** मन इन्द्रिय **[उभयं]** मूर्त्तीक अमूर्त्तीक दोनों प्रकारके पदार्थोंको **[समाददाति]** ग्रहण करता है । अर्थात् मन अपने विचारसे निश्चित पदार्थको जानता है । मन जब पदार्थोको ग्रहण करता है तब पदार्थोंमें

---

१. कर्तृभूतैः २. करणभूतैः ३. अर्था ४. श्रोत्रेन्द्रियविषयभूतशब्दाकारपरिणताः ५. विषयाः अर्थाः ।

अभावादमूर्तमित्युच्यते । चित्तग्रहणयोग्यतासद्भावभाग्भवति तदुभयमपि चित्तं ह्य नियतविषयमप्राप्यकारि[2] मतिश्रुतज्ञानसाधनीभूतं मूर्तममूर्तं[1] च समाददातीति ॥९९॥ इति चूलिका समाप्ता ।

अथ कालद्रव्यव्याख्यानम् । व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपाख्यानमेतत्;—

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो ।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥१००॥

कालः परिणामभवः परिणामो द्रव्यकालसंभूतः ।
द्वयोरेष स्वभावः कालः क्षणभंगुरो नियतः ॥१००॥

तत्र क्रमानुपाती समयाख्यः पर्यायो व्यवहारकालः । तदाधारभूतं द्रव्यं निश्चयकालः । तत्र व्यवहारकालो निश्चयकालपर्य्यायरूपोपि जीवपुद्गलानां परिणामेनावच्छिद्यमानत्वात्तत्परिणामभव इत्युपगीयते । जीवपुद्गलानां परिणामस्तु बहिरङ्गनिमित्तभूतद्रव्यकालसद्भावे सति संभूतत्वाद्द्रव्यकालसंभूत इत्यभिधीयते । तत्रेदं

स्वसंवेदनज्ञानरूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरूपपरमागमसंज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभयपरिच्छित्तिविषये व्याप्तिज्ञानरूपेण परोक्षमपि केवलज्ञानसदृशमित्यभिप्रायः । तथा चोक्तं । "सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो । सुदणाणं च परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं" ॥९९॥

एवं प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपकथनगाथा गता । अथ व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपं व्यवस्थापयति;—कालो समयनिमिषघटिकादिवसादिरूपो व्यवहारकालः । स च कथंभूतः ? परिणामभवो मंदगतिरूपेणाणोरण्वंतरव्यतिक्रमणं नयनपुटविघटनं जलभाजनहस्तविज्ञानरूपपुरुषचेष्टितं दिनकरबिंबागमनमित्येवं स्वभावः पुद्गलद्रव्यक्रियापर्यायरूपः परिणामस्तेन व्यज्यमानत्वात्प्रकटीक्रियमाणत्वाद्धेतोर्व्यवहारेण पुद्गलपरिणामभव इत्युपनीयते, परमार्थेन तु कालाणुद्रव्यरूप-

---

नहीं जाता, आप ही संकल्परूप होकर वस्तुको जानता है। मतिश्रुतज्ञानका मन ही साधन है, इसलिये मन अपने विचारोंसे मूर्त्त अमूर्त्त दोनों प्रकारके पदार्थोंका ज्ञाता है। यह चूलिकारूप संक्षिप्त व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥९९॥

आगे कालद्रव्यका व्याख्यान किया जाता है, उसमें पहिले व्यवहार और निश्चयकालका स्वरूप दिखाया जाता है;—[कालः] व्यवहारकाल [परिणामभवः] जीव-पुद्गलोंके परिणामसे उत्पन्न है। और [परिणामः] जीव पुद्गलका परिणाम [द्रव्यकालसंभूतः] निश्चयकालाणुरूप द्रव्यकालसे

---

१. मूर्तामूर्त्तं २. यथा स्पर्शनेन्द्रियस्य स्पर्शः; रसनेन्द्रियस्य रसः, घ्राणेन्द्रियस्य गंधश्चक्षुरिन्द्रियस्य रूपं कर्णेन्द्रियस्य शब्दः विषयस्तथा चित्तस्य मनसः न नियतविषयोऽत एव चित्तमनियतविषयात्मकम् ३ यथा स्पर्शरसघ्राणकर्मेन्द्रियाणि प्राप्यकारीणि तथा चित्तं प्राप्यकारि न, चक्षुरिन्द्रियवत् ।

तात्पर्यं। व्यवहारकालो जीवपुद्गलपरिणामेन निश्चीयते, निश्चयकालस्तु तत्परिणामान्यथानुपपत्त्येति। तत्र क्षणभङ्गी व्यवहारकालः, सूक्ष्मपर्य्यायस्य तावन्मात्रत्वात्। नित्यो निश्चयकालः स्वगुणपर्य्यायाधारद्रव्यत्वेन सर्वदैवाऽविनश्वरत्वादिति ॥१००॥

नित्यक्षणिकत्वेन कालविभागख्यापनमेतत्;—

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥१०१॥

निश्चयकालस्य पर्यायः परिणामो **दव्वकालसंभूदो** अणोरण्वंतरव्यतिक्रमणप्रभृतिपूर्वोक्तपुद्गलपरिणामस्तु शीतकाले पाठकस्याग्निवत् कुम्भकारचक्रभ्रमणविषयेऽधस्तनशिलावद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूतेन कालाणुरूपद्रव्यकालेनोत्पन्नत्वाद्द्रव्यकालसंभूतः **दोण्हं एससहाओ** द्वयोर्निश्चयव्यवहारकालयोरेषः पूर्वोक्तः स्वभावः। स किंरूपः व्यवहारकालः। पुद्गलपरिणामेन व्यज्यमानत्वात्परिणामजन्यः। निश्चयकालस्तु परिणामजनकः **कालो खणभंगुरो**—समयरूपो व्यवहारकालः क्षणभंगुरः **णियदो** स्वकीयगुणपर्यायाधारत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वाद्द्रव्यकालो नित्य इति। अत्र यद्यपि काललब्धिवशेन भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्राप्य जीवो रागादिरहितनित्यानंदैकस्वभावमुपादेयभूतं पारमार्थिकसुखं साधयति तथा जीवस्तस्योपादानकारणं न च काल इत्यभिप्रायः। तथा चोक्तं। आत्मोपादानसिद्धमित्यादिरिति ॥१००॥

अथ नित्यक्षणिकत्वेन पुनरपि कालभेदं दर्शयति;—**कालोत्ति य ववदेसो** काल इति व्यपदेशः

उत्पन्न है। [द्वयोः] निश्चय और व्यवहार कालका [एषः] यह [स्वभावः] स्वभाव है। [कालः] व्यवहारकाल [क्षणभंगुरः] समय-समय विनाशीक है और [नियतः] निश्चयकाल अविनाशी है। **भावार्थ**—जो क्रमसे अतिसूक्ष्म हुआ प्रवर्तित है वह व्यवहारकाल है, और उस व्यवहारकालका जो आधार है वह निश्चयकाल कहलाता है। यद्यपि व्यवहारकाल निश्चयकालका पर्याय है, तथापि जीवपुद्गलके परिणामोंसे वह जाना जाता है। इसलिये जीव पुद्गलोंके नवजीर्णतारूप परिणामोंसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है। और जीव-पुद्गलोंका जो परिणमन है वह बाह्यमें द्रव्यकालके होते हुये समय-पर्याय में उत्पन्न है। इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि समयादिरूप जो व्यवहारकाल है वह तो जीवपुद्गलोंके परिणामोंसे प्रगट किया जाता है और निश्चयकाल समयादि व्यवहारकालमें अविनाभाव निमित्त होनेसे अस्तित्वको धारण करता है, क्योंकि पर्यायसे पर्यायीका अस्तित्व ज्ञात होता है। इनमेंसे व्यवहारकाल क्षणविनश्वर है, क्योंकि पर्यायस्वरूपसे सूक्ष्मपर्याय उतने मात्र ही है जितने कि समयावलिकादि हैं। और निश्चयकाल नित्य है, क्योंकि वह अपने गुण-पर्यायस्वरूप द्रव्यसे सदा अविनाशी है ॥१००॥

आगे कालद्रव्यका स्वरूप नित्यानित्यका भेद करके दिखाया जाता है;—[च] और

---

१. निश्चीयते, २ समयादिरूपस्य ३. नित्यत्वेन क्षणिकत्वेन नित्यो निश्चयकालः क्षणिको व्यवहारकालः।

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंस्यपरो दीर्घांतरस्थायी ॥१०१॥

यो हि द्रव्यविशेषः 'अयं कालः, अयं कालः,' इति सदा व्यपदिश्यते स खलु स्वस्य[1] सद्भावम्[2]आवेदयन्[3] भवति नित्यः । यस्तु पुनरुत्पन्नमात्र एव प्रध्वंस्यते स खलु तस्यैव द्रव्यविशेषस्य समयाख्यः पर्य्याय इति । स[4] तूत्संगितक्षणभङ्गोऽप्युपदर्शितस्वसंतानो[5] नयबलाद्दीर्घांतरस्थाय्युपगीयमानो न दुष्यति । ततो न खल्वावलिकापल्योपमसागरोपमादिव्यवहारो विप्रतिषिध्यते । तदत्र निश्चयकालो नित्यः द्रव्यरूपत्वात् । व्यवहारकालः क्षणिकः पर्य्यायरूपत्वादिति ॥१०१॥

संज्ञा । स च किं करोति ? सब्भावपरूवगो हवदि काल इत्यक्षरद्वयेन वाचकभूतेन स्वकीयवाच्यं परमार्थकालसद्भावं निरूपयति । क इव किं निरूपयति ? सिंहशब्द इव सिंहस्वरूपं सर्वज्ञशब्द इव सर्वज्ञस्वरूपमिति । एवं स्वकीयस्वरूपं निरूपयन् कथंभूतो भवति ? णिच्चो यद्यपि काल इत्यक्षरद्वयरूपेण नित्यो न भवति तथापि कालशब्देन वाच्यं यद्‌द्रव्यकालस्वरूपं तेन नित्यो भवतीति निश्चयकालो ज्ञातव्यः, अवरो अपरो व्यवहारकालः । स च किंरूपः ? उप्पण्णप्पद्धंसी यद्यपि वर्तमानसमयापेक्षयोत्पन्नप्रध्वंसी भवति तथापि पूर्वापरसमयसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन दीहंतरट्ठाई आवलिकापल्योपमसागरोपमादिरूपेण दीर्घांतरस्थायी च घटते, नास्ति दोषः एवं नित्यक्षणिकरूपेण निश्चयव्यवहारकालो ज्ञातव्यः । अथवा प्रकारांतरेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते । तथाहि— अनाद्यनिधनः समयादिकल्पनाभेदरहितः कालाणुद्रव्यरूपेण व्यवस्थितो वर्णादिमूर्तिरहितो निश्चय-

---

[काल इति] काल ऐसा जो [व्यपदेशः] नाम है सो निश्चयकाल [नित्यः] अविनाशी है । भावार्थ— जैसे 'सिंह' शब्द दो अक्षरका है, वह सिंह नामक पदार्थको दिखाने वाला है । जब कोई सिंह शब्द कहे तब ही सिंहका ज्ञान होता है, उसी प्रकार 'काल' इन दो अक्षरोंके कहनेसे नित्य कालपदार्थ जाना जाता है । जिस प्रकार अन्य जीवादि द्रव्य हैं उसी प्रकार एक कालद्रव्य भी निश्चयनयसे है । [अपरः] दूसरा समयरूप व्यवहारकाल [उत्पन्नप्रध्वंसी] उपजता और विनशता है । तथा वह [दीर्घांतरस्थायी] समयोंकी परम्परासे बहुत स्थिरतारूप भी कहा जाता है । भावार्थ—व्यवहारकाल सबसे सूक्ष्म 'समय' नाम वाला है, जो उपजता भी है विनशता भी है और निश्चय कालका पर्याय है । पर्याय उत्पादव्ययरूप सिद्धांतमें कहा गया है । उस समयकी अतीत अनागत वर्त्तमानरूप परंपरा

---

१. स्वकीयस्य २. अस्तित्वम् ३. कथयन्सन्नित्यो भवति । अत्र दृष्टांतः । यथा—यो हि अक्षरद्वयवाच्यो सिंहशब्दः स स्वस्य सिंहनाम्नः तिरश्चो सद्भावमस्तित्वमावेदयन् नित्यो भवति ४. व्यवहारकालः ५. समयावलिपल्यादिसंतानः, वा क्रमेण समयोत्तरसंतानः ।

कालस्य द्रव्यास्तिकायत्वविधिप्रतिषेधविधानमेतत्;—

[1]एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥१०२॥

एते कालाकाशे धर्माधर्मौ च पुद्गला जीवाः।
लभंते द्रव्यसंज्ञां कालस्य तु नास्ति कायत्वं ॥१०२॥

यथा खलु जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि सकलद्रव्यलक्षणसद्भावाद्द्रव्यव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति, तथा कालोऽपि। इत्येवं षड्द्रव्याणि। किंतु यथा जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां द्व्यादिप्रदेशलक्षणत्वमस्ति अस्तिकायत्वं, न तथा लोकाकाशप्रदेशसंख्यानामपि कालाणूनामेकप्रदेशत्वादस्त्यस्तिकायत्वम्। अत एव च पञ्चास्तिकाय-

कालः; तस्यैव पर्यायभूतः सादिसनिधनः समयनिमिषघटिकादिविवक्षितकल्पनाभेदरूपो व्यवहारकालो भवतीति ॥१०१॥

एवं निर्विकारनिजानंदसुस्थितचिच्चमत्कारमात्रभावनारतानां भव्यानां बहिरंगकाललब्धिभूतस्य निश्चयव्यवहारकालस्य निरूपणमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतं। अथ कालस्य द्रव्यसंज्ञाविधानं कायत्वनिषेधं च प्रतिपादयति;—**एदे** एते प्रयत्क्षीभूताः **कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा** कालाकाशधर्माधर्मपुद्गलजीवाः कर्तारः **लब्भंति** लभंते। कां। **दव्वसण्णं** द्रव्यसंज्ञां। कस्मादिति चेत्। सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायलक्षणं चेति द्रव्यपीठिकाकथितक्रमेण द्रव्यलक्षणत्रययोगात् **कालस्स य णत्थि कायत्तं** कालस्य च नास्ति कायत्वं। तदपि कस्मात्। विशुद्ध-

ली जाय तो आवली पल्योपम सागरोपम इत्यादि अनेक भेद होते हैं। इससे यह बात सिद्ध हुई कि—निश्चयकाल अविनाशी है, व्यवहारकाल विनाशीक है ॥१०१॥

आगे कालकी द्रव्यसंज्ञा है कायसंज्ञा नहीं है, ऐसा कहते हैं;—[**एते**] ये [**कालाकाशे**] काल और आकाशद्रव्य [**च**] और [**धर्माधर्मौ**] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [**पुद्गलाः**] पुद्गलद्रव्य [**जीवाः**] जीवद्रव्य [**द्रव्यसंज्ञां**] द्रव्यनामको [**लभंते**] पाते हैं। भावार्थ—जिस प्रकार धर्म अधर्म आकाश पुद्गल जीव इन पाँचों द्रव्योंमें गुणपर्याय हैं और जैसा इनका सद्द्रव्य लक्षण है तथा इनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है वैसे ही गुणपर्यायादि द्रव्यके लक्षण कालमें भी हैं, इस कारण कालका नाम भी द्रव्य है। कालको और अन्य पाँचों द्रव्योंकी द्रव्यसंज्ञा तो समान है परन्तु धर्मादि पाँच द्रव्योंकी कायसंज्ञा है, क्योंकि काय उसको कहते हैं जिसके बहुत प्रदेश होते हैं। धर्म अधर्म आकाश जीव इन चारों द्रव्योंके असंख्यात प्रदेश हैं, पुद्गलके परमाणु यद्यपि एकप्रदेशी हैं तथापि पुद्गलोंमें मिलनशक्ति है इस कारण पुद्गल संख्यात असंख्यात तथा अनंतप्रदेशी हैं। [**कालस्य तु**] कालद्रव्यके तो [**कायत्वं**] बहुप्रदेश रूप कायभाव [**नास्ति**] नहीं है। **भावार्थ**—कालाणु एकप्रदेशी है लोकाकाशके भी असंख्यात

१. कालस्य द्रव्यत्वविधिविधानं दर्शितं। पुनः अस्तिकायत्वप्रतिषेधविधानं दर्शितञ्चात्र सूत्रैः।

प्रकरणे न हीह मुख्यत्वेनोपन्यस्तः कालः । जीवपुद्गलपरिणामावच्छिद्यमानपर्य्यायत्वेन तत्परिणामान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानद्रव्यत्वेनात्रैवांतर्भावितः ॥१०२॥ इति कालद्रव्यव्याख्यानं समाप्तम् ॥

तदवबोधफलपुरस्सरः पञ्चास्तिकायव्याख्योपसंहारोऽयम्;—

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता ।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥१०३॥

एवं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं विज्ञाय ।
यो मुञ्चति रागद्वेषौ सा गाहते दुःखपरिमोक्षं ॥१०३॥

न खलु कालकलितपञ्चास्तिकायेभ्योऽन्यत् किमपि सकलेनाऽपि प्रवचनेन प्रतिपाद्यते । ततः प्रवचनसार एवायं पञ्चास्तिकायसंग्रहः । यो हि नामामुं समस्त-

---

दर्शनज्ञानस्वभावशुद्धजीवास्तिकायप्रभृतिपंचास्तिकायानां बहुप्रदेशप्रचयत्वलक्षणं कायत्वं यथा विद्यते न तथा कालाणूनां "लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्का । रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि" इति गाथाकथितक्रमेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणामपीति । अत्र केवलज्ञानादिशुद्धगुणसिद्धत्वागुरुलघुत्वादिशुद्धपर्यायसहितशुद्धजीवद्रव्यादन्यद्रव्याणि हेयानीति भावः ॥१०२॥

एवं कालस्य द्रव्यास्तिकायसंज्ञाविधिनिषेधव्याख्यानेन पंचमस्थले गाथासूत्रं गतं । अथ पंचास्तिकायाध्ययनस्य मुख्यवृत्त्या तदंतर्गतशुद्धजीवास्तिकायपरिज्ञानस्य वा फलं दर्शयति;—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वियाणित्ता विज्ञाय पूर्वं ।कं ? पंचत्थियसंगहं पंचास्तिकायसंग्रहनामसंज्ञं ग्रंथं । किंविशिष्टं ? पवयणसारं प्रवचनसारं पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां संक्षेपप्रतिपादकत्वात् मुख्यवृत्त्या परमसमाधिरतानां मोक्षमार्गत्वेन सारभूतस्य शुद्धजीवास्तिकायस्य प्रतिपादकत्वाद्वा द्वादशांगरूपेण विस्तीर्णस्यापि

प्रदेश हैं, असंख्याते ही कालाणु हैं, अतः लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक एक कालाणु रहता है । इसी कारण इस पंचास्तिकाय ग्रन्थमें कालद्रव्य कायरहित होनेके कारण इसका मुख्यरूपसे कथन नहीं किया । यह कालद्रव्य इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित होता है, क्योंकि जीव पुद्‌गलके परिणमनसे समयादि व्यवहारकाल जाना जाता है । जीव पुद्‌गलोंके नवजीर्णपरिणामोंके विना व्यवहारकाल नहीं जाना जाता है । यदि व्यवहारकाल प्रगट जाना जाय तो निश्चयकालका अनुमान होता है । इस कारण पंचास्तिकायमें जीव-पुद्‌गलोंके परिणमनद्वारा कालद्रव्य जाना ही जाता है । कालको इसलिये ही इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित जानो । यह कालद्रव्यका व्याख्यान पूरा हुआ ॥१०२॥

अब पंचास्तिकायके व्याख्यानसे ज्ञान-फल होता है सो दिखाते हैं;—[यः] जो निकटभव्य जीव [एवं] पूर्वोक्तप्रकारसे [पञ्चास्तिकायसंग्रहं प्रवचनसारं] पंचास्तिकायके संक्षेपको अर्थात्

---

१. पञ्चास्तिकायमध्ये कालांतरभावः २. सिद्धांतेन ३. कथ्यते ४. पञ्चास्तिकायसंग्रहम् ।

वस्तुतत्त्वाभिधायिनमर्थतोऽर्थितयाऽवबुध्यात्रैव जीवास्तिकायांतर्गतमात्मानं स्वरूपेणात्यंतविशुद्धचैतन्यस्वभावं निश्चित्य परस्परकार्यकारणीभूतानादिरागद्वेषपरिणामकर्मबंधसंततिसमारोपितस्वरूपविकारं तदात्वेऽनुभूयमानमवलोक्य तत्कालोन्मीलितविवेकज्योतिः कर्मबंधसंततिप्रवर्तिकां रागद्वेषपरिणतिमत्यस्यति, स खलु जीर्यमाणस्नेहो जघन्यस्नेहगुणाभिमुखपरमाणुवद्भाविबंधपराङ्मुखः पूर्वबंधात्प्रच्यवमानः शिखितप्तोदकदौस्थ्यानुकारिणो दुःखस्य परिमोक्षं विगाहत इति ॥१०३॥

प्रवचनस्य सारभूतं एवं विज्ञाय। किं करोति? जो मुयदि यः कर्ता मुञ्चति। कौ कर्मतापन्नौ। रायदोसे अनंतज्ञानादिगुणसहितवीतरागपरमात्मनो विलक्षणौ हर्षविषादलक्षणौ भाविरागादिदोषोत्पादककर्मास्रवजनकौ च रागद्वेषौ द्वौ। सो सः पूर्वोक्तः ध्याता गाहदि गाहते प्राप्नोति। कं? दुक्खपरिमोक्खं निर्विकारात्मोपलब्धिभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतविपरीतस्य नानाप्रकार-

---

द्वादशांगवाणीके रहस्यको [विज्ञाय] भले प्रकार जानकर [रागद्वेषौ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति और द्वेषभावको [मुञ्चति] छोड़ता है [सः] वह पुरुष [दुःखपरिमोक्षं] संसारके दुःखोंसे मुक्ति को [गाहते) प्राप्त होता है। भावार्थ—द्वादशांगवाणीके अनुसार जितने सिद्धांत हैं उनमें कालसहित पंचास्तिकायका निरूपण है और किसी जगह कुछ भी छूट नहीं की है, इसलिये इस पंचास्तिकायमें भी यह निर्णय है, इस कारण यह पंचास्तिकाय—प्रवचन भगवानके प्रमाणवचनोंमें सार है। समस्त पदार्थोका दिखानेवाला जो यह ग्रन्थ समयसार पंचास्तिकाय है इसको जो कोई पुरुष शब्द अर्थसे भलीभाँति जानेगा वह पुरुष षड्द्रव्योंमें उपादेयस्वरूप जो आत्मब्रह्म आत्मीय चेतन्यस्वभावसे निर्मल है चित्त जिसका ऐसा निश्चयसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न रागद्वेषपरिणाम आत्मस्वरूपमें विकार उपजानेवाले हैं उनके स्वरूपको जानता है कि ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार जब इसको भेदविज्ञान होता है तब इसके परमविवेक ज्योति प्रगट होती है और कर्मबंधनको उपजानेवाली रागद्वेषपरिणति नष्ट हो जाती है. तब इसके आगामी बंधपद्धति भी नष्ट होती है। जैसे परमाणु बंधकी योग्यतासे रहित अपने जघन्य स्नेहभावको परिणमता आगामी बंधसे रहित होता है उसी प्रकार यह जीव रागभावके नष्ट होनेसे आगामी बंधका कर्त्ता नहीं होता, पूर्वबंध अपना रसविपाक देकर खिर जाता है तब यह चतुर्गति दुःखसे निवृत्त होकर मोक्षपदको पाता है। जैसे परद्रव्यरूप अग्निके संबंधसे जल तप्त होता है वही जल काल पाकर तप्त-विकारको छोड़कर स्वकीय शीतलभावको प्राप्त होता है, उसी प्रकार भगवद्वचनको अंगीकार करके ज्ञानी जीव कर्मविकारके आतापको

---

१. परमार्थतः. २. कार्यतया. ३. वर्तमानकाले. ४. त्यजति. ५. पूर्वोक्तः जीवः. ६. जीर्यमाणस्नेहो मोहः यस्य एवं भूतः सन्. ७. यथा जघन्यस्नेहजघन्यसचिक्कणगुणेन अभिमुखसहितपरमाणुर्न बध्यते पूर्वबंधात्प्रच्यवते च जघन्यसचिक्कणत्वात्। स्नेहस्य जघन्यांशत्वादित्यर्थः. ८ अग्नितप्तोदकं दौस्थ्यं जाज्वल्यमानं तप्तभावं अनुकारि सदृशं जायते तत्सदृशस्य दुःखस्याभावं लभते। तद्यथा जलस्य शीतलस्वभावोऽस्ति परन्तु अग्निसंयोगात्तप्तरूपं विकारभावं प्राप्नोति। पुनः कर्मबंधवत् यदाऽग्निसंयोगो विघटते तदा शुद्धस्वभावं स्वस्य शीतलस्वभावं लभते एव। तथाहि—यदा कर्मबंधरहितः स आत्मा भवति तदा दुःखस्य अभाव लभते।

दुःखविमोक्षकरणक्रमाख्यानमेतत्;—

सुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥१०४॥

ज्ञात्वैतदर्थं तदनुगमनोद्यतो निहतमोहः ।
प्रशमितरागद्वेषो भवति हतपरापरो जीवः ॥१०४॥

एतस्य शास्त्रस्यार्थभूतं शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते। ततस्तमेवानुगंतुमुद्यमते । ततोऽस्य क्षीयते दृष्टिमोहः । ततः स्वरूपपरिचयादुन्मज्जेति

शारीरमानसरूपस्य चतुर्गतिदुःखस्य परिमोक्षं मोचनं विनाशमित्यभिप्रायः ॥१०३॥

अथ दुःखमोक्षकारणस्य क्रमं कथयति;—**मुणिदूण** मत्वा विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा तावत् । कं ? एदं इमं प्रत्यक्षीभूतं नित्यानंदैकशुद्धजीवास्तिकायलक्षणं अत्थं अर्थं विशिष्टपदार्थं **तमणु** तं शुद्धजीवास्तिकायलक्षणमर्थं अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य **गमणुज्जुदो** गमनोद्यतः तन्मयत्वेन परिणमनोद्यतः **णिहदमोहो** शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वप्रतिबंधकदर्शनमोहाभावात्तदनंतरं निहतमोहो नष्टदर्शनमोह । **पसमिइदरागदोसो** निश्चलात्मपरिणतिरूपनिश्चयचारित्रप्रतिकूलचारित्रमोहोदयाभावात्तदनंतरं प्रशमितरागद्वेषः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वपरयोर्भेदज्ञाने सति शुद्धात्मरुचिरूपे सम्यक्त्वे तथैव शुद्धात्मस्थितिरूपे चारित्रे च सति पश्चात् **हवदि** भवति । कथंभूतः ? **हदपरावरो** हतपरापरः । अत्र परमानंदज्ञानादिगुणाधारत्वात्परशब्देन मोक्षो भण्यते परशब्दवाच्या-

---

नष्ट कर आत्मीक शांत-रस-गर्भित सुखको पाते हैं ॥१०३॥

आगे दुःखोंके नष्ट करनेका क्रम दिखाते हैं अर्थात् किस क्रमसे जीव संसारसे रहित होकर मुक्त होता है सो दिखाते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**एतदर्थं**] इस ग्रंथके रहस्य शुद्धात्मपदार्थको [**ज्ञात्वा**] जानकर [**तदनुगमनोद्यतः**] उस ही आत्मपदार्थमें प्रवीण होनेको उद्यमी [**भवति**] होता है [**स जीवः**] वह भेदविज्ञानी जीव [**निहतमोहः**] नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने, [**प्रशमितरागद्वेषः**] शांत होकर विला गये हैं रागद्वेष जिसमेंसे, [**हतपरापरः**] नष्ट किया है पूर्वापर बंध जिसने, ऐसा होकर मोक्षपदका अनुभवी होता है । **भावार्थ**—यह संसारी जीव अनादि अविद्याके प्रभावसे परभावोंमें आत्मस्वरूपत्व जानता है, अज्ञानी होकर रागद्वेषभावरूप परिणमित होता है । जब काललब्धि पाकर सर्वज्ञ-वीतरागके वचनोंको अवधारण करता है तब इसके मिथ्यात्वका नाश होता है । भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट होती है । तत्पश्चात् चारित्रमोह भी नष्ट होता है । तब सर्वथा संकल्पविकल्पोंके अभावसे स्वरूपमें एकाग्रतासे लीन होता है । आगामी बंधका भी निरोध हो जाता

---

१. दर्शनमोहः. २. प्रकटीभवति प्रकाशते ।

ज्ञानज्योतिः ततो रागद्वेषौ प्रशाम्यतः । ततः उत्तरः पूर्वश्च बंधो विनश्यति । ततः पुनर्बंधहेतुत्वाभावात् स्वरूपस्थो नित्यं प्रतपतीति ॥१०४॥

इति समयव्याख्यायां श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायामंतर्नीतषड्द्व्यपञ्चास्तिकायवर्णनात्मकः प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥१॥

अथ नवपदार्थाधिकारः ॥२॥

"द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन, शुद्धं बुधानामिह[1] तत्त्वमुक्तम् ।
पदार्थभङ्गेन[2] कृतावतारं, प्रकीर्त्यते संप्रति वर्त्म तस्य[3] ॥१॥"

आप्तस्तुतिपुरस्सरा प्रतिज्ञेयम्;—

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं ।
तेसिं पयत्थभंगं मोक्खस्स वोच्छामि ॥१०५॥

न्मोक्षादपरो भिन्नः परापरः संसार इति हेतोः विनाशितः परापरो येन स भवति हतपरापरो नष्ट संसारः । स कः ? **जीवो** भव्यजीवः ॥१०४॥

इति पंचास्तिकायपरिज्ञानफलप्रतिपादनरूपेण षष्ठस्थले गाथाद्वयं गतं । एवं प्रथममहाधिकार-मध्ये गाथाष्टकेन षट्भिःस्थलैश्चूलिकासंज्ञोष्टमोऽन्तराधिकारो ज्ञातव्यः । अत्र पंचास्तिकायप्राभृतग्रंथे पूर्वोक्तक्रमेण सप्तगाथाभिः समयशब्दपीठिका, चतुर्दशगाथाभिर्द्रव्यपीठिका, पंचगाथाभिर्निश्चयव्य-वहारकालमुख्यता, त्रिपंचाशद्गाथाभिर्जीवास्तिकायव्याख्यानं, दशगाथाभिः पुद्गलास्तिकाय-व्याख्यानं, सप्तगाथाभिर्धर्माधर्मास्तिकायद्वयविवरणं, सप्तगाथाभिराकाशास्तिकायव्याख्यानं, अष्ट-गाथाभिश्चूलिकामुख्यत्वमित्येकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टांतराधिकारा गताः ।

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनं नाम प्रथमो महाधिकारः समाप्तः ॥१॥

इति ऊर्ध्वं "अभिवंदिऊण सिरसा" इति इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पंचाशद्गाथा-पर्यंतं टीकाभिप्रायेणाष्टाधिकचत्वारिंशद्गाथापर्यंतं वा जीवादिनवपदार्थप्रतिपादको द्वितीयमहाधिकारः

है, पिछला कर्मबंध अपना रस देकर खिर जाता है, तब वह ही जीव निर्बंध अवस्थाके धारणपूर्वक मुक्त होकर अनंतकालपर्यंत स्वरूपगुप्त अनंत सुखका भोक्ता होता है ॥१०४॥

इति **श्रीपांडे हेमराजकृत** पंचास्तिकाय-समयसार ग्रंथकी बालबोधभाषाटीकामें षड्द्रव्य-पंचास्तिकायका व्याख्यान नामक **प्रथमश्रुतस्कंध पूर्ण** हुआ ॥१॥

पूर्वकथनमें केवल मात्र शुद्ध तत्त्वका कथन किया है । अब नव पदार्थके भेद-कथन करके मोक्षमार्ग कहते हैं, जिसमें प्रथम ही भगवान्की स्तुति करते हैं, क्योंकि जिसका वचन प्रमाण है

१. पञ्चास्तिकायव्याख्यायाम्. २. पदार्थविकल्पनेन भेदेन वा विवरणेन. ३ शुद्धात्मतत्त्वस्य ।

अभिवंद्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरं ।
तेषां पदार्थभङ्गं मार्गं मोक्षस्य वक्ष्यामि ।।१०५।।

अमुना हि प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य मूलकर्तृत्वेनापुनर्भवकारणस्य भगवतः परमभट्टारकमहादेवाधिदेवश्रीवर्द्धमानस्वामिनः सिद्धिनिबंधनभूतां तां भावस्तुतिमासूत्र्य, कालकलितपञ्चास्तिकायानां पदार्थविकल्पो मोक्षस्य मार्गश्च वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञात इति ।।१०५।।

प्रारभ्यते। तत्र तु दशांतराधिकारा भवन्ति। तेषु दशाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावन्नमस्कारगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयपर्यंतं व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोतीति प्रथमांतराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि—अन्तिमतीर्थंकरपरमदेवं नत्वा पंचास्तिकायषड्द्रव्यसंबन्धिनं नवपदार्थभेदं मोक्षमार्गं च वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापुरःसरं नमस्कारं करोति;—**अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं** अभिवंद्य प्रणम्य। केन ? शिरसा। कं ? अपुनर्भवकारणं महावीरं। ततः किं करोमि ? **वोच्छामि** वक्ष्यामि। कं ? **तेसिं पयत्थभंगं** तेषां पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां नवपदार्थभेदं। न केवलं नवपदार्थभेदं। **मग्गं मोक्खस्स** मार्गं मोक्षस्येति। तद्यथा। मोक्षसुखसुधारसपानपिपासितानां भव्यानां पारंपर्येणानंतज्ञानादिगुणफलस्य मोक्षकारणं महावीराभिधानमन्तिमजिनेश्वरं रत्नत्रयात्मकस्य प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य प्रतिपादकत्वात्प्रथमत एव प्रमाणमिति गाथापूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोति ग्रंथकारः, तदनंतरमुत्तरार्धेन च शुद्धात्मरुचिप्रतीतिनिश्चलानुभूतिरूपस्याभेदरत्नत्रयात्मकस्य निश्चय मोक्षमार्गस्य परंपरया कारणभूतं व्यवहारमोक्षमार्गं तस्यैव व्यवहारमोक्षमार्गस्यावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतान्नवपदार्थांश्च प्रतिपादयामीति प्रतिज्ञां च करोति। अत्र यद्यप्यग्रे चूलिकायां मोक्षमार्गस्य विशेषव्याख्यानमस्ति तथापि नवपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थमत्रापि भणितं। कथं संक्षेपसूचनमितिचेत्। नवपदार्थव्याख्यानं तावदत्र प्रस्तुतं। ते च कथंभूताः। व्यवहारमोक्षमार्गे विषयभूता इत्यभिप्रायः ।।१०५।।

वह पुरुष प्रमाण है, और पुरुष-प्रमाणसे वचनकी प्रमाणता है। मैं—कुन्दकुन्दाचार्य **[अपुनर्भवकारणं]** मोक्षके कारणभूत **[महावीरं]** वर्द्धमान—तीर्थंकर भगवान्‌को **[शिरसा]** मस्तक द्वारा **[अभिवंद्य]** नमस्कार करके **[मोक्षस्य मार्गं]** मोक्षके मार्ग अर्थात् कारणस्वरूप **[तेषां]** उन षड्द्रव्योंके **[पदार्थभङ्गं]** नवपदार्थरूप भेदको **[वक्ष्यामि]** कहूँगा। **भावार्थ**—वर्तमान पंचमकालमें धर्मतीर्थके कर्त्ता भगवान् परम भट्टारक देवाधिदेव श्रीवर्द्धमानस्वामीकी, मोक्षमार्गकी साधक स्तुति करके मोक्षमार्गके दिखानेवाले षड्द्रव्योंके विकल्प नवपदार्थरूप भेद दिखाने योग्य हैं, ऐसी श्रीकुन्दकुन्दस्वामीने प्रतिज्ञा की है ।।१०५।।

---

१. सूत्रेण।

मोक्षमार्गस्यैव तावत्सूचनेयम्;—

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रं रागद्वेषपरिहीनं।
मोक्षस्य भवति मार्गो भव्यानां लब्धबुद्धीनां ॥१०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं, चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषापरिहीणम्, मोक्ष[1]स्यैव न भावतो [2]बंधस्य, मार्ग एव नामार्गः,

---

अथ प्रथमतस्तावन्मोक्षमार्गस्य संक्षेपसूचनां करोति;—**सम्मत्तणाणजुत्तं** सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव न च सम्यक्त्वज्ञानरहितं **चारित्तं** चारित्रमेव न चाचारित्रं **रागदोसपरिहीणं** रागद्वेषपरिहीनमेव न च रागद्वेषसहितं। **मोक्खस्स हवदि** स्वात्मोपलब्धिरूपस्य मोक्षस्यैव भवति नच शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य, **मग्गो** अनंतज्ञानादिगुणामौल्यरत्नपूर्णस्य मोक्षनगरस्य मार्ग एव नैवामार्गः **भव्वाणं** शुद्धात्मस्वभावरूपव्यक्तियोग्यतासहितानां भव्यानामेव न च शुद्धात्मरूपव्यक्तियोग्यतारहितानामभव्यानां **लद्धबुद्धीणं** लब्धनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपबुद्धीनामेव न च मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपविषयानंदस्वसंवेदन कुबुद्धिसहितानां, क्षीणकषायशुद्धात्मोपलंभे सत्येव भवति न च सकषायाशुद्धात्मोपलंभे भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामष्टविधनियमोत्र द्रष्टव्यः। अन्वयव्यतिरेकस्वरूपं कथ्यते। तथाहि—सति संभवोऽन्वयलक्षणं असत्यसंभवो व्यतिरेकलक्षणं, तत्रोदाहरणं—निश्चयव्यवहारमोक्षकारणे सति

आगे मोक्षमार्गका संक्षेप कथन करते हैं;—[सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं] सम्यक्त्व अर्थात् श्रद्धान और यथार्थ वस्तुके परिच्छेदन सहित [चारित्रं] आचरण [मोक्षस्य मार्गः] मोक्षका मार्ग [भवति] है। अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोंहीका जब एकवार परिणमन होता है तब ही मोक्षमार्ग होता है। दर्शनज्ञानयुक्त चारित्र कैसा है? [रागद्वेषपरिहीनं] इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेषरहित समता-रसगर्भित है। ऐसा मोक्षमार्ग किनके होता है? [लब्धबुद्धीनां] जिनको स्वपरविवेकभेदविज्ञानवुद्धि प्राप्त हुई है और [भव्यानां] जो भव्यजीव मोक्षमार्गके सन्मुख हैं उनके होता है। भावार्थ—चारित्र वही है जो दर्शन-ज्ञानसहित है, दर्शनज्ञानके विना चारित्र सो मिथ्याचारित्र है। जो चारित्र है वही चारित्र है, न कि मिथ्याचारित्र चारित्र होता है। और चारित्र वही है जो रागद्वेषरहित समतारससंयुक्त है। जो कषायरसगर्भित है वह चारित्र नहीं है, संक्लेशरूप है। ऐसा चारित्र सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्षस्वरूप है, न कि कर्मबंधरूप है। जो ज्ञान-

---

१. स्वात्मोपलब्धिरूपस्य. २. शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य।

भव्यानामेव नाभव्यानां, लब्धबुद्धीनामेव नालब्धबुद्धीनां, क्षीणकषायत्वे भवत्येव न कषायसहितत्वे भवतीत्यष्टधा नियमोऽत्र द्रष्टव्यः ॥१०६॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सूचनेयम्;—

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं ।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥१०७॥

सम्यक्त्वं श्रद्धानं भावानां तेषामधिगमो ज्ञानम् ।
चारित्रं समभावो विषयेष्वविरूढमार्गाणाम् ॥१०७॥

भावाः खलु कालकलितपञ्चास्तिकायविकल्परूपा नव पदार्थास्तेषां मिथ्या-

---

मोक्षकार्यं संभवतीति विधिरूपोऽन्वय उच्यते, तत्कारणाभावे मोक्षकार्यं न संभवतीति निषेधरूपो व्यतिरेक इति । तदेव द्रढयति । यस्मिन्नग्न्यादिकारणे सति यद्धूमादिकार्यं भवति तदभावे न भवतीति तद्धूमादिकं तस्य कार्यमितरदग्न्यादिकं कारणमिति कार्यकारणनियम इत्यभिप्रायः ॥१०६॥

अथ व्यवहारसम्यग्दर्शनं कथ्यते;—

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे ।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥१॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **जिणपण्णत्ते** जिनप्रज्ञप्तान् वीतरागसर्वज्ञप्रणीतान् **सद्दहमाणस्स** श्रद्दधतः **भावदो** रुचिरूपपरिणामतः । कान् ? कर्मतापन्नान् । **भावे** त्रिलोकत्रिकालविषयसमस्तपदार्थगतसामान्यविशेषस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थकेवलदर्शनज्ञानलक्षणात्मद्रव्यप्रभृतीन् समस्तभावान् पदार्थान् । कस्य ? **पुरिसस्स** पुरुषस्य भव्यजीवस्य । कस्मिन् सति ? **आभिणिबोधे** आभिनिबोधे मतिज्ञाने सति मतिपूर्वकश्रुतज्ञाने वा । **दंसणसद्दे** दर्शनिकोयं पुरुष इति शब्दः **हवदि** भवति । कथंभूतो भवति ? **जुत्तो** युक्त उचित इति । अत्र सूत्रे यद्यपि क्वापि निर्विकल्पसमाधिकाले निर्विकारशुद्धात्मरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं स्पृशति तथापि प्रचुरेण बहिरंगपदार्थरुचिरूपं यद्व्यवहारसम्यक्त्वं तस्यैव तत्र मुख्यता । कस्मात् ? विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । तदपि कस्मात् ? व्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानप्रस्तावादिति भावार्थः ॥१॥ अथ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयस्य विशेषविवरणं करोति;—सम्यक्त्वं भवति । किं

दर्शनयुक्त चारित्र है वह ही उत्तम मार्ग है, न कि संसारका मार्ग भला है । मोक्षमार्ग निकट संसारी जीवोंको होता है, अभव्य या दूर भव्योंको नहीं होता । जिनको भेदविज्ञान है उन ही भव्य जीवोंको होता है; स्वपरज्ञानशून्य अज्ञानीको नहीं होता । जिनके कषाय मूलसत्तासे क्षीण हो गई है उनके ही मोक्षमार्ग है, कषायी जीवोंके नहीं होता । यों आठ प्रकार के मोक्ष-साधनका नियम जानो ॥१०६॥

आगे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप कहते हैं;—[भावानां] षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय और नवपदार्थोंकी [श्रद्धानं] प्रतीतिपूर्वक दृढता [सम्यक्त्वं] सम्यग्दर्शन है [तेषां] उन ही पदार्थोंका

दर्शनोदयापादिताश्रद्धानाभावस्वभावं, भावांतरं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयान्नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेणाध्यवसीयमानानां तन्निवृत्तौ समञ्जसाध्यवसायः सम्यग्ज्ञानं। मनाक् ज्ञानचेतनाप्रधानात्मतत्त्वोपलंभबीजम्। सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्यः समग्रेभ्यः परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषेण रूढमार्गाणां सतामिन्द्रियानिन्द्रियविषयभूतेष्वर्थेषु रागद्वेषपूर्वकविकाराभावान्निर्विकारावबोधस्वभावः समभावश्चारित्रं, तदात्वायतिरमणीयमनणीयसोऽपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजम्। इत्येष त्रिलक्षणो मोक्षमार्गः पुरस्तान्निश्चय-

---

कर्तृं ? सद्दहणं मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानं। केषां संबंधि। भावाणं पंचास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूपं जीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां। इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं। किंविशिष्टं ? शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायां साधकत्वेन बीजभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वबीजभूतं। तेसिम–तेषाम् नवपदार्थानामधिगमो नौयानसंस्काररूप विपरीतात् अभिनिवेशरहितरधिगमः संशयादिरहितोऽवबोधः। णाणं सम्यग्ज्ञानं इदं तु नवपदार्थविषयव्यवहारज्ञानं छद्मस्थावस्थायाम् आत्मविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परंपरया बीजं, तदपि स्वसंवेदनज्ञानं केवलज्ञानबीजं भवति। चारित्तं चारित्रं भवति। स कः ? समभावो समभावः। केषु ? विषयेषु इन्द्रियमनोगतसुखदुःखोत्पत्तिरूपशुभाशुभविषयेषु। केषां भवति ? विरूढमग्गाणं पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञानबलेन समस्तान्यमार्गेभ्यः प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणां विरूढमार्गाणां परिज्ञातमोक्षमार्गाणां। इदं तु व्यव-

---

[अधिगमः] यथार्थ अनुभवन [ज्ञानं] सम्यग्ज्ञान है और [विषयेषु] पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें [अविरूढमार्गाणां] नहीं की है अति दृढतासे प्रवृत्ति जिन्होंने ऐसे भेदविज्ञानी जीवोंका [समभावः] रागद्वेषरहित शान्तस्वभाव [चारित्रं] सम्यक्चारित्र है। भावार्थ—जीवोंके अनादि अविद्याके उदयसे विपरीत पदार्थोंकी श्रद्धा है। काललब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व नष्ट हो, तब पदार्थोंकी यथार्थ प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वही सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मपदार्थके निश्चय करने में बीजभूत है। मिथ्यात्वके उदयसे संशय, विमोह, विभ्रमस्वरूप पदार्थोंका ज्ञान होता है। जैसे नावपर चढ़ते

---

१. कथंभूतं सम्यग्दर्शनं शुद्धचैतन्यस्वरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम्. २. नवपदार्थानामेव. ३. यथा नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययेणेत्यनेन नावि स्थितस्य स्वस्य गमनं न दृश्यते। अन्येषां स्थिरीभूतानां सर्वेषां वृक्षपर्वतादीनां गमनं दृश्यते। कुतः स्वसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययात्। अनेन संस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेण अध्यवसीयमानानां निश्चीयमानानां, तथा मिथ्यादर्शनोदयात् स्वरूपविपर्ययेण गृहीतानां नवपदार्थानाम्. ४. पुनः तन्निवृत्तौ मिथ्यादर्शननिवृत्तौ सत्याम् ५. सम्यग्निर्णयः ६. कथंभूतं सम्यग्ज्ञानं मनाक् ज्ञानचेतनायाः प्रधानात्मतत्त्वोपलम्भबीजम्. ७. मार्गं आरूढानां तिष्ठतां. ८. कथंभूतं चारित्रं तदात्वायतिरमणीय वर्तमाने उत्तरकाले च रमणीयं सुखदायकं। पुनः कीदृगम्, अनणीयसः अपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजं। अनणीयसः महतः अपुनर्भवसौख्यस्य मोक्षस्य एक बीजम्।

व्यवहाराभ्यां व्याख्यास्यते । इह तु सम्यग्दर्शनज्ञानयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां नवपदार्थानामुपोद्घातहेतुत्वेन सूचित इति ॥१०७॥

पदार्थानां नामस्वरूपाभिधानमेतत्;—

जीवाजीवो भावो पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ॥१०८॥

जीवाजीवौ भावौ पुण्यं पापं चास्रवस्तयोः ।
संवरनिर्जरबंधा मोक्षश्च भवन्ति ते अर्थाः ॥१०८॥

जीवः, अजीवः, पुण्यं, पापं, आस्रवः, संवरः, निर्जरा, बंधः, मोक्ष इति नवपदार्थानां नामानि । तत्र चैतन्यलक्षणो जीवास्तिकाय एवेह जीवः । चैतन्याभावलक्षणोऽजीवः । स पञ्चधा पूर्वोक्त एव पुद्‌गलास्तिकः, धर्मास्तिकः, अधर्मास्तिकः, आकाशास्तिकः, कालद्रव्यञ्चेति । इमौ हि जीवाजीवौ पृथग्भूताऽस्तित्वनिर्वृत्तत्वेन

हारचारित्रं बहिरंगसाधकत्वेन वीतरागचारित्रभावनोत्पन्नपरमात्मतृप्तिरूपस्य निश्चयसुखस्य बीजं तदपि निश्चयसुखं पुनरक्षयानंतसुखस्य बीजमिति । अत्र यद्यपि साध्यसाधकभावज्ञापनार्थं निश्चयव्यवहारद्वयं व्याख्यातं तथापि नवपदार्थविषयरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्यैव मुख्यत्वमिति भावार्थः ॥१०७॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारे व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन प्रथमोंतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं जीवादिनवपदार्थानां मुख्यवृत्त्या नाम गौणवृत्त्या स्वरूपं च

हैं तो बाहरके पदार्थ चलते हुए दिखाई देते हैं, इसीको विपरीतज्ञान कहते हैं । जब मिथ्यात्वका नाश हो जाता है तब यथार्थ पदार्थोंका ग्रहण होता है । उसी यथार्थज्ञानका ही नाम सम्यग्ज्ञान है । वही सम्यग्ज्ञान आत्मतत्त्व-अनुभवनकी प्राप्तिका मूल कारण है । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी प्रवृत्तिके प्रभावसे समस्त कुमार्गोंसे निवृत्त होकर आत्मस्वरूपमें लीन होकर इन्द्रियमनके विषय जो इष्ट अनिष्ट पदार्थ हैं उनमें रागद्वेषरहित समभावरूप निर्विकार परिणाम ही सम्यक्चारित्र है । सम्यक्चारित्र फिर जन्मसन्तान (संसारका) उपजानेवाला नहीं है । मोक्षसुखका कारण है । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों भावोंकी जब एकता हो तब ही मोक्षमार्ग कहलाता है । इनमेंसे किसी एककी कमी हो तो मोक्षमार्ग नहीं है । जैसे व्याधियुक्त रोगीको औषधिका श्रद्धान-ज्ञान-उपचार तीनों प्रकार हों तबही रोगी रोगसे मुक्त होता है । एककी कमी होनेसे रोग नहीं जाता । इसीप्रकार त्रिलक्षण मोक्षमार्ग है ॥१०७॥

आगे निश्चय-व्यवहारनयोंकी अपेक्षा विशेष मोक्षमार्ग दिखाते हैं । यहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञानके द्वारा नव पदार्थ जाने जाते हैं, इसकारण मोक्षका संक्षेप स्वरूप ही कहा है । आगे नव पदार्थोंका

भिन्नस्वभावभूतौ मूलपदार्थौ। जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ताः सप्तान्ये च पदार्थाः। शुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानाञ्च पुण्यम्। अशुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानाञ्च पापम्। मोहरागद्वेषपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्चास्रवः। मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्च संवरः। कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गांतरङ्गतपोभिर्बृंहितैःशुद्धोपयोगो जीवस्य, तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानाञ्च निर्जरा। मोहरागद्वेषस्निग्धपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तेन कर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्यो-

---

कथयति;—जीवाजीवौ द्वौ भावौ पुण्यपापद्वयमिति पदार्थद्वयं आस्रवपदार्थस्तयोः पुंण्यपापयोः संवरनिर्जराबंधमोक्षपदार्थचतुष्टयमपि तयोरेव। एवं ते प्रसिद्धा नव पदार्था भवंतीति नामनिर्देशः। इदानीं, स्वरूपाभिधानं। तथाहि—ज्ञानदर्शनस्वभावो जीवपदार्थः, तद्विलक्षणः पुद्गलादिपंचभेदः पुनरप्यजीवः दानपूजाषडावश्यकादिरूपो जीवस्य शुभपरिणामो भावपुण्यं भावपुण्यनिमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादिशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपरमाणुपिंडो द्रव्यपुण्यं, मिथ्यात्वरागादिरूपो जीवस्याशुभपरिणामो भावपापं, तन्निमित्तेनासद्वेद्याद्यशुभप्रकृतिरूप पुद्गलपिंडो द्रव्यपापं, निरास्रवशुद्धात्मपदार्थविपरीतो रागद्वेषमोहरूपो जीवपरिणामो भावास्रव, भावनिमित्तेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां योगद्वारेणागमनं द्रव्यास्रवः, कर्मनिरोधे समर्थो निर्विकल्पकात्मोपलब्धिपरिणामो भावसंवरः, तेन भावनिमित्तेन नवतरद्रव्यकर्मागमनिरोधो द्रव्यसंवरः, कर्मशक्तिशातनसमर्थो द्वादशतपोभिर्वृद्धिं गतः शुद्धोपयोगः संवरपूर्विका भावनिर्जरा तेन शुद्धोपयोगेन नीरसभूतस्य चिरंतनकर्मण एकदेशगलनं द्रव्यनिर्जरा, प्रकृत्यादिबंधशून्यपरमात्मपदार्थप्रतिकूलो मिथ्यात्वरागादिस्निग्धपरिणामो भावबंधनिमित्तेन तैलम्रक्षितशरीरे धूलिबंध-

---

संक्षेप स्वरूप और नाम कहे जाते हैं;—[**जीवाजीवौ भावौ**] एक जीव पदार्थ और एक अजीव पदार्थ [**पुण्यं**] एक पुण्य पदार्थ [**च**] और [**पापं**] एक पाप पदार्थ [**तयोः**] उन दोनों पुण्य-पापोंका [**आस्रवः**] आत्मामें आगमन सो एक आस्रव पदार्थ, [**संवरनिर्जरबंधाः**] संवर, निर्जरा और बंध ये तीन पदार्थ हैं। [**च**] और [**मोक्षः**] एक मोक्ष पदार्थ है। इस प्रकार [**ते**] वे [**अर्थाः**] नव पदार्थ [**भवन्ति**] होते हैं। **भावार्थ**—१, जीव २, अजीव ३, पुण्य ४, पाप ५, आस्रव ६, संवर ७, निर्जरा ८, बंध और ९, मोक्ष ये नव पदार्थ जानो। जिसका चेतना लक्षण है वह **जीव** है। चेतनारहित जड़ पदार्थ **अजीव** है, सो पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और कालद्रव्य यों पाँच प्रकार अजीव हैं। ये जीव-अजीव दोनों ही पदार्थ अपने भिन्नस्वरूपके अस्तित्वसे मूल पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त जो सात पदार्थ हैं वे जीव और पुद्गलोंके संयोगसे उत्पन्न हुये हैं, सो दिखाये

१. भावपुण्यम् २. तदेव भावपुण्यं निमित्तं कारणं यस्य सः ३. कर्माष्टकपर्य्यायः द्रव्यपुण्यं. ४. वर्धित. ५. तस्य शुद्धोपयोगस्य अनुभावं प्रभावं तेन कारणेन रसरहितानां समुपात्तकर्मपुद्गलानां च निर्जरा ज्ञातव्या।

न्यसंमूर्च्छनं पुद्गलानाञ्च बंधः। अत्यंतशुद्धात्मोपलम्भो जीवस्य जीवेन सहात्यंतविश्लेषः कर्मपुद्गलानां च मोक्ष इति ॥१०८॥

अथ जीवपदार्थानां व्याख्यानं प्रपञ्चनार्थम्[३]। जीवस्वरूपोपदेशोऽयम्;—

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥१०९॥

जीवाः संसारस्था निर्वृत्ताः चेतनात्मका द्विविधाः।
उपयोगलक्षणा अपि च देहादेहप्रवीचाराः ॥१०९॥

जीवाः हि द्विविधाः। संसारस्था अशुद्धा निर्वृत्ताः शुद्धाश्च। ते खलूभयेऽपि

वज्जीवकर्मप्रदेशानामन्योन्यसंश्लेषो द्रव्यबंधः, कर्मनिर्मूलनसमर्थः शुद्धात्मोपलब्धिरूपजीवपरिणामो भावमोक्षः, भावमोक्षनिमित्तेन जीव कर्मप्रदेशानां निरवशेषः पृथग्भावो द्रव्यमोक्ष इति सूत्रार्थः ॥१०८॥

एवं जीवाजीवादिनवपदार्थानां नवाधिकारसूचनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं। तदनंतरं पंचदशगाथापर्यंतं जीवपदार्थाधिकारः कथ्यते। तत्र पंचदशगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवपदार्थाधिकारसूचनमुख्यत्वेन "जीवा संसारत्था" इत्यादि गाथासूत्रमेकं अथ पृथ्वीकायादिस्थावरैकेन्द्रियपंचमुख्यत्वेन "पुढवीय" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ विकलेन्द्रियत्रयव्यानमुख्यत्वेन "संबुक" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिचतुष्टयविशिष्टपंचेन्द्रियकथनरूपेण

जाते हैं। यदि जीवके शुभ परिणाम हों तो उस शुभपरिणामके निमित्तसे पुद्गलमें शुभकर्मरूप शक्ति होती है उसे पुण्य कहते हैं। जीवके अशुभ परिणामोंके निमित्तसे पुद्गल वर्गणाओंमें अशुभ कर्मरूप परिणतिशक्ति हो उसे पाप कहते हैं। मोह-रागद्वेषरूप जीवके परिणामोंके निमित्तसे मन-वचनकायरूप योगोंद्वारा पुद्गलकर्म वर्गणाओंका आगमन होना आस्रव है। और जीवके मोह-राग-द्वेष परिणामोंको रोकनेवाले भावोंका निमित्त पाकर योगोंके द्वारा पुद्गल वर्गणाओंके आगमनका निरोध होना संवर है। कर्मोंकी शक्तिके घटानेको समर्थ, बहिरंग अंतरंगतपोंसे वर्द्धमान जीवके शुद्धोपयोगरूप परिणामोंके प्रभावसे पूर्वोपार्जित कर्मोंका नीरस भाव होकर एकदेश क्षय हो जाना निर्जरा है। और जीवके मोह-राग-द्वेषरूप स्निग्ध परिणामोंके निमित्तसे कर्मवर्गणारूप पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंसे परस्पर एकक्षेत्रावगाह करके सम्बन्ध होना बंध है। जीवके अत्यन्त शुद्धात्मभावकी प्राप्ति हो तो उसका निमित्त पाकर जीवके सर्वथा प्रकार कर्मोंका छूट जाना मोक्ष है ॥१०८॥

आगे जीव पदार्थका व्याख्यान किया जाता है, जिसमें जीवका स्वरूप नाम मात्रको दिखाया जाता है;—[जीवाः] आत्मपदार्थ [द्विविधाः] दो प्रकारके हैं। एक तो [संसारस्थाः] संसारमें रहने-

---

१. एकदेशसङ्क्षयः २. एकत्रसंबंधित्वं द्रव्यबंधः ३. 'प्रपञ्चयति' इति वा पाठः ४. संसारस्थाः, निर्वृत्ताः तत्र संसारस्था अशुद्धा ज्ञातव्यास्तु पुनः निर्वृत्ताः शुद्धा ज्ञातव्या इत्यर्थः।

चेतनस्वभावाः । चेतनपरिणामलक्षणेनोपयोगेन लक्षणीयाः[1] । तत्र संसारस्था देहप्रवीचाराः[2] । निर्वृत्ता अदेहप्रवीचारा[3] इति ॥१०९॥

पृथिवीकायादिपञ्चविधोद्देशोऽयम्;—

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया ।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥११०॥

पृथिवी चोदकमग्निर्वायुर्वनस्पतिः जीवसंश्रिताः कायाः ।
ददति खलु मोहबहुलं स्पर्शं बहुका अपि ते तेषां ॥११०॥

पृथिवीकायाः, अप्कायाः, तेजःकायाः, वायुकायाः, वनस्पतिकायाः, इत्येते

"सुरणर" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ भेदभावनामुख्यत्वेन हिताहितकर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन च "ण हि इंदियाणि" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ जीवपदार्थोपसंहारमुख्यत्वेन तथैव जीवपदार्थप्रारम्भमुख्यत्वेन च "एवमधिगम्म जीव" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं पंचदशगाथाभिः षट्स्थलैर्द्वितीयांतराधिकारे समुदायपातनिका । तथाहि । जीवस्वरूपं निरूपयति;—जीवा भवन्ति । किंविशिष्टाः ? **संसारत्था णिव्वादा** संसारस्था निर्वृताश्चैव **चेदणप्पगा दुविहा** । चेतनात्मका उभेपि कर्मचेतनाकर्मफलचेतनात्मकाः संसारिणः शुद्धचेतनात्मका मुक्ता इति **उवओगलक्खणा वि य** उपयोगलक्षणा अपि च । आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगः केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ताः क्षायोपशमिका अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः **देहादेहप्पवीचारा** देहादेहप्रवीचाराः अदेहात्मतत्त्वविपरीतदेहप्रवीचाराः अदेहाः सिद्धा इति सूत्रार्थः ॥१०९॥

एवं जीवाधिकारसूचनगाथारूपेण प्रथमस्थलं गतं । अथ पृथिवीकायादिपंचभेदान् प्रतिपादयति;—पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिजीवान् कर्मतापन्नान् संश्रिताः कायाः ददति प्रयच्छन्ति खलु स्फुटं । कं ? मोहबहुलं स्पर्शविषयं बहुका अंतर्भेदैर्बहुसंख्या अपि ते कायास्तेषां जीवानामिति । अत्र

वाले अशुद्ध हैं, दूसरे **[निर्वृत्ताः]** मोक्षावस्थाको प्राप्त होकर शुद्ध हुये सिद्ध हैं । वे जीव कैसे हैं ? **[चेतनात्मकाः]** चैतन्यस्वरूप हैं **[उपयोगलक्षणा]** ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोग (परिणाम) वाले हैं । **[अपि]** और निश्चयसे **[च]** फिर वे दो प्रकारके जीव कैसे हैं ? **[देहादेहप्रवीचाराः]** एक तो जो देहसे संयुक्त हैं वे संसारी हैं । दूसरे जो देहरहित हैं वे मुक्त हैं ॥१०९॥

आगे पृथिवीकायादि पाँच स्थावरके भेद दिखाते हैं;—**[पृथिवी]** पृथिवीकाय **[च]** और **[उदकम्]** जलकाय **[अग्निः]** अग्निकाय **[वायुर्वनस्पतिः]** वायुकाय और वनस्पतिकाय **[कायाः]** ये पाँच स्थावरकायके भेद जानो **[ते]** वे **[जीवसंश्रिताः]** एकेन्द्रियजीवसे सहित हैं । **[बहुकाः अपि]**

---

१. परीक्षणीयाः २. देहस्य प्रवीचारो भोगस्तेन सहिताः देहसहिता इत्यर्थः ३. न देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा इति समासः ।

पुद्‌गल परिणामा बंधवशाज्जीवानुसंश्रिताः अवांतरजातिभेदाद्बहुका अपि स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमभाजां जीवानां बहिरङ्गस्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तिभूताः कर्मफलचेतनाप्रधानत्वान्मोहबहुलमेव स्पर्शोपलंभमुपपादयन्ति ॥११०॥

ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया ॥१११॥

त्रयः स्थावरतनुयोगादनिलानलकायिकश्च तेषु त्रसाः।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥१११॥

पृथिवीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयम् ॥१११॥

स्पर्शनेन्द्रियादिरहितमखण्डैकज्ञानप्रतिभासमयं यदात्मस्वरूपं तद्भावनारहितेनाल्पसुखार्थं स्पर्शनेन्द्रियविषयलांपट्यपरिणतेन जीवेन यदुपार्जितं स्पर्शनेन्द्रियजनकमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले स्पर्शनेन्द्रियक्षयोपशमं लब्ध्वा स्पर्शविषयज्ञानेन परिणमतीति सूत्राभिप्रायः ॥११०॥

अथ व्यवहारेणाग्निवातकायिकानां त्रसत्वं दर्शयति;—पृथिव्यवनस्पतयस्त्रयः स्थावरकाययोगात्संबंधात्स्थावरा भण्यंते अनलानिलकायिकाः तेषु पंचस्थावरेषु मध्ये चलनक्रियां दृष्ट्वा व्यवहारेण त्रसा भण्यंते यदि त्रसास्तर्हि किं मनो भविष्यति ? नैवं। **मणपरिणामविरहिदा** मनःपरिणामविहीनास्तथा चैकेन्द्रियाश्च ज्ञेयाः। के ? जीवा इति। तत्र स्थावरनामकर्मोदयाद्भिन्नमनंतज्ञानादिगुणसमूहादभिन्नत्वं यदात्मतत्वं तदनुभूतिरहितेन जीवेन यदुपार्जितं स्थावरनामकर्म तदुदयाधीनत्वात् यद्यप्यग्निवातकायिकानां व्यवहारेण चलनमस्ति तथापि निश्चयेन स्थावरा इति भावार्थः ॥१११॥

यद्यपि अनेक अनेक अवांतर भेदोंसे बहुत जात काय शरीर-भेदसे [खलु] निश्चयसे [तेषां] उन जीवोंको [मोहबहुलं] मोहगर्भित बहुत परद्रव्योंमें रागभाव उत्पन्न करते हैं [स्पर्शं] स्पर्शनेन्द्रियके विषयको [ददति] देते हैं। **भावार्थ**—ये पाँच प्रकार स्थावरकाय कर्मके सम्बन्धसे जीवोंके आश्रित हैं। इनमें गर्भित अनेक जातिभेद हैं। ये सब एक स्पर्शनेन्द्रिय युक्त मोहकर्मके उदयसे कर्मफल चेतनारूप सुखदुखरूप फलको भोगते हैं। एक कायके आधीन होकर जीव अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है ॥११०॥

आगे पृथिवीकायादि पाँच स्थावरोंको एकेंद्रियजातिका नियम करते हैं;—**[स्थावरतनुयोगात्]** स्थावरनाम कर्मके उदयसे **[त्रयः जीवाः]** पृथिवी, जल, वनस्पति ये तीन प्रकारके जीव **[एकेन्द्रियाः]** एकेन्द्रिय **[ज्ञेयाः]** जानो **[च]** और **[तेषु]** उन पाँच स्थावरोंमें **[अनिलानलकायिकाः]** वायुकाय और अग्निकाय यह दो प्रकारके जीव यद्यपि [त्रसाः] चलते हैं तथापि स्थावर नामकर्मके

---

१. सर्वेषां चेत् विवक्षा पृथक् पृथक् एव पृथिवीकायिकाः सप्तलक्षजातिका एवं अप् तेजः वायुरपि सप्तसप्तलक्षजातयः, वनस्पतीनां दशलक्षजातयः सन्ति। एवं पञ्चानां बहुका अवांतरभेदा ज्ञातव्याः।

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया ॥११२॥

एते जीवनिकायाः पञ्चविधाः पृथिवीकायिकाद्याः ।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया भणिताः ॥११२॥

पृथिवीकायिकादयो हि जीवाः स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नो इन्द्रियावरणोदये च सत्येकेन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११२॥

एकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वे दृष्टांतोपन्यासोऽयम्;—

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया ।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥११३॥

अंडेषु प्रवर्द्धमाना गर्भस्था मानुषाश्च मूर्च्छां गताः ।
यादृशास्तादृशा जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥११३॥

अंडांतर्लीनानां, गर्भस्थानां मूर्च्छितानां च बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनेऽपि येन

अथ पृथ्वीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वं नियमयति;—एते प्रत्यक्षीभूता जीवनिकायाः पंचविधाः पृथ्वीकायिकादयो जीवाः । ते कथंभूताः भणिताः ? मनःपरिणामविरहिताः न केवलं मनःपरिणामविरहिता एकेन्द्रियाश्च । कस्मिन् सतीत्थंभूताः भणिताः ? वीर्यांतरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सतीति । अथ सूत्रे विश्वोपाधिविमुक्तशुद्धसत्तामात्रदेशकेन निश्चयनयेन यद्यपि पृथ्व्यादिपंचभेदरहिता जीवास्तथापि व्यवहारनयेनाशुद्धमनोगतरागाद्यपध्यानसहितेन शुद्धमनोगतस्वसंवेदनज्ञानरहितेन यद्बद्धमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदये नामनसः एवेकेन्द्रियाश्च भवंतीत्यभिप्रायः ॥११२॥

उदयसे स्थावर एकेन्द्रिय ही कहे जाते हैं । ये एकेन्द्रिय कैसे हैं ? [**मनःपरिणामविरहिताः**] मनोयोगरहित हैं ॥१११॥

पदार्थ—[**एते**] ये [**पृथिवीकायिकाद्याः**] पृथिवीआदिक [**पञ्चविधाः**] पाँच प्रकारके [**जीवनिकायाः**] जीवोंके जो भेद हैं सो [**मनःपरिणामविरहिताः**] मनोयोगके विकल्पोंसे रहित [**एकेन्द्रिया जीवाः**] सिद्धांतमें एकेन्द्रिय जीव [**भणिताः**] कहे गये हैं । **भावार्थ**—पृथिवीकायादिक पाँच प्रकारके स्थावर जीव स्पर्शेन्द्रियावरणके क्षयोपशममात्रसे अन्य चार इन्द्रियोंके आवरणके उदयसे और मनआवरणके उदयसे एकेन्द्रिय जीव और अमनस्क मनरहित हैं ॥११२॥

प्रकारेण जीवत्वं निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामपि उभयेषामपि बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति ॥११३॥

द्वीन्द्रियप्रकारसूचनेयम्;—

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवाः ॥११४॥

शंबूकमातृवाहाः शङ्खाः शुक्तयोऽपादकाः च कृमयः।
जानन्ति रसं स्पर्शं ये ते द्वीन्द्रियाः जीवाः ॥११४॥

अथ पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वविषये दृष्टांतमाह;—अंडेषु प्रवर्तमानास्तिर्यंचो गर्भस्था मानुषा मूर्छागताश्च यादृशा ईहापूर्वव्यवहाररहिता भवन्ति तादृशा एकेन्द्रियजीवा ज्ञेया इति। तथाहि—यथाण्डजादीनां शरीरपुष्टिं दृष्ट्वा बहिरंगव्यापाराभावेपि चैतन्यास्तित्वं गम्यते म्लानतां दृष्ट्वा नास्तित्वं च ज्ञायते तथैकेन्द्रियाणामपि। अयमत्र भावार्थः—परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म बध्नाति तेनांडजादिसदृशमेकेन्द्रियजं दुःखितं चात्मानं करोतीति ॥११३॥

एवं पंचस्थावरव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतं। अथ द्वीन्द्रियभेदान्

आगे कोई ऐसा जाने कि एकेन्द्रिय जीवोंके चैतन्यताका अस्तित्व नहीं रहता होगा, उसको दृष्टांतपूर्वक चेतना दिखाते हैं;—[यादृशाः] जिसप्रकार [अंडेषु] पक्षियोंके अंडोंमें [प्रवर्द्धमानाः] बढ़ते हुये जीव हैं [तादृशाः] उसी प्रकार [एकेन्द्रियाः] एकेन्द्रिय जातिके [जीवाः] जीव [ज्ञेयाः] जानो। भावार्थ—जैसे अंडेमें जीव बढ़ता है परंतु ऊपरसे उसके उस्वासादिक या जीव मालूम नहीं होता उसीप्रकार एकेन्द्रिय जीव प्रगट नहीं जाना जाता, परंतु अन्तर गुप्त जानना चाहिये। जैसे—वनस्पति अपनी हरितादि अवस्थाओंसे जीवत्वभावका अनुमान जनाती है। वैसेही सब स्थावर अपने जीवनगुणगर्भित हैं। [च] तथा [यादृशाः] जैसे [गर्भस्थाः] गर्भमें रहते हुये जीव ऊपरसे मालूम नहीं होते। जैसे-जैसे गर्भ बढ़ता है वैसे-वैसे उसमें जीवका अनुमान किया जाता है। तथा [मूर्च्छां गताः] मूर्च्छाको प्राप्त हुये [मानुषाः] मनुष्य जैसे मृतकसदृश दीखते हैं परन्तु अंतरमें जीवगर्भित हैं। उसी प्रकार पाँच प्रकारके स्थावरोंमें भी ऊपरसे जीवकी चेष्टा मालूम नहीं होती, परंतु आगमसे तथा उन जीवोंकी प्रफुल्लादि अवस्थाओंसे चैतन्य मालूम होता है ॥११३॥

आगे द्वीन्द्रिय जीवोंके भेद दिखाते हैं,—[ये] जो [शंबूकमातृवाहाः] संबूक (क्षुद्रशंख) और

---

१. जीवत्वं निश्चीयते. २. एकेन्द्रियाणां अंडमध्यादिवर्तिपंचेन्द्रियाणाञ्च।

एते स्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसयोः परिच्छेत्तारो द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११४॥

त्रीन्द्रियप्रकारसूचनेयम्;—

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ॥११५॥

यूकाकुंभीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः कीटाः।
जानन्ति रसं स्पर्शं गंधं त्रीन्द्रियाः जीवाः ॥११५॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगंधानां परिच्छेत्तारस्त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११५॥

प्ररूपयति;—शंबूकमातृवाहा शंखशुक्तयपादगक्रमयः कर्तारः स्पर्शरसद्वयं जानंत्येते जीवा यतस्ततो द्वीन्द्रिया भवंतीति। तद्यथा। शुद्धनयेन द्वीन्द्रियस्वरूपात्पृथग्भूतं केवलज्ञानदर्शनद्वयादपृथग्भूतं यत् शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तद्भावनोत्थसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादरहितैः स्पर्शनरसनेन्द्रियादिविषयसुखरसास्वादसहितैर्जीवैर्यदुपार्जितं द्वीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले वीर्यांतरायस्पर्शरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्रार्थः ॥११४॥

अथ त्रीन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति;—यूकामत्कुणकुंभीपिपीलिकाः पर्णवृश्चिकाश्च गणकीटकादयः कर्तारः स्पर्शरसगंधत्रयं जानन्ति यतस्ततः कारणात् त्रीन्द्रिया भवंतीति। तथाहि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसानुभवच्युतैः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियादिविषयसुखमूर्च्छितैर्जीवैर्यद्बद्धं त्रीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयाधीनत्वेन वीर्यांतरायस्पर्शनरसन-

---

मातृवाह तथा [शङ्खाः शुक्तयः] संख सीपियाँ [च अपादकाः कृमयः] पांवरहित गिंडोला कृमि लट आदिक अनेक जातिके जीव हैं वे [रसं स्पर्शं] रस और स्पर्शमात्रको अर्थात् जीभसे स्वाद और स्पर्शेन्द्रियसे शीतोष्णादिकको [जानन्ति] जानते हैं, इस कारण [ते] वे [जीवाः] जीव [द्वीन्द्रियाः] दो इन्द्रिय संयुक्त जानो। **भावार्थ**—स्पर्शन रसना इन्द्रियोंके आवरणका जब क्षयोपशम हो और बाकी इन्द्रियों और मनआवरणके उदयसे स्पर्शन रसनाइन्द्रिय संयुक्त दो इन्द्रियोंके ज्ञानसे सुखदुःखके अनुभवी मनरहित द्वीन्द्रिय जानो ॥११४॥

अब त्रीन्द्रिय जीवके भेद दिखाते हैं;—[यूकाकुम्भीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः] जूं, कुम्भी, खटमल, चींटा, वृश्चिक आदिक जो [कीटाः] जीव हैं वे [रसं स्पर्शं] रस और स्पर्श तथा [गंधं] गंध इन तीन विषयोंको [जानन्ति] जानते हैं, इस कारण ये सब जीव [त्रींद्रियाः] सिद्धांतमें त्रीन्द्रिय कहे गये हैं। **भावार्थ**—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन, रसना, नासिका इन तीन

चतुरिन्द्रियप्रकारसूचनेयम्;—

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया ।
रूपं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ॥११६॥

उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः पतङ्गाद्याः ।
रूपं रसं च गंधं स्पर्शं पुनस्ते विजानन्ति ॥११६॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमात्, श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगंधवर्णानां परिच्छेत्तारश्चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११६॥

पञ्चेन्द्रियप्रकारसूचनेयम्;—

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू ।
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेन्दिया जीवा ॥११७॥

सुरनरनारकतिर्यञ्चो वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः ।
जलचरस्थलचरखचरा बलिनः पञ्चेन्द्रिया जीवाः ॥११७॥

अथ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् नोइन्द्रियावरणोदये

घ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावणोदये च सति त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्राभिप्रायः ॥११५॥

अथ चतुरिन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति;—उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमरपतंगाद्याः कर्तारः स्पर्शरसगंधवर्णान् जानन्ति यतस्ततः कारणाच्चतुरिन्द्रिया भवन्ति । तद्यथा—निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानभावनोत्पन्नसुखसुधारसपानविमुखैः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरादिविषयसुखानुभवाभिमुखैर्बहिरात्मभिर्यदुपार्जितं चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म तद्विपाकाधीना तथा वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीत्यभिप्रायः ॥११६॥

इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम हो और अन्य इन्द्रियोंके आवरणका उदय हो तब त्रीन्द्रिय जीव कहे जाते हैं ॥११५॥

आगे चौइन्द्रियके भेद कहते हैं—[उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः पतङ्गाद्याः] डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंग आदिक जीव [रूपं] रूप [रसं] स्वाद [गंधं] गंध [पुनः] और [स्पर्शं] स्पर्शको [विजानन्ति] जानते हैं इस कारण [ते] वे निश्चयसे चौइन्द्रिय जीव जानो। **भावार्थ**—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन, जीभ, नासिका, नेत्र इन चारों इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम एवं कर्णइन्द्रिय और मनके आवरणका उदय हो तब स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चार विषयोंके ज्ञाता चार इन्द्रियसहित कर्ण और मनसे रहित चौइन्द्रिय जीव होते हैं ॥११६॥

सति स्पर्शरसगंधवर्णशब्दानां परिच्छेत्तारः पञ्चेन्द्रिया अमनस्काः। केचित्तु नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमात् समनस्काश्च भवन्ति। तत्र देवमनुष्यनारकाः समनस्का एव, तिर्यञ्च उभयजातीया इति ॥११७॥

इन्द्रियभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबंधत्वेनोपसंहारोऽयम्;—

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥११८॥

देवाश्चतुर्निकायाः मनुजाः पुनः कर्मभोगभूमिजाः।
तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः नारकाः पृथिवीभेदगताः ॥११८॥

इति विकलेन्द्रियव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतं। पंचेन्द्रियभेदानावेदयति;—सुरनरनारकतिर्यंचः चत्वार. वर्णरसगंधस्पर्शशब्दज्ञाः यतः कारणात्ततः पंचेन्द्रियजीवा भवन्ति तेषु च मध्ये ये तिर्यंचस्ते केचन जलचरस्थलचरखचरा बलिनश्च भवन्ति। ते च के? जलचरमध्ये ग्राहसंज्ञाः स्थलचरेष्वष्टापदसंज्ञाः खचरेषु भेरुंडा इति। तद्यथा—निर्दोषिपरमात्मध्यानोत्पन्ननिर्विकारतात्त्विकानंदैकलक्षणसुखविपरीतं यदिन्द्रियसुखं तदासक्तैर्वहिर्मुखजीवैर्यदुपार्जितं पंचेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयं प्राप्य वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभान्नोइन्द्रियावरणोदये सति केचन शिक्षालापोपदेशनशक्तिविकलाः पंचेन्द्रिया असंज्ञिनो भवन्ति, केचन पुनर्नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमलाभात्संज्ञिनो भवन्ति तेषु च मध्ये नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिन एव, तिर्यंचः पंचेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनो भवन्ति, एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियपर्यंता असंज्ञिन एव। कश्चिदाह—क्षयोपशमविकल्परूपं हि मनो भण्यते तत्तेषामप्यस्तीति कथमसंज्ञिनः? परिहारमाह—यथा पिपीलिकाया गंधविषये जातिस्वभावेनैवाहारादिसंज्ञारूपं पटुत्वमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानविषये अन्येषामप्यसंज्ञिनां तथैव मनः पुनर्जगत्त्रयकालत्रयविषयव्याप्तिज्ञानरूपकेवलज्ञानप्रणीतपरमात्मादितत्त्वानां परोक्षपरिच्छित्तिरूपेण परिच्छेदकत्वात्केवलज्ञानसमानमिति भावार्थः ११७॥

तथैकेन्द्रियादिभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारः कथ्यते;—भवनवासिव्यंतर-

---

अब पंचेन्द्रिय जीवोंके भेद कहते हैं;—[सुरनरनारकतिर्यञ्चः] देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच गतिके जीव [पंचेन्द्रियाः] पंचेन्द्रिय [जीवाः] जीव हैं जो कि [जलचरस्थलचरखचराः] जलचर, भूमिचर व आकाशगामी हैं और [वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः] वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन पाँचों विषयोंके ज्ञाता हैं। तथा [बलिनः] अपनी क्षयोपशम शक्तिसे बलवान् हैं। **भावार्थ**—जब संसारी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम हो तब पांचों विषयके जाननेवाले होते हैं। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—एक संज्ञी, एक असंज्ञी। जिन पंचेन्द्रिय जीवोंके मनआवरणका उदय हो वे तो मनरहित असंज्ञी हैं। और जिनके मनआवरणका क्षयोपशम हो वे मनसहित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होते हैं। अर्थात् तिर्यञ्च गतिमें मनसहित और मनरहित भी होते हैं। इसप्रकार इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीवोंको जातिका भेद कहा ॥११७॥

अब इन्हीं पाँच जातिके जीवोंका चार गतिसंबंधसे संक्षेपमें कथन किया जाता है;—[देवाः]

देवगतिनाम्नो देवायुषश्चोदयाद्देवास्ते च भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकनिकायभेदाच्चतुर्धा। मनुष्यगतिनाम्नो, मनुष्यायुषश्च उदयान्मनुष्याः। ते कर्मभोगभूमिजभेदात् द्वेधा। तिर्यग्गतिनाम्नस्तिर्यगायुषश्च उदयात्तिर्यञ्चस्ते पृथिवीशम्बूकयूकोद्दंशजलचरोरगपक्षिपरिसर्पचतुष्पदादिभेदादनेकधा। नरकगतिनाम्नो, नरकायुषश्च उदयान्नारकाः। ते रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिजभेदात्सप्तधा। तत्र देवमनुष्यनारकाः पंचेन्द्रिया एव। तिर्यञ्चस्तु केचित्पंचेन्द्रियाः, केचिदेक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया अपीति ॥११८॥

गत्यायुर्नामोदयनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वोद्योतनमेतत्;—

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे ज ते वि खलु।
पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥११९॥

ज्योतिष्कवैमानिकभेदेन देवाश्चतुर्णिकायाः; भोगभूमिकर्मभूमिजभेदेन द्विविधा मनुष्याः पृथिव्याद्येकेन्द्रियभेदेन शम्बूकयूकोद्दंशकादिविकलेन्द्रियभेदेन जलचरस्थलचरखचरद्विपदचतुःपदादिपंचेन्द्रियभेदेन तिर्यंचो बहुप्रकाराः रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिभेदेन नारकाः सप्तविधा भवंतीति। अत्र चतुर्गतिविलक्षणा स्वात्मोपलब्धिलक्षणा। या तु सिद्धगतिस्तद्भावनारहितैर्जीवैः सिद्धसदृशनिजशुद्धात्मभावनारहितैर्वा यदुपार्जितं चतुर्गतिनामकर्म तदुदयवशेन देवादिगतिषूत्पद्यंत इति सूत्रार्थः ॥११८॥

अथ गतिनामायुःकर्मनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वं दर्शयति, अथवा ये केचन

देव देवगतिनामा कर्मके उदयसे जो देवशरीर पाते हैं सबसे उत्कृष्ट भोग भोगते हैं वे देव हैं सो [चतुर्निकायाः] चार प्रकारके हैं। एक भवनवासी, दूसरे व्यंतर, तीसरे ज्योतिषी, चौथे वैमानिक होते हैं। [पुनः] फिर [मनुजाः] मनुष्य [कर्मभोगभूमिजाः] एक कर्मभूमिमें उपजते हैं, दूसरे भोगभूमिमें उपजनेवाले, इस प्रकार दो तरहके मनुष्य होते हैं और [तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः] तिर्यञ्चगतिके जीव एकेन्द्रियसे लगाकर सैनी पंचेन्द्रियपर्यंत बहुत प्रकारके होते हैं। तथा [नारकाः पृथिवीभेदगताः] नारकी जीव जितने नरक—पृथिवीके भेद हैं उतने ही हैं। नरकको पृथिवी सात हैं सो सात प्रकारके ही नारकी जीव हैं। देव, नारकी, मनुष्य ये तीन प्रकारके जीव तो पंचेन्द्रिय ही हैं और तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रियादिक भेद हैं ॥११८॥

आगे गतिआयुनामकर्मके उदयसे ये देवादिक पर्याय होते हैं इस कारण इन पर्यायोंका

---

१. अणिमादिगुणैर्दीव्यन्ति क्रीडंतीति देवाः. २. मनसा निपुणा मनसा उत्कृष्टा वा मानुषा मनुष्या वा. ३. तिरोऽञ्चतीति तिर्यङ्। तिरस् शब्दस्य वक्रवाचिनः ग्रहणात् ४. नरान् प्राणिनः कायति कदर्थयतीति नारकं कर्म तदुदयात् जाताः नारकाः। अथवा नरान् अज्ञानिन कायति घातयति खंडीकरोतीति नरकं कर्म तदुदयाज्जाता नारकाः. ५. चतुर्गत्यादिभेदेषु।

क्षीणे पूर्वनिबद्धे गतिनाम्नि आयुषि च तेऽपि खलु ।
प्राप्नुवन्ति चान्यां गतिमायुष्कं स्वलेश्यावशात् ॥११९॥

क्षीयते हि क्रमेणारब्धफलो गतिनामविशेषायुर्विशेषश्च जीवानाम् । एवमपि तेषां गत्यंतरस्यायुरंतरस्य च कषायानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिलेश्या भवति बीजं ततस्तदुचितमेव । गत्यंतरमायुरंतरञ्च ते प्राप्नुवन्ति । एवं क्षीणाक्षीणाभ्यामपि पुनः पुनर्नवीभूताभ्यां गतिनामायुःकर्मभ्यामनात्मस्वभावभूताभ्यामपि चिरमनुगम्यमानाः संसरंत्यात्मानमचेतयमाना जीवा इति ॥११९॥

वदन्ति नान्यादृशं जगत्, देवो मृत्वा देव एव मनुष्या मृत्वा मनुष्या एवेति तन्निषेधार्थं;—क्रमेण दत्तफले क्षीणे सति । कस्मिन् ? पूर्वनिबद्धे पूर्वोपार्जिते गतिनामकर्मण्यायुषि च तेपि खलु ते जीवाः कर्तारः खलु स्फुटं प्राप्नुवन्ति । किम् ? अन्यदपूर्वं मनुष्यगत्यपेक्षया देवगत्यादिकं भवांतरे गतिनामायुष्कं च । कथंभूताः संतः ? स्वकीयलेश्यावशाः स्वकीयपरिणामाधीना इति । तद्यथा—"चंडो ण मुअइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो । दुट्ठो स ण एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स" इत्यादिरूपेण कृष्णादिषड्लेश्यालक्षणं गोमट्टशास्त्रादौ विस्तरेण भणितमास्ते तदत्र नोच्यते । कस्मात् ? अध्यात्मग्रंथत्वात् । तथा संक्षेपेणात्र कथ्यते । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभगतिनामकर्मण आयुःकर्मणश्च बीजं कारणं भवति तेन कारणेन तद्विनाशः कर्तव्यः । कथमितिचेत् ? क्रोधमानमायालोभरूपकषायोदयचतुष्कादि्भन्ने अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यचतुष्कादभिन्ने परमात्मनि यदा भावना क्रियते तदा कषायोदयविनाशो भवति तद्भावनार्थमेव शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारपरिहारे सति योगत्रयाभावश्चेति कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिरूपलेश्याविनाशस्तदभावे गतिनामायुष्कर्मणोरभावस्तयोरभावेऽक्षयानंतसुखादिगुणस्य मोक्षलाभ इति सूत्राभिप्रायः ॥११९॥

अनात्मस्वभाव दिखाते हैं;—[पूर्वनिबद्धे] पूर्वकालमें बांधा हुआ [गतिनाम्नि] गतिनामक कर्म [च] और [आयुषि] आयुनामक कर्मके [क्षीणे] अपना रस देकर खिर जानेपर [खलु ते अपि] निश्चयसे वे ही जीव [स्वलेश्यावशात्] अपनी कषायगर्भित योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याके प्रभावसे [अन्यां गतिं] अन्य गतिको [च] और [आयुष्कं] आयुको [प्राप्नुवन्ति] पाते हैं । भावार्थ—जीवोंके गति और आयु जो बंधती है सो कषाय और योगोंकी परिणतिसे बंधती है । यह शृंखलावत् नियम सदैव चला जाता है अर्थात् एक गति और आयु कर्म खिरता है और दूसरा गति और आयुकर्म बंधता है, इसीकारण संसारमार्ग कम नहीं होता । अज्ञानी जीव इसी प्रकार अनादि कालसे भ्रमण करते रहते हैं ॥११९॥

---

१. अविद्यमानात् आयुषः अन्यत् इति आयुरंतरं तस्य. २. कर्मभिः आत्मानं लिंपतीति लेश्या आत्मप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या इति. ३. कारणं ४. तेषां जीवानां लेश्याया वा उचितं योग्यम्. ५ प्राप्यमाणा. ।

उक्तजीवप्रपञ्चोपसंहारोऽयम्;—

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥१२०॥

एते जीवनिकाया देहप्रवीचारमाश्रिताः भणिताः ।
देहविहीनाः सिद्धाः भव्या संसारिणोऽभव्याश्च ॥१२०॥

एते ह्युक्तप्रकाराः सर्वे संसारिणो देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा भगवंतः सिद्धाः ? शुद्धा जीवाः । तत्र देहप्रवीचारत्वादेकप्रकारत्वेऽपि संसारिणो द्विप्रकाराः । भव्या अभव्याश्च । ते शुद्धस्वरूपोपलम्भशक्तिसद्भावासद्भावाभ्यां पाच्यापाच्यमुद्गवदभिधीयंत इति ॥१२०॥

अथ पूर्वोक्तजीवप्रपंचस्य संसारिमुक्तभेदेनोपसंहारव्याख्यानं करोति;—एते जीवनिकाया निश्चयेन शुद्धात्मस्वरूपाश्रिता अपि व्यवहारेण कर्मजनितदेहप्रवीचाराश्रिता भणिताः देहे प्रवीचारो वर्तना देहप्रवीचारः निश्चयेन केवलज्ञानदेहस्वरूपा अपि कर्मजनितदेहविहीना भवन्ति । ते के ? शुद्धात्मोपलब्धियुक्ताः सिद्धाः, संसारिणस्तु भव्या अभव्याश्चेति । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणव्यक्तिरूपा या शुद्धिस्तस्याः शक्तिर्भव्यत्वं भण्यते तद्विपरीतमभव्यत्वं । किंवत् ? पाच्यापाच्यमुद्गवत् सुवर्णेतरपाषाणवद्वा शुद्धिशक्तिर्यासौ सम्यक्त्वग्रहणकाले व्यक्तिमासादयति अशुद्धशक्तेर्यासौ व्यक्तिः सा चाशुद्धिरूपेण पूर्वमेव तिष्ठति तेन कारणेनानादिरित्यभिप्रायः ॥१२०॥

आगे फिर भी इनका विशेष दिखाते हैं;—[एते] पूर्वोक्त [जीवनिकायाः] चतुर्गतिसंबंधी जीव [देहप्रवीचारं] देहके पलटनभावको [आश्रिताः] प्राप्त हुए हैं ऐसा वीतराग भगवान्ने [भणिताः] कहा है। और जो [देहविहीनाः] देहरहित हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध जीव कहलाते हैं। तथा [संसारिणः] संसारी जीव हैं वे [भव्याः] मोक्ष अवस्था होने योग्य [च] और [अभव्याः] मुक्तभावकी प्राप्तिके अयोग्य हैं। भावार्थ—लोकमें जीव दो प्रकारके हैं। एक देहधारी और एक देहरहित। देहधारी तो संसारी हैं, देहरहित सिद्धपर्यायके अनुभवी हैं। संसारी जीवोंमें फिर दो भेद हैं। एक भव्य और दूसरे अभव्य। जो जीव शुद्धस्वरूपको प्राप्त होते हैं उनको भव्य कहते हैं, और जिनके शुद्धस्वभावके प्राप्त होनेकी शक्ति ही नहीं उनको अभव्य कहते हैं। जैसे एक मूंगका दाना तो ऐसा होता है कि वह सिजानेसे सीज जाता है कि अर्थात् पक जाता है और कोई कोई मूंग ऐसा होता है कि उसके नीचे कितनी ही लकड़ियाँ जलाओ वह सीजता ही नहीं, उसको कोरडू कहते हैं॥१२०॥

व्यवहारजीवत्वैकांतप्रतिपत्तिनिरासोऽयम्;—

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता ।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥१२१॥

न हीन्द्रियाणि जीवाः कायाः पुनः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः ।
यद्भवति तेषु ज्ञानं जीव इति च तत्प्ररूपयन्ति ॥१२१॥

य इमे एकेन्द्रियादयः पृथिवीकायिकादयश्चानादिजीवपुद्गलपरस्परावगाहमवलोक्य, व्यवहारनयेन जीवप्राधान्याज्जीवा इति प्रज्ञाप्यंते । निश्चयनयेन तेषु[1] स्पर्शनादीन्द्रियाणि, पृथिव्यादयश्च कायाः जीवलक्षणभूतचैतन्यस्वभावाभावान्न जीवा

एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं पंचेन्द्रियव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थलं गतं । अत्र पंचेन्द्रिया इत्युपलक्षणं तेन कारणेन गौणवृत्त्या "तिरिया बहुप्पयारा ।" इति पूर्वोक्तगाथाखंडनेकेन्द्रियादिव्याख्यानमपि ज्ञातव्यं । उपलक्षणविषये दृष्टांतमाह—काकेभ्यो रक्षतां सर्पिरित्युक्ते मार्जारादिभ्योपि रक्षणीयमिति । अथेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकायाश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति प्रज्ञापयति;—इन्द्रियाणि जीवा न भवन्ति । न केवलमिन्द्रियाणि । पृथिव्यादिकायाः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ता ये परमागमे तेपि । तर्हि किं जीवः यद्भवति तेषु मध्ये ज्ञानं जीव इति तत्प्ररूपयन्तीति । तद्यथा—अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण स्पर्शनादिद्रव्येन्द्रियाणि तथैवाशुद्धनिश्चयेन लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि यद्यपि

आगे सर्वथा प्रकार व्यवहारनयाश्रित ही जीवोंको नहीं कहा जाता, कथंचित् अन्य प्रकार भी हैं सो दिखाते हैं;—[इन्द्रियाणि] स्पर्शादि इन्द्रियाँ [जीवाः] जीवद्रव्य [न हि] निश्चय करके नहीं है। [पुनः] फिर [षट्प्रकाराः] छह प्रकार [कायाः] पृथिवी आदिक काय [प्रज्ञप्ताः] कहे हैं वे भी निश्चय करके जीव नहीं हैं। तव जीव कौन है ? [यत्] जो [तेषु] उन इन्द्रिय और शरीरोंमें [ज्ञानं] चैतन्यभाव [भवति] है [तत्] उसको ही [जीव इति] जीव नामका द्रव्य [प्ररूपयंति] महापुरुष कहते हैं। भावार्थ—जो एकेन्द्रियादिक और पृथिवीकायिकादिक व्यवहारनयकी अपेक्षा जीवके मुख्य कथनसे जीव कहे जाते हैं वे अनादि पुद्गल जीवके सम्बन्धसे पर्याय होते हैं। निश्चयनयसे विचारा जाय तो स्पर्शनादि इन्द्रिय, पृथिवीकायादिक काया चैतन्यलक्षणी जीवके स्वभावसे भिन्न हैं, जीव नहीं हैं। उनही पाँच इन्द्रिय षट्कायोंमें जो स्वपरका जानने वाला है अपने ज्ञान गुणसे यद्यपि गुणगुणीभेदसंयुक्त है तथापि कथंचित् अभेदसंयुक्त है। यह अविनाशी अचल निर्मल चैतन्यस्वरूप जीव पदार्थ जानो। अनादि अविद्यासे देहधारी होकर पंच इन्द्रिय विषयोंका भोक्ता है। मोही होकर मत्त पुरुषके समान परद्रव्यमें ममत्वभाव करता है, मोक्षके सुखसे पराङ्मुख है। ऐसे

---

१. संसारिजीवेषु ।

भवंतीति । तेष्ववर्पंतस्वपरपरिच्छित्तिरूपेण प्रकाशमानं ज्ञानं तदेव गुणगुणिनोः कथञ्चिदभेदाज्जीवत्वेन प्ररूप्यत इति ॥१२१॥

अन्यासाधारणजीवकार्यख्यापनमेतत्;—

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो ।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥१२२॥

जानाति पश्यति सर्वमिच्छति सौख्यं बिभेति दुःखात् ।
करोति हितमहितं वा भुङ्क्ते जीवः फलं तयोः ॥१२२॥

चैतन्यस्वभावत्वात्कर्तृस्थायाः क्रियायाः ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्त्ता न तत्संबन्धः पुद्गलो यथाकाशादि । सुखाभिलाषक्रियायाः दुःखोद्वेगक्रियायाः स्वसंवेदि-

---

जीवा भण्यंते तथैव व्यवहारेण पृथिव्यादिषट्कायाश्च तथापि शुद्धनिश्चयेन यदतीन्द्रियममूर्तं केवलज्ञानांतर्भूतमनंतसुखादिगुणकदंबकं स जीव इति सूत्रतात्पर्यम् ॥१२१॥

अथ ज्ञातृत्वादि कार्यं जीवस्य संभवतीति निश्चिनोति;—जानाति पश्यति । किं ? सर्वं वस्तुः इच्छति । किं ? सौख्यं विभेति । कस्मात् । दुःखात्, करोति । किं ? हितमहितं वा, भुंक्ते । स कः, कर्त्ता ? जीवः । किं ? फलं । कयोः ? तयोर्हिताहितयोरिति । तथाहि-पदार्थपरिच्छित्तिरूपायाः क्रियाया ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्त्ता न तत्संबंधः पुद्गलः कर्मनोकर्मरूपः सुखपरिणतिरूपायाः इच्छाक्रियायाः स एव दुःखपरिणतिरूपायाः भीतिक्रियायाः स एव च हिताहितपरिणतिरूपायाः कर्तृक्रिया-

---

संसारी जीव यदि स्वाभाविक भावसे विचार किया जाय तो निर्मल चैतन्यविलासी आत्माराम हैं ॥१२१॥

आगे अन्य अचेतनद्रव्योंमें न पायी जानेवाली कौन कौनसी करतूत है, ऐसा कथन करते हैं;—[जीवः] आत्मा [सर्वं] समस्त ही [जानाति] जानता है [पश्यति] सबको देखता है [सौख्यं] सुखको [इच्छति] चाहता है और [दुःखात्] दुःखसे [बिभेति] डरता है [हितं] शुभाचारको [वा] अथवा [अहितं] अशुभाचारको [करोति] करता है और [तयोः] उन शुभ-अशुभ क्रियाओंके [फलं] फलको [भुङ्क्ते] भोगता है । **भावार्थ**—ज्ञानदर्शनक्रियाका कर्त्ता जीव ही है, जीवका चैतन्यस्वभाव है, इस कारण यह ज्ञानदर्शनक्रियासे तन्मय है । उसही का संबंधी यह पुद्गल चैतन्य-क्रियाका कर्त्ता नहीं है । जैसे आकाशादि चार अचेतन द्रव्य भी कर्त्ता नहीं है । सुखकी अभिलाषा, दुःखसे डरना, शुभाशुभ प्रवर्तन इत्यादि क्रियाओंमें संकल्पविकल्पका कर्त्ता जीव ही है । इष्ट, अनिष्ट पदार्थोंको

---

१. इन्द्रियकायेषु. २. कथं भूतायाः क्रियायाः कर्तृस्थायाः । कर्तरि तिष्ठति इति कर्तृस्था तस्याः कर्तृस्थायाः. ३. अनादिकर्मबंधत्वात् तत्संबंधः जीवसंबंधः पुद्गलः कथ्यते । स पुद्गलो ज्ञप्तिक्रियायाश्च कर्त्ता दृशिक्रियायाश्च नेति तात्पर्यम् ।

तद्धिताहितनिर्वर्तनक्रियायाश्च चैतन्यविवर्तनरूपसंङ्कल्पप्रभवत्वात्स[1] एव कर्त्ता नान्यः। शुभाशुभकर्मफलभूताया इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियायाश्च सुखदुःखस्वरूपस्वपरिणामक्रियाया इव स एव कर्त्ता नान्यः। एतेनासाधारणकार्यानुमेयत्वं पुद्गलव्यतिरिक्तस्यात्मनो द्योतितमिति ॥१२२॥

जीवाजीवव्याख्योपसंहारोपक्षेपसूचनेयम्;—

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं।
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥१२३॥

एवमभिगम्य जीवमन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः।
अभिगच्छत्वजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैः ॥१२३॥

एवमनया दिशा व्यवहारनयेन कर्मग्रंथप्रतिपादितजीवगुणमार्गणास्थानादिप्रपञ्चितविचित्रविकल्परूपैः, निश्चयनयेन मोहरागद्वेषपरिणतिसंपादितविश्वरूपत्वा-

---

याश्च स एव सुखदुःखफलानुभवनरूपाया भोक्तृक्रियायाश्च स एव कर्त्ता भवतीत्यसाधारणकार्येण जीवास्तित्वं ज्ञातव्यं। तच्च कर्तृत्वमशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण त्रिधा भिद्यते, अथवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकर्तृत्वं तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिविकल्परूपभावकर्मकर्तृत्वं शुद्धनिश्चयेन तु केवलज्ञानादिशुद्धभावानां परिणमनरूपं कर्तृत्वं नयत्रयेण भोक्तृत्वमपि तथैवेति सूत्रतात्पर्यं॥ तथा चोक्तं। "पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो। चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं" ॥१२२॥

एवं भेदभावनामुख्यत्वेन प्रथमगाथा जीवस्यासाधारणकार्यकथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पंचमस्थलं गतं। अथ गाथापूर्वार्धेन जीवाधिकारव्याख्यानोपसंहारमुत्तरार्धेन चाजीवाधिकारप्रारंभं करोति;—एवमभिगम्य ज्ञात्वा। कं। जीवं अन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः पश्चादभिगच्छतु

भोगक्रियाका, अपने सुखदुःखरूप परिणामक्रियाका कर्त्ता एक जीव पदार्थको ही जानो। इनका कर्त्ता और कोई नहीं है। ये जो क्रियायें कही हैं वे सब शुद्ध-अशुद्ध चैतन्यभावमयी हैं, इस कारण ये क्रियायें पुद्गलकी नहीं हैं, आत्माकी ही हैं ॥१२२॥

आगे जीव-अजीवका व्याख्यान संक्षेपसे दिखाते हैं—[एवं] इसप्रकार [अन्यैः अपि] अन्य भी [बहुकैः पर्यायैः] अनेक पर्यायोंसे [जीवं] आत्माको [अभिगम्य] जानकर [ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैः] ज्ञानसे भिन्न स्पर्शरसगंधवर्णादिचिह्नोंसे [अजीवं] पुद्गलादिक पाँच अजीव द्रव्योंको [अभिगच्छतु] जानो। **भावार्थ**—जैसे पूर्वमें जीवकी करतूतें दिखाई, वैसे ही व्यवहारनयसे कर्मपद्धतिके विचारमें जीवसमास, गुणस्थान, मार्गणास्थान इत्यादि अनेकप्रकार पर्यायविलासकी विचित्रतामें जीवपदार्थ जानना

---

१. पर्यायरूपः. २. जीवः. ३. ज्ञप्तेर्दृशेश्च क्रियायाः कर्त्ता न स्यादित्यनेन. ४. गोम्मटसारादिकर्मग्रन्थाः संप्रति विद्यंत एव वा अन्या अपि कर्मपद्धतयः संत्येव तैः प्रतिपादितः।

र्कदाचिदशुद्धैः कदाचित्तदभावाच्छुद्धैश्चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूपैर्बहुभिः पर्य्यायैः जीवमधिगच्छेत् । अधिगम्य चैवमचैतन्यस्वभावत्वात् ज्ञानादर्थांतरभूतैरितः प्रपञ्चमानैर्लिङ्गैर्जीवसंबद्धमसंबद्धं वा स्वतो भेदबुद्धिप्रसिद्धयर्थमजीवमधिगच्छेदिति ॥१२३॥ इति जीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथाजीवपदार्थव्याख्यानम् । आकाशादीनामेवाजीवत्वे हेतूपन्यासोऽयम्;—

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥१२४॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणाः ।
तेषामचेतनत्वं भणितं जीवस्य चेतनता ॥१२४॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु चैतन्यविशेषरूपा जीवगुणा नो विद्यंते ।

जानातु । कं ? अजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैरिति । तद्यथा—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवदार्थमधिगम्य । कैः ? पर्यायैः । कथंभूतैः ? पूर्वोक्तैः, न केवलं पूर्वोक्तैः व्यवहारेण गुणस्थानमार्गणास्थानभेदगतनामकर्मोदयादिजनितस्वकीयस्वकीयमनुष्यादिशरीरसंस्थानसंहननप्रभृतिबहिरंगाकारैर्निश्चयेनाभ्यंतरैः रागद्वेषमोहरूपैरशुद्धैस्तथैव च नोरागनिर्विकल्पचिदानंदैकस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसंजातपरमानंदसुस्थितसुखामृतरसानुभवसमरसीभावपरिणतमनोरूपैः शुद्धैश्चान्यैरपि । पश्चात् । किं करोतु ? जानातु । कं ? अजीवं पदार्थं । कैः ? लिंगैः चिह्नैः । किंविशिष्टैरग्रे वक्ष्यमाणैर्ज्ञानांतरितत्वात् जडैश्चेति सूत्राभिप्रायः ॥१२३॥

एवं जीवपदार्थव्याख्यानोपसंहारः तथैवाजीवव्याख्यानप्रारंभ इत्येकसूत्रेण षष्ठस्थलं गतं । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "जोवाजीवा भावा" इत्यादि नवपदार्थानां नामकथनरूपेण स्वतन्त्रगाथा-

---

चाहिये । और अशुद्ध निश्चयनयसे कदाचित् मोहरागद्वेषपरिणतिसे उत्पन्न अनेक प्रकार अशुद्ध पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है । और कदाचित् मोहजनित अशुद्ध परिणतिके विनाश होनेसे शुद्ध चेतनामयी अनेक पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है । इत्यादि अनेक भगवत्प्रणीत आगमके अनुसार नयविलासोंसे जीव पदार्थको जाने और अजीव पदार्थका स्वरूप जाने सो अजीवद्रव्य जड़स्वभावोंके द्वारा जाने जाते हैं । अर्थात् ज्ञानसे भिन्न अन्य स्पर्शरसगंधवर्णादिक चिह्नोंसे जीवसे बंधे हुये कर्म नोकर्मादिरूप तथा नहीं बँधे हुए परमाणु आदिक सबही अजीव हैं । जीव अजीव पदार्थोंके लक्षणका जो भेद किया जाता है सो एकमात्र भेदविज्ञानकी सिद्धिके निमित्त है । इस प्रकार यह जीवपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥१२३॥

आगे अजीव पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु] आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इन पाँचों द्रव्योंमें [जीवगुणाः] सुखसत्ता बोध

---

१. तेषां रागद्वेषमोहादीनामभावात्. २. इतः परं कथ्यमानैः ।

आकाशादीनां तेषामचेतनत्वसामान्यत्वात् । अचेतनत्वसामान्यञ्चाकाशादीनामेव । चेतनता जीवस्यैव । चेतनत्वसामान्यादिति ॥१२४॥

आकाशादीनामचेतनत्वसामान्ये पुनरनुमानमेतत्;—

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥१२५॥

सुखदुःखज्ञानं वा हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वं ।
यस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा विदंत्यजीवं ॥१२५॥

सूत्रमेकं, तदनंतरं जीवादिपदार्थव्याख्यानेन षट्स्थले पंचदशसूत्राणीति समुदायेन षोडशगाथाभिर्नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये "द्वितीयांतराधिकारः" समाप्तः। अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितः केवलज्ञानाद्यनंतगुणस्वरूपो जीवादिनवपदार्थांतर्गतो भूतार्थपरमार्थरूपः शुद्धसमयसाराभिधान उपादेयभूतो योऽसौ शुद्धजीवपदार्थस्तस्मात्सकाशाद्विलक्षणस्वरूपस्याजीवपदार्थस्य गाथाचतुष्टयेन व्याख्यानं क्रियते। तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये अजीवत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयासकाल" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं भेदभावनार्थं देहगतशुद्धजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन "अरसमरूवं" इत्यादि सूत्रमेकं, एवं गाथाचतुष्टपर्यंतं स्थलद्वयेनाजीवाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा। अथाकाशादीनामजीवत्वे कारणं प्रतिपादयति;—आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेष्वनंतज्ञानदर्शनादयो जीवगुणाः सन्ति न ततः कारणात्तेषामचेतनत्वं भणितं। कस्मात् तेषां जीवगुणा न संतीतिचेत्। युगपज्जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थपरिच्छेदकत्वेन जीवस्यैव चेतकत्वादिति सूत्राभिप्रायः ॥१२४॥

अथाकाशादीनामेवाचेतनत्वे साध्ये पुनरपि कारणं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—सुखदुःखज्ञातृता वा हितपरिकर्म च तथैवाहितभीरुत्वं यस्य पदार्थस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा ब्रुवंत्यजीवमिति। तदेव कथ्यते। अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिता चंदनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहिविषकंटकादि। संज्ञानिनां पुनरक्षायानंतसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं

चैतन्यादि जीवके गुण [न] नहीं [सन्ति] हैं, [तेषां] उन आकाशादि पंचद्रव्योंके [अचेतनत्वं] चेतनारहित जड़भाव [भणितं] वीतराग भगवानने कहा है [चेतनता] चेतन्यभाव [जीवस्य] जीवद्रव्यके ही कहा गया है। **भावार्थ**—आकाशादि पाँच द्रव्य अचेतन जानो, क्योंकि उनमें एक जड़ ही धर्म है। जीवद्रव्यमात्र एक चेतन है ॥१२४॥

आगे आकाशादिकमें निश्चयसे चैतन्य है ही नहीं, ऐसा अनुमान दिखाते हैं;—[यस्य] जिस द्रव्यके [सुखदःखज्ञानं] सुखदुःखको जानना [वा] अथवा [हितपरिकर्म] उत्तम कार्योंमें प्रवृत्ति [च] और [अहितभीरुत्वं] दुखदायक कार्यसे भय [न विद्यते] नहीं है [श्रमणाः] गणधरादिक [तं नित्यं] सदैव उस द्रव्यको [अजीवं] अजीव ऐसा नाम [विदंति] जानते हैं। **भावार्थ**—जिन द्रव्योंसे सुख-

सुखदुःखज्ञानस्य हितपरिकर्मणोऽहितभीरुत्वस्य चेति, चैतन्यविशेषाणां नित्यमनुपलब्धेरविद्यमानचैतन्यसामान्या एवाकाशादयोऽजीवा इति ॥१२५॥

जीवपुद्गलयोः संयोगेऽपि भेदनिबंधनस्वरूपाख्यानमेतत्,—

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥१२६॥
अरसमरूबमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥१२७॥

संस्थानानि संघाताः वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च ।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणाः पर्यायाश्च बहवः ॥१२६॥
अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दं ।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥१२७॥

परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमात्मद्रव्यं च एवं हिताहितादिपरीक्षारूपचैतन्यविशेषाणामभावादचेतना आकाशादयः पंचेति भावार्थः ॥१२५॥

अथ संस्थानादिपुद्गलपर्याया जीवेन सह क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठंत्यपि निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति भेदज्ञानं दर्शयति;—समचतुरस्रादिषट्संस्थानानि औदारिकादिशरीरसंबंधिनः पंचसंघाताः वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च संस्थानादि पुद्गलविकाररहितात्केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहितात्परमात्मपदार्थान्निश्चयेन भिन्नत्वादेते सर्वे च पुद्गलद्रव्यप्रभवाः। एतेषु मध्ये के गुणाः के पर्याया इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरमाह—वर्णरसस्पर्शगंधगुणा भवन्ति संस्थानादयस्तु पर्यायास्ते च प्रत्येकं बहव इति सूत्राभिप्रायः ॥१२६॥

एवं पुद्गलादिपंचद्रव्याणामजीवत्वकथनमुख्यतया गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतं। अथ यदि संस्थानादयो जीवस्वरूपं न भवन्ति तर्हि किं जीवस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह;—अरसं रसगुण-

---

दुःखका जानना नहीं है और जिन द्रव्योंमें इष्ट-अनिष्ट कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, उन द्रव्योंके विषयमें ऐसा अनुमान होता है कि वे चेतना गुणसे रहित हैं सो वे आकाशादिक हो पांच द्रव्य हैं ॥१२५॥

आगे यद्यपि जीवपुद्गलका संयोग है तथापि आपसमें लक्षणभेद है ऐसा भेद दिखाते हैं; [संस्थानानि] जीव पुद्गलके संयोगमें जो समचतुरस्रादि षट् संस्थान हैं और [संघाताः] वज्रवृषभनाराच आदि संहनन हैं [च] और [वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाः] वर्ण ५, रस ५, स्पर्श ८, गंध २ और शब्दादि [पुद्गलद्रव्यप्रभवाः] पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न [बहवः] बहुत जातिके [गुणाः] सहभू वर्णादि गुण [च] और [पर्य्यायाः] संस्थानादि पर्याय [भवन्ति] होते हैं। और [जीवं] जीवद्रव्यको [अरसं]

यत्खलु शरीरशरीरिसंयोगेन स्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वाच्छब्दत्वसंस्थानसङ्घातादिपर्यायपरिणतत्वाच्च, इन्द्रियग्रहणयोग्यं तत्पुद्गलद्रव्यम् । यत्पुनरस्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वादशब्दत्वादनिर्दिष्टसंस्थानत्वादव्यक्तत्वादिपर्यायैः परिणतत्वाच्च नेन्द्रियग्रहणयोग्यम्, तच्चेतनागुणत्वात् रूपिभ्योऽरूपिभ्यश्चाजीवेभ्यो विशिष्टं जीवद्रव्यम् । एव-

सहितपुद्गलद्रव्यरूपो न भवति रसगुणमात्रो वा न भवति रसग्राहकपौद्गलिकजिह्वाभिधानद्रव्येन्द्रियरूपो न भवति तेनैव जिह्वाद्रव्येन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति निश्चयेन येन स्वयं द्रव्येन्द्रियेन रसग्राहको न भवतीति । निश्चयेन यः ग्राहको न भवतीति सर्वत्र संबंधनीयः । तथा रसास्वादपरिच्छेदकं क्षायोपशमिकं यद्भावेन्द्रियं तद्रूपो न भवति तेनैव भावेन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति पुनस्तेनैव भावेन्द्रियेण रसपरिच्छेदको न भवति । तथैव सकलग्राहकाखंडैकप्रतिभासमयं यत्केवलज्ञानं तद्रूपत्वात् पूर्वोक्तं रसास्वादकं यद्भावेन्द्रियं तस्मात्कारणभूतादुत्पन्नं यत्कार्यभूतं रसपरिच्छित्तिमात्रं खंडज्ञानं तद्रूपो न भवति तथैव च रसं जानाति रसरूपेण तन्मयो न भवतीत्यरसः । अनेन प्रकारेण यथासंभवं रूपगंधशब्दविषयेषु तथाचाध्याहारं कृत्वा स्पर्शविषये च योजनीयं अव्वत्तं यथा क्रोधादिकषायचक्रं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमनसां निर्मलस्वरूपोपलब्धिरहितानां व्यक्तिमायाति तथा परमात्मा नायातीत्यव्यक्तः । असंठाणं वृत्तचतुरस्रादिसकलसंस्थानरहिताखण्डैकप्रतिभासमयपरमात्मरूपत्वात् पौद्गलिककर्मोदयजनितसमचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितत्वादसंस्थानं अलिंगग्गहणं यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्षज्ञानेन व्यवहारनयेन धूमादग्निवदशुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानसमुत्पन्नपरमानंदरूपानाकुलत्वसुस्थितवास्तवसुखामृतजलेन पूर्णकलशवत्सर्वप्रदेशेषु भरितावस्थानां परमयोगिनां यथा

रसगुणरहित, [अरूपं] वर्णरहित [अगंधं] गंध रहित [अव्यक्तं] अप्रगट [चेतनागुण] ज्ञानदर्शन गुणवाला [अशब्दं] शब्दपर्याय रहित [अलिंगग्रहणं] इन्द्रियादि चिह्नोंसे ग्रहण करनेमें नहीं आवे ऐसा [अनिर्दिष्टसंस्थानं] निराकार [जानीहि] जानो । **भावार्थ**—अनादि मिथ्या वासनासे यह आत्मद्रव्य पुद्गलके संबंधसे विभावके कारण औरका और प्रतिभासा है, उस चित् और जड़ग्रन्थिके भेद दिखानेके लिये वीतराग सर्वज्ञने पुद्गल जीवका लक्षणभेद कहा है । उस भेदको जो जीव जान करके भेदविज्ञानी अनुभवी होते हैं वे मोक्षमार्गको साधकर निराकुल सुखके भोक्ता होते हैं, इस कारण जीवपुद्गलका लक्षणभेद दिखाया जाता है कि जो आत्मशरीर इन दोनोंके सम्बन्ध स्पर्श रस गंध वर्ण गुणात्मक हैं, शब्द संस्थान संहननादि मूर्त्तपर्यायरूपसे परिणत हैं और इन्द्रियग्रहण योग्य हैं सो सब पुद्गलद्रव्य हैं । और जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण गुण नहीं, शब्दसे अतीत आकार-

१. शीर्यतेऽनेनात्मा तत् शरीरम् शरीरसंयोगे समचतुरस्रादिषु स्थानपर्य्यायपरिणतत्वात्. २. वज्रऋषभसंहननादिपर्य्यायपरिणतं तदपि पुद्गलमेव । अतएवइन्द्रियपरिणतं तदपि पुद्गलमेव । अतएव इन्द्रियग्रहणयोग्यम्. ३. आकाररहितत्वात्, अतएव आत्मनि आकारो वर्ण्यते. ४. ज्ञानस्य अगुरुलघुकं. पर्यायैः परिणतत्वात्. ५. पुद्गलेभ्यः ६. धर्मादिभ्यः ।

मिह जीवाजीवयोर्द्वयोर्वास्तवो भेदः सम्यग्ज्ञानानां मार्गप्रसिद्धयर्थं प्रतिपादित इति ॥१२६॥१२७॥ इति अजीवपदार्थव्याख्यानं पूर्णम् ।

उक्तौ मूलपदार्थौ । अथ संयोगपरिणामनिमित्तेतरसप्तपदार्थानामुपोद्घातार्थं[2] जीवपुद्गलकर्मचक्रमनुवर्ण्यते;—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा ॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१३०॥

यः खलु संसारस्थो जीवस्ततस्तु भवति परिणामः ।
परिणामात्कर्म कर्मणो भवंति गतिषु गतिः ॥१२८॥
गतिमधिगतस्य देहो देहादिन्द्रियाणि जायंते ।
तैस्तु विषयग्रहणं ततो रागो वा द्वेषो वा ॥१२९॥
जायते जीवस्यैवं भावः संसारचक्रवाले ।
इति जिणवरैर्भणितोऽनादिनिधनः सनिधनो वा ॥१३०॥

शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवतीत्यलिंगग्रहणः, चेदणागुणं "यत्सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान् पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा। जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः" इति वृत्तकथितलक्षणेन केवलज्ञान संज्ञेन शुद्धचेतनागुणेन युक्तत्वाच्चेतनागुणश्च यः जाण जीवं हे शिष्य तमेवं गुणविशिष्टं शुद्धजीवपदार्थं जानीहीति भावार्थः ॥१२७॥

एवं भेदभावनार्थसर्वप्रकारोपादेयशुद्धजीवकथनरूपेणैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं । इति गाथा चतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये तृतीयांतराधिकारः समाप्तः । अथ

रहित हैं, अंतर्गुप्त अतीन्द्रिय जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं, चेतनागुणमयी, मूर्त्तीक अजीव पदार्थोंसे भिन्न अमूर्त्त वस्तु मात्र है वह ही जीव पदार्थ जानो। इस प्रकार जीव-अजीव पदार्थोंमें लक्षणभेद है ॥१२६-१२७॥

आगे इनही जीवअजीव पदार्थोंके संयोगसे उत्पन्न जो सप्त पदार्थ हैं उनके कथननिमित्त परिभ्रमणरूप कर्मचक्रका स्वरूप कहा जाता है। [यः] जो [खलु] निश्चयसे [संसारस्थः] संसारमें

---

१. वस्तुसंबंधी भेदः. २. उदाहरणार्थम् ।

इह हि संसारिणो जीवादनादिबंधनोपाधिवशेन स्निग्धः परिणामो भवति । परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म । कर्मणो नारकादि गतिषु गतिः । गत्यधिगमनाद्देहः । देहादिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यो विषयग्रहणं । विषयग्रहणाद्रागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनः स्निग्धः परिणामः । परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म । कर्मणः पुनर्नारकादिगतिषु गतिः । गत्यधिगमनात्पुनर्देहः । देहात्पुनरिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यः पुनर्विषयग्रहणं । विषयग्रहणात्पुनारागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनरपि स्निग्धः परिणामः । एवमिदमन्योन्यकार्य्यकारणभूतजीवपुद्गलपरिणामात्मकं कर्मजालं संसार-

---

द्रव्यस्य सर्वथा तन्मयपरिणामित्वे सति एक एव पदार्थो जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिरूपः, अथवा सर्वप्रकारेणापरिणामित्वे सति द्वावेव पदार्थौ जीवपुद्गलौ शुद्धौ । न च पुण्यपापादिघटनात्ततश्च किंदूषणं बंधमोक्षाभावः तद्दूषणनिराकरणार्थमेकांतेन परिणामित्वापरिणामित्वयोर्निषिद्धः तस्मिन्निषेधे सति कथंचित्परिणामित्वमिति ततश्च सप्तपदार्थानां घटना भवतीति । अत्राह शिष्यः । यद्यपि कथंचित्परिणामित्वे सति पुण्यादिसप्तपदार्था घटंते तथापि तैः प्रयोजनं जीवाजीवाभ्यामेव पूर्यंते यतस्तेपि तयोरेव पर्याया इति । परिहारमाह । भव्यानां हेयोपादेयतत्त्वदर्शनार्थं तेषां कथनं । तदेव कथ्यते । दुःखं हेयतत्त्वं तस्य कारणं संसारः संसारकारणमास्रवबंधपदार्थौ तयोश्च कारणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति, सुखमुपादेयतत्त्वं तस्य कारणं मोक्षः मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जरापदार्थद्वयं तयोश्च कारणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति । एवं पूर्वोक्तं जीवाजीवपदार्थद्वयं वक्ष्यमाणं पुण्यादिसप्तपदार्थसप्तकं चेत्युभयसमुदायेन नवपदार्था युज्यंते इति नवपदार्थस्थापनप्रकरणं गतं । इत ऊर्ध्वं य एव पूर्वं कथंचित्परिणामित्वबलेन जीवपुद्गलयोः संयोगपरिणामः स्थापितः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिसप्तपदार्थानां कारणं बीजं ज्ञातव्यमिति चतुर्थांतराधिकारे पातनिका;–यः खलु संसारस्थो जीवः ततः परिणामो भवति परिणामादभिनवं कर्म भवति कर्मणः सकाशाद्गतिषु गतिर्भवति इति प्रथमगाथा । गतिमधिगतस्य देहो भवति देहादिन्द्रियाणि जायंते तेभ्यो विषयग्रहणं भवतीति ततो राग-

---

रहनेवाला [जीवः] अशुद्ध आत्मा है । [ततः तु] उससे तो [परिणामः] अशुद्धभाव और [परिणामात्] उस रागद्वेषमोहजनित अशुद्धपरिणामोंसे [कर्म] आठ प्रकारका कर्म [भवति] होता है । [कर्मणः] उस पुद्गलमयी कर्मसे [गतिषु] चार गतियोंमें [गतिः] नारकादि गतियोंमें जाना [भवति] होता है । [गतिं] गतिको [अधिगतस्य] प्राप्त होनेवाले जीवके [देहः] शरीर और [देहात्] शरीरसे [इन्द्रियाणि] इन्द्रियाँ [जायंते] होती हैं [तु] और [तैः] उन इन्द्रियोंसे [विषयग्रहणं] स्पर्शनादि पाँच प्रकारके विषयोंका राग बुद्धिसे ग्रहण [वा] अथवा [ततः] उस इष्ट-अनिष्ट पदार्थसे [रागः] राग [वा] अथवा [द्वेषः] द्वेषभाव उपजता है। फिर उनसे पूर्वक्रमानुसार कर्मादिक उपजते हैं । यही परिपाटी जबतक काललब्धि नहीं होती तबतक इसीप्रकार चली जाती है [संसारचक्रवाले] संसाररूपी चक्रके परिभ्रमणमें [जीवस्य] राग द्वेषभावोंसे मलिन आत्माके

चक्रजीवस्यानाद्यनिधनं अनादिसनिधनं वा चक्रवत्परिवर्तते । तदत्र पुद्गलपरिणामनिमित्तो जीवपरिणामो जीवपरिणामनिमित्तः पुद्गलपरिणामश्च वक्ष्यमाणपदार्थबीजत्वेन संप्रधारणीय इति ॥१२८।१२९।१३०॥

द्वेषौ चेति द्वितीयगाथा । जायते जीवस्यैवं भ्रमः परिभ्रमणं । क्व । संसारचक्रवाले । स च किंविशिष्टः । जिनवरैर्भणितः । पुनरपि किं विशिष्टः ? अभव्यभव्यजीवापेक्षयानादिनिधनसनिधनश्चेति तृतीयगाथा तद्यथा—यद्यपि शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावोऽयं जीवस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशादात्मसंवित्तिलक्षणमशुद्धपरिणामं करोति, ततः परिणामात्कर्मातीतानंतज्ञानादिगुणात्मस्वभावप्रच्छादकं पौद्गलिकं ज्ञानावरणादिकर्म बध्नाति । कर्मोदयादात्मोपलब्धिलक्षणपंचमगतिसुखविलक्षणासु सुरनरनारकादिचतुर्गतिषु गमनं भवति । ततश्च शरीररहितचिदानंदैकस्वभावात्मविपरीतो देहो भवति । ततोऽतीन्द्रियामूर्तपरमात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतानीन्द्रियाणि समुत्पद्यंते । तेभ्योपि निर्विषयशुद्धात्मध्यानोत्थवीतरागपरमानंदैकस्वरूपसुखविपरीतं पंचेन्द्रियविषयसुखपरिणमनं भवति । ततो रागादिदोषरहितानंतज्ञानादिगुणास्पदात्मतत्त्वविलक्षणौ रागद्वेषौ समुत्पद्येते । रागद्वेषपरिणामात्करणभूतात्पूर्ववत् पुनरपि कार्यभूतं कर्म भवतीति रागादिपरिणामानां कर्मणश्च योऽसौ परस्परं कार्यकारणभावः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिपदार्थानां कारणमिति ज्ञात्वा पूर्वोक्तसंसारचक्रविनाशार्थमव्याबाधानंतसुखादिगुणानां चक्रभूते समूहरूपे निजात्मस्वरूपे रागादिविकल्पपरिहारेण भावना कर्तव्येति । किंच कथंचित्परिणामित्वे सत्यज्ञानी जीवो निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति पापपदार्थस्यास्रवबंधपदार्थयोश्च कर्ता भवति । कदाचिन्मंदमिथ्यात्वोदयेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति । यस्तु ज्ञानी जीवः स निर्विकारात्मतत्त्वविषये या रुचिस्तथा परिच्छित्तिर्निश्चलानुभूतिरित्यभेदरत्नत्रयपरिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां कर्ता भवति । यदा पुनः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रये स्थातुं न शक्नोति तदा निर्दोषिपरमात्मस्वरूपार्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च निर्भरासाधारणभक्तिरूपं संसारविच्छित्तिकारणं परंपरया मुक्तिकारणं च तीर्थकरप्रकृत्यादिपुण्यानुबंधिविशिष्टपुण्यरूपमनीहितवृत्या निदानरहितपरिणामेन पुण्यपदार्थं च करोती-

---

[एवं भावः] इसी प्रकारका अशुद्धभाव [जायते] उपजता है [स भावः] वह अशुद्धभाव [अनादिनिधनः] अभव्य जीवकी अपेक्षा अनादि-अनंत है [वा] अथवा [सनिधनः] भव्य जीवकी अपेक्षा अंत सहित है । [इति] इस प्रकार [जिनवरैः] जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा [भणितः] कहा गया है । भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादि बंधपर्यायके वशसे सरागपरिणाम होते हैं । उनके निमित्तसे द्रव्यकर्मकी उत्पत्ति है । उससे चतुर्गतिमें गमन होता है । चतुर्गतिगमनसे देह, देहसे इन्द्रियां, इन्द्रियोंसे इष्टानिष्ट पदार्थोंका ज्ञान होता है । उससे रागद्वेषबुद्धि और उससे स्निग्धपरिणाम होते हैं । उनसे फिर कर्मादिक होते हैं ।इसीप्रकार परस्पर कार्यकारणरूप जीव पुद्गल परिणाममयी कर्मसमूहरूप संसारचक्रमें जीवके अनादिअनंत अनादिसांत कुम्हारके चाकके समान परिभ्रमण होता है । इससे यह बात

अथ पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् । पुण्यपापयोग्यभावस्वभावाख्यापनमेतत्;—

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥१३१॥

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य भावे ।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ॥१३१॥

इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामतः मोहः । विचित्रचारित्रमोहनीयविपाकप्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ । तस्यैव मंदोदये विशुद्धपरिणामतः चित्तप्रसाद-

---

त्यनेन प्रकारेणाज्ञानी जीवः पापादिपदार्थचतुष्टयस्य कर्ता ज्ञानी तु संवरादिपदार्थत्रयस्येति भावार्थः ॥१२८।१२९।१३०॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगवियोगपरिणामेन निर्वृत्ता इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थांतराधिकारः समाप्तः । अथ पुण्यपापाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति । तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये प्रथमं तावत्परमानंदैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य भावपुण्यापापयोग्यपरिणामस्य सूचनमुख्यत्वेन "मोहो व रागदोसो" इत्यादिगाथासूत्रमेकं । अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयस्वरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन "सुहपरिणामो" इत्यादि सूत्रमेकं । अथ नैयायिकमतनिराकरणार्थं पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेण "जह्मा कम्मस्स फलं" इत्यादि सूत्रमेकं । अथ चिरंतनागंतुकयोर्मूर्तयोः कर्मणोः स्पृष्टत्वबद्धत्वस्थापनार्थं शुद्धत्वनिश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्यानादिबंधसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन मूर्तत्वं मूर्तजीवेन सह मूर्तकर्मणो बंधप्रतिपादनार्थं च "मुत्तो पासदि" इत्यादि सूत्रमेकमिति गाथाचतुष्टयेन पंचमांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ पुण्यपापयोग्यभावस्वरूपं कथ्यते;— मोहो वा रागो वा द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य जीवस्य भावे मनसि विद्यते तस्य शुभोऽशुभो वा भवति परिणाम इति । इतो विशेषः—दर्शनमोहोदये सति निश्चयशुद्धात्मरुचिरहितस्य व्यवहाररत्नत्रय-

---

सिद्ध हुई कि—पुद्गलपरिणामका निमित्त पाकर जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, और उन अशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे पुद्गलपरिणाम होते हैं ॥१२८।१२९।१३०॥

आगे पुण्य-पाप पदार्थका व्याख्यान करते हैं । अब प्रथम ही पुण्य-पाप पदार्थोंके योग्य परिणामोंका स्वरूप दिखाते हैं;—[यस्य] जिसके [भावे] भावोंमें [मोहः] गहलरूप अज्ञानपरिणाम [रागः] परद्रव्योंमें प्रीतिरूप परिणाम [द्वेषः] अप्रीतिरूप परिणाम [च] और [चित्तप्रसादः] चित्तकी प्रसन्नता [विद्यते] प्रवर्तमान है [तस्य] उस जीवके [शुभः] शुभ [वा] । अथवा [अशुभः वा] अशुभ [परिणामः] परिणमन [भवति] होता है । भावार्थ—इस लोकमें जीवके निश्चयसे जब दर्शनमोहनीय कर्मका

परिणामः । एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यावश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः । तत्र यत्र प्रशस्तरागश्चित्तप्रसादश्च तत्र शुभः परिणामः । यत्र मोहद्वेषावप्रशस्तरागश्च तत्राऽशुभ इति ॥ १३१॥

पुण्यपापस्वरूपाख्यानमेतत्;—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स ।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥१३२॥

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भवति जीवस्य ।
द्वयोः पुद्गलमात्रो भावः कर्मत्वं प्राप्तः ॥१३२॥

जीवस्य कर्तुः निश्चयकर्मतामापन्नः शुभपरिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भवति भावपुण्यम् । एवं जीवस्य कर्तुर्निश्च-

---

तत्त्वार्थरुचिरहितस्य वा योऽसौ विपरीताभिनिवेशपरिणामः स दर्शनमोहस्तस्यैवात्मनो विचित्रचारित्रमोहोदये सति निश्चयवीतरागचारित्ररहितस्य व्यवहारव्रतादिपरिणामरहितस्य इष्टानिष्टाविषये प्रीत्यप्रीतिपरिणामौ रागद्वेषौ भण्येते । तस्यैव मोहस्य मंदोदये सति चित्तस्य विशुद्धिश्चित्तप्रसादो भण्यते। अत्र मोहद्वेषावशुभौ विषयाद्यप्रशस्तरागश्च, दानपूजाव्रतशीलादिरूपः शुभरागश्चित्तप्रसादपरिणामश्च शुभ इति सूत्राभिप्रायः ॥१३१॥

एवं शुभाशुभपरिणामकथनरूपेणैकसूत्रेण प्रथमस्थलं गतं । अथ गाथापूर्वार्धेन भावपुण्यपापद्वयमपरार्धेन तु द्रव्यपुण्यपापद्वयं चेति प्रतिपादयतिः—सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति होदि शुभपरिणामः पुण्यं अशुभः पापमिति भवति । कस्य परिणामः ? जीवस्स जीवस्य । दोण्हं द्वाभ्यां पूर्वोक्तशुभाशुभजीवपरिणामाभ्यां निमित्तभूताभ्यां सकाशात् भावो भावः ज्ञानावरणादिपर्यायः । कि-

---

उदय होता है तब उसके रसविपाकसे जो शुद्ध तत्त्वके अश्रद्धानरूप परिणाम हों उसका नाम मोह है । और चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जो इसके रसविपाकका कारण पाकर इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें जो प्रीति अप्रीतिरूप परिणाम होता है, उसका नाम राग द्वेष है । उसही चारित्रमोह कर्मका जब मंद उदय हो और उसके रसविपाकसे जो कुछ विशुद्ध परिणाम हो जिसका नाम चित्तप्रसाद है । इसप्रकार जिस जीवके ये भाव हों उसके अवश्यमेव शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं । जहां देवधर्मादिकमें प्रशस्त राग और चित्तप्रसाद दोनों ही शुभपरिणाम कहलाते हैं । और जहां मोहद्वेष हों और जहां इन्द्रियोंके विषयोंमें तथा धनधान्यादिकों में अप्रशस्त राग हो सो अशुभराग कहलाता है ॥१३१॥

आगे पुण्यपापका स्वरूप कहते हैं;—[जीवस्य] जीवके [शुभपरिणामः] सत्क्रियां रूप परिणाम [पुण्यं] पुण्यनामक पदार्थ है [अशुभः] विषयकषायादिकमें प्रवृत्तिका होना [पापं इति] पाप

१. निर्मलपरिणामः. २. परिणामयोर्मध्ये. ३. यस्मिन् जीवे । ४. अशुद्धनिश्चयनयेन. ५. पूर्वं ।

यकर्मतामापन्नोऽशुभपरिणामो द्रव्यपापस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापम् पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपुण्यम्। पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नोऽविशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवाऽशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपापम्। एवं व्यवहारनिश्चयाभ्यामात्मनो मूर्तममूर्तञ्च कर्म प्रज्ञापितमिति ॥१३२॥

मूर्तकर्मसमर्थनमेतत्,—

जह्मा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुञ्जदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥१३३॥

विशिष्टः ? पोग्गलमेत्तो पुद्गलमात्रः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डरूपः कम्मत्तणं पत्तो कर्मत्वं द्रव्यकर्मपर्यायं प्राप्त इति। तथाहि—यद्यपि अशुद्धनिश्चयेन जीवनोपादानकारणभूतेन जनितौ शुभाशुभपरिणामौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण नवतरद्रव्यपुण्यपापद्वयस्य कारणभूतौ यतस्ततः कारणाद्भावपुण्यपापपदार्थौ भण्येते। यद्यपि निश्चयेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डजनितौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण जीवेन शुभाशुभपरिणामेन जनितौ सद्वेद्यासद्वेद्यादिद्रव्यप्रकृतिरूपपुद्गलपिण्डौ द्रव्यपुण्य पापपदार्थौ भण्येते चेति सूत्रार्थः ॥१३२॥

पदार्थ [भवति] होता है [द्वयोः] इन दोनों शुभाशुभ परिणामोंका [पुद्गलमात्रः भावः] द्रव्यपिण्डरूप ज्ञानावरणादि परिणाम [कर्मत्वं] शुभाशुभ कर्मावस्थाको [प्राप्तः] प्राप्त हुआ है। भावार्थ—संसार जीवके शुभाशुभके भेदसे दो प्रकारके परिणाम होते हैं। उन परिणामोंका अशुद्ध निश्चयनयका अपेक्षा जीव कर्त्ता है, शुभपरिणाम कर्म है, वही शुभ परिणाम द्रव्यपुण्यका निमित्तत्वसे कारण है। पुण्यप्रकृतिके योग्य वर्गणा तब होती है जब कि शुभपरिणामका निमित्त मिलता है। इसकारण प्रथम ही भावपुण्य होता है; तत्पश्चात् द्रव्यपुण्य होता है। इसीप्रकार अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा जीव कर्त्ता है, अशुभ परिणाम कर्म है। उसका निमित्त पाकर द्रव्यपाप होता है, इसलिये प्रथम ही भावपाप होता है, तत्पश्चात् द्रव्यपाप होता है। और निश्चयनयकी अपेक्षा पुद्गल कर्त्ता है, शुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्य पुण्यकर्म है। वह जीवके शुभपरिणामका निमित्त पाकर उपजता है। और निश्चयनयसे पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है। अशुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्य पापकर्म है, जो आत्माके ही अशुभ परिणामोंका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है। भावित पुण्यपापका उपादान कारण आत्मा है। द्रव्य पापपुण्यवर्गणा निमित्तमात्र है। द्रव्यसे पुण्यपापका उपादान कारण पुद्गल है। जीवके शुभाशुभ परिणाम निमित्तमात्र हैं। इसप्रकार आत्माके निश्चयनयसे भावित पुण्यपाप अमूर्तीक कर्म हैं और व्यवहारनयसे द्रव्यपुण्यपाप मूर्तीक कर्म हैं ॥१३२॥

---

१. समीचीनप्रवृत्तयः. २. द्रव्यकर्म—।

यस्मात्कर्मणः फलं विषयः स्पर्शैर्भुज्यते नियतं ।
जीवेन सुखं दुःखं तस्मात्कर्माणि मूर्त्तानि ॥१३३॥

यतो हि कर्मणां फलभूतः सुखदुःखहेतुविषयो मूर्तो मूर्तैरिन्द्रियैर्जीवेन नियतं भुज्यते। ततः कर्मणां मूर्तत्वमनुमीयते। तथाहि-मूर्तं कर्म मूर्तसंबंधेनानुभूयमानं मूर्तफलत्वादाखु[1]विषवदिति ॥१३३॥

मूर्तकर्मणोरमूर्तकर्मणोश्च बंधप्रकारसूचनेयम्;—

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि ।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥१३४॥

एवं शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानेनैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं। अथ कर्मणां मूर्तत्वं व्यवस्थापयति;—जह्मा यस्मात्कारणात् **कम्मस्स फलं** उदयागतकर्मणः फलं। तत्कथंभूतं ? **विसयं** मूर्तपंचेन्द्रियविषयरूपं **भुंजदे** भुज्यते **णियदं** निश्चितं। केन ? कर्तृभूतेन। जीवेन विषयातीतपरमात्मभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादच्युतेन जीवेन। कैः ? करणभूतैः। **फासेहिं** स्पर्शनेन्द्रियादिरहितामूर्तशुद्धात्मतत्त्वविपरीतैः स्पर्शनादिमूर्तेन्द्रियैः। पुनरपि कथंभूतं तत्पंचेन्द्रियविषयरूपं कर्मफलं ? **सुहदुक्खं** सुखदुःखं यद्यपि शुद्धनिश्चयेनामूर्तं तथापि अशुद्धनिश्चयेन पारमार्थिकामूर्तपरमाह्लादैकलक्षणनिश्चयसुखाद्विपरीतत्वाद्धर्षविषादरूपं मूर्तं सुखदुःखं। **तह्मा मुत्ताणि कम्माणि** यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण स्पर्शादिमूर्तपंचेन्द्रियरूपं मूर्तेन्द्रियैर्भुज्यते, स्वयं च मूर्तं सुखदुःखादिरूपं कर्म कार्यं दृश्यते, तस्मात्कारणसदृशं कार्यं भवतीति मत्त्वा कार्यानुमानेन ज्ञायंते मूर्तानि कर्माणि इति सूत्रार्थः ॥१३३॥

एवं नैयायिकमताश्रितशिष्यसंबोधनार्थं नयविभागेन पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेणैक-

---

आगे मूर्तीक कर्मका स्वरूप दिखाते हैं;—[यस्मात्] जिस कारणसे [कर्मणः] ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंका [सुखं दुःखं] सुखदुःखरूप [फलं] रस जो कि [विषयः] सुखदुःखका उपजानेवाला इष्ट-अनिष्टरूप मूर्त्तपदार्थ वह [स्पर्शैः] मूर्तीक इन्द्रियोंसे [नियतं] निश्चयसे [जीवेन] आत्माद्वारा [भुज्यते] भोगा जाता है [तस्मात्] इस कारणसे [कर्माणि] ज्ञानावरणादि कर्म [मूर्त्तानि] मूर्तीक हैं। **भावार्थ**—कर्मोंका फल इष्ट अनिष्ट पदार्थ है सो मूर्तीक है, इसीसे मूर्तीक स्पर्शादि इन्द्रियोंसे जीव भोगता है। इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि कर्म मूर्तीक हैं अर्थात् ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि जिसका फल मूर्तीक होता है उसका कारण भी मूर्तीक होता है, अतः कर्म मूर्तीक हैं। मूर्तीक कर्मके संबंधसे ही मूर्त्तफल अनुभवन किया जाता है। जैसे चूहेका विष मूर्तीक है अतः मूर्तीक शरीरसे ही अनुभवन किया जाता है ॥१३३॥

आगे मूर्त्तीक और अमूर्त्तीक जीवका बंध किसप्रकार होता है, यह सूचनामात्र कथन करने

---

१. मूषकविषवत्।

मूर्त्तः स्पृशति मूर्त्तं मूर्त्तेन बंधमनुभवति ।
जीवो मूर्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते ॥१३४॥

इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसंतानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तकर्म । तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तकर्म स्पृशति । ततस्तन्मूर्त तेन सह स्नेहगुणवशाद्बंधनमनुभवति । एष मूर्तयोः कर्मणोर्बंधप्रकारः । अथ निश्चयनयेनाऽमूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धःसन्, विशिष्टतया मूर्त्तानि कर्माण्यवगाहते । तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽवगाह्यते च । अयं त्वन्योन्याव-

---

सूत्रेण तृतीयस्थलं गतं । अथ चिरंतनाभिनवमूर्तकर्मणोस्तथैवामूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च नयविभागेन बंधप्रकारं कथयति । अथवा मूर्तरहितो जीवो मूर्तकर्माणि कथं बध्नातीति नैयायिकादिमतानुसारिणा शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति नयविभागेन परिहारं ददाति;—मुत्तो निर्विकारशुद्धात्मसंवित्त्यभावेनोपार्जितमनादिसंतानेनागतं मूर्तं कर्म तावदास्ते जीवे । तच्च किंकरोति ? फासदि मुत्तं स्वयं स्पर्शादिमत्त्वेन मूर्तत्वादभिनवं स्पर्शादिमत्संयोगमात्रेण मूर्तं कर्म स्पृशति । न केवलं स्पृशति । मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि अमूर्तातीन्द्रियनिर्मलात्मानुभूतिविपरीतं जीवस्य मिथ्यात्वरागादिपरिणामं निमित्तं लब्ध्वा पूर्वोक्तं मूर्तं कर्म नवतरमूर्तकर्मणा सह स्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणत्युपादानकारणेन संश्लेषरूपं बंधमनुभवति इति मूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारो ज्ञातव्यः । इदानीं पुनरपि मूर्तजीवमूर्तकर्मणोर्बंधः कथ्यते । जीव मुत्तिविरहिदो शुद्धनिश्चयेन जीवो मूर्तिविरहितोपि व्यवहारेण अनादिकर्मबंधवशान्मूर्तः सन् । किं करोति ? गाहदि ते अमूर्तातीन्द्रियनिर्विकारसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादविपरीतेन मिथ्यात्वरागादि परिणामेन परिणतः सन् तान् कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलान् गाहते परस्परानुप्रवेशरूपेण बध्नाति तेहि

हैं;—[मूर्त्तः] बंधपर्यायकी अपेक्षा मूर्तीक संसारी जीवके कर्मपुञ्ज [मूर्त्तं] मूर्त्तीक कर्मको [स्पृशति] स्पर्शन करता है, इसकारण [मूर्त्तः] मूर्त्तीक कर्मपिंड [मूर्त्तेन] मूर्त्तीक कर्मपिण्डसे [बंधं] परस्पर बंधावस्थाको [अनुभवति] प्राप्त होता है । [मूर्तिविरहितः] मूर्तिभावसे रहित [जीवः] जीव [तानि] उन कर्मोंके साथ बंधावस्थाको [गाहति] प्राप्त होता है । [तैः] उन ही कर्मोंसे ["जीवः"] आत्म-[अवगाह्यते] एक क्षेत्रावगाह से बंधता है । भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादि कालसे लेकर मूर्त्तीक कर्मोंसे संबंध है । वे कर्म स्पर्शरसगंधवर्णमयी हैं । इनसे आगामी मूर्त्त कर्मोंसे अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंके द्वारा बंधता है, इसकारण मूर्त्तीक कर्मसे मूर्त्तीकका बंध होता है । फिर निश्चयनयकी अपेक्षा जीव अमूर्त्तीक है । अनादिकर्मसंयोगसे रागद्वेषादिक भावोंसे स्निग्धरूक्षभाव परिणमित हुवा नवीन कर्मपुञ्जका आस्रव करता है । उस कर्मसे पूर्वबद्धकर्मकी अपेक्षा बंध अवस्थाको

---

१. आगामिमूर्तकर्म—२. निश्चयनयेन जीवः अमूर्तोऽस्ति परंतु अनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माणि अवगाहते ।

गाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्वंधप्रकारः । एवममूर्तस्यापि जीवस्य मूर्तेन पुण्यपापकर्मणा कथञ्चिद्वंधो न विरुध्यते ॥१३४॥

इति पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् ।

अथास्रवपदार्थव्याख्यानम् । पुण्यास्रवस्वरूपाख्यानमेतत्;—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चितम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवादि ॥१३५॥

रागो यस्य प्रशस्तोऽनुकम्पासंश्रितश्च परिणामः ।
चित्ते नास्ति कालुष्यं पुण्यं जीवस्यास्रवति ॥१३५॥

प्रशस्तरागोऽनुकम्पापरिणतिः चित्तस्याकलुषत्वञ्चेति त्रयः शुभा भावाः । द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः । तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रव इति ॥१३५॥

उग्गहदि निर्मलानुभूतिविपरीतेन जीवस्य रागादिपरिणामेन कर्मत्वपरिणतैस्तैः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंधैः कर्तृभूतैर्जीवोप्यवगाह्यते बध्यत इति । अत्र निश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्य व्यवहारेण मूर्तत्वे सति बंधः संभवतीति सूत्रार्थः । तथा चोक्तं । "बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो होदि तस्स णाणत्तं । तम्हा अमुत्तिभावो णेगंतो होदि जीवस्स" । १३४॥

इति सूत्रचतुर्थस्थलं गतं । एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयेन पंचमोंतराधिकारः समाप्तः । अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायैः शून्यात् शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसमरसीभावेन पूर्णकलशवद्भरितावस्थात्परमात्मनः सकाशाद्भिन्ने शुभाशुभास्रवाधिकारे गाथाषट्कं भवति । तत्र गाथाषट्कमध्ये प्रथमं तावत्पुण्यास्रवकथनमुख्यत्वेन "रागो जस्स पसत्थो" इत्यादिपाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं पापास्रवे "चरिया पमादबहुला" इत्यादि गाथाद्वयं, इति पुण्यपापास्रवव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ निरास्रवशुद्धात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूतं शुभास्रवमाख्याति;—**रागो जस्स पसत्थो** रागो यस्य प्रशस्तः वीतरागपरमात्मद्रव्याद्विलक्षणः पंचपरमेष्ठिनिर्भरगुणानुरागरूपः प्रशस्तधर्मानुरागः **अणुकंपासंसिदो य परिणामो**

प्राप्त होता है । यह आपसमें जीवकर्मका बंध दिखाया । इसही प्रकार अमूर्तीक आत्माको मूर्तीक पुण्यपापसे कथंचित्प्रकार बंधका विरोध नहीं है । इस प्रकार पुण्यपापका कथन पूर्ण हुआ ॥१३४॥

अब आस्रव पदार्थका व्याख्यान करते हैं;—[यस्य] जिस जीवके [रागः] प्रीतिभाव [प्रशस्तः] भला है [च] और [अनुकंपासंश्रितः] अनुकम्पाके आश्रित अर्थात् दयारूप [परिणामः] भाव है तथा

प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत्;—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥१३६॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा ।
अनुगमनमपि गुरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति ॥१३६॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासनाप्रधाना चेष्टा । गुरूणामाचार्यादीनां रसिकत्वेनानुगमनम् । एषः प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात् । अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधान्यस्याज्ञानिनो भवति । उपरितनभू[२]मिकाया-

---

अनुकंपासंश्रितश्च परिणामः दयासहितो मनोवचनकायव्यापाररूपः शुभपरिणामः चित्तह्मि णत्थि कलुसो चित्ते नास्ति कालुष्यं मनसि क्रोधादिकलुषपरिणामो नास्ति पुण्णं जीवस्स आसवदि यस्यैते पूर्वोक्ता त्रयः शुभपरिणामाः संति तस्य जीवस्य द्रव्यपुण्यास्रवकारणभूतं भावपुण्यमास्रवतीति सूत्राभिप्रायः ॥१३५॥

एवं शुभास्रवे सूत्रगाथा गता। अथ प्रशस्तरागस्वरूपमावेदयति;—अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः धम्मम्हि जा य खलु चेट्ठा धर्मे शुभरागचरित्रे या खलु चेष्टा अणुगमणंपि अनुगमनमनुव्रजनमनुकूलवृत्तिरित्यर्थः । केषां ? गुरूणं गुरूणां पसत्थरागोत्ति उच्चंति एते सर्वे पूर्वोक्ताः शुभभावाः परिणामाः प्रशस्तरागा इत्युच्यंते । तथाहि—निर्दोषिपरमात्मनः प्रतिपक्षभूतं यदार्तरौद्ररूपध्यानद्वयं तेनोपार्जिता या ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतयस्तासां रागादिविकल्परहितधर्मध्यानशुक्लध्यानद्वयेन विनाशं कृत्वा क्षुधाद्यष्टादशदोषरहिताः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहिताश्च जाता एतेऽर्हंतो भण्यंते । लौकिकांजनसिद्धादिविलक्षणा ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माभावेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणलक्षणा लोकाग्रनिवासि

[चित्ते] चित्तमें [कालुष्यं] मलीनभाव [नास्ति] नहीं है ["तस्य" जीवस्य] उस जीवके [पुण्यं] पुण्य [आस्रवति] आता है । भावार्थ—शुभ परिणाम तीन प्रकारके हैं अर्थात्-प्रशस्तराग १, अनुकम्पा २, और चित्तप्रसाद ३, ये तीनों प्रकारके शुभपरिणाम द्रव्यपुण्यकृतियोंको निमित्तमात्र हैं, इसकारण जो शुभभाव हैं वे भावास्रव हैं । तत्पश्चात् उन भावोंके निमित्तसे शुभयोगद्वारसे जो शुभ वर्गणायें आती हैं वे द्रव्यपुण्यास्रव हैं ॥१३५॥

आगे प्रशस्त रागका स्वरूप दिखाते हैं;—[अर्हत्सिद्धसाधुषु] अरहंत, सिद्ध और साधु इन तीन पदोंमें जो [भक्तिः] स्तुति-वंदनादिक [च] और [या] जो [धर्मे] अरहंतप्रणीत धर्ममें [खलु] निश्चयसे [चेष्टा] प्रवृत्ति, [गुरूणां] धर्माचरणके उपदेष्टा आचार्यादिकोंका [अनुगमनं अपि] भक्ति भावसहित उनके पीछे होकर चलना अर्थात् उनकी आज्ञानुसार चलने को भी [इति] इसप्रकार महापुरुष [प्रशस्तरागः] भला राग [ब्रुवंति] कहते हैं । भावार्थ—अरहंतसिद्धसाधुओंमें भक्ति

१. प्रशस्तरागः, २. उपरितनशुद्धवीतरागदशायां, वा उपरितनगुणस्थानेषु ।

मलबंधोस्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥१३६॥

अनुकम्पास्वरूपाख्यानमेतत्;—

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो ।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥१३७॥

तृषितं बुभुक्षितं वा दुःखितं दृष्ट्वा यस्तु दुःखितमनाः ।
प्रतिपद्यते तं कृपया तस्यैषा भवत्यनुकम्पा ॥१३७॥

कश्चिदुदन्यादिदुःखप्लुतमवलोक्य करुणया तत्प्रतिचिकीर्षाकुलितचित्तत्वम-

---

नश्च ये ते सिद्धा भवंति। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वविषये या निश्चयरुचिस्तथा परिच्छित्तिस्तथैव निश्चलानुभूतिः परद्रव्येच्छापरिहारेण तत्रैवात्मद्रव्ये प्रतपनं तपश्चरणं तथैव स्वशक्त्यनवगूहनेनानुष्ठानमिति निश्चयपंचाचारः तथैवाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तत्साधकव्यवहारपंचाचारः इत्युभयमाचारं स्वयमाचरंत्यन्यानाचारयंति ये ते भवंत्याचार्याः। पंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मध्ये जीवास्तिकायं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धजीवतत्त्वं शुद्धजीवपदार्थं च निश्चयनयेनोपादेयं कथयंति तथैव भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्रतिपादयंति स्वयं भावयंति च ये ते भवंत्युपाध्यायाः, निश्चयचतुर्विधाराधनया ये शुद्धात्मस्वरूपं साधयंति ते भवंति साधव इति। एवं पूर्वोक्तलक्षणयोर्जिनसिद्धयोस्तथा साधुशब्दवाच्येष्वाचार्योपाध्यायसाधुषु च या बाह्याभ्यंतरा भक्तिः सा प्रशस्तरागो भण्यते। तत्प्रशस्तरागमज्ञानी जीवो भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन करोति स ज्ञानी पुनर्निर्विकल्पसमाध्यभावे विषयकषायरूपाशुभरागविनाशार्थं करोतीति भावार्थः ॥१३६॥

अथानुकंपास्वरूपं कथयति;—तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा कमपि प्राणिनं दृष्ट्वा

व्यवहार चारित्रका आचरण और आचार्यादिक महंत पुरुषोंके चरणोंमें रसिक होना इसका नाम प्रशस्त राग है। क्योंकि शुभ रागसे ही पूर्वोक्त प्रवृत्ति होती है। यह प्रशस्त राग स्थूलतासे अकेला भक्तिहीके करनेवाले अज्ञानी जीवोंके जानना चाहिये और किसी काल ज्ञानीके भी होता है। कैसे ज्ञानीके होता है? जो ज्ञानी ऊपरके गुणस्थानोंमें स्थिर होनेको असमर्थ हैं उनके यह प्रशस्त राग होता है। सो भी कुदेवादिकोंमें राग निषेधार्थ अथवा तीव्र विषयानुरागरूप ज्वरके दूर करनेके लिये होता है ॥१३६॥

आगे अनुकम्पा अर्थात् दया का स्वरूप कहते हैं;—[तृषितं] जो कोई जीव तृषावंत हो

---

१. अप्राप्तस्थानस्याज्ञानिनः इत्यर्थः. २. अयोग्यदेवादिपदार्थेषु रागनिषेधार्थं. ३. कदाचित्प्रशस्तरागो भवति. ४. उदन्या तृषा इत्यर्थः. ५. पीडितम्, तृष्णादिविनाशकप्रतीकारः।

ज्ञानिनोऽनुकम्पा । ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनःखेद इति ॥१३७॥

चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत्;—

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज ।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति ॥१३८॥

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य ।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा वदन्ति ॥१३८॥

क्रोध-मान-माया-लोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम् तेषांमेव

जो हि दुहिदमणो यः खलु दुःखितमनाः सन् **पडिवज्जदि तं किवया** प्रतिपद्यति स्वीकरोति तं प्राणिनं कृपया **तस्सेसा होदि अणुकंपा** तस्यैषा भवत्यनुकंपेति । तथाहि—तीव्रतृष्णातीव्रक्षुधातीव्ररोगादिना पीडितमवलोक्याज्ञानी जीवः केनाप्युपायेन प्रतीकारं करोमीति व्याकुलो भूत्वानुकंपां करोति, ज्ञानी तु स्वस्य भावनामलभमानः सन् संक्लेशपरित्यागेन यथासंभवं प्रतीकारं करोति, तं दुःखितं दृष्ट्वा विशेषसंवेगवैराग्यभावना च करोतीति सूत्रतात्पर्यं ॥१३७॥

अथ चित्तकलुषतास्वरूपं प्रतिपादयति;—**कोधो व** उत्तमक्षमापरिणतिरूपशुद्धात्मतत्त्वसंवित्तेः प्रतिपक्षरूपभूतक्रोधादयो वा **जदा माणो** निरहंकारशुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिकूलो यदा काले मानो वा **माया** निःप्रपंचात्मोपलंभविपरीता माया वा **लोहो व** शुद्धात्मभावनोत्थतृप्तेः प्रतिबंधको लोभो वा **चित्तमासेज्ज** चित्तमाश्रित्य । **जीवस्स कुणदि खोहं** अक्षुभितशुद्धात्मानुभूतेर्विपरीतं जीवस्य

[वा] अथवा [बुभुक्षितं] क्षुधातुर हो या [दुःखितं] रोगादिसे दुःखित हो [तं] उसको [**दृष्ट्वा**] देखकर [यः तु] जो पुरुष [**दुःखितमनाः**] उसकी पीड़ासे आप दुःखी होता हुआ [**कृपया**] दयाभावसे [**प्रतिपद्यते**] उस दुःखके दूर करनेकी क्रियाको प्राप्त होता है [**तस्य**] उस पुरुषके [**एषा**] यह [**अनुकम्पा**] दया [**भवति**] होती है । **भावार्थ**—दयाभाव अज्ञानीके भी होता है और ज्ञानीके भी होता है, परंतु इतना विशेष है कि अज्ञानीके जो दयाभाव है सो किस ही पुरुषको दुःखित देखकर तो उसके दुःख दूर करनेके उपायमें अहंबुद्धिसे आकुलचित्त होकर प्रवर्तित होता है और जो ज्ञानी नीचेके गुणस्थानोंमें प्रवर्तित है, उसके जो दयाभाव होता है सो जब दुःखसमुद्रमें मग्न संसारी जीवोंको जानता है तब ऐसा जानकर किसो कालमें मनको खेद उपजाता है ॥१३७॥

आगे चित्तकी कलुषताका स्वरूप दिखाते हैं—[**यदा**] जिस समय [**क्रोधः**] क्रोध [**वा**] अथवा [**मानः**] अभिमान [**वा**] अथवा [**माया**] कुटिलभाव अथवा [**लोभः**] इष्टमें प्रीतिभाव [**चित्तं**] मनको [**आसाद्य**] प्राप्त होकर [**जीवस्य**] आत्माके [**क्षोभं**] अति आकुलतारूप भाव [**करोति**] करता है [**तं**] उसको [**बुधाः**] जो बड़े महन्त ज्ञानी हैं वे [**कालुष्यं इति**] कलुष भाव ऐसा नाम [**वदन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ**—जब क्रोध मान माया लोभका तीव्र उदय होता है तब चित्तको जो कुछ क्षोभ

---

१. अनुकम्पा भवति. २. क्रोधमानमायालोभानाम् ।

मंदोदये तस्य[1] प्रसादो[2]ऽकालुष्यम् । तत्[3] कादाचित्कविशिष्टकषायक्षयोपशमे सत्यज्ञानिनोऽपि भवति । कषायोदयानुवृत्तेरसमग्रव्यावर्तितोपयोगस्यावांतरभूमिकासु कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥१३८॥

पापास्रवस्वरूपाख्यानमेतत्;—

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु ।
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥१३९॥

चर्य्या प्रमादबहुला कालुष्यं लोलता च विषयेषु ।
परपरितापापवादः पापस्य चास्रवं करोति ॥१३९॥

प्रमादबहुलचर्य्यापरिणतिः, कालुष्यपरिणतिः, विषयलौल्यपरिणतिः, पर-

---

क्षोभं चित्तवैकल्यं करोति **कलुसोत्ति य तं बुधा वेंति** तत्क्रोधादिजनितं चित्तवैकल्यं कालुष्यमिति बुधा विदंति कथयंतीति । तद्यथा—तस्य कालुष्यस्य विपरीतमकालुष्यं भण्यते तच्चाकालुष्यं पुण्यास्रवकारणभूतं कदाचिदनंतानुबंधिकषायमंदोदये सत्यज्ञानिनो भवति, कदाचित्पुनर्निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति दुर्ध्याननवंचनार्थं ज्ञानिनोपि भवतीत्यभिप्रायः ॥१३८॥

एवं गाथाचतुष्टयेन पुण्यास्रवप्रकरणं गतं । अथ गाथाद्वयेन पापास्रवस्वरूपं निरूपयति;— **चरिया पमादबहुला** निःप्रमादचिच्चमत्कारपरिणतेः प्रतिबंधिनी प्रमादबहुला चर्या परिणतिश्चारित्रपरिणतिः **कालुस्सं** अकलुषचैतन्यचमत्कारमात्राद्विपरोता कालुष्यपरिणतिः **लोलदा य विसयेसु** विषयातीतात्मसुखसंवित्तेः प्रतिकूला विषयलौल्यपरिणतिः **परपरिदाव** परपरितापरहितशुद्धात्मानुभूतेर्विलक्षणा परपरितापपरिणतिः **अपवादो** निरपवादस्वसंवित्तेर्विपरीता परापवादपरिणतिश्चेति

हो उसको कलुषभाव कहते हैं । उन ही कषायोंका जब मंद उदय होता है तब चित्तकी प्रसन्नता होती है, उसको विशुद्धभाव कहते हैं । सो वह विशुद्ध चित्तप्रसाद किसी कालमें विशेष कषायोंकी मंदता होनेपर अज्ञानी जीवके होता है । और जिस जीवके कषायका उदय सर्वथा निवृत्त नहीं हो, उपयोग-भूमिका सर्वथा निर्मल नहीं हो, अन्तर-भूमिकाके गुणस्थानोंमें प्रवर्तित है उस ज्ञानी जीवके भी किसी कालमें चित्तप्रसादरूप निर्मलभाव पाये जाते हैं । इसप्रकार ज्ञानी अज्ञानीके चित्त-प्रसाद जानना चाहिये ॥१३८॥

आगे पापास्रवका स्वरूप कहते हैं;—[**प्रमादबहुला चर्या**] बहुत प्रमादसहित क्रिया [**कालुष्यं**] चित्तकी मलीनता [**च**] और [**विषयेषु**] इन्द्रियोंके विषयोंमें [**लोलता**] प्रीतिपूर्वक चपलता [**च**] और [**परपरितापापवादः**] अन्य जीवोंको दुःख देना, अन्यकी निंदा करना, बुरा बोलना इत्यादि आचरणोंसे अशुभी जीव [**पापस्य**] पापका [**आस्रवं**] आस्रव [**करोति**] करता है । **भावार्थ**—विषय कषायादिक अशुभक्रियाओंसे जीवके अशुभपरिणति होती है, उसको भावपापास्रव कहते हैं । उसी

---

१. तस्य चित्तस्य । २. प्रसन्नता निर्मलता. ३. तत् अकालुष्यम्. ४. अपरिपूर्ण—

परितापपरिणतिः, परापवादपरिणतिश्चेति पञ्चाशुभा भावा द्रव्यपापास्रवस्य निमित्तं-मात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापास्रवः। तन्निमित्तोऽशुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपापास्रव इति ॥१३९॥

पापास्रवभूतभावप्रपञ्चाख्यानमेतत्;—

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥१४०॥

संज्ञाश्च त्रिलेश्या इन्द्रियवशता चार्त्तरौद्रे।
ज्ञानं च दुःप्रयुक्तं मोहः पापप्रदा भवन्ति ॥१४०॥

तीव्रमोहविपाकप्रभवा आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्तीव्रकषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिरूपाः कृष्णनीलकापोतलेश्यास्तिस्रः। रागद्वेषोदयप्रकर्षादिन्द्रियाधीनत्वराग-

---

पापस्स य आसवं कुणदि इयं पंचप्रकारा परिणतिर्द्रव्यपापास्रवकारणभूता भावपापास्रवो भण्यते भावपापास्रवनिमित्तेन मनोवचनकाययोगद्वारेणागतं द्रव्यकर्म द्रव्यपापास्रव इति सूत्रार्थः ॥१३९॥

अथ भावपापास्रवस्य विस्तरं कथयति;— **सण्णाओ** आहारादिसंज्ञारहितशुद्धचैतन्यपरिणतेर्भिन्नाश्चतस्र आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञा **तिलेस्सा** कषाययोगद्वयाभावरूपविशुद्धचैतन्यप्रकाशात्पृथग्भूताः कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणास्तिस्रः कृष्णनीलकापोतलेश्याः **इंदियवसदा य** स्वाधीनातीन्द्रियसुखास्वादपरिणतेः प्रच्छादिका पंचेंद्रियविषयाधीनता **अट्टरुद्दाणि** समस्तविभावाकांक्षारहितशुद्धचैतन्यभावनायाः प्रतिबंधकं इष्टसंयोगानिष्टवियोगव्याधिविनाशभोगनिदानकांक्षारूपेणोद्रेकभावप्रचुरं चतुर्विधमार्तध्यानं क्रोधावेशरहितशुद्धात्मानुभूतिभावनायाः पृथग्भूतं क्रूरचित्तोत्पन्नं हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं चतुर्विधं रौद्रध्यानं च **णाणं च दुप्पउत्तं** शुभशुद्धोपयोगद्वयं विहाय

भावपापास्रवका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणारूप द्रव्यकर्म आते हैं। योगोंके द्वारसे उसका नाम द्रव्यपापास्रव है ॥१३९॥

आगे पापास्रवके कारणभूत भाव विस्तारसे दिखाते हैं;—[संज्ञाः] चार संज्ञा [च] और [त्रिलेश्याः] तीन लेश्या [च] और [इन्द्रियवशता] इन्द्रियोंके आधीन होना [च] तथा [आर्त्तरौद्रे] आर्त्त और रौद्रध्यान और [दुःप्रयुक्तं ज्ञानं] सत्क्रियाके अतिरिक्त असत्क्रियाओंमें ज्ञानका लगाना तथा [मोहः] दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय कर्मके समस्त भाव [पापप्रदाः] पापरूप आस्रवके कारण [भवन्ति] होते हैं। **भावार्थ**—तीव्र मोहके उदयसे आहार भय मैथुन परिग्रह ये चार संज्ञायें होती हैं और तीव्र कषाय के उदयसे रंजित योगोंकी प्रवृत्तिरूप कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्यायें होती हैं। रागद्वेषके उत्कृष्ट उदयसे इन्द्रियाधीनता होती है। रागद्वेषके अति विपाकसे इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीडाचिन्तवन और निदानबंध ये चार प्रकारके आर्त्तध्यान होते हैं। तीव्र कषायोंके उदयसे जब अतिशय क्रूरचित्त होता है तब हिंसानंदी, मृषानंदी, स्तेयानंदी, विषयसंरक्षणानंदीरूप

१. 'अट्टरुद्दाणि' इत्यपि पाठः।

द्वेषोद्रेकात्प्रियसंयोगाऽप्रियवियोगवेदनामोक्षणनिदानाकाङ्क्षणरूपमार्तं। कषायक्रूराशयत्वाद्धिंसाऽसत्यास्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं रौद्रम्[1] नैष्कर्म्यं[2] तु[3] शुभकर्मणश्चान्यत्र दुष्टतया प्रयुक्तं ज्ञानम्। सामान्येन दर्शनचारित्रमोहनीयोदयोपजनिताविवेकरूपो मोहः। एषः भावपापास्रवप्रपञ्चो द्रव्यपापास्रवप्रपञ्चप्रदो भवतीति ॥१४०॥ इति आस्रवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अथ संवरपदार्थव्याख्यानम्। [4]अनन्तरत्वात्पापस्यैव संवराख्यानमेतत्;—

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥१४१॥

इन्द्रियकषायसंज्ञा निगृहीता यैः सुष्ठुमार्गे।
यावत्तावत्तेषां पिहितं पापास्रवं छिद्रं ॥१४१॥

मिथ्यात्वरागाद्यधीनत्वेनान्यत्र दुष्टभावे प्रवृत्तं दुःप्रयुक्तं ज्ञानं। मोहो मोहोदयजनितममत्वादिविकल्पजालवर्जितस्वसंवित्तेर्विनाशको दर्शनचारित्रमोहश्च इति विभावपरिणामप्रपंचः पावप्पदो होदि पापप्रदायको भवति। एवं द्रव्यपापास्रवकारणभूतः पूर्वसूत्रोदितभावपापास्रवस्य विस्तरो ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥१४०॥

किं च। पुण्यपापद्वयं पूर्वं व्याख्यातं तेनैव पूर्यते पुण्यपापास्रवव्याख्यानं किमर्थमिति प्रश्ने परिहारमाह। जलप्रवेशद्वारेण जलमिव पुण्यपापद्वयमास्रवत्यागच्छत्यनेनेत्यास्रव.। अत्रागमनं मुख्यं तत्र तु पुण्यपापद्वयस्यागमनानंतरं स्थित्यनुभागबंधरूपेणावस्थानं मुख्यमित्येतावद्विशेषः। एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापास्रवव्याख्यानमुख्यतया गाथाषट्कसमुदायेन षष्ठोतराधिकारः समाप्तः। अथ ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पवर्जितशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणपरमोपेक्षासंयमसाध्ये संवरव्याख्याने "इंदियकसाय" इत्यादि

चार प्रकारके रौद्रध्यान होते हैं। दुष्ट भावोंसे धर्मक्रियासे अतिरिक्त अन्यत्र उपयोगी होना सो खोटा ज्ञान है। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रके उदयसे अविवेकका होना मोह (अज्ञानभाव) है। इत्यादि परिणामोंका होना सो भाव पापास्रव कहलाता है। इसी पापपरिणतिका निमित्त पाकर द्रव्यपापास्रवका विस्तार होता है। यह आस्रव पदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥१४०॥

आगे संवर पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[यैः] जिन पुरुषोंने [इन्द्रियकषायसंज्ञाः] मनसहित पाँच इंद्रिय, चार कषाय और चार संज्ञारूप पापपरिणति [यावत्] जिस समय [सुष्ठु मार्गे] संवरमार्गमें [निग्रहीताः] रोकी हैं [तावत्] तब [तेषां] उनके [पापाश्रवं छिद्रं] पापास्रवरूपी छिद्र [पिहितं] आच्छादित हुआ। भावार्थ—मोक्ष का मार्ग एक संवर है सो संवर जितना इन्द्रिय

---

१. हिंसानंदं, असत्यानंदं, स्तेयानंदं, विषयसंरक्षणानंदं। इति चतुर्धा रौद्रं भवति. २. प्रयोजनं विना. ३. शुभकर्म त्यक्त्वा अन्यत्र प्रयुक्तं ज्ञानमित्यर्थः, ४. आस्रवानंतरं।

मार्गो हि संवरस्तन्निमित्तमिन्द्रियाणि कषायाश्च संज्ञाश्च यावतांशेन यावन्तं वा कालं निगृह्यन्ते तावतांशेन तावन्तं वा कालं पापास्रवद्वारं पिधीयते । इन्द्रियकषायसंज्ञाः भावपापास्रवो द्रव्यपापास्रवहेतुः पूर्वमुक्तः । इह तन्निरोधो भावपापसंवरो द्रव्यपापसंवरहेतुरवधारणीय इति ॥१४१॥

सामान्यसंवरस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥१४२॥

गाथात्रयेण समुदायपातनिका ॥ अथ पूर्वसूत्रकथितपापास्रवस्य संवरमाख्याति;—इंद्रियकषायसंज्ञा **णिग्गहिदा** निर्गृहीता निषिद्धा **जेहि** यैः कर्तृभूतैः पुरुषैः **सुट्ठु** सुष्ठुविशेषेण । किंकृत्वा ? पूर्वं स्थित्वा । क्व ? **मग्गम्हि** संवरकारणरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे । कथं निग्रहीता । यावत् यस्मिन् गुणस्थाने यावंतं कालं यावतांशेन "सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा । दुगतीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को" इति गाथाकथितत्रिभंगीक्रमेण तावत्तस्मिन् गुणस्थाने तावत्कालं तावतांशेन स्वकीयस्वकीयगुणस्थानपरिणामानुसारेण **तेसिं** तेषां पूर्वोक्तपुरुषाणां **पिहिदं** पिहितं प्रच्छादितं झंपितं भवति । किं ? **पापासवच्छिद्दं** पापास्रवछिद्रं पापागमनद्वारमिति । अत्र सूत्रे पूर्वगाथोदितद्रव्यपापास्रवकारणभूतस्य भावपापास्रवस्य निरोधः तु द्रव्यपापास्रवसंवरकारणभूतो भावपापास्रवसंवरो ज्ञातव्य इति सूत्रार्थः ॥१४१॥

अथ सामान्येन पुण्यपापसंवरस्वरूपं कथयति;—**जस्स ण विज्जदि** यस्य न विद्यते । स कः ?

कषाय संज्ञाओंका निरोध हो उतना ही होता है । अर्थात् जितने अंश आस्रवका निरोध होता है उतने ही अंश संवर होता है । इन्द्रिय कषाय संज्ञा ये भावपापास्रव हैं । इनका निरोध करना भाव पापसंवर है । ये ही भावपापसंवर द्रव्यपापसंवरका कारण है । अर्थात् जब इस जीवके अशुद्ध भाव नहीं होते तब पौद्गलीक वर्गणाओंका आस्रव भी नहीं होता ॥१४१॥

आगे सामान्य संवर का स्वरूप कहते हैं;—**[यस्य]** जिस पुरुषके **[सर्वद्रव्येषु]** समस्त परद्रव्योंमें **[रागः]** प्रीतिभाव **[द्वेषः]** द्वेषभाव **[वा]** अथवा **[मोहः]** तत्त्वोंकी अश्रद्धारूप मोह **[न विद्यते]**

---

१. इंद्रियादीनां निरोधः ।

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदुःखस्य भिक्षोः ॥१४२॥

यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भावः तस्य निर्विकारचैतन्यत्वात्समसुखदुःखस्य भिक्षोः शुभमशुभञ्च कर्म नास्रवति । किन्तु संव्रियेत एव । तदत्र मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो भावसंवरः । तन्निमित्तः शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ॥१४२॥

विशेषेण संवरस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥१४३॥

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य ।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥१४३॥

रागो दोसो मोहो व जीवस्य शुद्धपरिणामात् परमधर्मलक्षणाद्विपरीतो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा । केषु विषयेषु ? सव्वदव्वेसु शुभाशुभसर्वद्रव्येषु । णासवदि सुहं असुहं नास्रवति शुभाशुभकर्म । कस्य ? भिक्खुस्स तस्य रागादिरहितशुद्धोपयोगेन तपोधनस्य । कथंभूतस्य ? समसुहदुक्खस्स समस्तशुभाशुभसंकल्परहितशुद्धात्मध्यानोत्पन्नपरमसुखामृततृप्तिरूपैकाकारसमरसीभावबलेन अनभिव्यक्तसुखदुःखरूपहर्षविषादविकारत्वात्समसुखदुःखस्येति । अत्र शुभाशुभसंवरसमर्थः शुद्धोपयोगो भावसंवरः भावसंवराधारेण नवतरकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति तात्पर्यार्थः ॥१४२॥

अथायोगिकेवलिजिनगुणस्थानापेक्षया निरवशेषेण पुण्यपापसंवरं प्रतिपादयति;—जस्स यस्य योगिनः । कथंभूतस्य ? विरदस्स शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितस्य णत्थि नास्ति जदा खलु यदा काले

नहीं है ["तस्य"] उस [समसुखदुःखस्य] समान सुखदुःख वाले [भिक्षोः] महामुनिके [शुभ] शुभरूप [अशुभं] पापरूप पुद्गलद्रव्य [न आस्रवति] आस्रवभावको प्राप्त नहीं होता। भावार्थ—जिस जीवके राग द्वेष मोहरूप भाव परद्रव्योंमें नहीं है उस ही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होता। उसके संवर ही होता है। इस कारण रागद्वेष-मोहपरिणामोंका निरोध भावसंवर कहलाता है। उस भावसंवरके निमित्तसे योगद्वारोंसे शुभाशुभरूप कर्मवर्गणाओंका निरोध होना द्रव्यसंवर है ॥१४२॥

आगे संवरका विशेष स्वरूप कहते हैं;—[खलु यदा] निश्चय से जिस समय [यस्य] जिस [विरतस्य] परद्रव्यत्यागीके [योगे] मनवचनकायरूप योगोंमें [पापं] अशुभ परिणाम [च] और

---

१. संवरो भवति।

यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मनःकायकर्मणि शुभपरिणामरूपं पुण्यमशुभपरिणामरूपं पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मणः संवरः स्वकारणभावात्प्रसिद्धयति। तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसंवरो द्रव्यपुण्यपापसंवरस्य हेतुः प्रधानोऽवधारणीय इति ॥१४३॥ इति संवरपदार्थज्ञानं समाप्तम्।

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम्। निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत्;—

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥१४४॥

संवरयोगाभ्यां युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः।
कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स नियतं ॥१४४॥

शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, शुद्धोपयोगः। ताभ्यां युक्तस्तपोभिरनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशादि भेदाद्बहिरङ्गैः

खलु स्फुटं। किं नास्ति ? पुण्णं पावं च पुण्यपापद्वयं। क्व नास्ति ? योगे मनोवाक्कायकर्मणि। न केवलं पुण्यपापद्वयं नास्ति। वस्तुतस्तु योगोपि संवरणं तस्स तदा तस्य भगवतस्तदा संवरणं भवति। कस्य संबंधि ? कम्मस्स पुण्यपापरहितानंतगुणस्वरूपरमात्मनो विलक्षणस्य कर्मणः। पुनरपि किंविशिष्टस्य ? सुहासुहकदस्स शुभाशुभकृतस्येति। अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिर्भावसंवरस्तन्निमित्तद्रव्यकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति भावार्थः ॥१४३॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये संवरपदार्थव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः॥ अथ शुद्धात्मानुभूतिलक्षणशुद्धोपयोगसाध्ये निर्जराधिकारे 'संवरजोगेहिं जुदो' इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका। अथ निर्जरास्वरूपं कथयति;—संवर जो गेहिं जुदो

[पुण्यं] शुभपरिणाम [नास्ति] नहीं है [तदा] उस समय [तस्य] उस मुनिके [शुभाशुभकृतस्य कर्मणः] शुभाशुभ भावोंसे उत्पन्न किये हुए द्रव्यकर्मास्रवोंके [संवरणं] निरोधक संवरभाव होते हैं। भावार्थ—जब इस महामुनिके सर्वथा प्रकार शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति होती है तब उसके आगामी कर्मोंका निरोध होता है। मूल कारण भावकर्म हैं। जब भावकर्मही चले जाँय तब द्रव्यकर्म कहाँ से हो ? इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि शुभाशुभ भावोंका निरोध होना भावपुण्यपाप संवर होता है। यह ही भावसंवर द्रव्यपुण्यपापका निरोधक प्रधान हेतु है। इस प्रकार संवर पदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥१४३॥

अब निर्जरा पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[यः] जो भेदविज्ञाती [संवरयोगाभ्यां] शुभाशुभास्रवनिरोधरूप संवर और शुद्धोपयोगरूप योगोंसे [युक्तः] संयुक्त [बहुविधैः] नाना प्रकारके [तपोभिः] अन्तरंग बहिरंग तपोंके द्वारा [चेष्टते] उपाय करता है [सः] वह पुरुष [नियतं] निश्चयसे

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदादन्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यश्चेष्टते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति । तदत्र कर्मवीर्य्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा । तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां द्रव्यनिर्जरेति ॥१४४॥

मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम्;—

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं ।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥१४५॥

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानं ।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः ॥१४५॥

संवरयोगाभ्यां युक्तः निर्मलात्मानुभूतिबलेन शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, निर्विकल्पलक्षणध्यानशब्दवाच्यशुद्धोपयोगो योगस्ताभ्यां युक्तः **तवेहिं जो चेट्ठदे बहुविहेहिं** तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन शुद्धात्मानुभूतिसहकारिकारणैर्बहिरंगषड्विधैस्तथैव प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदेन सहजशुद्धस्वस्वरूपप्रतपनलक्षणैरभ्यंतरषड्विधैश्च तपोभिर्वर्तते यः **कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं** कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स पुरुषः नियतं निश्चितमिति । अत्र द्वादशविधतपसा वृद्धिं गतो वीतरागपरमानंदैकलक्षणः कर्मशक्तिनिर्मूलनसमर्थः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा तस्य शुद्धोपयोगस्य सामर्थ्येन नीरसीभूतानां पूर्वोपार्जितकर्मपुद्गलानां संवरपूर्वकभावेनैकदेशसंक्षयो द्रव्यनिर्जरेति सूत्रार्थः ॥१४४॥

अथात्मध्यानं मुख्यवृत्त्या निर्जराकारणमितिप्रकटयति;— **जो संवरेण जुत्तो** यः संवरेण युक्तः यः कर्ता शुभाशुभरागाद्यास्रवनिरोधलक्षणसंवरेण युक्तः **अप्पट्ठपसाहगो हि** आत्मार्थप्रसाधकः हि

[बहुकानां] बहुत-से [कर्मणां] कर्मोंकी [निर्जरणं] निर्जरा [करोति] करता है । भावार्थ—जो पुरुष संवर और शुद्धोपयोगसे संयुक्त, तथा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश इन छह प्रकारके बहिरंग तप तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान इन छः प्रकारके अंतरंग तप सहित है वह बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करता है । इससे यह भी सिद्ध हुआ कि अनेक कर्मोंकी शक्तियोंके गालनेको समर्थ द्वादश प्रकारके तपोंसे बढ़ा हुआ शुद्धोपयोग ही भावनिर्जरा है । और भावनिर्जराके अनुसार नीरस होकर पूर्वमें बँधे हुये कर्मोंका एकदेश खिर जाना द्रव्यनिर्जरा है ॥१४४॥

आगे निर्जराका कारण विशेषताके साथ दिखाते हैं—[यः] जो पुरुष [संवरेण युक्तः] संवर भावोंसे संयुक्त है तथा [आत्मार्थप्रसाधकः] आत्मीक स्वभावका साधनेवाला है । [सः] वह पुरुष

---

१. कर्म अपना रस देकर खिर जाये, उसको निर्जरा कहते हैं ।

यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनाः आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्वस्तुत्वेनाभेदात्तमेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्संचेतयते स खलु नितान्तनिःस्नेहः प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति। एतेन निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ॥१४५॥

ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत्—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायए अगणी ॥१४६॥

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ॥१४६॥

स्फुटं हेयोपादेयतत्त्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य शुद्धात्मानुभूतिलक्षणकेवलस्वकार्यप्रसाधकः अप्पाणं सर्वात्मप्रदेशेषु निर्विकारनित्यानन्दैकाकारपरिणतमात्मानं मुणिदूण मत्वा ज्ञात्वा रागादिविभावरहितस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा झादि निश्चलात्मोपलब्धिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन ध्यायति णियदं निश्चितं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावे निश्चलं यथा भवति। कथंभूतमात्मानं ? णाणं निश्चयेन गुणगुणिनोरभेदाद्विशिष्टभेदज्ञानपरिणतत्वादात्मापि ज्ञानं सो सः पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मध्यानं ध्याता। किं करोति ? संधुणोदि कम्मरयं संधुनोनि कर्मरजो निर्जरयतीति। अत्र वस्तुवृत्त्या ध्यानं निर्जराकारणं व्याख्यातमिति सूत्रतात्पर्यं ॥१४५॥

अथ पूर्वं यन्निर्जराकारणं भणितं ध्यानं तस्योत्पत्तिसामग्रीं लक्षणं च प्रतिपादयति;—जस्स

[हि] निश्चयसे [आत्मानं] शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वरूपको [ज्ञात्वा] जानकर [नियतं] सदैव [ज्ञानं] आत्माके सर्वस्वको [ध्यायति] ध्याता है, वही पुरुष [कर्मरजः] कर्मरूपी धूलिको [संधुनोति] उड़ा देता है। **भावार्थ**—जो पुरुष कर्मोके निरोधसे संयुक्त है, आत्मस्वरूपका जाननेवाला है, वह परकार्योंसे निवृत्त होकर आत्मकार्यका उद्यमी होता है, तथा अपने स्वरूपको पाकर गुणगुणीके अभेद कथनसे अपने ज्ञानगुणको आपसे अभेद निश्चल अनुभव करता है, वह पुरुष सर्वथा प्रकार वीतराग भावोंके द्वारा पूर्वकालमें बँधी हुये कर्मरूपी धूलिको उड़ा देता है अर्थात् कर्मोको खपा देता है। जैसे चिकनाई रहित शुद्ध स्फटिकका थंभ निर्मल होता है उसी प्रकार निर्जराका मुख्य हेतु ध्यान है अर्थात् निर्मलताका कारण है ॥१४५॥

अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं;—[यस्य] जिस जीवके [रागः द्वेषः मोहः] राग द्वेष मोह

---

१. ज्ञानादि आत्मनः गुणः, आत्मा गुणी तयोः, २. अतिशयेन रागद्वेषमोहरहितः, ३. निराकरोति, ४. कथनेन।

शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिर्हि ध्यानम् । अथास्यात्मलाभविधिरभिधीयते । यदा खलु योगी दर्शनचारित्रमोहनीयविपाकपुद्गलकर्मत्वात् कर्मसु संहृत्य, तदनुवृत्तेः व्यावृत्योपयोगममुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं चात्यन्तशुद्ध एवात्मनि निष्कम्पं निवेशयति, तदास्य निष्क्रियचैतन्यरूपविश्रान्तस्य वाङ्मनःकायानभावयतः स्वकर्मस्वव्यापारयतः सकलशुभाशुभकर्मेन्धनदहनसमर्थत्वात् अग्निकल्पं, परमपुरुषार्थसिद्ध्युपायभूतं ध्यानं

ण विज्जहि यस्य न विद्यते । स कः ? रागो दोसो मोहो व दर्शनचारित्रमोहोदयजनितदेहादिममत्वरूपविकल्पजालविरहितनिर्मोहशुद्धात्मसंवित्त्यादिगुणसहितपरमात्मविलक्षणो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा । पुनरपि किं नास्ति ? यस्य योगिनः । जोगपरिणामो शुभाशुभकर्मकांडरहितनिःक्रियशुद्धचैतन्यपरिणतिरूपज्ञानकांडसहितपरमात्मपदार्थस्वभावाद्विपरीतो मनोवचनकायक्रियारूपव्यापारः । इयं ध्यानसामग्री कथिता । अथ ध्यानलक्षणं कथ्यते । तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी तस्य निर्विकारनिःक्रियचैतन्यचमत्कारपरिणतस्य शुभाशुभकर्मेन्धनदहनसामर्थ्यलक्षणो ध्यानमयोऽग्निर्जायते इति । तथाहि । यथा स्तोकोऽप्यग्निः प्रचुरतृणकाष्ठराशिं स्तोककालेनैव दहति तथा मिथ्यात्वकषायादिविभावपरित्यागलक्षणेन महावातेन प्रज्वलितस्तथापूर्वाद्भुतपरमाह्लादैकसुखलक्षणेन घृतेन सिंचितो निश्चलात्मसंवित्तिलक्षणो ध्यानाग्निः मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं कर्मेंधनराशिं क्षणमात्रेण दहतीति । अत्राह शिष्यः । अद्य काले ध्यानं नास्ति । कस्मादिति चेत् । दशचतुर्दशपूर्वश्रुताधारपुरुषाभावात्प्रथमसंहननाभावाच्च । परिहारमाह—अद्य काले शुक्लध्यानं नास्ति । तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैरेव मोक्षप्राभृते "भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी" "अज्जवि तियरणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति"। तत्र युक्तिमाह । यद्यद्यकाले यथाख्यातसंज्ञं निश्चयचारित्रं

[वा] अथवा [योगपरिकर्म] तीन योगोंका परिणमन [न विद्यते] नहीं है [तस्य] उस जीवके [शुभाशुभदहनः] शुभ अशुभ भावोंको जलानेवाली [ध्यानमयः] ध्यानस्वरूपी [अग्निः] आग [जायते] उत्पन्न होती है । भावार्थ—परमात्मस्वरूपमें अडोल चैतन्यभाव जिस जीवके हो, वह ही ध्यान करनेवाला है । इस ध्याता पुरुषके स्वरूपको प्राप्ति किस प्रकार होती है ? सो कहते हैं । जब निश्चयके द्वारा योगीश्वर अनादि मिथ्यावासनाके प्रभावसे दर्शन-चारित्र मोहनीय कर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवर्तनेवाले उपयोगको काललब्धि पाकर वहाँसे संकोचकर अपने स्वरूपमें लाये तब निर्मोह वीतराग द्वेषरहित अत्यन्त शुद्ध स्वरूपको शुद्धात्मस्वरूपमें निष्कंप ठहरा सके और तब ही इस भेदविज्ञानी ध्यानीके स्वरूप-साधक पुरुषार्थसिद्धिका परम उपाय ध्यान उत्पन्न होता है । वह ध्यान करनेवाला पुरुष निःक्रिय चैतन्य स्वरूपमें स्थिरताके साथ मग्न हो रहा है, मन वचन कायकी भावना नहीं भाता है, कर्मकांडमें भी नहीं प्रवर्त्तता, समस्त शुभाशुभ कर्म-

जायते इति। तथा चोक्तम्—"अज्जवि तियरणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति" ॥ अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा। तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खइं कुणइ" ॥१४६॥ इति निर्जरा-पदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

नास्ति तर्हि सरागचारित्रसंज्ञमपहृतसंयममाचरंतु तपस्विनः। तथा चोक्तं तत्त्वानुशासनध्यानग्रंथे "चरितारो न संत्यद्य यथाख्यातस्य संप्रति। तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरंतु तपोधनाः"। यच्चोक्तं सकलश्रुतधारिणां ध्यानं भवति तदुत्सर्गवचनं, अपवादव्याख्याने तु पंचसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकश्रुति-परिज्ञानमात्रेणैव केवलज्ञानं जायते, यद्येवं न भवति तर्हि "तुसमासं घोसंतो सिवभूदी केवली जादो" इत्यादि वचनं कथं घटते? तथा चोक्तं चारित्रसारादिग्रंथे पुलाकादिपंचनिर्ग्रंथव्याख्यानकाले। मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयंति ते निर्ग्रंथा भण्यंते क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनस्तेषामुत्कृष्टेन श्रुतं चतुर्दशपूर्वाणि जघन्येन पुनः पंचसमितित्रिगुप्तिसंज्ञा अष्टौ प्रवचनमातरः। यदप्युक्तं वज्रवृषभनारा-चसंज्ञप्रथमसंहननेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनं अपवादव्याख्यानं पुनरपूर्वादिगुणस्थानवर्तिनां उपशमक्षपकश्रेण्योर्यच्छुक्लध्यानं तदपेक्षया स नियमः अपूर्वादधस्तनगुणस्थानेषु धर्मध्याने निषेधकं न भवति। तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने "यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः। श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तत्राधस्तान्निषेधकं" एवं स्तोकश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किमपि शुद्धात्मप्रति-पादकं संवरनिर्जराकरणं जरमरणहरं सारोपदेशं गृहीत्वा ध्यानं कर्तव्यमिति भावार्थः। उक्तं च। "अंतो णत्थि सुदीणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा। तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ" ॥१४६॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निर्जराप्रतिपादकमुख्यतय। गाथात्रयेणाष्टमों-तराधिकारः समाप्तः॥ अथ निर्विकारपरमात्मसम्यकश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय मोक्षमार्गाद्वि-

---

ईन्धनको जलानेके लिये अग्निवत् ज्ञानकांड गर्भित ध्यानका अनुभवी है, इस कारण परमात्मपदको पाता है[3]। इस प्रकार निर्जरा पदार्थका व्याख्यान पूरा हुआ ॥१४६॥

अब बंध पदार्थका व्याख्यान किया जाता है। [यदि] यदि [रक्तः] अज्ञान भावमें रागी होकर [आत्मा] यह जीवद्रव्य [यं] जिस [शुभं अशुभं] शुभाशुभरूप [उदीर्णं] प्रकट हुये [भावं]

---

१. अद्यापि त्रिकरणशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभन्ते इन्द्रत्वम्।
लौकांतिकदेवत्वं, तत्र च्युता निर्वृतिं यान्ति ॥१॥

२. अन्तो नास्ति श्रुतीनां, कालः स्तोको वयं च दुर्मेधाः।
तत् एव शिक्षितव्यं, यत् जरामरणक्षयं करोति ॥२॥

३. जो कोई कहै कि इस वर्तमान कालमें ध्यान नहीं होता उसको इन ऊपर लिखी दो गाथाओंसे अपना समाधान करना चाहिये।

बन्धस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥१४७॥

यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा।
स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥१४७॥

यदि खल्वयमपरोपाश्रयेणानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति। तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः। तन्निमित्तेन शुभाशुभकर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ॥१४७॥

बहिरङ्गान्तरङ्गबन्धकारणाख्यानमेतत्;—

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥१४८॥

लक्षणे बंधाधिकारे "जं सुह" मित्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका। अथ बंधस्वरूपं कथयति;— **जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा** यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा यद्ययमात्मा निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोपि व्यवहारेणानादिबंधनोपाधिवशाद्रक्तः सन् निर्मलज्ञानानंदादिगुणास्पदशुद्धात्मस्वरूपपरिणतेः पृथग्भूता मुदयागतं शुभमशुभं वा स्वसंवित्तेश्च्युतो भूत्वा भावं परिणामं करोति **सो तेण हवदिबंधो** तदा स आत्मा तेन रागपरिणामेन कर्तृभूतेन बंधो भवति। केन करणभूतेन? **पोग्गलकम्मेण विविहेण** कर्मवर्गणारूपपुद्गलकर्मणा विविधेनेति। अत्र शुद्धात्मपरिणतेर्विपरीतः शुभाशुभपरिणामो भावाबंधः तन्निमित्तेन तैलम्रक्षितानां मलवंध इव जीवेन सह कर्मपुद्गलानां संश्लेषो द्रव्यबंध इति सूत्राभिप्रायः ॥१४७॥

अथ बहिरंगांतरंगबंधकारणमुपदिशति;—योगनिमित्तेन ग्रहणं कर्मपुद्गलादानं भवति।

भावको [करोति] करता है [सः] वह जीव [तेन] उस भावसे [विविधेन पुद्गलकर्मणा] अनेक प्रकारके पौद्गलीक कर्मोंसे [बद्ध भवति] बँध जाता है। **भावार्थ**—यदि यह आत्मा परके संबंधसे अनादि अविद्यासे मोहित होकर कर्मके उदयसे जिस शुभाशुभ भावको करता है तब यह आत्मा उसही काल उस अशुद्ध उपयोगरूप भावका निमित्त पाकर पौद्गलिक कर्मोंसे बँधता है। इससे यह बात भी सिद्ध हुई कि इस आत्माके जो रागद्वेष मोहरूप स्निग्ध शुभ अशुभ परिणाम हैं उनका नाम भावबंध है। उस भावबंधका निमित्त पाकर शुभअशुभरूप द्रव्यवर्गणामयी पुद्गलोंका जीवके प्रदेशों के साथ परस्पर बंध होनेका नाम द्रव्यबंध है ॥१४७॥

आगे बंधके बहिरंग अन्तरंग कारणोंका स्वरूप दिखाते हैं;—[योगनिमित्तं ग्रहणं] योगोंका

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसंभूतः ।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः ।।१४८।।

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तं । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बनात्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्तिपरिणामेनावस्थानम् । स[1] पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुना रतिरागद्वेषमोहयुतः । मोहनीयविपाकसंपादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद्बहिरङ्गकारणं योगः[2] । विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ।।१४८।।

योग इति कोऽर्थः । **जोगो मणवयणकायसंभूदो** योगो मनोवचनकायसंभूतः निःक्रियनिर्विकारचिज्ज्योतिः परिणामाद्भिन्नो मनोवचनकायवर्गणालंवनरूपो व्यापारः आत्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणो वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुभूतो योगः **भावणिमित्तो बंधो** भावनिमित्तो भवति । स कः ? स्थित्यनुभागबंधः । भावः कथ्यते । **भावो रदिरागदोसमोहजुदो** रागादिदोषरहितचैतन्यप्रकाशपरिणतेः पृथक्त्वादिकषायादिदर्शनचारित्रमोहनीयत्रीणि द्वादशभेदात् पृथग्भूतो भावो रतिरागद्वेषमोहयुक्तः । अत्र रतिशब्देन हास्याविनाभाविनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या । रागशब्देन तु मायालोभरूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्सरूपो द्वेषपरिणामो षट्प्रकारो भवति । मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति । अत्र यतः कारणात्कर्मादानरूपेण प्रकृतिप्रदेशबंधहेतुस्ततः कारणाद्बहिरंगनिमित्तं योगः चिरकालस्थायित्वेन स्थित्यनुभागबंधहेतुत्वादभ्यंतरकारणं कषाया इति तात्पर्यं ।।१४८।।

निमित्त पाकर कर्मपुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक-क्षेत्रावगाहसे ग्रहण होता है, [**योगः मनोवचनकायसंभूतः**] योग मन-वचन-कायको क्रियासे उत्पन्न होता है। [**बंधः भावनिमित्तः**] ग्रहण तो योगोंसे होता है और बंध एक अशुद्धोपयोगरूप भावोंके निमित्तसे होता है। और [**भावः**] वह भाव कैसा है कि [**रतिरागमोहयुतः**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रतिरागद्वेष मोहसे संयुक्त होता है। **भावार्थ**—जीवोंके प्रदेशोंमें कर्मोंका आगमन योगपरिणतिसे होता है। पूर्वकी बँधी हुई कर्मवर्गणाओंका अवलंबन पाकर आत्मप्रदेशोंका प्रकंपन होनेका नाम योगपरिणति है। और विशेषतया निज शक्तिके परिणामसे जीवके प्रदेशोंमें पुद्गलकर्मपिंडोंके रहनेका नाम बंध है। वह बंध मोहनीयकर्म संजनित अशुद्धोपयोगरूप भावके बिना जीवके कदाचित् नहीं होता। यद्यपि योगोंके द्वारा भी बंध होता है तथापि स्थिति अनुभागके विना जीवके उसका नाम मात्र ही ग्रहण होता है। क्योंकि बंध उसहीका नाम है जो स्थिति अनुभागकी विशेषता लिये हो, इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि बंधमें बहिरंग कारण तो योग है और अंतरंग कारण जीवके रागादिक भाव हैं ।।१४८।।

---

१. बन्धः. २. योगात् प्रकृतिप्रदेशबन्धौ ।

मिथ्यात्वादिद्रव्यपर्य्यायाणामपि बहिरङ्गकारणद्योतनमेतत्;—

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति ॥१४९॥

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावेन न बध्यन्ते ॥१४९॥

तन्त्रान्तरे किलाष्टविकल्पकर्मकारणत्वेन बन्धहेतुभूताश्चतुर्विकल्पाः प्रोक्ताः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगा इति। तेषा[2]मपि जीवभावभूता रागादयो बन्धहेतुत्वस्य हेतवः। यतो रागादिभावानामभावे द्रव्यमिथ्यात्वासंयमकषाययोगसद्भावेऽपि जीवा

अथ न केवलं योगाबंधस्य बहिरंगनिमित्तं भवंति मिथ्यात्वादि द्रव्यत्वादि द्रव्यप्रत्यया अपि रागादिभावप्रत्ययापेक्षया बहिरंगनिमित्तमिति समर्थयति;—**हेदू** हि हेतुः कारणं हि स्फुटं। कति-संख्योपेतः। **चहुवियप्पो** उदयागतमिथ्यात्वाविरतिकषाययोगद्रव्यप्रत्ययरूपेण चतुर्विकल्पो भवति। **कारणं भणियं** स च द्रव्यप्रत्ययरूपश्चतुर्विकल्पो हेतुः कारणं भणितः। कस्य। **अट्ठवियप्पस्स** रागाद्युपाधिरहितसम्यक्त्वाद्यष्टगुणसहितपरमात्मस्वभावप्रच्छादकस्य नवतराष्टविधद्रव्यकर्मणः **तेसिं पि य रागादी** तेषामपि रागादयः तेषां पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययानां रागादिविकल्परहितशुद्धात्मद्रव्यपरिण-तेर्भिन्ना जीवगतरागादयः कारणा भवंति। कस्मादिति चेत्। **तेसिमभावे ण वज्झंते** यतः कारणा-त्तेषां जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वाभाव-परिणता जीवा न बध्यंत इति। तथाहि—यदि जीवगतरागाद्यभावेपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव बंध एव। कस्मात्। संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति। तस्माद्

आगे द्रव्यमिथ्यात्वादिक बंधके बहिरंग कारण हैं ऐसा कथन करते हैं;—[चतुर्विकल्पः] चार प्रकारका द्रव्यप्रत्यय रूप [हेतुः] कारण [अष्टविकल्पस्य] आठप्रकारके कर्मोंका [कारणं] निमित्त [भणितं] कहा गया है [च] और [तेषां अपि] उन चार प्रकारके द्रव्यप्रत्ययोंका भी कारण [रागादयः] रागादिक विभाव भाव हैं [तेषां] उन रागादिक विभावरूपभावोंके [अभावे] विनाश होने पर [न बध्यन्ते] कर्म नहीं बंधते हैं। **भावार्थ**—आठप्रकार कर्मबंधके कारण मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार प्रकारके द्रव्यप्रत्यय हैं। उन द्रव्यप्रत्ययोंके कारण रागादिक भाव हैं, अतएव बंधके कारणके कारण रागादिक भाव हैं। क्योंकि रागादिक भावोंके अभाव होनेसे द्रव्य-मिथ्यात्व असंयम कषाय और योग इन चार प्रत्ययोंके होते हुये भी जीवके बंध नहीं होता, इस

---

१. अन्यसिद्धान्ते गोम्मटसारादिषु. २. मिथ्यात्वादीनां।

न बध्यन्ते, ततो रागादीनामन्तरङ्गत्वान्निश्चयेन बन्धहेतुत्वमवसेयमिति ॥१४९॥

इति बन्धपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् । अथ मोक्षपदार्थव्याख्यानम् ।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमसंवररूपेण भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्;—

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥१५०॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य ।
पावदि इंदियरहिदं अव्वावाहं सुहमणंतं ॥१५१॥ जुम्मं ।

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः ॥१५०॥
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तं ॥१५१॥ युग्मं ।

आस्रवहेतुर्हि जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावः । तदभावो भवति ज्ञानिनः । तद-

---

ज्ञायते नवतरद्रव्यकर्मबंधस्योदयागतद्रव्यप्रत्यया हेतवस्तेषां च जीवगतरागादयो हेतव इति । ततः स्थितं न केवलं योगा बहिरंगबंधकारणं द्रव्यप्रत्यया अपीति भावार्थः ॥१४९॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये बंधव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण "नवमोंतराधिकारः" समाप्तः ॥ अनंतरं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्ययागमभाषया रागादिविकल्परहितशुक्लध्यानसाध्ये वा मोक्षाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति । तत्र भावमोक्षः केवलज्ञानोत्पत्तिः जीवन्मुक्तोर्हत्पदमित्येकार्थः तस्याभिधानचतुष्टययुक्तस्यैकदेशमोक्षस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन "हेदु अभावे" इत्यादि सूत्रद्वयं । तदनंतरमयोगिचरमसमये शेषाघातिद्रव्यकर्ममोक्षप्रतिपादनरूपेण "दंसणणाणसमग्गं" इत्यादि सूत्रद्वयं । एवं गाथाचतुष्टयपर्यन्तं स्थलद्वयेन मोक्षाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका । अथ घातिचतुष्टयद्रव्यकर्ममोक्षहेतुभूतं परमसंवररूपं च भावमोक्षमाह;—**हेदु अभावे** द्रव्यप्रत्ययरूपहेत्वभावे सति **णियमा** निश्चयात् **जायदि** जायते । कस्य । **णाणिस्स** ज्ञानिनः ।

कारण रागादिक भाव ही बंध के अंतरंग मुख्य कारण हैं, गौणकारण चारित्रप्रत्यय है । इस प्रकार बंधपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥१४९॥

अब मोक्षपदार्थका व्याख्यान किया जाता है, सो प्रथम ही द्रव्यमोक्षका कारण परमसंवररूप मोक्षका स्वरूप कहते हैं;—**[हेत्वभावे]** रागादि कारणोंके अभावसे **[नियमात्]** निश्चयसे **[ज्ञानिनः]** भेद-विज्ञानीके **[आस्रवनिरोधः]** आस्रवभावका अभाव **[जायते]** होता है **[तु]** और **[आस्रव भावेन**

---

१. ह्रेतत्वं ज्ञातव्यम ।

भावे भवत्यास्रवभावाभावः। आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः। कर्माभावेन भवति सार्वज्ञम्। सर्वदर्शित्वमव्याबाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति। स एष जीवन्मुक्तिनामा भावमोक्षः कथमिति चेत्। भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृतचैतन्यस्य क्रमप्रवर्तमानज्ञप्तिक्रियारूपः। स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्यकर्मास्रवहेतुः। स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुवृत्तिरूपेण प्रहीयते। ततोऽस्य आस्रवभावो निरुध्यते। ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्यवीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्तर्मुहूर्तमतिबाह्य

स कः। आसवणिरोधो जीवाश्रितरागाद्यास्रवनिरोधः आसवभावेण विणा भावास्रवस्वरूपेण विना जायदि कम्मस्स दु णिरोधो मोहनीयादिघातिचतुष्टयरूपस्य कर्मणो जायते निरोधो विनाशः। इति प्रथमगाथा। कम्मस्साभावेण य घातिकर्मचतुष्टयस्याभावेन च। सव्वण्हू सव्वलोयदरिसो य सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च सन्। किं करोति। पावदि प्राप्नोति। किं। सुहं सुखं। किं विशिष्टं। इंदियरहिदं अव्वावाहमणंतं अतीन्द्रियमव्यावाधमनंतं। इति संक्षेपेण भावमोक्षो ज्ञातव्यः। तद्यथा। कोसौ भावः कश्च मोक्षः इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—भावः स त्वत्र विवक्षितः कर्मावृतसंसारिजीवस्य क्षायोपशमिकज्ञानविकल्परूपः। स चानादिमोहोदयवशेन रागद्वेषमोहरूपेणाशुद्धो भवतीति। इदानीं तस्य भावस्य मोक्षः कथ्यते। यदायं जीवः आगमभाषया कालादिलब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखपरिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथमतस्तावन्मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनामुपशमेन क्षयोपशमेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठिभक्त्यादिरूपेण पराश्रितधर्म्यध्यानबहिरंगसहकारित्वेनानंतज्ञानादिस्वरूपोऽहमित्यादिभावनास्वरूपमात्माश्रितं धर्म्यध्यानं प्राप्य आगमकथितक्रमेणासंयत-

---

विना] कर्मका आगमन न होनेसे [कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्मबंधका [निरोधः] अभाव [जायते] होता है। [च] और [कर्मणां] ज्ञानावरणादि कर्मोंका [अभावेन] विनाश करके [सर्वज्ञः] सबका जाननेवाला [च] और [सर्वलोकदर्शी] सबका देखनेवाला होता है, तब वह [इन्द्रियरहितं] इन्द्रियाधीन नहीं और [अव्याबाधं] बाधारहित [अनन्तं] अपार ऐसे [सुखं] आत्मीक सुखको [प्राप्नोति] प्राप्त होता है। **भावार्थ—**जीवके आस्रवका कारण मोहरागद्वेषरूप परिणाम हैं। जब इन तीन अशुद्ध भावोंका विनाश हो तब ज्ञानी जीवके अवश्य ही आस्रवभावोंका अभाव होता है। जब ज्ञानीके आस्रवभावका अभाव होता है तब कर्मका नाश होता है। कर्मोंके नाश होने पर निरावरण सर्वज्ञपद तथा सर्वदर्शी पद प्रगट होता है और अखंडित अतीन्द्रिय अनन्त सुखका अनुभव होता है। इस पदका नाम जीवन्मुक्त भावमोक्ष कहा जाता है। देहधारी जीते रहते ही भावकर्मरहित सर्वथा शुद्धभावसंयुक्त मुक्त हैं, इस कारण जीवन्मुक्त कहलाते हैं। यदि कोई पूछे कि किसप्रकार जीवन्मुक्त होते हैं? सो कहते हैं कि कर्मसे आच्छादित आत्माके क्रमसे प्रवर्तमान ज्ञानक्रियारूप भाव संसारी जीवके अनादि मोहनीय कर्मके वशसे अशुद्ध हैं। द्रव्यकर्मके आस्रवका कारण है सो भावज्ञानी जीवके मोहरागद्वेषकी प्रवृत्तिसे कमी होता है, अतएव इस भेदविज्ञानीके आस्रवभावका

युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानतामवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद् भावकर्म विनश्यति । ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापारोऽव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते । इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ॥१५०।१५१॥

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत्;—

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं ।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स ॥१५२॥

सम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टयमध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शनमोहक्षयेण क्षायिकसम्यक्त्वं कृत्वा तदनंतरमपूर्वादिगुणस्थानेषु प्रकृतिपुरुषनिर्मलविवेकज्योतीरूपप्रथमशुक्लध्यानमनुभूय रागद्वेषरूपचारित्रमोहोदयाभावेन निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिरूपं चारित्रमोहविध्वंसनसमर्थं वीतरागचारित्रं प्राप्य मोहक्षपणं कृत्वा मोहक्षयानंतरं क्षीणकषायगुणस्थानेंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा द्वितीयशुक्लध्यानेन ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मत्रयं युगपदंत्यसमये निर्मूल्य केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयस्वरूपं भावमोक्षं प्राप्नोतीति भावार्थः ॥१५०।१५१॥

एवं भावमोक्षस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं । अथ वेदनीयादिशेषाघातिकर्मचतुष्टयविनाशरूपायाः सकलद्रव्यनिर्जरायाः कारणं ध्यानस्वरूपं कथयति;—"दंसण" इत्यादि पदखंडनरूपेण

निरोध होता है । जब इसके मोहकर्मका क्षय होता है तब इसके अत्यन्त निर्विकार वीतराग-चारित्र प्रगट होता है । अनादिकालसे आस्रव आवरण द्वारा अनन्त चैतन्यशक्ति इस आत्माकी मुद्रित (ढकीहुई) है, वही इस ज्ञानीके शुद्धक्षायोपशमिक निर्मोहज्ञानक्रियाके होते हुए अन्तर्मूहूर्त्तपर्यन्त रहती है । तत्पश्चात् एक ही समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्मके क्षय होनेसे कथंचित्प्रकार कूटस्थ अचल केवलज्ञान अवस्थाको प्राप्त होता है । उस समय ज्ञानक्रियाकी प्रवृत्ति क्रमसे नहीं होती क्योंकि भावकर्मका अभाव है । सो ऐसी अवस्थाके होनेसे वह भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी इन्द्रियव्यापाररहित अव्याबाध अनन्त सुखसंयुक्त सदाकाल स्थिरस्वभावसे स्वरूपगुप्त रहते हैं । यह भावकर्मसे मुक्तका स्वरूप दिखाया, और ये ही द्रव्यकर्मसे मुक्त होनेका कारण परम संवरका स्वरूप है । जब यह जीव केवलज्ञान दशाको प्राप्त होता है तब इसके चार अघातिया कर्म जली हुई रस्सी की तरह द्रव्यकर्म रहते हैं । उन द्रव्यकर्मोंके नाशको अनन्त चतुष्टय परम संवर कहते हैं ॥१५०॥१५१॥

आगे द्रव्यकर्म मोक्षका कारण और परम निर्जराका कारण ध्यानका स्वरूप दिखाते हैं;—[दर्शनज्ञानसमग्रं] यथार्थ वस्तुको सामान्य देखने और विशेषतापूर्वक जाननेसे परिपूर्ण [ध्यानं]

---

१. निश्चलज्ञानत्वम् ।

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं ।
जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः ।।१५२।।

एवमस्य खलु भावमुक्तस्य भगवतः केवलिनः स्वरूपतृप्तत्वाद्विश्रान्तसुखदुःखकर्मविपाककृतविक्रियस्य प्रक्षीणावरणत्वादनन्तज्ञानदर्शनसंपूर्णशुद्धज्ञानचेतनामयत्वादतीन्द्रियत्वाच्चान्यद्रव्यसंयोगवियुक्तं शुद्धस्वरूपे विचलितचैतन्यवृत्तिस्वरूपत्वात्कथ-

---

व्याख्यानं क्रियते-दंसण णाण दर्शनज्ञानाभ्यां कृत्वा समग्गं परिपूर्णं। किं। झाणं ध्यानं। पुनरपि किंविशिष्टं? णो अण्णदव्वसं जुत्तं अन्यद्रव्यसंयुक्तं न भवति। इत्थंभूतं ध्यानं जायदि णिज्जरहेदू निर्जराहेतुर्जायते। कस्य? सहावसहिदस्स साहुस्स शुद्धस्वभावसहितस्य साधोरिति। तथाहि। तस्य पूर्वोक्तभावमुक्तस्य केवलिनो निर्विकारपरमानंदैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखतृप्तत्वाद्व्यावृत्तहर्षविषादरूपसांसारिकसुखदुःखविक्रियस्य केवलज्ञानदर्शनावरणविनाशादसहायकेवलज्ञानदर्शनसहितं सहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वादिन्द्रियव्यापारादिबहिर्द्रव्यालंबनाभावाच्च परद्रव्यसंयोगरहितं स्वरूपनिश्चलत्वादविचलितचैतन्यवृत्तिरूपं च यदात्मनः स्वरूपं तत्पूर्वसंचितकर्मणां ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च दृष्ट्वा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः। अत्राह शिष्यः। इदं परद्रव्यालंबन रहितं ध्यानं केवलिनां भवतु। कस्मात्? केवलिनामुपचारेण ध्यानमिति वचनात्। चारित्रसारादौ ग्रन्थे भणितमास्ते। छद्मस्थतपोधनाः द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यात्वा केवलज्ञानमुत्पादयंति तत्परद्रव्यालंबनरहितं कथं घटत इति। परिहारमाह। द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं ग्राह्यं भावपरमाणुशब्देन च भावसूक्ष्मत्वं न च पुद्गलपरमाणुः। इदं व्याख्यानं सर्वार्थसिद्धिटिप्पणके भणितमास्ते। अस्य संवादवाक्यस्य विवरणं क्रियते। द्रव्यशब्देनात्मद्रव्यं ग्राह्यं तस्य तु परमाणुः। परमाणुरिति कोर्थः? रागाद्युपाधिरहिता सूक्ष्मावस्था। तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत्? निर्विकल्पसमाधिविषयादिति द्रव्यपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं। भावशब्देन तु तस्यैवात्मद्रव्यस्य स्वसंवेदनज्ञानपरिणामो ग्राह्यः तस्य भावस्य परमाणुः। परमाणुरिति कोर्थः रागादिविकल्परहिता सूक्ष्मावस्था।

परद्रव्य चिन्ताका निरोधरूप ध्यान [निर्जराहेतुः] कर्मबन्धस्थितिकी अनुक्रम परिपाटीसे खिरनेका कारण [जायते] होता है। यह ध्यान किसके होता है? [स्वभावसहितस्य साधोः] आत्मीक स्वभावसंयुक्त साधु महामुनिके होता है। यह ध्यान कैसा है? [नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं] परद्रव्य संबंध से रहित है। भावार्थ—जब यह भगवान् भावकर्ममुक्त केवल अवस्थाको प्राप्त होता है तब निजस्वरूपमें आत्मीक सुखसे तृप्त होता है। इसलिये कर्मजनित सुखदुःख विपाकक्रियाके वेदनसे रहित

---

१. केवलिनः २. रहितः।

ञ्चिद्ध्यानव्यपदेशार्हमात्मनः स्वरूपं पूर्वसंचितकर्मणां शक्तिशातनं वा विलोक्य निर्जराहेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ॥१५२॥

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥१५३॥

यः संवरेण युक्तो निर्जरन्नथ सर्वकर्माणि।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः ॥१५३॥

तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत्। इंद्रियमनोविकल्पाविषयत्वादिति भावपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं ज्ञातव्यं। अयमत्र भावार्थः—प्राथमिकानां चित्तस्थिरीकरणार्थं विषयाभिलाषरूपध्यानवंचनार्थं च परंपरया मुक्तिकारणं पंचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यं ध्येयं भवति दृढतरध्यानाभ्यासेन चित्ते स्थिरे जाते सति निजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयं। तथा चोक्तम् श्रीपूज्यपादस्वामिभिः निश्चयध्येयव्याख्यानं। आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः। अस्य व्याख्यानं क्रियते। आत्मा कर्ता आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मन्येवाधिकरणभूते आत्मनः करणभूतेन असौ प्रत्यक्षीभूतात्मा क्षणमन्तमुहूर्तमुपजनयन् धारयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तो सर्वज्ञो जात इत्यर्थः। इति परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकभावं ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्यः ॥१५२॥

अथ सकलमोक्षसंज्ञं द्रव्यमोक्षमावेदयति;—**जो** यः कर्ता **संवरेण जुत्तो** परमसंवरेण युक्तः। किं कुर्वन्? **णिज्जरमाणो य** निर्जरयंश्च। कानि। **सव्वकम्माणि** सर्वकर्माणि। पुनः किंविशिष्ट। **ववगदवेदाउस्सो** व्यपगतवेदनीयायुष्यसंज्ञकर्मद्वयः। एवंभूतः स किंकरोति? **मुअदि भवं** त्यजति

होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मके जाने पर अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शनसे शुद्ध चेतनामयी होता है। इस कारण अतीन्द्रिय रसका आस्वादी होकर बाह्य पदार्थोंके रसको नहीं भोगता। और वही परमेश्वर अपने शुद्ध स्वरूपमें अखंडित चैतन्यस्वरूपमें प्रवर्तित होता है। इस कारण कथंचित्प्रकार अपने स्वरूपका ध्यानी भी है अर्थात् परद्रव्यसंयोगसे रहित आत्मस्वरूपध्यान नामको पाता है। इस कारण केवलीके भी उपचारमात्र स्वरूप-अनुभवनकी अपेक्षा ध्यान कहा जाता है। पूर्व बंधे कर्म अपनी शक्तिकी कमीसे समय समय खिरते रहते हैं, इस कारण वही ध्यान निर्जराका कारण है। यह भावमोक्षका स्वरूप जानो ॥१५२॥

आगे द्रव्यमोक्षका स्वरूप कहते हैं;—[यः] जो पुरुष [संवरेण युक्तः] आत्मानुभवरूप परमसंवरसे संयुक्त है [अथ] अथवा [सर्वकर्माणि] अपने समस्त पूर्व बन्धे कर्मोंको [निर्जरन्] अनुक्रमसे खपाता हुआ प्रवर्तित है, और जिस पुरुषसे [व्यपगतवेद्यायुष्कः] वेदनीय, नाम, गोत्र, आयु कर्म

अथ खलु भगवतः केवलिनो भावमोक्षे सति प्रसिद्धपरमसंवरस्योत्तरकर्मसन्ततौ निरुद्धायां परमनिर्जराकारणध्यानप्रसिद्धौ सत्यां पूर्वकर्मसंततौ कदाचित्स्वभावेनैव कदाचित्समुद्घातविधानेनायुःकर्मसमभूतः स्थित्यामायुःकर्मानुसारेणैव निर्जीर्यमाणायामपुनर्भवाय[1] तद्भव[2]त्यागसमये वेदनीयायुर्नामगोत्ररूपाणां जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः

भवं येन कारणेन भवशब्दवाच्यं नामगोत्रसंज्ञं कर्मद्वयं मुंचति तेण सो मोक्खो तेन कारणेन स प्रसिद्धो मोक्षो भवति। अथवा स पुरुष एवाभेदेन मोक्षो भवतीत्यर्थः। तद्यथा। अथास्य केवलिनो भावमोक्षे सति निर्विकारसंवित्तिसाध्यं सकलसंवरं कुर्वतः पूर्वोक्तशुद्धात्मध्यानसाध्यां चिरसंचितकर्मणां सकलनिर्जरां चानुभवतोन्तर्मुहूर्तजीवितशेषे सति वेदनीयनामगोत्रसंज्ञकर्मत्रयस्यायुषः सकाशादधिकस्थितिकाले तत्कर्मत्रयाधिकस्थितिविनाशार्थं संसारस्थितिविनाशार्थं वा दंडकपाटप्रतरलोकपूर्णसंज्ञं केवलिसमुद्घातं कृत्वाथवायुष्यसहकर्मत्रयस्य संसारस्थितेर्वा समानस्थितिकाले पुनरकृत्वा च तदनन्तरं स्वशुद्धात्मनिश्चलवृत्तिरूपं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञमुपचारेण तृतीयशुक्लध्यानं कुर्वतः तदनन्तरं सयोगिगुणस्थानमतिक्रम्य सर्वप्रदेशाह्लादैकाकारपरिणतपरमसमरसीभावलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तं समस्तशीलगुणनिधानं समुच्छिन्नक्रियासंज्ञं चतुर्थशुक्लध्यानाभिधानं परमयथाख्यातचारित्रं प्राप्तस्यायोगिद्विचरमसमये शरीरादिद्वासप्ततिप्रकृतिचरमसमये वेदनीयायुष्यनामगोत्रसंज्ञकर्मचतुष्करूपस्य त्रयोदशप्रकृतिपुद्गलपिंडस्य जीवेन सहात्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षो भवति। तदनंतरं किं करोति भगवान्? पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्चेति हेतुचतुष्टयात् रूपात् स काशाद्यथासंख्येनाविशुद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टांतचतुष्टयेनैकसमयेन लोकाग्रं गच्छति। परतो गतिकारणभूतधर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः

दूर हो गए हैं। [सः] वह भगवान् परमेश्वर [भवं] अघातिकर्म सम्बन्धी संसारको [मुञ्चति] छोड़ देता है, नष्ट कर देता है [तेन मोक्षः] इसलिये द्रव्य मोक्ष कहा जाता है। **भावार्थ**—इस केवली भगवानके भगवानके भावमोक्ष होनेपर परमसंवर भाव होते हैं। उनसे आगामी कालसम्बन्धिनी कर्मकी परंपराका निरोध होता है। और पूर्व बंधे कर्मोंकी निर्जराका कारण ध्यान होता है, उससे पूर्वकर्मसंततिका किसी कालमें तो स्वभावहीसे अपना रस देकर खिरना होता है और किसी काल समुद्घातविधानसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। और किसी काल यदि वेदनी, नाम, गोत्र इन तीन कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके बराबर हो तब तो सब चार अघातिया कर्मोंकी स्थिति बराबर ही खिरके मोक्ष अवस्था होती है और जो आयुकर्मकी स्थिति अल्प हो और

---

१. मोक्षाय. २. तस्य मनुष्यभवस्य त्यागसमये परित्यागसमये।

कर्मपुद्गलानां द्रव्यमोक्षः ॥१५३॥ इति मोक्षपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

समाप्तं च मोक्षमार्गावयवरूपसम्यग्दर्शनज्ञानविषयभूतनवपदार्थव्याख्यानम् ॥२॥

सन् विषयातीतमनश्वरं परमसुखमनंतकालमनुभवतीति भावार्थः ॥१५३॥ इति द्रव्यमोक्षस्वरूप-कथनरूपेण सूत्रद्वयं गतं । एवं भावमोक्षद्रव्यमोक्षप्रतिपादनमुख्यतया गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन दशमोन्तराधिकारः ॥

इति तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावत् "अभिवंदिऊण सिरसा" इमां गाथामादिं कृत्वा गाथाचतुष्टयं व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन तदनंतरं षोडशगाथा जीवपदार्थप्रतिपादनेन तदनंतरं गाथाचतु-ष्टयमजीवपदार्थनिरूपणार्थं ततश्च गाथात्रयं पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण सूचनार्थं तदनन्तरं गाथाचतुष्टयं पुण्यपापपदार्थद्वयविवरणार्थं ततश्च गाथाषट्कं शुभाशुभास्रवव्याख्यानार्थं तदनन्तरं सूत्रत्रयं संवरपदार्थस्वरूपकथनार्थं ततश्च गाथात्रयं निर्जरापदार्थव्याख्यानेन निमित्तं तदनंतरं सूत्रत्रयं बंधपदार्थकथनार्थं तदनंतरं सूत्रचतुष्टयं मोक्षपदार्थव्याख्यानार्थं चेति दशभिरंतराधिकारैः पंचा-शद्गाथाव्र्यवहारमोक्षमार्गावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां **जीवादिनवपदार्थानां प्रतिपादकः द्वितीयमहाधिकारः समाप्तः ॥२॥**

वेदनीय, नाम, गोत्रकी बहुत हो तो समुद्घात स्थिति खिरके मोक्ष अवस्था होती है। इस प्रकार जीवसे अत्यंत सर्वथाप्रकार कर्मपुद्गलोंका वियोग होनेका नाम द्रव्यमोक्ष है ॥१५३॥

इस प्रकार द्रव्यमोक्षका व्याख्यान पूर्ण हुआ और मोक्षमार्गके अंग सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके निमित्तभूत **नवपदार्थोंका व्याख्यान** भी पूरा हुआ ॥२॥

---

१. विस्तारकथिता ।

अथ मोक्षमार्गप्रपञ्चसूचिका चूलिका ॥३॥

मोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं ।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥१५४॥

जीवस्वभावं ज्ञानमप्रतिहतदर्शनमनन्यमयं ।
चारित्रं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिन्दितं भणितं ॥१५४॥

जीवस्वभावं नियतं चरितं मोक्षमार्गः । जीवस्वभावो हि ज्ञानदर्शने अनन्यमयत्वात् । अनन्यमयत्वं च तयोर्विशेषसामान्यचैतन्यस्वभावजीवनिर्वृत्तत्वात् । अथ तयोर्जीव-

---

इत ऊर्ध्वं मोक्षावाप्तिपुरस्सरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाभिधाने विशेषव्याख्यानेन चूलिकारूपे तृतीयमहाधिकारे "जीवसहाओ णाणं" इत्यादिविंशतिगाथा भवंति । तत्र विंशतिगाथासु मध्ये केवलज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धजीवस्वरूपकथनेन जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग इति कथनेन च "जीवसहाओ णाणं" इत्यादि प्रथमस्थले सूत्रमेकं तदनंतरं शुद्धात्माश्रितः, स्वसमयो मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामाश्रितः परमसमय इति प्रतिपादनरूपेण 'जीवो सहावणियदो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ शुद्धात्मश्रद्धानादिरूपस्वसमयविलक्षणस्य परसमयस्यैव विशेषविवरणमुख्यत्वेन 'जो परदव्वंहि" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनस्वरूपस्य स्वसमयस्यैव पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन "जो सव्वसंग" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानपंचमहाव्रताद्यनुष्ठानरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्य निरूपणमुख्यत्वेन "धम्मादी सद्दहणं" इत्यादि पंचमस्थले सूत्रमेकं, अथ व्यवहाररत्नत्रयेण साध्यस्याभेदरत्नत्रयस्वरूपनिश्चयमोक्षमार्गप्रतिपादनरूपेण "णियच्छयणयेण" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं यस्यैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमुपादेयं प्रतिभाति स एव भावसम्यग्दृष्टिरिति व्याख्यानमुख्यत्वेन "जेण विजाण" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाभ्यां क्रमेण मोक्षपुण्यबंधौ भवत इति प्रतिपादकमुख्यत्वेन "दंसणणाणचरित्ताणि" इत्याद्यष्टमस्थले सूत्रमेकं । अथ निर्विकल्पपरमसमाधिस्वरूपसामायिकसंयमे स्थातुं समर्थोपि तत्त्यक्त्वा यद्येकान्तेन सरागचारित्रानुचरणं मोक्षकारणं मन्यते तदा स्थूलपरसमयो भण्यते यदि पुनस्तत्र स्थातुमीहमानोपि सामग्रीवैकल्येनाशुभवंचनार्थं शुभोपयोगं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयो भण्यत इति व्याख्यानरूपेण "अण्णाणादो णाणी" इत्यादि गाथापंचकं, तदनंतरं तीर्थंकरादिपुराणजीवादिनव-

---

आगे मोक्षमार्गका प्रपंच सूचनामात्र कहा जाता है, अतः प्रथम ही मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाया जाता है;—[ज्ञानं] यथार्थ वस्तु-परिच्छेदन [अप्रतिहतदर्शनं] यथार्थ वस्तुका अखंडित सामान्यावलोकन यह दोनों गुण [अनन्यमयं] चैतन्यस्वभावसे एक ही हैं [जीवस्वभावं] जीवका

स्वरूपभूतयोर्ज्ञानदर्शनयोर्यन्नियतमवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपवृत्तिमयमस्तित्वं रागाद्दिपरिणत्यभावावादनिन्दितं तच्चरितं, तदेव मोक्षमार्ग इति। द्विविधं हि किल संसारिषु चरितं। स्वचरित परचरितं च। स्वसमयपरसमयावित्यर्थः। तत्र स्वभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं स्वचरितम्। परभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं परच-

---

पदार्थप्रतिपादकागमपरिज्ञानसहितस्य तद्भक्तियुक्तस्य च यद्यपि तत्काले पुण्यास्रवपरिणामेन मोक्षो नास्ति तथापि तदाधारेण कालांतरे निरास्रवशुद्धोपयोगपरिणामसामग्रीप्रस्तावे भवतीति कथनमुख्यत्वेन "सपदत्थं" इत्यादि सूत्रद्वयं। अथास्य पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतं वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति व्याख्यानरूपेण "तह्मा णिव्वुदिकामो" इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमुपसंहाररूपेण शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थं "मग्गप्पभावणट्ठं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं। एवं द्वादशान्तरस्थलैर्मोक्षमोक्षमार्गविशिष्टव्याख्यानरूपे तृतीयमहाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा। अथ गाथापूर्वार्द्धेन जीवस्वभावमपरार्द्धेन तु जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति च प्रतिपादयति। अथवा निश्चयज्ञानदर्शनचारित्राणि जीवस्वभावो भवतीत्युपदिशति;—**जीवसहाओ णाणं अप्पडिहदद्दंसणं अणण्णमयं** जीवस्वभावो भवति। किं कर्तृ? ज्ञानमप्रतिहतदर्शनं च। कथंभूतं? अनन्यमयमभिन्नं इति पूर्वार्द्धेन जीवस्वभावः कथितः **चरियं य तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं** चरितं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिंदितं भणितं कथितं। किं चरितं च। किं तत्? अस्तित्वं। किंविशिष्टं? तयोर्ज्ञानदर्शनयोर्नियतं स्थितं। पुनरपि किंविशिष्टं? रागाद्यभावादनिंदितं, इदमेव चरितं मोक्षमार्ग इति। अथवा द्वितीयव्याख्यानं। न केवलं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवस्वभावो भवति किंतु पूर्वोक्तलक्षणं चरितं स्वरूपास्तित्वं चेति। इतो विस्तरः—समस्तवस्तुगतानंतधर्माणां युगपद्विशेषपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानं तथा सामान्ययुगपत्परिच्छित्तिसमर्थं केवलदर्शनमिति जीवस्वभावः। कस्मादिति चेत्। सहजशुद्धसामान्यविशेषचैतन्यात्मकजीवास्तित्वात्सकाशात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदादिति पूर्वोक्तजीवस्वभावादभिन्नमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिंद्रियव्यापाराभावान्निर्विकारमदूषितं चेत्येवं गुणविशिष्टस्वरूपास्तित्वं जीवस्वभावनियतचरितं भवति। तदपि कस्मात्? स्वरूपे चरणं चारित्रमितिवचनात्। तच्च द्विविधं स्वयमनाचरतोपि परानुभूतेष्टकामभोगेषु स्मरणमपध्या-

---

असाधारण लक्षण है। [**च तयोः**] और उन ज्ञान तथा दर्शनका [नियतं] निश्चित स्थिररूप [अस्तित्वं] अस्तिभाव [अनिन्दितं] निर्मल [**चारित्रं**] आचरणरूप चारित्रगुण [भणितं] सर्वज्ञ वीतरागदेवने कहा है। **भावार्थ**—जीवके स्वभाव भावोंकी जो थिरता है, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। वही चारित्र मोक्षमार्ग है। वे जीवके स्वाभाविक भाव ज्ञान-दर्शन हैं और वे आत्मासे अभेद और भेदस्वरूप हैं। एक चैतन्यभावकी अपेक्षा अभेद है। और वह ही एक चैतन्यभाव सामान्यविशेषकी अपेक्षा दो प्रकारका है। दर्शन सामान्य है, ज्ञानका स्वरूप विशेष है। चेतनाकी अपेक्षा ये दोनों एक हैं। ये ज्ञानदर्शन जीवके स्वरूप हैं। इनका जो निश्चल थिर होना अपनी उत्पाद व्ययव्स्थासे और रागादिक परिणतिके अभावसे निर्मल होने का नाम चारित्र है, वही मोक्षका मार्ग है। इस संसारमें चारित्र दो प्रकारका है। एक स्वचारित्र और दुसरा परचारित्र है। स्वचा-

रितम्। तत्र यत्स्वभावावस्थितास्तित्वरूपं परभावावस्थितास्तित्वव्यावृत्तत्वेनात्यन्त-मनिन्दितम्, तदत्र साक्षान्मोक्षमार्गत्वेनावधारणीयमिति ॥१५४॥

स्वसमयपरसमयोपादानव्युदासपुरस्सरकर्मक्षयद्वारेण जीवस्वभावनियतचरितस्य मोक्षमार्गत्व-द्योतनमेतत्;—

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥१५५॥

जीवः स्वभावनियतः अनियतगुणपर्यायोऽथ परसमयः।
यदि कुरुते स्वकं समयं प्रभ्रस्यति कर्मबन्धात् ॥१५५॥

संसारिणो हि जीवस्य ज्ञानदर्शनावस्थितत्वात् स्वभावनियतस्याप्यनादि मोहनीयोदयानुवृत्तिरूपत्वेनोपरक्तोपयोगस्य सतः समुपात्तभावस्वरूप्यत्वादनियतगुण-

---

नलक्षणमिति तदादि परभावपरिणमनं परचरितं तद्विपरीतं स्वचरितं। इदमेव चारित्रं परमार्थशब्द-वाच्यस्य मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानतां मोक्षाद्भिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरा-गादिषु निरतानामस्माकमेवानंतकालो गतः, एवं ज्ञात्वा तदेव जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षकारण-भूतं निरंतरं भावनीयमिति सूत्रतात्पर्यं। तथाचोक्तं। "एमेव गओ कालो असारसंसारकारणरयाणं। परमठ्ठकारणाणं कारण हु जाणियं किंपि" ॥१५४॥

एवं जीवस्वभावकथनेन जोवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति कथनेन च प्रथमस्थले गाथा गता। अथ स्वसमयोपादानेन कर्मक्षयो भवतीति हेतोर्जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्गो भवत्येवं भण्यते;—**जीवो सहावणियदो** जीवो निश्चयेन स्वभावनियतोपि **अणियदगुणपज्जओ य परसमओ** अनियतगुणपर्यायः सन्नथ परसमयो भवति। तथाहि। जीवः शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शन-स्वभावस्तावत् पश्चाद्व्यवहारेण निर्मोहशुद्धात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतेनानादिमोहोदयवशेन मतिज्ञाना-दिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायपरिणतः सन् परसमयरतः परचरितो भवति यदा तु निर्मल-विवेकज्योतिःसमुत्पादकेन परमात्मानुभूतिलक्षणेन परमकलानुभवेन शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं भाव-

---

रित्रको स्वसमय और परचारित्रको परसमय कहते हैं। परमात्मामें स्थिरभाव स्वचारित्र है, और आत्माका परद्रव्यमें लगनरूप थिरभाव परचारित्र है। इनमेंसे जो आत्मा भावोंमें थिरताकरके लीन है, परभावसे परान्मुख है, स्वसमयरूप है सो साक्षात् मोक्षमार्ग जानना ॥१५४॥

आगे स्वसमयका ग्रहण परसमयका त्याग हो तब कर्मक्षयका द्वार होता है, उससे जीवस्व-भावकी निश्चल थिरताका मोक्षमार्गस्वरूप दिखाते हैं;—**[जीवः]** यद्यपि यह आत्मा **[स्वभावनियतः]** निश्चयसे अपने शुद्ध आत्मीक भावोंमें निश्चल है तथापि व्यवहारनयसे अनादि अविद्याकी वासनासे **[अनियतगुणपर्यायः]** परद्रव्यमें उपयोग होनेसे परद्रव्यको गुणपर्यायोंमें रत है, अपने गुणपर्यायोंमें निश्चल नहीं है, ऐसा यह जीव **[परसमयः]** परचारित्रका आचरणवाला कहा जाता है। **[अथ]** फिर वही संसारी जीव काललब्धि पाकर **[यदि]** यदि **[स्वकं समयं]** आत्मीक स्वरूपके आचरणको

पर्यायत्वं परसमयः। परचरितमिति यावत्। तस्यैवानादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वमपास्य अत्यन्तशुद्धोपयोगस्य सतः समुपात्तभावैक्यरूप्यत्वान्नियतगुणपर्यायत्वं स्वसमयः। स्वचरितमिति यावत्। अथ खलु यदि कथञ्चनोद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिर्जीवः परसमयं व्युदस्य स्वसमयमुपादत्ते तदा कर्मबंधादवश्यं भ्रश्यति। यतो हि जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग इति ॥१५५॥

परचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥१५६॥

यः परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावं।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः ॥१५६॥

यो हि मोहनीयोदयानुवृत्तिवशाद्रज्यमानोपयोगः सन्, परद्रव्ये शुभमशुभं

यति तदा स्वसमयः स्वचरितरतो भवति जदि कुणदि सगं समयं यदि चेत्करोति स्वकं समयं एवं स्वसमयपरसमयस्वरूपं ज्ञात्वा यदि निर्विकारस्वसंवित्तिरूपस्वसमयं करोति परिणमति **पब्भस्सदि कम्मबंधादो** प्रभ्रष्टो भवति कर्मबंधात् तदा केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिरूपान्मोक्षात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ वंधस्तस्माच्च्युतो भवति। ततो ज्ञायते स्वसंवित्तिलक्षणस्वसमयरूपं जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति भावार्थः ॥१५५॥

एवं स्वसमयपरसमयभेदसूचनरूपेण गाथा गता। अथ परसमयपरिणतपुरुषस्वरूपं पुनरपि व्यक्तीकरोति;—**जो परदव्वह्मि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं** यः परद्रव्ये शुभमशुभं वा रागेण

[कुरुते] करता है [तदा] तब [कर्मबन्धात्] द्रव्यकर्मके बन्ध होनेसे [प्रभ्रश्यति] रहित होता है। **भावार्थ—**यद्यपि यह संसारी जीव अपने निश्चित स्वभावसे ज्ञानदर्शनमें तिष्ठता है तथापि अनादि मोहनीय कर्मके वशीभूत होनेसे अशुद्धोपयोगी होकर अनेक परभावोंको धारण करता है। इस कारण निजगुणपर्यायरूप नहीं परिणमता, परसमयरूप प्रवर्तता है। इसीलिये परचारित्रके आचरनेवाला कहा जाता है। और वह ही जीव यदि काल पाकर अनादिमोहनीयकर्मकी प्रवृत्तिको दूर करके अत्यन्त शुद्धोपयोगी होता है और अपने एक निजरूपको ही धारण करता है, अपने ही गुणपर्यायोंमें परिणमता है, स्वसमयरूप प्रवर्तित होता है तब आत्मीक चारित्रका धारक कहा जाता है। जब यह आत्मा किसी प्रकार निसर्ग अथवा अधिगमसे प्रगट हो सम्यग्ज्ञान ज्योतिर्मयी होता है, परसमयको त्यागकर स्वसमयको अंगीकार करता है तब यह आत्मा अवश्य ही कर्मबन्धसे रहित होता है, क्योंकि निश्चल भावोंके आचरणसे ही मोक्ष सधता है ॥१५५॥

आगे परचारित्ररूप परसमयका स्वरूप कहा जाता है;—[यः] जो अविद्या-पिशाची-ग्रहीत जीव [परद्रव्ये] आत्मीक वस्तुसे विपरीत परद्रव्यमें [रागेण] मदिरापानवत् मोहरूपभावसे [यदि] जो [शुभं] व्रत भक्ति संयमादि भाव अथवा [अशुभ भावं] विषयकषायादि असत् भावको [करोति]

१, ४ उपरक्तोपयोगरूपेण उत्पन्नस्य।

वा भावमादधाति स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरित्रचर इति उपगीयते। यतो हि स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं। परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति ॥१५६॥

परचरितप्रवृत्तेर्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिषेधनमेतत्;—

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवंति ॥१५७॥

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिनाः प्ररूपयन्ति ॥१५७॥

इह किल शुभोपरक्तो भावः पुण्यास्रवः। अशुभोपरक्तः पापास्रव इति।

करोति यदि भावं सो सगचरित्तभट्ठो सः स्वकचरित्रभ्रष्टः सन् परचरियचरो हवदि जीवो परचरित्रचरो भवति जीव इति। तथाहि—यः कर्ता शुद्धगुणपर्यायपरिणतनिजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा निर्मलात्मतत्त्वविपरीतेन रागभावेन परिणम्य शुभाशुभपरद्रव्योपेक्षालक्षणाच्छुद्धोपयोगाद्विपरीतः समस्तपरद्रव्येषु शुभमशुभं वा भावं करोति स ज्ञानानंदैकस्वभावात्मा तत्त्वानुचरणलक्षणात्स्वकीयचारित्राद्भ्रष्टः सन् स्वसंवित्यनुष्ठानविलक्षणपरचरित्रचरो भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥१५६॥

अथ परचरित्रपरिणतपुरुषस्य बंधं दृष्ट्वा मोक्षं निषेधयति। अथवा पूर्वोक्तमेव परसमयस्वरूपं वृद्धमतसंवादेन दृढयति;—आसवदि जेण पुण्णं पावं वा आस्रवति येन पुण्यं पापं वा येन निरास्रवपरमात्मतत्त्वविपरीतेन सम्यगास्रवति। किं ? पुण्यं पापं वा। येन केन ? भावेन परिणामेन। कस्य भावेन। अप्पणो आत्मनः अथ अहो सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति स जीवो

करता है [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरित्रभ्रष्टः] आत्मीक शुद्धाचरणसे रहित [परचरितचरः] परसमयका आचरणवाला [भवति] होता है। भावार्थ—जो कोई पुरुष मोहकर्मके विपाकके वशीभूत होनेसे रागरूप परिणामोंसे अशुद्धोपयोगी होता है, विकल्पी होकर परमें शुभाशुभ भावोंको करता है सो स्वरूपाचरणसे भ्रष्ट होकर परवस्तुका आचरण करता हुआ परसमयी है ऐसा महन्त पुरुषोंने कहा है। आगममें प्रसिद्ध है कि आत्मीकभावोंमें शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो स्वसमय है और परद्रव्यमें अशुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो परसमय है। यह अध्यात्मरसके आस्वादी पुरुषोंका विलास है ॥१५६॥

आगे जो पुरुष परसमयमें प्रवर्तित होता है उसके बन्धका कारण है और मोक्षमार्गका निषेध है ऐसा कथन करते हैं;—[येन] जिस [भावेन] अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [आत्मनः] संसारी जीवके [पुण्यं] शुभ [अथवा] तथा [पापं] अशुभरूप कर्मवर्गणाका [आस्रवति] आस्रव होता है [सः] वह आत्मा [तेन] उस अशुद्धभावसे [परचरित्रः] परसमयका आचरण करनेवाला [भवति] होता है [इति] इस प्रकार [जिनाः] सर्वज्ञदेव [प्ररूपयंति] कहते हैं। भावार्थ—निश्चयसे इस लोक-

---

१. व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्राचरकः।

तत्र पुण्यं पापं वा येन भावेनास्रवति यस्य जीवस्य यदि स[2] भावो भवति स जीवस्तदा तेन परचरित इति प्ररूप्यते। ततः परचरितप्रवृत्तिर्बन्धमार्ग एव, न मोक्षमार्गः ॥१५७॥

स्वचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जो सव्वसंगमुक्को पण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥१५८॥

यः सर्वसङ्गमुक्तः अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन।
जानाति पश्यति नियतं सः स्वकचरितं चरति जीवः ॥१५८॥

यः[3] खलु निरुपरागोपयोगत्वात्सर्वसङ्गमुक्तः, परद्रव्यव्यावृत्तोपयोगत्वादनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ज्ञानदर्शनरूपेण जानाति, पश्यति, नियतमवस्थितत्वेन।

यदि निरास्रवपरमात्मस्वभावाच्च्युतो भूत्वा तं पूर्वोक्तं सास्रवभावं करोति तदा स जीवस्तेन भावेन शुद्धात्मानुभूत्याचरणलक्षणस्वचरित्राद्भ्रष्टः सन् परिचरित्रो भवतीति जिनाः प्ररूपयंति। ततः स्थितं सास्रवभावेन मोक्षो न भवतीति ॥१५७॥

एवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावाच्छुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपनिश्चयमोक्षमार्गविलक्षणस्य परसमयस्य विशेषविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। अथ स्वचरितप्रवृत्तपुरुषस्वरूपं विशेषेण कथयति;—"जो" इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते—**सो** सः कर्ता **सगचरियं चरदि** निजशुद्धात्मसंवित्यनुचरणरूपं परमागमभाषया वीतरागपरमसामायिकसंज्ञं स्वचरितं चरति अनुभवति। स कः। **जीवो** जीवः। कथंभूतः। **जो सव्वसंगमुक्को** यः सर्वसंगमुक्तः जगत्त्रयकालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च कृत्वा समस्तवाह्याभ्यंतरपरिग्रहेण मुक्तो रहितः शून्योपि निस्संगपरमात्मभावनोत्पन्नसुंदरानंदस्यंदिपरमानंदैकलक्षणसुखसुधारसास्वादेन पूर्णकलशवत्सर्वात्मप्रदेशेषु भरितावस्थः। पुनरपि किंविशिष्टः? **अणण्णमणो** अनन्यमनाः कपोतलेश्याप्रभृतिदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादि-

---

में शुभोपयोगरूपभाव पुण्यके आस्रवका कारण है और अशुभोपयोगरूपभाव पापास्रवका कारण है सो जिन भावों से पुण्यरूप वा पापरूप कर्म आस्रव होते हैं उनका नाम भाव आस्रव है, जिस जीवके जिस समय ये अशुद्धोपयोग भाव होते हैं उस काल वह जीव उन अशुद्धोपयोग भावोंसे परद्रव्यका आचरणवाला होता है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यके आचरणकी प्रवृत्तिरूप परसमय बंधका मार्ग, मोक्षमार्ग नहीं है। यह अर्हंद्देवकथित व्याख्यान जानो ॥१५७॥

आगे स्वसमयमें विचरने वाले पुरुषका स्वरूप विशेषतासे दिखाया है;—[यः] जो सम्यग्दृष्टी जीव [स्वभावेन] अपने शुद्धभावसे [आत्मानं] शुद्ध जीवको [नियतं] निश्चय करके [जानाति] जानता है और [पश्यति] देखता है [सः] वह [जीवः] जीव [सर्वसङ्गमुक्तः] अन्तरंग बहिरंग परिग्रहसे

१. यदा काले. २. तदा तस्य जीवस्य पुण्यपापमयः. ३. यः खलु पुरुषः।

स खलु स्वकं चरति जीवः। यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुषे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरितमिति ॥१५८॥

शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत्;—

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥१५९॥

चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा।
दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः ॥१५९॥

यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावभावरहितात्मा सन्, स्वद्रव्यमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनो-

---

समस्तपरभावोत्पन्नविकल्पजालरहितत्वेनैकाग्रमनाः। पुनश्च किं करोति? **जाणदि** जानाति स्वपर-परिच्छित्त्याकारेणोपलभते **पस्सदि** पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति **णियदं** निश्चितं। कं? **अप्पणं** निजात्मानं। केन कृत्वा? **सहावेण** निर्विकारचैतन्यचमत्कारप्रकाशेनेति। ततः स्थितं विशुद्धज्ञान-दर्शनलक्षणे जीवस्वभावे निश्चलावस्थानं मोक्षमार्गं इति ॥१५८॥

अथ तमेव स्वसमयं प्रकारांतरेण व्यक्तीकरोति;—**चरदि** चरति। किं? **चरियं** चरितं। कथंभूतं? **सगं** स्वकं **सो** स पुरुषः निरुपरागसदानंदैकलक्षणं निजात्मानुचरणरूपं जीवितमरणलाभा-लाभसुखदुःखनिंदाप्रशंसादिसमताभावानुकूलं स पुरुषः स्वकीयं चरितं चरति। यः किंविशिष्टः? **जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा** यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा पंचेन्द्रियविषयाभिलाषममत्वप्रभृतिनिरवशेष-विकल्पजालरहितत्वात्समस्तबहिरंगपरद्रव्येषु ममत्वकारणभूतेषु योगी स्वात्मभाव उपादेयबुद्धिरालंबन-

---

रहित [अनन्यमनाः सन्] एकाग्रतासे चित्तके निरोधपूर्वक स्वरूपमें मगन होता हुआ [स्वकचरितं] स्वसमयके आचरणको [चरति] आचरण करता है। **भावार्थ**—आत्मस्वरूपमें निजगुणपर्यायके निश्चलस्वरूपमें अनुभवन करनेका नाम स्वसमय है और उसका ही नाम स्वचारित्र है ॥१५८॥

आगे शुद्ध स्वचारित्रमें प्रवृत्तिका मार्ग दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [स्वकं चरितं] अपने आचरणको [चरति] आचरता है [सः] वह पुरुष [आत्मनः] आत्माके [दर्शनज्ञानविकल्पं] दर्शन और ज्ञानके निराकार साकार अवस्थारूप भेदको [अविकल्पं] भेदरहित [चरति] आचरता है। कैसा है वह भेदविज्ञानी? [परद्रव्यात्मभावरहितात्मा] परद्रव्यमें अहंभावरहित है स्वरूप जिसका ऐसा है। **भावार्थ**—जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी समस्त मोहचक्रसे रहित है और परभावोंका त्यागी होकर आत्मभावोंमें सन्मुख हुआ अधिकतासे प्रवर्तित है। आत्मद्रव्यमें स्वाभाविक जो दर्शन-ज्ञानका गुणभेद उसको आत्मासे अभेदरूप जानकर आचरण करता है। ऐसा जो कोई जीव

---

१. सन्मुखीभूत्वा।

ऽविकल्पत्वेन चरति, स खलु स्वकं चरितं चरति। एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चयनयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम्[1] ॥१५९॥

यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यप्ररूपितम्। न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात्सुवर्णसुवर्णपाषाणवत्। अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ॥

निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम्;—

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चिट्ठा तवंहि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६०॥

बुद्धिर्ध्येयबुद्धिश्चेति तया रहित आत्मस्वभावो यस्य स भवति परद्रव्यात्मभावरहितात्मा। पुनरपि किं करोति यः ? **दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो** दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पमभिन्नं चरत्यात्मनः सकाशादिति। तथाहि—पूर्वं सविकल्पावस्थायां ज्ञाताहं द्रष्टाहमिति यद्विकल्पद्वयं तन्निर्विकल्पसमाधिकालेऽनंतज्ञानानंदादिगुणस्वभावादात्मनः सकाशादभिन्नं चरतीति सूत्रार्थः ॥१५९॥

एवं निर्विकल्पस्वसंवेदनस्वरूपस्य पुनरपि स्वसमयस्यैव विशेषव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं।

है उसीको स्वसमयका अनुभवी कहा जाता है। वीतराग सर्वज्ञने निश्चय-व्यवहारके दो भेदसे मोक्षमार्ग दिखाया है। उन दोनोंमें निश्चय नयके अवलंबनसे शुद्ध गुणगुणीका आश्रय लेकर अभेदभावरूप साध्यसाधनकी जो प्रवृत्ति है वही निश्चय मोक्षमार्ग प्ररूपणा कही जाती है। और व्यवहारनयाश्रित जो मोक्षमार्गप्ररूपणा है सो पहिले ही दो गाथाओंमें दिखाई गई है। वे दो गाथायें "सम्मत्ते" इत्यादि हैं। इन गाथाओंमें जो व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप कहा गया है सो स्वद्रव्य परद्रव्यका कारण पाकर जो अशुद्धपर्याय उपजी है उसकी अधीनतासे भिन्न साध्यसाधनरूप है, सो यह व्यवहारमोक्षमार्ग सर्वथा निषेधरूप नहीं है, कथंचित् महापुरुषोंने ग्रहण किया है। निश्चय और व्यवहारमें परस्पर साध्य-साधनभाव है। निश्चय साध्य है, व्यवहार साधन है। जैसे सोना साध्य है और जिस पाषाणमेंसे सोना निकलता है वह पाषाण साधन है। यों सुवर्णपाषाणवत् व्यवहार है। जीव पुद्गलाश्रित है, केवल सुवर्णवत् निश्चय है, एक जीवद्रव्य हीका आश्रय है। अनेकांतवादी श्रद्धानी जीव इन दोनों निश्चयव्यवहाररूप मोक्षमार्गका ग्रहण करते हैं। क्योंकि इन दोनों नयोंके ही आधीन सर्वज्ञ वीतरागके धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति जानी गई है ॥१५९॥

आगे निश्चय मोक्षमार्गका साधनरूप व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाते हैं;—[**धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं**] धर्म अधर्म आकाश कालादिक समस्त द्रव्य तथा पदार्थोंका श्रद्धान अर्थात्

---

१. पुनः तदग्रे प्रतिपाद्यते।

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतं ।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ॥१६०॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थश्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानम् । आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्या । इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः । कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्यप्रतिपदमुपरितनशुद्धभूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वरस्येव शुद्धजीवस्य कथंचिद्भिन्नसाध्य-

---

अथ यद्यपि पूर्वं जीवादिनवपदार्थपीठिकाव्याख्यानप्रस्तावे "सम्मत्तं णाणजुदं" इत्यादि व्यवहारमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि निश्चयमोक्षमार्गस्य साधकोयमिति ज्ञापनार्थं पुनरप्यमिधीयते,—धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं भवति तेषामधिगमो ज्ञानं द्वादशविधे तपसि चेष्टा चारित्रमिति । इतो विस्तरः । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं ग्रहस्थतपोधनयोः समानं चारित्रं तपोधनानामाचारादिचरणग्रंथविहितमार्गेण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपं, गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रंथविहितमार्गेण पंचमगुणस्थानयोग्यं दानशीलपूजोपवासादिरूपं दार्शनिकाव्रतिकाद्येकादशनिलयरूपं वा इति व्यवहारमोक्षमार्गलक्षणं ।

प्रतीति व्यवहार—सम्यक्त्व है [अङ्गपूर्वगतं] ग्यारह अंग, चौदह पूर्वमें प्रवर्त्तनेवाला जो ज्ञान है सो [ज्ञानं] व्यवहाररूप सम्यग्ज्ञान है और [तपसि] बारह प्रकारके तप तथा तेरह प्रकारके चारित्रमें [चेष्टा] आचरण करना सो [चर्या] व्यवहाररूप चारित्र है [इति] इस प्रकार [व्यवहारः] व्यवहारात्मक [मोक्षमार्गः] मोक्षका मार्ग कहा गया है। **भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है। षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय,, सप्त तत्त्व और नव पदार्थंका श्रद्धान करना सो सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन है। द्वादशांगके अर्थका जानना सो सम्यग्ज्ञान है। आचारादि ग्रन्थकथित यतिका आचरण सो सम्यक्चारित्र है। यह व्यवहारमोक्षमार्ग जीवपुद्गलके सम्बन्धका कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई है उसीके आधीन है। और साध्य भिन्न है साधन भिन्न है। साध्य निश्चय मोक्षमार्ग है, साधन व्यवहार मोक्षमार्ग है। जैसे स्वर्णमय पाषाणमें दीप्यमान अग्नि पाषाण और सोनेको भिन्न भिन्न करती है वैसे ही जीव पुद्गलको एकताके भेदका कारण व्यवहार मोक्षमार्ग है। जो जीव सम्यग्दर्शनादिकसे अन्तरंगमें सावधान है उस जीवके सब जगह ऊपरके शुद्ध गुणस्थानोंमें शुद्धस्वरूपकी वृद्धिसे अतिशय मनोज्ञता है। उन गुणस्थानोंमें थिरताको धारण करता है ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग है। शुद्ध जीवको किसी एक अभिन्न साध्यसाधनभावकी सिद्धि है क्योंकि अपने ही उपादान कारणसे स्वयमेव निश्चय मोक्षमार्गकी अपेक्षा

साधनभावाभावात्स्वयंसिद्धस्वभावेन विपरिणममानस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यत इति ॥१६०॥

व्यवहारमोक्षमार्गसाध्यभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपन्यासोऽयम्;—

णिच्चयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा ।
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६१॥

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिस्तैः समाहितः खलु यः आत्मा ।
न करोति किंचिदप्यन्यं न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति ॥१६१॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहित आत्मैव जीवस्वभावनियतचरित्रत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्गः । अथ खलु कथञ्चनानाद्यविद्याव्यपगमाद्व्यवहारमोक्षमार्गमनुपपन्नो धर्मादितत्त्वार्थाश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थाज्ञानातपश्चेष्टानां धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानतपश्चेष्टानाञ्च त्यागोपादानाय प्रारब्धविविक्तभावव्यापारः, कुतश्चिदुपादेयत्यागे त्याज्योपादाने च पुनः प्रवर्तितप्रतिविधानाभिप्रायो यस्मिन्यावतिकाले

अयं व्यवहारमोक्षमार्गः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो भव्यजीवस्य निश्चयनयेनाभिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयमेव निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण परिणममानस्यापि सुवर्णपाषाणस्याग्निरिव निश्चयमोक्षमार्गस्य बहिरंगसाधको भवतीति सूत्रार्थः ॥१६०॥

एवं निश्चयमोक्षमार्गसाधकव्यवहारमोक्षमार्गकथनरूपेण पंचमस्थले गाथा गता । अथ पूर्वं यद्यपि स्वसमयव्याख्यानकाले "जो सव्वसंगमुक्को" इत्यादि गाथाद्वयेन निश्चयमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि पूर्वोक्तव्यवहारमोक्षमार्गेण साध्योयमिति प्रतीत्यर्थं पुनरप्युपदिश्यते;—**भणिदो** भणितः कथितः । केन ? **णिच्छयणयेण** निश्चयनयेन । स कः ? **जो अप्पा** यः आत्मा । कथंभूतः ? **तिहि तेहि समाहिदो य** त्रिभिस्तैर्दर्शनज्ञानचारित्रैः समाहितः एकाग्रः । पुनरपि किं करोति यः ? **ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुणदि** न करोति किंचिदपि शब्दादात्मनोन्यत्र क्रोधादिकं न च मुंचत्यात्माश्रित-

---

शुद्ध भावोंसे परिणमता है वहाँ यह व्यवहार निमित्तकारणकी अपेक्षा साधन कहा गया है। जैसे सोना यद्यपि अपने शुद्ध पीतादि गुणोंसे प्रत्येक आँचमें शुद्ध चोखी अवस्थाको धारण करता है तथापि बहिरंग निमित्त कारण अग्नि आदि वस्तुका प्रयत्न है वैसे ही व्यवहारमोक्षमार्ग है ॥१६०॥

आगे व्यवहारमोक्षमार्गसे साधित निश्चय मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाया जाता है;—**[निश्चयनयेन]** निश्चयनयसे **[तैः त्रिभिः]** उन तीन निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे **[समाहितः]** परमरसीभावसंयुक्त **[यः आत्मा]** जो यह आत्मा **[खलु]** निश्चयसे **[भणितः]** कहा गया है सो यह आत्मा **[अन्यत्]** अन्य परद्रव्यको **[किञ्चिदपि]** कुछ भी **[न करोति]** नहीं करता

विशिष्टभावनासौष्ठववशात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः स्वभावभूतैः सममङ्गाङ्गिभावपरिणत्या तत्समाहितो भूत्वा त्यागोपादानविकल्पशून्यत्वाद्विश्रान्तभावव्यापारः सुनिःप्रकम्पः अयमात्मावतिष्ठते । तस्मिन् तावति काले अयमेवात्मा जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्ग इत्युच्यते । अतो निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्नः ॥१६१॥

मनंतज्ञानादिगुणसमूहं सो मोक्खमग्गोत्ति स एवं गुणविशिष्टात्मा । कथंभूतो भणितः ? मोक्षमार्ग इति । तथाहि—निजशुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गस्तावत् तत्साधकं कथंचित्स्वसंवित्तिलक्षणाविद्यावासनाविलयाद्भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो गुणस्थानसोपानक्रमेण निजशुद्धात्मद्रव्यभावनोत्पन्ननित्यानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपपरमकलानुभवात् स्वशुद्धात्माश्रितनिश्चयदर्शनज्ञानचारित्रैरभेदेन परिणतो यदा भवति तदा निश्चयनयेन भिन्नसाध्यसाधनस्याभावादयमात्मैव मोक्षमार्ग इति । ततः स्थितं सुवर्णपाषाणवन्निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधकभावो नितरां संभवतीति ॥ १६१ ॥

है [न मुञ्चति] और न आत्मीक स्वभावको छोड़ता है [सः आत्मा] वह आत्मा [मोक्षमार्ग इति] मोक्षका मार्गरूप ही है, इस प्रकार सर्वज्ञ वीतरागने कहा है। **भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसे आत्मीक स्वरूपमें सावधान होकर जब आत्मीक स्वभावमें ही निश्चित विचरण करता है तब इसके निश्चय-मोक्षमार्ग कहा जाता है। जो आपहीसे निश्चय-मोक्षमार्ग हो तो व्यवहार-साधन किसलिये कहा है ? ऐसी शंका होनेपर समाधान है कि यह आत्मा असद्भूतव्यवहारकी विवक्षासे अनादि अविद्यासे युक्त है। जब काललब्धि पानेसे उसका नाश होता है तब व्यवहार मोक्षमार्गको प्रवृत्ति नहीं है। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इस अज्ञान-त्रयके नाशका उपाय यथार्थ तत्त्वोंका श्रद्धान, द्वादशांगका ज्ञान, यथार्थ चारित्रका आचरण—इस सम्यक रत्नत्रयके ग्रहण करनेका विचार होता है। इस विचारके होने पर जो अनादिका ग्रहण था उसका तो त्याग होता है और जिसका त्याग था उसका ग्रहण होता है। तत्पश्चात् कभी आचरणमें दोष हो तो दंड-शोधनादिसे उसे दूर करते हैं। और जिस कालमें विशेष शुद्धात्मतत्त्वका उदय होता है तब स्वाभाविक निश्चयदर्शन, ज्ञान, चारित्र—इनसे गुण गुणीके भावकी परिणति द्वारा अडोल (अचल) होता है। तब ग्रहण त्यजनकी बुद्धि मिट जाती है, परमशान्तिसे विकल्परहित होता है उस समय अति निश्चल भावसे यह आत्मा स्वरूपगुप्त होता है। जिस समय यह आत्मा स्वरूपका आचरण करता है उस समय यह जीव निश्चयमोक्षमार्गी कहलाता है। इसी कारण निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्गको साध्य-साधनभावकी सिद्धि होती है ॥१६१॥

आत्मनश्चारित्रज्ञानदर्शनत्वद्योतनमेतत्;—

जो चरदि णादि पिच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं ।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्चिदो होदि ॥१६२॥

यश्चरति जानाति पश्यति आत्मानमात्मनानन्यमयं ।
स चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति निश्चितो भवति ॥१६२॥

यः खल्वात्मानमात्ममयत्वादनन्यमयमात्मना चरति । स्वभावनियतास्तित्वेनानुवर्त्तते । आत्मना जानाति । स्वप्रकाशकत्वेन चेतयते । आत्मना पश्यति । याथातथ्येनावलोकयते । स खल्वात्मैव चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति । कर्तृकर्मकरणानाम-

---

अथाभेदेनात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रं भवतीति कथनद्वारेण पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्गं दृढयति;—**हवदि** भवति **सो** सः कर्ता । किं भवति ? **चारित्तं णाणं दंसणमिदि** चारित्रज्ञानदर्शनत्रितयमिति **णिच्छिदो** निश्चितः । स कः ? **जो** यः कर्ता । किं करोति । **चरदि णादि पेच्छदि** चरति स्वसंवित्तिरूपेणानुभवति जानाति निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन रागादिभ्यो भिन्नं परिछिनत्ति पश्यति सत्तावलोकदर्शनेन निर्विकल्परूपेणावलोकयति अथवा विपरीताभिनिवेशरहितशुद्धात्मरुचिपरिणामेन श्रद्धाति । कं ? **अप्पाणं** निजशुद्धात्मानं । केन कृत्वा ? **अप्पणा** वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिलक्षणेनान्तरात्मना । कथंभूतं ? **अणण्णमयं** नान्यमयं अनन्यमयं मिथ्यात्वरागादिमयं न भवति । अथवानन्यमयमभिन्नं । केभ्यः ? केवलज्ञानाद्यनंतगुणेभ्य इति । अत्र सूत्रे यतः कारणाभेदविवक्षायामात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भवति ततो ज्ञायते द्राक्षादिपानकवदनेकमप्यभेदविवक्षायामेकं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति भावार्थः । तथाचोक्तमात्माश्रितनिश्चय-

---

अब आत्माके चारित्र, ज्ञान, दर्शनका उद्योत कर दिखाते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**आत्मनः**] अपने निजस्वरूपसे [**आत्मानं**] आपको [**अनन्यमयं**] ज्ञानादि गुणपर्यायोंसे अभेदरूप [**चरति**] आचरण करता है [**जानाति**] जानता है [**पश्यति**] श्रद्धान करता है [**सः**] वह पुरुष [**चारित्रं**] आचरण-गुण [**ज्ञानं**] जानना [**दर्शनं**] देखना [**इति**] इसप्रकार द्रव्यसे नामसे अभेदरूप [**निश्चितः**] निश्चयसे स्वयं दर्शनज्ञानचरित्ररूप [**भवति**] होता है । **भावार्थ**—निश्चयसे जो पुरुष आपके द्वारा आपको अभेदरूप आचरण करता है, क्योंकि अभेदनयसे आत्मा गुणगुणीभावसे एक है, अपने शरीरकी निश्चलता अस्तिरूप प्रवर्तमान है और अन्य कारणके विना आप ही आपको जानता है, स्वपरप्रकाश चैतन्य शक्तिके द्वारा अनुभवी होता है और आपहीके द्वारा यथार्थ देखता है सो आत्मनिष्ठ भेदविज्ञानी पुरुष आपही चारित्र है, आप ही ज्ञान है, आपही दर्शन है । इसप्रकार गुणगुणीभेदसे आत्मा कर्ता है, ज्ञानादि कर्म हैं, शक्ति करण है, इनका आपसमें नियमसे अभेद है । इस कारण यह बात सिद्ध

भेदान्निश्चितो भवति । अतश्चारित्रज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्व-लक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितरामुपपन्न इति ॥१६२॥

सर्वस्यात्मनः संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोऽयम्;—

जेण विजाणादि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि ।
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥१६३॥

येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति ।
इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ॥१६३॥

इह हि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यं । आत्मनो हि दृग्-ज्ञप्ती स्वभाव-स्तयोर्विषयप्रतिबन्धः प्रातिकूल्यं । मोक्षे खल्वात्मनः सर्वं विजानतः पश्यतश्च तद-

---

रत्नत्रयलक्षणं "दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते । स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवा-श्रयः ॥"१६२॥

इति मोक्षमार्गविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ यस्य स्वाभाविकसुखे श्रद्धानमस्ति स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति;—*जेण अयं जीवः कर्ता येन लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन* **विजा-णदि** विशेषेण संशयविपर्ययानध्यवसायरहितत्वेन जानाति परिच्छिनत्ति । किं ? **सव्वं** सर्वं जगत्त्रय-कालत्रयवर्ति वस्तुकदम्बकं । न केवलं जानाति । **पेच्छदि** येनैव लोकालोकप्रकाशककेवलदर्शनेन सत्तावलोकेन पश्यति **सो तेण सोक्खमणुभवदि** सजीवस्तेनैव केवलज्ञानदर्शनद्वयेनानवरतं ताभ्यामभिन्नं सुखमनुभवति **इदि तं जाणदि भवियो** इति पूर्वोक्तप्रकारेण तदनंतसुखं जानात्युपादेयरूपेण श्रद्दधाति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेणानुभवति च । स कः ? भव्यः **अभवियं संतो ण सद्दहदि** अभव्यजीवो

हुई कि चारित्र ज्ञान-दर्शनरूप आत्मा है । यदि यह आत्मा जीवस्वभावमें निश्चल होकर आत्मीक-भावको आचरण करे तो निश्चय मोक्षमार्ग सर्वथाप्रकार सिद्ध होता है ॥१६२॥

आगे समस्त ही संसारी जीवोंके मोक्षमार्गकी योग्यताका निषेध दिखाते हैं;—[येन] जिस कारणसे [सर्वं] समस्त ज्ञेय मात्र वस्तुको [विजानाति] जानता है [सर्वं] समस्त वस्तुओं को [पश्यति] देखता है अर्थात् ज्ञानदर्शन-संयुक्त है [सः] वह पुरुष [तेन] उस कारणसे [सौख्यं] अनाकुल अनन्त मोक्षसुखको [अनुभवति] अनुभवता है । [इति] इसप्रकार [भव्यः] निकट भव्यजीव [तत्] उस अनाकुल पारमार्थिक सुखको [जानाति] उपादेयरूप श्रद्धान करता है और अपने अपने गुणस्थानानु-सार जानता भी है । **भावार्थ**—जो स्वाभाविक भावोंके आवरणके विनाश होनेसे आत्मीक शान्तरस उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं । आत्माके स्वभाव ज्ञान-दर्शन हैं । इनके आवरणसे आत्माको दुःख है । जैसे पुरुषके नख शिख बढ़नेसे दुःख होता है, उसी प्रकार आवरणके होनेसे दुःख होता है ।

भावः । ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति । इत्येतद्भव्य एव भावतो विजानाति । ततस्स एव मोक्षमार्गार्हो नैतदभव्यः श्रद्धत्ते । ततः स मोक्षमार्गानर्ह एव इति ।। अतः कतिपये एव संसारिणो मोक्षमार्गार्हा न सर्वे एवेति ।।१६३।।

दर्शनज्ञानचारित्राणां कथंचिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्षहेतुताद्योतनमेतत्;—

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोऽत्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ।।१६४।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि ।
साधुभिरिदं भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ।।१६४।।

अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संबलितानि

न श्रद्धाति । तद्यथा । मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतिनां यथासंभवं चारित्रमोहस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्धया विषयसुखमनुभवति भव्यजीवः तथापि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमेवोपादेयं मन्यते न चाभव्यः । कस्मादिति चेत् । तस्य पूर्वोक्तदर्शनचारित्रमोहनीयोपशमादिकं न संभवति ततश्चैवाभव्य इति भावार्थः ।।१६३।।

एवं भव्याभव्यस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथा गता । अथ दर्शनज्ञानचारित्रैः पराश्रितैर्बन्धः स्वाश्रितैर्मोक्षो भवतीति समर्थयतीति;—**दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि** दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गो भवतीति हेतोः सेवितव्यानि । इदं कैरुपदिष्टं ? **साधू-**

मोक्ष अवस्थामें उस आवरणका अभाव होता है, इस कारण मुक्तजीव सबका देखनेवाला व जाननेवाला है। और यह बात भी सिद्ध हुई कि निराकुल परमार्थ आत्मीक सुखका अनुभवन मोक्षमें ही निश्चल है, और जगह नहीं है। ऐसा परम भावका श्रद्धान भी भव्य सम्यग्दृष्टी जीवमें ही होता है। इस कारण भव्य ही मोक्षमार्गी होने योग्य है [**अभव्यसत्त्वः**] जो त्रैकालिक आत्मीकभावकी प्रतीति करने के योग्य नहीं ऐसा जीव आत्मीक सुखकी [**न श्रद्धत्ते**] श्रद्धा नहीं करता है, जानता भी नहीं है। **भावार्थ**—उस आत्मीक सुखका श्रद्धान करनेवाला अभव्य नहीं है, क्योंकि मोक्षमार्गके साधनेकी अभव्य मिथ्यादृष्टि योग्यता नहीं रखता। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि कई संसारी भव्य जीव मोक्षमार्गके योग्य हैं, कई नहीं भी हैं ।।१६३।।

आगे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको किसीप्रकार सराग अवस्थामें आचार्यने बन्धका भी प्रकार दिखाया है। इस कारण जीवस्वभावमें निश्चित जो आचरण है उसको मोक्षका कारण दिखाते हैं;—[**दर्शनज्ञानचारित्राणि**] दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीन रत्नत्रय [**मोक्षमार्गः**] मोक्षमार्ग है [**इति**] इस कारण ये [**सेवितव्यानि**] सेवन करने योग्य

कृशानुसंबलितानीव घृतानि कथञ्चिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बन्धकारणान्यपि भवन्ति। यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपया स्वसमयप्रवृत्त्या सङ्गच्छते, तदा निवृत्तकृशानुसंबलनानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणाभावाऽभावात्साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवन्ति। ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नमिति ॥१६४॥

सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत्;—

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ॥१६५॥

हि य इदि भणिदं साधुभिरिदं भणितं कथितं तेहि दु बंधो व मोक्खो वा तैस्तु पराश्रितैर्बंधः स्वाश्रितैर्मोक्षो वेति। इतो विशेषः। शुद्धात्माश्रितानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षकारणानि भवन्ति, पराश्रितानि बंधकारणानि भवन्ति च। केन दृष्टान्तेनेति चेत्। यथा घृतानि स्वभावेन शीतलान्यपि पश्चादग्निसंयोगेन दाहकारणानि भवंति तथा तान्यपि स्वभावेन मुक्तिकारणान्यपि पंचपरमेष्ठ्यादिप्रशस्तद्रव्याश्रितानि साक्षात्पुण्यबंधकारणानि भवन्ति मिथ्यात्वविषयकषायनिमित्तभूतपरद्रव्याश्रितानि पुनः पापबंधकारणान्यपि भवन्ति। तस्माद् ज्ञायते जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गं, इति ॥१६४॥

एवं शुद्धाशुद्धरत्नत्रयाभ्यां यथाक्रमेण मोक्षपुण्यबन्धौ भवत इति कथनरूपेण गाथा गता। तदनंतरं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानसंबंधित्वेन गाथापंचकं भवति, तत्रैका सूत्रगाथा तस्या विवरणं

हैं। [साधुभिः] महापुरुषों द्वारा [इति] इस प्रकार [भणितं] कहा गया है [तैः तु] उन ज्ञान-दर्शन-चारित्रके द्वारा तो [बन्धः वा] बंध भी होता है [मोक्षः वा] मोक्ष भी होता है। **भावार्थ—**दर्शन-ज्ञान-चारित्र दो प्रकारके हैं, एक सराग हैं, दूसरे वीतराग हैं। जो दर्शन ज्ञान-चारित्र राग लिये होते हैं उनको तो सराग रत्नत्रय कहते हैं और जो आत्मनिष्ठ वीतरागता लिये हों वे वीतराग रत्नत्रय कहाते हैं। क्योंकि रागभाव आत्मीक भावरहित परभाव है, परसमयरूप हैं, इसलिये यदि रत्नत्रय किंचिन्मात्र भी परसमयप्रवृत्तिसे मिले हों तो वे बन्धके कारण होते हैं, क्योंकि उनमें कथंचित्प्रकार विरुद्धकारणकी रूढ़ि होती है। रत्नत्रय तो मोक्षका ही कारण है, परन्तु रागके संयोगसे बन्धका कारण भी होता है, ऐसी रूढ़ि है। जैसे अग्निके संयोगसे घृत दाहका कारण होकर विरुद्ध कार्य करता है, स्वभाव से तो घृत शीतल ही है, इसीप्रकार रागके संयोगसे रत्नत्रय बंधका कारण है। जिस समय समस्त परसमयकी निवृत्ति होकर स्वसमयरूप स्वरूपमें प्रवृत्ति हो उस समय अग्निसंयोगरहित घृत, दाहादि विरुद्ध कार्योंका कारण नहीं होता। वैसे ही रत्नत्रय सरागताके अभावसे साक्षात् मोक्षका कारण होता है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि जब यह आत्मा स्वसमयमें प्रवृत्त हो निज स्वाभाविक भावको आचरे उस ही समय मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है ॥१६४॥

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसंप्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः परसमयरतो भवति जीवः ॥१६५॥

अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिबलानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः। अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावज्ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते। अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलङ्कितान्तरङ्गवृत्तिरितरो जन इति ॥१६५॥

गाथात्रयं ततश्चोपसंहारगाथैका चेति नवमस्थले समुदायपातनिका। अथ सूक्ष्मपरसमयस्वरूपं कथयति;—**अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि** शुद्धात्मपरिच्छित्तिविलक्षणादज्ञानात्सकाशात् ज्ञानी कर्ता यदि मन्यते। किं? **हवदित्ति दुक्खमोक्खो** स्वस्वभावेनोत्पन्नसुखप्रतिकूलदुःखस्य मोक्षो विनाशो भवतीति। कस्मादिति तत्। **सुद्धसंपयोगादो** शुद्धेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावाराधकेषु वार्हदादिषु संप्रयोगो भक्तिः शुद्धसंप्रयोगस्तस्मात् शुद्धसंप्रयोगात्। तदा कथंभूतो भवति। **परसमयरदो हवदि** तदा काले परसमयरतो भवति जीवो स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति। तद्यथा। कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षासंयमे स्थातुमीहते तत्राशक्तः सन् कामक्रोधाद्यशुद्धपरिणामवंचनार्थं संसारस्थितिछेदनार्थं वा यदा पंचपरमेष्ठिषु गुणस्तवनादिभक्तिं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयपरिणतः सन् सरागसम्यग्दृष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धात्मभावनासमर्थोपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसमयपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति। तथा चोक्तं। "केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः। केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टश्च नाशिताः" ॥१६५॥

आगे सूक्ष्म परसमयका स्वरूप कहा जाता है;—**[ज्ञानी]** सरागसम्यग्दृष्टी जीव **[अज्ञानात्]** अज्ञानभावसे **[यदि]** यदि **[इति]** ऐसा **[मन्यते]** माने कि—**[शुद्धसंप्रयोगात्]** शुद्ध जो अरहंतादिक उनमें लगन अति धर्मरागप्रीतिरूप शुभोपयोगसे **[दुःखमोक्षः]** सांसारिक दुःखसे मुक्ति **[भवति]** होती है **[तदा]** उस समय **[जीवः]** यह आत्मा **[परसमयरतः]** परसमयमें अनुरक्त **[भवति]** होता है। **भावार्थ—**अरहन्तादिक जो मोक्षके कारण हैं उन भगवंत परमेष्ठीमें भक्तिरूप राग अंशसे जो राग लिये चित्तकी वृत्ति हो, उसका नाम शुद्धसम्प्रयोग कहा जाता है, परन्तु भगवंत वीतरागदेवकी अनादि वाणीमें इसको भी शुभरागांशरूप अज्ञानभाव कहा है। इस अज्ञानभाव के होते हुये जितने कालतक यद्यपि यह आत्मा ज्ञानवंत भी है तथापि शुद्ध सम्प्रयोगसे मोक्ष होता है ऐसे परभावोंसे मुक्त माननेके अभिप्रायसे खेदखिन्न हुआ प्रवृत्त होता है तब उतने काल वह ही राग अंशके अस्तित्वके परसमयमें रत है, ऐसा कहा जाता है। और जिस जीवके विषयादिसे राग अंशसे कलंकित अन्तरंगवृत्ति होती है, वह तो परसमयरत है ही, उसकी तो वात ही न्यारी है, **क्योंकि** जिस मोक्षमार्गमें धर्मराग का निषेध है वहाँ निरर्गल रागका निषेध सहजमें ही होता है ॥१६५॥

उक्तशुद्धसंप्रयोगस्य कथञ्चिद्‌बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासोऽयम्;—

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥१६६॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः ।
बध्नाति पुण्यं बहुशो न तु स कर्मक्षयं करोति ॥१६६॥

अर्हदादिभक्तिसंपन्नः कथञ्चिच्छुद्धसंप्रयोगोऽपि सन् जीवो जीवद्रागलवत्वाच्छुभोपयोगतामजहन्, बहुशः पुण्यं बध्नाति; न खलु सकलकर्मक्षयमारभते । ततः सर्वत्र रागकणिकाऽपि परिहरणीया । परसमयप्रवृत्तिनिबन्धत्वादिति ॥१६६॥

स्वसमयोपलम्भाभावस्य रागैकहेतुत्वद्योतनमेतत्;—

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो ।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि ॥१६७॥

अथ पूर्वोक्तशुद्धसंप्रयोगस्य पुण्यबंधं दृष्ट्वा मुख्यवृत्त्या मोक्षं निषेधयति;—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानेषु भक्तिसंपन्नो जीवः बहुशः प्रचुरेण हु स्फुटं पुण्यं बध्नाति सो सः ण कम्मक्खयं कुणदि नैव कर्मक्षयं करोति । अत्र निरास्रवशुद्धनिजात्मसंवित्त्या मोक्षो भवतीति हेतोः पराश्रितपरिणामेन मोक्षो निषिद्ध इति सूत्रार्थः ॥१६६॥

अथ शुद्धात्मोपलंभस्य परद्रव्य एव प्रतिबंध इति प्रज्ञापयति;—यस्य हृदये मनसि अणुमेत्तं वा परमाणुमात्रोपि परदव्वं शुभाशुभपरद्रव्यैः हि स्फुटं विज्जदे रागो रागो विद्यते सो सः ण

आगे उक्त शुभोपयोगताको कथंचित् बन्धका कारण कहा इसकारण मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कथन करते हैं;—[अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः] अरहंत, सिद्ध, चैत्यालय, प्रतिमा, प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त, मुनिसमूह, भेदविज्ञानादि ज्ञानकी भक्ति स्तुति सेवादिकसे परिपूर्ण प्रवीण पुरुष [बहुशः] बहुतप्रकार या बहुत बार [पुण्यं] अनेक प्रकारके शुभकर्मको [बध्नाति] बांधता है [तु सः] किंतु वह पुरुष [कर्मक्षयं] कर्मक्षय [न] नहीं [करोति] करता है । भावार्थ—जिस जीवके चित्तमें अरहंतादिककी भक्ति है उस पुरुषके कथंचित् मोक्षमार्ग भी है, परन्तु भक्तिके रागांशसे शुभोपयोग भावोंको नहीं छोड़ता, उसके बन्धपद्धतिका सर्वथा अभाव नहीं है । इस कारण उस भक्तिके रागांशसे ही बहुत प्रकार पुण्यकर्मोंको बाँधता है, किन्तु सकलकर्मक्षयको नहीं करता है । इस कारण मोक्षमार्गियोंको चाहिये कि भक्ति—रागकी कणिकाको भी छोड़े, क्योंकि यह परसमयकी कारण है, परंपरासे मोक्षकी कारण है, साक्षात् मोक्षमार्गको घातक है, इस कारण इसका निषेध है ॥१६६॥

आगे इस जीवके जो स्वसमयकी प्राप्ति नहीं होती उसका राग ही एक कारण है, ऐसा कथन करते हैं;—[वा] अथवा [यस्य] जिस पुरुषके [हृदये] चित्तमें [अणुमात्रः] परमाणु मात्र भी

यस्य हृदयेऽणुमात्रो वा परद्रव्ये विद्यते रागः ।
स न विजानाति समयं स्वकस्य सर्वागमधरोऽपि ॥१६७॥

यस्य खलु रागरेणुकणिकाऽपि जीवति हृदये न नाम स समस्तसिद्धान्तसिन्धुपारगोऽपि निरुपरागशुद्धस्वरूपं स्वसमयं चेतयते । ततः स्वसमयसिध्यर्थं पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायमभिदधताऽर्हदादिविषयेऽपि क्रमेण रागरेणुरपसारणीय इति ॥१६७॥

रागलवमूलदोषपरंपराख्यानमेतत्;—

धरिदु जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं ।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुह कदस्सकम्मस्स ॥१६८॥

धर्तुं यस्य न शक्यश्चित्तोद्भ्रामं विना त्वात्मानं ।
रोधस्तस्य न विद्यते शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥१६८॥

इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति । रागाद्यनुवृत्तौ च

विजाणदि न जानाति । किं ? समयं । कस्य ? **सगस्स** स्वकीयात्मनः । कथंभूतः ? **सव्वागमधरोवि** सर्वशास्त्रपारगोपि । तथाहि—निरुपरागपरमात्मनि विपरीतो रागो यस्य विद्यते स स्वकीयशुद्धात्मानुचरणरूपं स्वस्वरूपं न जानाति ततः कारणात्पूर्वं विषयानुरागं त्यक्त्वा तदनन्तरं गुणस्थानसोपानक्रमेण रागादिरहितनिजशुद्धात्मनि स्थित्वा चार्हदादिविषयेपि रागस्त्याज्य इत्यभिप्रायः ॥१६७॥

अथ सर्वानर्थपरंपराणां राग एव मूल इत्युपदिश्यति;—धर्तुं **जस्स** यस्य **ण सक्को** न शक्यः कर्मतापन्नः **चित्तंभामो** चित्तभ्रमः अथवा विचित्रभ्रमः आत्मनो भ्रान्ति । कथं ? **विणा दु अप्पाणं** आत्मानं विना निजशुद्धात्मभावनामंतरेण **रोघो तस्स ण विज्जदि** रोधः संवरः तस्य न विद्यते ।

[परद्रव्ये] पुद्गलादि परद्रव्योंमें **[रागः]** प्रीतिभाव **[विद्यते]** प्रवर्तित है **[सः]** वह पुरुष **[सर्वागमधरः अपि]** यद्यपि समस्त श्रुतका पाठी है तथापि **[स्वकस्य]** आत्माके **[समयं]** यथार्थरूपको **[न]** नहीं **[विजानाति]** जानता है । **भावार्थ—**जिस पुरुषके चित्तमें आत्मीकभावरहित परभावोंमें रागकी कणिका भी विद्यमान है वह पुरुष समस्त सिद्धान्तशास्त्रोंको जानता हुआ भी सर्वांग वीतराग शुद्धस्वरूप स्वसमयको नहीं वेदता है । इस कारण यथार्थ शुद्धस्वरूपकी सिद्धिके निमित्त अरहंतातादिकमें भी क्रमसे राग छोड़ना योग्य है ॥१६७॥

आगे रागअंशका कारण पाकर अनेक दोषोंकी परंपरा होती है ऐसा कथन करते हैं;—**[तु]** और **[यस्य]** जिस पुरुषका **[चित्तोद्भ्रामं]** मनका संकल्परूप भ्रामकत्व **[आत्मानं विना]** आत्माके बिना **[धर्तुं]** निरोध करनेको **[शक्यः न]** समर्थ नहीं होता **[तस्य]** उस पुरुषके **[शुभाशुभकृतस्य]**

---

१. तन्तिलग्नकार्पासांशवत् ।

सत्यां बुद्धिप्रसरमन्तरेणात्मा न तत्कथंचनाऽपि धारयितुं शक्येत। बुद्धिप्रसारे च सति शुभस्याशुभस्य वा कर्मणो न निरोधोऽस्ति। ततो रागकलिविलासमूल एवायमनर्थसन्तान इति ॥१६८॥

रागकलिनिःशेषीकरणस्य करणीयत्वाख्यानमेतत्;—

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥१६९॥

तस्मान्निवृत्तिकामो निरसङ्गो निर्ममत्वश्च भूत्वा पुनः।
सिद्धेषु करोति भक्ति निर्वाणं तेन प्राप्नोति ॥१६९॥

यतो रागाद्यनुवृत्तौ चित्तोद्भ्रान्तिः, चित्तोद्भ्रान्तौ कर्मबन्ध इत्युक्तम्। ततः खलु मोक्षार्थिना कर्मबन्धमूलचित्तोद्भ्रान्तिमूलभूता रागाद्यनुवृत्तिरेकान्तेन निः-

---

कस्य संबंधि ? सुहासुहकदस्स कम्मस्स शुभाशुभकृतस्य कर्मण इति। तद्यथा। योऽसौ नित्यानन्दैकस्वभावनिजात्मानं न भावयति तस्य मायामिथ्यानिदानशल्यत्रयप्रभृतिसमस्तविभावरूपो बुद्धिप्रसरो धर्तुं न याति निरोधाभावे च शुभाशुभकर्मणां संवरो नास्तीति। ततः स्थितं समस्तानर्थपरंपराणां रागादिविकल्पा एव मूलमिति ॥१६८॥

ततस्तस्मान्मोक्षार्थिना पुरुषेण 'ग्रहणरहितत्वान्निःसंगता' आस्रवकारणभूतं रागादिविकल्पजालं निर्मूलनायेति सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुपसंहरति;—तम्हा तस्माच्चित्तगतरागादिविकल्पजालं 'अण्णाणादो णाणी'त्यादि गाथाचतुष्टयेनास्रवकारणं भणितं, तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो निवृत्त्यभिलाषी पुरुषः णिस्संगो निःसंगात्मतत्त्वविपरीतबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेण रहितत्वान्निःसंगः णिम्ममो

शुभाशुभ भावोंसे किये हुये [कर्मणः] कर्मका [रोधः] संवर [न विद्यते] नहीं है। भावार्थ—अरहन्तादिककी भक्ति भी प्रशस्त रागके विना नहीं होती, और यदि रागादिक भावकी प्रवृत्ति होती है और बुद्धिका विस्तार नहीं हो तो यह आत्मा उस भक्तिको किसी प्रकार धारण करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि बुद्धिके विना भक्ति नहीं है तथा रागभावके विना भी भक्ति नहीं है, इसकारण इस जीवके रागादिर्गभित बुद्धिका विस्तार होता है। तब इसके अशुद्धोपयोग होता है। उस अशुद्धोपयोगके कारणसे शुभाशुभका आस्रव होता है। इसी कारण बन्धपद्धति है। और इसीसे यह बात सिद्ध हुई कि शुभ-अशुभ गतिरूप संसारके विलासका कारण एकमात्र रागादि संक्लेशरूप विभाव परिणाम ही हैं ॥१६८॥

आगे संक्लेशका समस्त नाश करनेका कार्य (उपाय) बताते हैं;—[तस्मात्] जिससे रागका निषेध है उस कारणसे [निवृत्तिकामः] जो मोक्षका अभिलाषी जीव है सो [पुनः] फिर [सिद्धेषु] विभाव भावसे रहित परमात्माके भावोंमें [भक्ति] परमार्थभूत अनुरागताको [करोति] करता है। क्या करके स्वरूपमें गुप्त होता है ? [निःसङ्गः] परिग्रहसे रहित [च] और [निर्ममः] परद्रव्यमें

शेषीकरणीया। निःशेषितायां तस्यां प्रसिद्धनैःसङ्ग्यनैर्मल्यशुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपां पारमार्थिकीं सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धः स्वसमयप्रवृत्तिर्भवति। तेन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति ॥१६९॥

अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तेः साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्,—

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स ॥१७०॥

सपदार्थं तीर्थंकरमभिगतबुद्धेः सूत्ररोचिनः।
दूरतरं निर्माणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य ॥१७०॥

रागाद्युपाधिरहितचैतन्यप्रकाशलक्षणात्मतत्त्वविपरीतमोहोदयोत्पन्नेन ममकाराहंकारादिरूप विकल्पजालेन रहितत्वात् निर्मोहश्च निर्ममः भविय भूत्वा पुणो पुनः सिद्धेसु सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु कुणदु करोतु। कां? भत्ति पारमार्थिकस्वसंवित्तिरूपां सिद्धभक्ति। किं भवति? तेण तेन सिद्धभक्तिपरिणामेन शुद्धात्मोपलब्धिरूपं णिव्वाणं निर्वाणं पप्पोदि प्राप्नोतीति भावार्थः ॥१६९॥

एवं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथापंचकं गतं। अथार्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तपुरुषस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेपि परंपरया मोक्षहेतुत्वं द्योतयन् सन् पूर्वोक्तमेव सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानं प्रकारान्तरेण कथयति;—दूरयरं णिव्वाणं दूरतरं निर्वाणं भवति। कस्य?

ममता भावसे रहित [भूत्वा] होकर, [तेन] उस कारणसे [निर्वाणं] मोक्षको [प्राप्नोति] पाता है। भावार्थ—संसारमें इस जीवके जब रागादिक भावोंकी प्रवृत्ति होती है तब अवश्य ही संकल्प विकल्पोंसे चित्तकी भ्रामकता हो जाती है। जहां चित्तकी भ्रामकता होती है वहां अवश्यमेव ज्ञानावरणादिक कर्मोंका बन्ध होता है। अतः मोक्षाभिलाषी पुरुषको चाहिये कि कर्मबन्धका जो मूलकारण संकल्प-विकल्परूप चित्तकी भ्रामकता है उसके मूलकारण रागादिक भावोंकी प्रवृत्तिको सर्वथा दूर करे। जब इस आत्माके सर्वथा रागादिककी प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है तब यह ही आत्मा सांसारिक परिग्रहसे रहित हो निर्ममत्वभावको धारण करता है। तत्पश्चात् आत्मीक शुद्धस्वरूप स्वाभाविक निजस्वरूपमें लीन ऐसी परमात्मसिद्धपदमें भक्ति करता है तब उस जीवके स्वसमयकी सिद्धि कही जाती है। इस ही कारण जो सर्वथा प्रकार कर्मबन्धसे रहित होता है वही मोक्षपदको प्राप्त होता है। जबतक रागभावका अंशमात्र भी होगा तबतक वीतरागभाव प्रगट नहीं होता। इसलिये सर्वथा प्रकारसे रागभाव त्याज्य है ॥१६९॥

आगे अरहन्तादिक परमेष्ठि-पदोंमें जो भक्तिरूप परसमयमें प्रवृत्ति है उससे साक्षात् मोक्षका अभाव है तथापि परंपरासे मोक्षका कारण है, ऐसा कथन करते हैं;—[सपदार्थं] नवपदार्थसहित

यः खलु मोक्षार्थमुद्यतमनाः समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसंभावितपरमवैराग्यभूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभुशक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायभयेन नवपदार्थैः

अभिगदबुद्धिस्स अभिगतबुद्धेः तद्गतबुद्धेः । कं प्रति ? सपदत्थं तित्थयरं जीवादिपदार्थसहिततीर्थकरं प्रति । पुनरपि किंविशिष्टस्य ? सुत्तरोचिस्स श्रुतरोचिन आगमरुचेः । पुनरपि कथंभूतस्य ? संजमतवसंपजुत्तस्स संयमतपःसंप्रयुक्तस्यापीति । इतो विस्तरः । बहिरंगेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन रागाद्युपाधिरहितस्य ख्यातिपूजालाभनिमित्तानेकमनोरथरूपविकल्पजालज्वालावलिरहितत्वेन निर्विकल्पस्य च चित्तस्य निजशुद्धात्मनि संयमार्थं स्थितिकरणात्संयतोपि अनशनाद्यनेकविधबाह्यतपश्चरणबलेन समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेनाभ्यन्तरतपसा च नित्यानन्दैकात्मस्वभाव प्रतपनाद्विजयनात्तपस्थोपि यदा विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावान्निरंतरं तत्र स्थातुं न शक्नोति तदा किंकरोति ? क्वापि काले शुद्धात्मभावनानुकूलजीवादिपदार्थप्रतिपादकमागमं रोचते । कदाचित्पुनर्यथा कोपि रामदेवादिपुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिश्रीवशीकरणार्थं निर्दोषिपरमात्मनां तीर्थंकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपांडवादिमहापुरुषाणां चाशुभरागवंचनार्थं शुभधर्मानुरागेण चरितपुराणादिकं शृणोति भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुलर्दानपूजादिकं करोति च, तेन कारणेन यद्यप्यनन्तसंसारस्थितिछेदं करोति कोप्यचरमदेहस्तद्भवे कर्मक्षयं न करोति तथापि पुण्यास्रव परिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते, भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते । तत्र विमानपरिवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पंचमहाविदेहेषु गत्वा समवशरणे वीतरागसर्वज्ञान् पश्यति निर्दोषपरमात्माराधारकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यमात्मभावनामपरित्यजन् सन् देवलोके कालं गमयति ततोपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादिविभूतिं लब्ध्वापि पूर्वभवभावित-

---

[तीर्थंकरं] अरहन्तादिक पूज्य परमेष्ठीमें [अभिगतबुद्धेः] रुचि लिये हुए श्रद्धारूप बुद्धिवाले पुरुषको [निर्वाणं] सकल कर्मरहित मोक्षपद [दूरतरं] अतिशय दूर होता है । जो नव पदार्थ, पंचपरमेष्ठीमें भक्ति करता है वह पुरुष कैसा है ? [सूत्ररोचिनः] सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत सिद्धान्तका श्रद्धानी है । और कैसा है ? [संयमतपःसंप्रयुक्तस्य] इन्द्रियदंडन और घोर उपसर्गरूप तपसे संयुक्त है । **भावार्थ**—जो पुरुष मोक्षके निमित्त उद्यमी हुआ प्रवर्तमान है और मनसे अगोचर जिसने संयमतपका भार लिया है अर्थात् अङ्गीकार किया है तथा परम वैराग्यरूपी भूमिकामें चढ़नेकी जिसमें उत्कृष्ट शक्ति है, और विषयानुराग भावसे रहित है तथापि प्रशस्त रागरूप परसमयसे संयुक्त है । उस प्रशस्त रागके संयोगसे नवपदार्थ तथा पंचपरमेष्ठीमें भक्तिपूर्वक प्रतीति-श्रद्धा उपजती है, ऐसे परसमयरूप प्रशस्त रागको छोड़ नहीं सकता । जैसे रुई धुननेवाला पुरुष (धुनिया) रुई धुनते धुनते पीजनीमें लगी हुई रुईको दूर करनेके भयसे संयुक्त है, वैसे राग दूर नहीं होता । इसकारण ही साक्षात् मोक्षपदको नहीं पाता । जब ऐसा है तो उसकी गति किसप्रकार होती है ? प्रथम ही तो

सहार्हदादिरुचिरूपा परसमयप्रवृत्ति परित्यक्तुं, नोत्सहते; स खलु न नाम साक्षान्मोक्षं लभते । किन्तु सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिरूपया परम्परया तमवाप्नोति ॥१७०॥

अर्हदादिभक्तिमात्ररागजनितसाक्षान्मोक्षस्यान्तरायद्योतनमेतत्;—

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण ।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥१७१॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः परेण नियमेन ।
यः करोति तपःकर्म स सुरलोकं समादत्ते ॥१७१॥

यः खल्वर्हदादिभक्तिविधेयबुद्धिः सन् परमसंयमप्रधानमतितीव्रं तपस्तप्यते;

शुद्धात्मभावनाबलेन मोहं न करोति ततश्च विषयसुखं परिहृत्य जिनदीक्षां गृहीत्वा निर्विकल्पसमाधि-विधानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं गच्छतीति भावार्थः ॥१७०॥

अथ पूर्वसूत्रे भणितं तद्भवे मोक्षं न लभते पुण्यबन्धमेव प्राप्नोतीति तमेवार्थं दृढयति;—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः सन् परेणोत्कृष्टेन यः कश्चित्करोति । किं ? तपःकर्म, स नियमेन सुरलोकं समाददाति प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्र सूत्रे यः कोपि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया मोक्षं वा व्रततपश्चरणादिकं करोति स निदानरहितपरिणामेन सम्यग्दृष्टिर्भवति, तस्य तु संहननादिशक्त्य-भावाच्छुद्धात्मस्वरूपे स्थातुमशक्यत्वाद्वर्तमानभवे पुण्यबंध एव भवान्तरे तु परमात्मभावनास्थिरत्वे सति नियमेन मोक्षो भवति, तद्विपरीतस्य भवान्तरेपि मोक्षनियमो नास्तीति सूत्राभिप्रायः ॥१७१॥

देवादि गतियोंमें संक्लेश प्राप्तिकी परंपरा होती है, तत्पश्चात् मोक्षपदको प्राप्त होता है, क्योंकि परंपरासे इस सूक्ष्म परसमयसे भी मोक्ष सधता है ॥१७०॥

आगे, फिर भी अरहन्तादिक पंचपरमेष्ठीमें भक्तिस्वरूप जो प्रशस्त राग है उससे मोक्षका अन्तराय दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः] अरहन्त, सिद्ध, जिनविंब और शास्त्रोंमें जो भक्तिभावसंयुक्त [परेण नियमेन] उत्कृष्ट संयमके साथ [तपःकर्म] तपस्यारूप कर्मको [करोति] करता है [सः] वह पुरुष [सुरलोकं] स्वर्गलोकको ही [समादत्ते] अंगीकार करता है। **भावार्थ**—जो पुरुष निश्चयसे अरहन्तादिककी भक्तिमें सावधानबुद्धि करता है और उत्कृष्ट इन्द्रिय-दमनसे शोभायमान परमप्रधान अतिशय तीव्र तपस्या करता है वह पुरुष उतना ही अरहन्तादिक तपरूप प्रशस्त रागमात्र क्लेशकलंकित अन्तरंग भावोंसे भावितचित्त होकर साक्षात् मोक्षको नहीं पाता, किन्तु मोक्षका अन्तराय करनेवाले स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। उस स्वर्गमें जीव सर्वथा अध्यात्म-रसके अभावसे इन्द्रियविषयरूप विषवृक्षकी वासनासे मोहित चित्तवृत्तिको धारण करता हुआ बहुत कालपर्यंत सरागभावरूप अङ्गारोंसे दह्यमान हुआ बहुत ही खेदखिन्न होता है ॥१७१॥

---

१. मोक्षम् ।

स तावन्मात्ररागकलिकलङ्कितस्वान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोद-मोहितान्तरङ्गं स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ॥१७१॥

साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम्;—

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सवत्थ कुणदि मा किंचि ।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ॥ १७२॥

तस्मान्निवृत्तिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किञ्चित् ।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति ॥१७२॥

साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरं हि वीतरागत्वम् । ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दननगसङ्गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलद्दुःखसौख्यकल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भार[1]भयङ्करं भवसागर-मुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्रमध्यास्य[2] सद्यो निर्वाति[3] ॥ अलं विस्तरेण । स्वस्ति

इत्यचरमदेहपुरुषव्याख्यानमुख्यत्वेन दशमस्थले गाथाद्वयं गतं । अथास्य पंचास्तिकायप्राभृत-शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति प्रतिपादयति;—**तम्हा** यस्मादत्र ग्रन्थे मोक्षमार्गविषये वीतराग-त्वमेव दर्शितं तस्मात्कारणात् **णिव्वुदिकामो** निर्वृत्यभिलाषी पुरुषः **रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि** रागं सर्वत्र विषये करोतु मा किंचित् **सो तेण वीयरागो** स तेन रागाद्यभावेन वीतरागः सन् **भवियो** भव्यजीवः **भवसायरं तरदि** भवसमुद्रं तरतीति । तद्यथा । यस्मादत्र शास्त्रे मोक्षमार्गव्याख्यानविषये निरुपाधिचैतन्यप्रकाशरूपं वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपकार्यसमयसार-

---

आगे साक्षात् मोक्षमार्गका सार दिखानेके लिये इस शास्त्रका तात्पर्य संक्षेपमें दिखाते हैं;—[तस्मात्] जिससे कि राग भावोंसे रागादि सांसारिक सुख उत्पन्न होते हैं उस कारणसे [निवृत्तिकामः] मुक्त होनेका इच्छुक [सर्वत्र] सब जगह अर्थात् शुभाशुभ अवस्थाओंमें [किञ्चित्] कुछ भी [रागं] रागभाव [मा करोतु] मत करो । [तेन] जिससे [सः] वह जीव [वीतरागः] सरागभावोंसे रहित होता हुआ [भव्यः] मोक्षावस्थाके निकटवर्ती होकर [भवसागरं] संसाररूपी समुद्रको [तरति] तर जाता है अर्थात् संसार-समुद्रसे पार हो जाता है । **भावार्थ**—जो साक्षात् मोक्षमार्गका कारण हो सो

---

१. बाहुल्य. २. अवगाह्य. ३. निर्वाणं याति ।

साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन। शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति। द्विविधम् किल तात्पर्यं सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यञ्चेति। तत्र सूत्रतात्पर्यं किल प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम्। शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते। अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्षतत्त्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसंबन्धिबन्धमोक्षायतनबन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदितनिश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतपरमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेवतात्पर्यमिति। तदिदं वीतरागत्वम् व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा। व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेदवासितबुद्धयः सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः। तथाहीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदमश्रद्धानमिदं ज्ञेयमयं

शब्दाभिधानमोक्षाभिलाषी भव्योऽर्हदादिविषयेपि स्वसंवित्तिलक्षणरागं मा करोतु तेन निरुपरागचिज्जोतिर्भावेन वीतरागो भूत्वा अजरामरपदस्य विपरीतं जातिजरामरणादिरूपविविधजलचराकीर्णं वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखरसास्वादप्रतिबन्धकनारकादिदुःखरूपक्षारनीरपूर्णं रागादिविकल्परहितपरमसमाधिविनाशकपंचेन्द्रियविषयकांक्षाप्रभृतिसमस्तशुभाशुभविकल्पजालरूपकल्लोलमालाविराजि-

---

वीतरागभाव है, सो अरहन्तादिकमें जो भक्ति है या राग है वह स्वर्गलोकादिकके क्लेशकी प्राप्ति करके अन्तरंगमें अतिशय दाहको उत्पन्न करता है। ये धर्मराग कैसे हैं? जैसे चन्दनवृक्षमें लगी अग्नि पुरुषको जलाती है। यद्यपि चन्दन शीतल है, अग्निके दाहको दूर करनेवाला है, तथापि चन्दनमें प्रविष्ट हुई अग्नि आतापको उपजाती है। इसीप्रकार धर्मराग भी कथंचित् दुःखका उत्पादक है। इस कारण धर्मराग भी हेय (त्यागने योग्य) जानो। जो कोई मोक्षका अभिलाषी महाजन है वह प्रथम ही विषयरागका त्यागी होवे। अत्यन्त वीतराग होकर संसारसमुद्रके पार जाये। जो संसारसमुद्र नानाप्रकारके सुखदुःखरूपी कल्लोलोंके द्वारा आकुल व्याकुल है, कर्मरूपी बाडवाग्निसे बहुत ही भयका उत्पादक अति दुस्तर है, ऐसे संसारसे पार जाकर परममुक्त अवस्थारूप अमृतसमुद्रमें मग्न होकर तत्काल ही मोक्षपदको पाते हैं बहुत विस्तार कहाँ तक किया जाय? जो साक्षात् मोक्षमार्गका प्रधान कारण है, समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य है ऐसा वीतरागभाव ही जयवन्त होओ। सिद्धान्तोंमें दो प्रकारका तात्पर्य दिखाया है। एक सूत्रतात्पर्य, एक शास्त्रतात्पर्य। जो परंपरासे सूत्ररूपसे चला आया हो सो तो सूत्रतात्पर्य है, और समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागभाव है। क्योंकि उस जिनेन्द्रप्रणीत शास्त्रकी उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थोंमेंसे मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है। उस मोक्षकी सिद्धिका कारण एकमात्र वीतरागप्रणीत शास्त्र ही हैं, क्योंकि षड्द्रव्य पंचास्तिकायके स्वरूपके कथनसे जब यथार्थ वस्तुका स्वभाव दिखाया जाता है तब सहज ही मोक्षनामक पदार्थ सधता है। यह सब कथन शास्त्रमें ही है। नव पदार्थोंके कथन से प्रगट किये हैं। बंध-मोक्षका सम्बन्ध पाकर बन्ध-मोक्षके ठिकाने और बन्ध-मोक्षके भेद, स्वरूप सब शास्त्रोंमें ही दिखाये गये हैं और शास्त्रोंमें

ज्ञातेदं ज्ञानमिदमज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमिदमचरितमिदं चरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः । शनैःशनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः । कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतंत्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः । पुनः पुनर्दोषानुसारेणदत्तप्रायश्चिताः सन्ततोद्युक्ताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहिताऽध्वपरिष्वङ्गमलिनवाःसस इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहिततत्त्वरूपे विश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूचयन्तः क्रमेण समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति । अथ ये तु

तमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखप्रतिपक्षभूताकुलत्वोत्पादकनानाप्रकारमानसदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यंतरं च संसारसागरमुत्तीर्यानन्तज्ञानादिगुणलक्षणमोक्षं प्राप्नोतीति ॥ अथैवं पूर्वोक्तप्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं ज्ञातव्यं तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति मुक्तिसिद्धये नच पुनर्निरपेक्षाभ्यामिति वार्तिकं ।

ही निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग भली प्रकार दिखाया गया है। और जिनशास्त्रोंमें वर्णन किये हुये मोक्षके कारण जो परम वीतराग भाव हैं, उनसे शान्तचित्त होता है। इस कारण उस परमागमका तात्पर्य वीतरागभाव ही जानो। यह वीतरागभाव व्यवहारनिश्चयनयके अविरोधसे जब भले प्रकार जाना जाता है तबही प्रगट होता है और वांछित सिद्धिका कारण होता है, अन्य प्रकारसे नहीं। आगे निश्चय और व्यवहारनयका अविरोध दिखाते हैं। जो जीव अनादि कालसे लेकर भेदभावसे वासितबुद्धि हैं, वे व्यवहार-नयावलंबी होकर भिन्न साध्यसाधनभावकों अंगीकार करते हैं, तब सुखसे पारगामी होते हैं। प्रथम ही जो जीव ज्ञान अवस्थामें रहनेवाले हैं वे तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थसाधनभाव जहाँ है तीर्थफल शुद्ध सिद्धअवस्था साध्यभाव है। तीर्थ क्या है, सो दिखाते हैं,—जिन जीवोंके ऐसे विकल्प हों कि यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य है, यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है, यह श्रद्धान है, इसका नाम अश्रद्धान है, यह वस्तु जानने योग्य है, यह नहीं जानने योग्य है, यह स्वरूप ज्ञाताका है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचरने योग्य है, यह वस्तु आचरने योग्य नहीं है, यह आचारमयी भाव हैं, यह आचरण करनेवाला है, यह चारित्र है ऐसे अनेक प्रकारके करने न करनेके कर्त्ताकर्मके भेद उपजते हैं, उन विकल्पोंके होते हुये उन पुरुष तीर्थोंको सुदृष्टिके बढ़ावसे बारंबार उन पूर्वोक्त गुणोंके देखनेसे प्रगट उल्लास लिये उत्साह बढ़ता है। जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है वैसे ही ज्ञानदर्शनचारित्ररूप अमृतचंद्रमाकी कलाओंका कर्त्तव्याकर्त्तव्य भेदोंसे उन जीवोंके बढ़वारी होती है। फिर उन ही जीवोंके शनैः शनैः (धीरे धीरे) मोहरूप महामल्लका मूल सत्तासे विनाश होता है। किस ही एक कालमें अज्ञानताके

केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाधनभावाऽवलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः, प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्रविकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूपकर्मकाण्डोड्डमराचलिताः, कदाचित्किञ्चिद्रोचमानाः, कदाचित्किञ्चिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्किञ्चिदाचरन्तः, दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजेमानाः[1], कदाचिदनुकम्प्यमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टितानां व्युत्थापननिरोधाय नित्यबद्धपरिकराः, उपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनां भावयमाना, वारंवारमभिवर्धितोत्साहा, ज्ञानचरणाय स्वाध्यायकालमवलोकयन्तो, बहुधा विनयं प्रपञ्चयन्तः प्रविहितदुर्द्धरोपधानाः, सुष्ठु बहुमानमातन्वन्तो, ह्निवार्पत्ति

तद्यथा । ये केचन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गनिरपेक्षं केवलशुभानुष्ठानरूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्गं मन्यन्ते तेन तु सुरलोकादिक्लेशपरंपरया संसारं परिभ्रमंतीति, यदि पुनः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गं मन्यंते निश्चयमोक्षमार्गानुष्ठान-

---

आवेशसे प्रमादकी आधीनतासे उनही जीवोंके आत्मधर्मकी शिथिलता है। फिर आत्माको न्यायमार्गमें चलानेके लिये आपको प्रचण्ड दण्ड देते हैं। शास्त्रन्यायसे फिर ये ही जिनमार्गी वारंवार जैसा कुछ रत्नत्रयमें दोष लगा हो उसीप्रकार प्रायश्चित्त करते हैं। फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्माको जो आत्मस्वरूपसे भिन्नस्वरूप श्रद्धानज्ञानचारित्ररूप व्यवहाररत्नत्रयसे शुद्धता करते हैं। जैसे मलीन वस्त्रको धोबी भिन्न साध्यसाधनभावसे शिलाके ऊपर साबुन आदि सामग्रियोंसे उज्वल करता है, वैसेही व्यवहारनयका अवलम्ब पाकर भिन्न साध्यसाधनभावके द्वारा गुणस्थान चढ़नेकी परिपाटीके क्रमसे विशुद्धताको प्राप्त होता है। फिर उनही मोक्षमार्ग साधक जीवोंके निश्चयनयकी मुख्यतासे भेदस्वरूप परअवलंबी व्यवहारमयी भिन्न साध्यसाधनभावका अभाव है। इसकारण अपने दर्शनज्ञानचारित्ररूपमें सावधान होकर अन्तरंग गुप्त अवस्थाको धारण करता है। और जो समस्त बहिरंग योगोंसे उत्पन्न क्रियाकाण्डका आडम्बर है उनसे रहित निरंतर संकल्प विकल्पोंसे रहित परम चैतन्य भावोंके द्वारा सुन्दर परिपूर्ण आनंदवंत भगवान् परब्रह्म आत्मामें स्थिरताको करते हैं ऐसे ही निश्चयावलंबी जीव हैं। वे व्यवहारनयसे अविरोधी क्रमसे परम समीरसीभावके भोक्ता होते हैं। तत्पश्चात् परम वीतरागपदको प्राप्त होकर साक्षात् मोक्षावस्थाके अनुभवी होते हैं। यह तो मोक्षमार्ग दिखाया। अब जो एकान्तवादी हैं, मोक्षमार्गसे पराङ्मुख हैं उनका स्वरूप दिखाया जाता है। जो जीव मात्र व्यवहारनयका ही अवलंबन करते हैं उन जीवोंके परद्रव्यरूप भिन्न साध्यसाधनभावकी दृष्टि है, स्वद्रव्यरूप निश्चयनयात्मक अभेद साध्यसाधन-

---

१. वैराग्यमानाः ।

नितरां निवारयन्तोऽर्थव्यञ्जनतदुभयशुद्धौ नितान्तसावधानाः, चारित्राचरणाय हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहसमस्तविरतिरूपेषु पञ्चमहाव्रतेषु तन्निष्ठवृत्तयः, सम्यग्योगनिग्रहलक्षणासु गुप्तिषु नितान्तं गृहीतोद्योगा, ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपासु समितिष्वत्यन्तनिवेशितप्रयत्नास्तप आचरणायानशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशेष्वभीक्ष्णमुत्सहमानाः, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यव्युत्सर्गस्वाध्यायध्यानपरिकरांकुशितस्वान्ता, वीर्याचरणाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणाः, कर्मचेतनाप्रधानत्वाद्दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तयः, सकलक्रियाकाण्डाडम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपां ज्ञान-

---

शक्त्यभावान्निश्चयसाधकं शुभानुष्ठानं च कुर्वन्ति तर्हि सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं लभन्ते इति व्यवहारैकान्तनिराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं। येपि केवलनिश्चयनयावलंबिनः संतोपि रागादिविकल्परहितं परसमाधिरूपं शुद्धात्मानमलभमाना अपि तपोधनाचरणयोग्यं षडावश्यकाद्य-

---

भाव नहीं है। अकेले व्यवहारसे खेदखिन्न हैं। बारंबार परद्रव्यरूप धर्मादिक पदार्थोंमें श्रद्धानादिक अनेक प्रकारकी बुद्धि करते हैं। बहुत द्रव्यश्रुतके पठनपाठनादि संस्कारसे नानाप्रकारके विकल्पजालोंसे कलंकित अन्तरंगवृत्तिको धारण करते हैं। अनेकप्रकार यतिका द्रव्यलिंग, जिन बहिरंगव्रत तपस्यादिक कर्मकांडोंके द्वारा होता है, उनका ही अवलंबन कर स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ है। दर्शनमोहके उदयसे व्यवहार धर्मरागके अंशसे किसी कालमें पुण्यक्रियामें रुचि करता है, किसी कालमें दयावन्त होता है, किसी कालमें अनेक विकल्पों को उपजाता है, किसी कालमें कुछ आचरण करता है, किसी कालमें दर्शनके आचरण निमित्त समताभावको धरता है, किसी कालमें कुछ प्रगटदशाको धरता है। किसी कालमें धर्ममें अस्तित्वभावको धारण करता है, शुभोपयोग प्रवृत्तिसे शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि आदिक भावोंके उत्थापनके निमित्त सावधान होकर प्रवृत्ति करता है। केवल व्यवहारनय रूप भी उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावनांगादि अंगोंकी भावना भाता है। बारंबार उत्साहको बढ़ाता है। ज्ञानभावनाके निमित्त पठन पाठनका काल विचारता रहता है। बहुत प्रकार विनयमें प्रवृत्ति करता है। शास्त्रकी भक्तिके निमित्त बहुत आरम्भ भी करता है। भले प्रकार शास्त्रका मान करता है। गुरु आदिकमें उपकारप्रवृत्तिसे मुकरता नहीं है। एक कालमें अर्थ, व्यंजन और तदुभयकी शुद्धतामें सावधान रहता है। चारित्रके धारण करनेके लिये हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीसेवन, परिग्रह इन पाँच अधर्मोंके सर्वथा त्यागरूप जो पंचमहाव्रत हैं उनमें थिरवृत्तिको करता है। जिनमें मनवचनकायका निरोध है ऐसी तीन गुप्तियोंमें निरन्तर योगावलंबन करता है। ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग ये पाँच समिति हैं, उनमें सर्वथा प्रयत्न करता है। तप आचरणके निमित्त अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश इन छह प्रकारके बाह्यतपमें निरन्तर उत्साह करता है। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय, ध्यान, इन छह प्रकारके अन्तरंग तपके लिये चित्तको वशमें करता है। वीर्याचारके

चेतनां मनागप्यसंभावयन्तः, प्रभूतपुण्यभारमन्थरितचित्तवृत्तयः, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिरं संसारसागरे भ्रमन्तीति। उक्तञ्च—"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा। चरणकरणस्स सारं, णिच्छयसुद्धं ण जाणंति"। येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिनः सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलितविलोचनपुटाः किमपि स्वबुद्ध्यावलोक्य यथासुखमासते; ते खल्ववधीरितभिन्नसाध्यसाधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभरालसचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रभूतघृतसितोपलपायसासादितसौहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनोभ्रंशविहितमोहा इव, मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबंधभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूपज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमाद-

---

नुष्ठानं श्रावकाचरणयोग्यं दानपूजाद्यनुष्ठानं च दूषयंते तेप्युभयभ्रष्टाः संतो निश्चयव्यवहारानुष्ठानयोग्यावस्थान्तरमजानन्तः पापमेव बध्नन्ति। यदि पुनः शुद्धात्मानुष्ठानरूपं मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहारमोक्षमार्गं मन्यन्ते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्यभावेन शुभाशुभानुष्ठानरहिता अपि यद्यपि

निमित्त कर्मकांड में अपनी सर्वशक्तिसे प्रवृत्त होता है। जिन्होंने कर्मचेतनाकी प्रधानतासे अशुभ कर्मकी प्रवृत्ति निवारी है वे ही शुभकर्मकी प्रवृत्तिको अङ्गीकार करते हैं। समस्त क्रियाकांडके आडम्बरसे गर्भित जो जीव है वे ज्ञानदर्शनचारित्ररूपगर्भित ज्ञानचेतनाको किसी कालमें भी नहीं पाते। बहुत पुण्याचरणके भारसे गर्भित चित्तवृत्तिको धारण करते हैं, ऐसे केवल व्यवहारालंबी मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गलोकादिकके क्लेशोंकी प्राप्तिकी परंपराको अनुभव करते हुये परमकलाके अभावसे बहुत काल पर्यन्त संसारमें परिभ्रमण करेंगे। सो कहा भी है —

उक्तं च—"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा।
चरणकरणस्स सारं, णिच्छयशुद्धं ण जाणंति॥ १॥

अर्थात्—जो जीव केवल निश्चयके ही अवलंबी हैं वे व्यवहाररूप स्वसमयमयी क्रियाकर्मकाण्डको आडंबर जानकर व्रतादिकमें विरागी हो रहे हैं। अर्द्ध उन्मीलित लोचनसे ऊर्ध्वमुखी होकर स्वच्छंदवृत्तिको धारण करते हैं। कोई कोई अपनी बुद्धिसे ऐसा मानते हैं कि हम स्वरूपका अनुभव करते हैं। ऐसी समझसे सुखरूप प्रवृत्ति करते हैं। वे भिन्न साध्यसाधनभावरूप व्यवहार को तो मानते नहीं, निश्चयरूप अभिन्न साध्यसाधनको अपनेमें मानते हुये यों ही बहक रहे हैं। वे वस्तुको नहीं पाते, न निश्चयपदको पाते हैं, न व्यवहार पदको पाते हैं 'इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः' होकर बीचमें ही प्रमादरूपी मदिराके प्रभावसे चित्तमें मतवाले हुये मूर्छितसे हो रहे हैं। जैसे कोई बहुत घी, मिश्री, दुग्ध इत्यादि गरिष्ठ वस्तुके भोजनपानसे सुथिर आलसी हो रहे हैं। अर्थात् अपनी

---

१. चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्तव्यापाराः।
चरणकरणस्य सारं, निश्चयशुद्धं न जानन्ति॥

तन्द्रा अंरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति । उक्तञ्च—"णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता । णासन्ति चरणकरणं वाहरिचरणालसा केई" ॥ ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानवलम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः । शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानुवृत्तिनिर्वर्तिकां क्रियाकाण्डपरिणतिमाहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि संचेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि सन्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरुपमीयमाना अपि दूरनिरस्तकर्मफलानुभूतयः कर्मानुभूतिनिरुत्सुकाः केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विका-

---

शुद्धात्मभावनासापेक्षशुभानुष्ठानरतपुरुषसदृशा न भवन्ति तथापि सरागसम्यक्त्वादिदानव्यवहारसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं च लभंते इतिनिश्चयैकान्तनिराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं। ततः स्थितमेतन्निश्चयव्यवहारपरस्परसाध्यसाधकभावेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभंते ॥१७२॥

इति शास्त्रतात्पर्योपसंहारवाक्यं। एवं वाक्यपंचकेन कथितार्थस्य विवरणमुख्यत्वेन

उत्कृष्ट देहके बलसे जड़ हो रहे हैं। महा भयानक भावसे मानों कि वे मनकी भ्रष्टतासे मोहित-विक्षिप्त हो गये हैं। चैतन्य-भावसे रहित मानो कि वे वनस्पति ही हैं। मुनि-पदवी करनेवाली कर्मचेतनाका पुण्यबंधके भयसे अवलंबन नहीं करते और परमनिःकर्मदशारूप ज्ञानचेतनाको अङ्गीकार की ही नहीं, इस कारण अतिशय चंचलभावोंके धारी हैं। प्रगट अप्रगटरूप जो प्रमाद हैं उनके आधीन हो रहे हैं। महा अशुद्धोपयोगसे आगामी कालमे कर्मफलमें चेतनासे प्रधान होते हुये वनस्पति के समान जड़ हैं। केवल मात्र पापही के बांधनेवाले हैं। सो कहा भी है कि—

उक्तं च—णिच्छयमालंवंता, णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता ।
णासंति चरणकरणं, वाहरिचरणालसा केई ॥२॥

अर्थात्—जो कोई पुरुष मोक्षके निमित्त सदाकाल उद्यमी हो रहे हैं वे महा भाग्यवान हैं निश्चय व्यवहार इन दोनों नयोंमें किसी एकका पक्ष नहीं करते, सर्वथा मध्यस्थ भाव रखते हैं। शुद्ध चैतन्यरूप आत्मतत्त्वमें स्थिरता करनेके लिये सावधान रहते हैं। जब प्रमादभावकी प्रवृत्ति होती है तब उसको दूर करनेके लिये शास्त्राज्ञानुसार क्रियाकांड परिणतिरूप प्रायश्चित्त करके अत्यन्त उदासीन भाव धारण करते हैं। फिर यथाशक्ति आपको आपके द्वारा आपमें ही वेदन करते हैं। सदा निजस्वरूपके उपयोगी होते हैं जो ऐसे अनेककान्तवादी साधक अवस्थाके धारण करनेवाले जीव हैं वे अपने तत्त्वको थिरताके अनुसार क्रमक्रमसे कर्मोंका नाश करते हैं। अत्यन्त

---

१. निश्चयमालम्बन्तो, निश्चयतो निश्चयं अजानन्तः ।
नाशयन्ति चरणकरणं, बाह्यचरणालसाः केऽपि ॥

नन्दनिर्भरतरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भवन्तीति ॥ १७२ ॥

कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम्;—

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥१७३॥

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया ।
भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ॥१७३॥

मार्गो हि परमवैराग्यकरणप्रवणा पारमेश्वरी परमाज्ञा । तस्याः प्रभावनं

एकादशस्थले गाथा गता। अथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवः स्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन् सन् ग्रन्थं समापयति;—**पंचास्तिकायसंग्रहं सूत्रं।** किंविशिष्टं ? प्रवचनसारं। किमर्थं ? मार्गप्रभावनार्थमिति। तथाहि—मोक्षमार्गो हि संसारशरीरभोगवैराग्यलक्षणो निर्मलात्मानुभूतिस्तस्याः प्रभावनं स्वयमनुभवनमन्येषां प्रकाशनं वा तदर्थमेव परमागमभक्तिप्रेरितेन मया कर्तृभूतेन पंचास्तिकायशास्त्रमिदं व्याख्यातं। किं लक्षणं ? पंचास्तिकायषड्द्रव्यादिसंक्षेपेण व्याख्यानेन समस्तवस्तुप्रकाशकत्वात् द्वादशांगस्यापि प्रवचनस्य सारभूतमिति भावार्थः ॥१७३॥ इति ग्रंथसमाप्तिरूपेण द्वादशस्थले गाथा गता।

एवं तृतीयमहाधिकारः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ यतः पूर्वं संक्षेपरुचिशिष्यसंबोधनार्थं पंचास्तिकायप्राभृतं कथितं ततो यदा काले शिक्षां गृह्णाति तदा शिष्यो भण्यते इति हेतोः शिष्यलक्षणकथनार्थं परमात्माराधकपुरुषाणां दीक्षाशिक्षाव्यवस्थाभेदाः

ही प्रमादसे रहित होते अडोल अवस्था धारण करते हैं। ऐसा जानो कि बनमें वनस्पति हैं। दूर किया है कर्मफल चेतनाका अनुभव जिन्होंने ऐसे, तथा कर्मचेतनाकी अनुभूतिमें उत्साह रहित हैं। केवल मात्र ज्ञानचेतनाकी अनुभूतिसे आत्मीक सुखसे भरपूर हैं। वे शीघ्र ही संसारसमुद्रसे पार होकर समस्त सिद्धान्तोंके मूल शाश्वत पदके भोक्ता होते हैं ॥ १७२ ॥

ग्रन्थकर्त्ताने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ कहूँगा, सो उसको संक्षेपमें ही करके समाप्त करते हैं;—[**मया**] मुझ कुन्दकुन्दाचार्यने [**पञ्चास्तिकायसंग्रहं**] कालके विना पंचास्तिकायरूप जो पाँच द्रव्य हैं, उनके कथनका जिसमें संग्रह है ऐसा यह [**सूत्रं**] शब्द-अर्थ-गर्भित संक्षेप-अक्षर-पद-वाक्य-रचनारूप सूत्र [**भणितं**] पूर्वाचार्योंकी परंपरा-शब्दब्रह्मानुसार कहा है। यह पञ्चास्तिकाय कैसा है ? [**प्रवचनसारं**] द्वादशांगरूप जिनवाणीका रहस्य है। मैं कैसा हूँ ? [**प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन**] सिद्धान्त कहनेके अनुरागसे प्रेरित किया हुआ हूँ। किसलिये यह ग्रन्थ रचना की है ? [**मार्गप्रभावनार्थं**] जिनेन्द्र भगवन्तप्रणीत जिनशासनकी वृद्धिके लिये। **भावार्थ—** संसार—विषयभोगसे परम वैराग्यको करनेवाली भगवन्तकी आज्ञाका नाम मोक्षमार्ग है। उसकी

प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा समुद्योतनं तदर्थमेव परमागमानुरागवेग-प्रचलितमनसा संक्षेपतः समस्तवस्तुतत्त्वसूचकत्वादतिविस्तृतस्यापि प्रवचनसारस्य

प्रतिपाद्यंते। दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थभेदेन षटकाला भवंति। तद्यथा। यदा कोप्यासन्नभव्यो भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमाचार्यं प्राप्यात्माराधनार्थं बाह्याभ्यंतरपरिग्रहपरित्यागं कृत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति स दीक्षाकालः, दीक्षानंतरं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयस्य परमात्मतत्त्वस्य च प्रतिज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकाध्यात्मशास्त्रेषु यदा शिक्षां गृह्णाति स शिक्षाकालः। शिक्षानंतरं निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्गे स्थित्वा तदर्थिनां भव्यप्राणिगणानां परमात्मोपदेशेन यदा पोषणं करोति स च गण-पोषणकालः। गणपोषणानन्तरं गणं त्यक्त्वा यदा निजपरमात्मनि शुद्धसंस्कारं करोति स आत्मसंस्कार-कालः आत्मसंस्कारानंतरं तदर्थमेवक्रोधादिकषायरहितानंतज्ञानादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यग्लेखनं तनुकरणं भावसल्लेखना तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसल्लेखना तदु-भयाचरणं स सल्लेखनाकालः सल्लेखनानंतरं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठान-वहिर्द्रव्येच्छानिरोधलक्षणतपश्चरणरूपनिश्चयचतुर्विधाराधना या तु सा चरमदेहस्य तद्भवमोक्षयोग्या तद्विपरीतस्य भवांतरमोक्षयोग्या चेत्युभयमुत्तमार्थकालः। अत्र कालषट्कमध्ये केचन प्रथमकाले केचन द्वितीयकाले केचन तृतीयकालादौ केवलज्ञानमुत्पादयंतीति कालषट्कनियमो नास्ति। अथवा "ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यत्र यस्य यदा यथा। इत्यष्टागांनि योगानां साधनानि भवंति च"। अस्य संक्षेपव्याख्यानं "गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यदा स्थितं। एकाग्रचिंतनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरे"॥ इत्यादि तत्त्वानुशासनध्यानग्रन्थादौ कथितमार्गेण जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिधा ध्यातारो ध्यानानि च भवंति। तदपि कस्मात्? तत्रैवोक्तमास्ते द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपा ध्यानसामग्री जघन्यादिभेदेन त्रिधेति वचनात्। अथवातिसंक्षेपेण द्विधा ध्यातारो भवन्ति। शुद्धात्मभावनाप्रारंभकाः पुरुषाः सूक्ष्मसविकल्पावस्थायां प्रारब्धयोगिनो भण्यन्ते। निर्विकल्पशुद्धात्मावस्थायां पुनर्निष्पन्नयोगिन इति संक्षेपेणाध्यात्मभाषया ध्यातृध्यानध्येयानि संवरनिर्जरासाधकरागादिविकल्परहितपरमानंदैकल-क्षणसुखवृद्धिनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानवृद्धिवुद्धयादिसप्तर्द्धिरूपध्यानफलभेदा ज्ञातव्याः। किं च। शिक्षक-प्रारंभककृताभ्यासनिष्पन्नरूपेण कैश्चिदन्यत्रापि यदुक्तं ध्यातृपुरुषलक्षणं तदत्रैवांतर्भूतं यथासंभवं द्रष्टव्यमिति। इदानीं पुनरागमभाषया षट्कालाः कथ्यंते। यदा कोपि चतुर्विधाराधनाभिमुखः सन् पंचाचारोपेतमाचार्यं प्राप्योभयपरिग्रहरहितो भूत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति तदा दीक्षाकालः, दीक्षानंतरं चतुर्विधाराधनापरिज्ञानार्थमाचाराराधनादिचरणकरणग्रन्थशिक्षां गृह्णाति तदा शिक्षाकालः, शिक्षानंतरं चरणकरणकथितार्थानुष्ठानेन व्याख्यानेन च पंचभावनासहितः सन् शिष्यगणपोषणं करोति तदा

प्रभावनाके लिये यह ग्रन्थ मैंने किया है। अथवा उसही मोक्षमार्गका उद्योत किया है। सिद्धान्ता-नुसार संक्षेपसे भक्तिपूर्वक पञ्चास्तिकाय नामा मूल सूत्र-ग्रन्थ कहा है। इसप्रकार ग्रन्थकर्ता

सारभूतं पञ्चास्तिकायसंग्रहाभिधान भगवत्सर्वज्ञोपज्ञत्वात् सूत्रमिदमभिहितं मयेति । अथैवं शास्त्रकारः प्रारब्धस्यान्तमुपगम्यात्यन्तं कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते ॥१७३॥

गणपोषणकालः। भावनाः कथ्यंते—तपः—श्रुतसत्त्वैकत्वसंतोषभेदेन भावनाः पंचविधा भवंति । तद्यथा—अनशनादिद्वादशविधनिर्मलतपश्चरणं तपोभावना, तस्याः फलं विषयकषायजयो भवति। प्रथमानियोगचरणानियोगकरणानियोगद्रव्यानियोगभेदेन चतुर्विध आगमाभ्यासः श्रुतभावना । तथाहि—त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणव्याख्यानं प्रथमानियोगो भण्यते, उपासकाध्ययनाचाराधनादिग्रन्थैर्देशचारित्रसकलचारित्रव्याख्यानं चरणानियोगो भण्यते, जिनांतरत्रिलोकसारलोकविभागलोकानियोगादिव्याख्यानं करणानियोगो भण्यते, प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तग्रन्थैर्जीवादिषड्द्रव्यादीनां व्याख्यानं द्रव्यानियोग इति, तस्याः श्रुतभावनायाः फलं जीवादितत्त्वविषये संक्षेपेण हेयोपादेयतत्त्वविषये वा संशयविमोहविभ्रमरहितो निश्चलपरिणामो भवति। उक्तं च। "आत्महितास्था भावस्य संवरो नवनवश्च संवेगः निःकंपता तपोभावना परस्योपदेशनं ज्ञातुः" ॥ मूलोत्तरगुणाद्यनुष्ठानविषये निर्गहनवृत्तिः सत्त्वभावना, तस्याः फलं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेपि निर्गहनेन मोक्षं साधयति पांडवादिवत्। "एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा" ॥ इत्येकत्वभावना तस्याः फलं स्वजनपरजनादौ निर्मोहत्वं भवति। तथा चोक्तं। "भगिनीं विडंब्यमानां यथा विलोक्यैकभावनाचतुरः। जिनकल्पितो न मूढः क्षपकोपि तथा न मुह्येत" ॥ मानापमानसमताबलेनाशनपानादौ यथालाभेन संतोषभावना तस्याः फलं रागाद्युपाधिरहितपरमानंदैकलक्षणात्मोत्थसुखतृप्त्या निदानबंधादिविषयसुखनिवृत्तिरिति, गणपोषणानंतरं स्वकीयगणं त्यक्त्वात्मभावनासंस्कारार्थी भूत्वा परगणं गच्छति तदात्मसंस्कारकालः; आत्मसंस्कारानंतरमाचाराराधनाकथितक्रमेण द्रव्यभावसल्लेखनां करोति तदा सल्लेखनाकालः, सल्लेखनानंतरं चतुर्विधाराधनाभावनया समाधिविधिना कालं करोति तदा स उत्तमार्थकालश्चेति। अत्रापि केचन प्रथमकालादावपि चतुर्विधाराधनां लभंते षट्कालनियमो नास्ति। अयमत्र भावार्थः "आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य। आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।" एवं प्रभृत्यागमसारादर्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्मशास्त्रं भण्यते, तदाश्रिताः षट्कालाः पूर्वं संक्षेपेण व्याख्याताः। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते। तच्चाभेदरत्नत्रयात्मकस्याध्यात्मानुष्ठानस्य बहिरंगसाधनं भवति। तदाश्रिता अपि

श्री कुन्दकुन्दाचार्य महाराजने यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया था सो उसके पारको प्राप्त हुये अपनी कृतकृत्य अवस्था मानी, कर्मरहित शुद्धस्वरूपमें स्थिरभाव किया। ऐसी हमारेमें भी श्रद्धा उपजी है ॥१७३॥

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥८॥

इति श्रीपंचास्तिकायव्याख्यायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनात्मको द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

समाप्तेयं तत्त्वदीपिका टीका पंचास्तिकायस्य ।

षट्काला संक्षेपेण व्याख्याता, विशेषेण पुनरुभयत्रापि षट्कालव्याख्यानं पूर्वाचार्यकथितक्रमेणान्यग्रंथेषु ज्ञातव्यं ॥

*इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावदेकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टभिरंतराधि*कारैः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः तदनंतरं पंचाशद्गाथाभिर्दशभिरंतराधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो द्वितीयो महाधिकारः । तदनंतरं विंशतिगाथाभिर्द्वादशस्थलैर्मोक्षस्वरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधानस्तृतीयमहाधिकारश्चेत्यधिकारत्रयसमुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिः पंचास्तिकायप्राभृतः समाप्तः ॥ विक्रमसंवत् १३६९ वर्षेराश्विनशुद्धिः १ भौमदिने ।

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः पञ्चास्तिकायस्य ।

इति श्रीपांडे हेमराजकृत समयव्याख्यायां भाषाटीकायां नवपदार्थपुरःसर
मोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥२॥

समाप्ता इयं बालावबोधिनी भाषाटीका ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

पंचास्तिकाय[1]

१. सौ इन्द्रोंसे वन्दनीय, तीनलोकके कल्याणकारी, मधुर और निर्मल जिनके वाक्य हैं, अनन्त जिनके गुण हैं, जिन्होंने संसारका पराजय किया है ऐसे भगवान सर्वज्ञ वीतरागको नमस्कार।

२. सर्वज्ञ महामुनिके मुखसे उत्पन्न अमृत, चार गतिसे जीवको मुक्तकर निर्वाण प्राप्त करानेवाले आगमको नमन करके यह शास्त्र कहता हूँ उसे श्रवण करें।

३. पाँच अस्तिकायके समूहरूप अर्थसमयको सर्वज्ञ वीतरागदेवने 'लोक' कहा है। उसके अनन्तर मात्र आकाशरूप अनन्त 'अलोक' है।

४-५. 'जीव', 'पुद्गलसमूह', 'धर्म', 'अधर्म' तथा 'आकाश' ये पदार्थ अपने अस्तित्वमें नियमसे रहते हैं, अपनी सत्तासे अभिन्न हैं, और अनेक प्रदेशात्मक हैं। अनेक गुण और पर्यायसहित जिनका अस्तित्वस्वभाव है वे 'अस्तिकाय' हैं। उनसे त्रैलोक्य उत्पन्न होता है।

६. ये अस्तिकाय तीनों कालमें भावरूपसे परिणामी हैं, और परावर्तन लक्षणवाले कालसहित छहों 'द्रव्यसंज्ञा' को प्राप्त होते हैं।

७. ये द्रव्य एक दूसरेमें प्रवेश करते हैं, एक दूसरेको अवकाश देते हैं, परस्पर मिल जाते हैं, और अलग हो जाते हैं; परन्तु अपने स्वभावका त्याग नहीं करते।

८. सत्तास्वरूपसे सब पदार्थ एकत्ववाले हैं, वह सत्ता अनन्त प्रकारके स्वभाववाली है, अनन्त गुण और पर्यायात्मक है, उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप एवं सामान्य विशेषात्मक है।

९. जो उन-उन अपने सद्भावपर्यायों-गुणपर्याय स्वभावोंको प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहते हैं, जो अपनी सत्तासे अनन्य है।

१०. द्रव्य सत् लक्षणवाला है, जो उत्पादव्ययध्रौव्यसहित है, जो गुणपर्यायका आश्रय है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं।

११. द्रव्यकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, उसका 'अस्ति' स्वभाव ही है। उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व ये पर्यायके कारण होते हैं।

१२. पर्यायरहित द्रव्य नहीं है और द्रव्यरहित पर्याय नहीं है, दोनों अनन्यभावसे हैं, ऐसा महामुनि कहते हैं।

१३. द्रव्यके बिना गुण नहीं होते और गुणोंके बिना द्रव्य नहीं होता, इसलिये द्रव्य और गुण दोनोंका अभिन्न भाव है।

१४. 'स्यात् [1]अस्ति', 'स्यात् [2]नास्ति', 'स्यात् [3]अस्ति नास्ति', 'स्यात् [4]अवक्तव्यं', 'स्यात् [5]अस्ति अवक्तव्यं', 'स्यात् [6]नास्ति अवक्तव्यं' 'स्यात् [7]अस्तिनास्ति अवक्तव्यं', यों विवक्षासे द्रव्यके सात भंग होते हैं।

१५. भाव-द्रव्यका नाश नहीं होता, और अभाव-अद्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती। गुणपर्यायके स्वभावसे उत्पाद और व्यय होते हैं।

१६. जीव आदि पदार्थ हैं। जीवके गुण चेतना और उपयोग हैं। देव, मनुष्य, नारक, तिर्यंच आदि जीवके अनेक पर्याय हैं।

---

१. श्रीमद् राजचंद्रकृत संक्षिप्त गूर्जरानुवाद परसे हिंदी अनुवाद, "श्रीमद् राजचंद्र" बृहद्ग्रन्थके पत्रांक ७६६ से उद्धृत।

१७. मनुष्यपर्यायसे नष्ट हुआ जीव देव या अन्य पर्यायसे उत्पन्न होता है। दोनोंमें जीवभाव ध्रुव है। वह नष्ट होकर कुछ अन्य नहीं होता।

१८ जो जीव उत्पन्न हुआ था वही जीव नष्ट हुआ है। वस्तुत. तो वह जीव उत्पन्न नहीं हुआ और नष्ट भी नहीं हुआ। उत्पत्ति और नाश देवत्व और मनुष्यत्वका होता है।

१९. इस तरह सत्का विनाश और असत् जीवका उत्पाद नहीं होता। जीवके देव, मनुष्य आदि पर्याय गतिनामकर्मसे होते हैं।

२०. ज्ञानावरणीय आदि कर्मभाव जीवने सुदृढ (अवगाढ) रूपसे बाँधे हैं, उनका अभाव करनेसे वह अभूतपूर्व 'सिद्ध भगवान' होता है।

२१. इस तरह गुणपर्यायसहित जीव भाव, अभाव, भावाभाव और अभावभावसे संसारमें परिभ्रमण करता है।

२२. जीव, पुद्गलसमूह, आकाश तथा दूसरे अस्तिकाय किसीके बनाये हुए नहीं हैं, स्वरूपसे ही अस्तित्ववाले हैं, और लोकके कारणभूत हैं।

२३. सद्भाव स्वभाववाले जीवों और पुद्गलके परावर्तनसे उत्पन्न जो काल है उसे निश्चय-काल कहा है।

२४. वह काल पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्शसे रहित है, अगुरुलघु है, अमूर्त है और वर्तनालक्षणवाला है।

२५. समय, निमेष, काष्ठा, कला, नाली, मुहूर्त, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु और संवत्सर आदि यह व्यवहारकाल है।

२६. कालके किसी भी परिमाण (माप) के बिना बहुत काल, अल्प काल यों नहीं कहा जा सकता। उसकी मर्यादा पुद्गलद्रव्यके बिना नहीं होती। इस कारण कालका पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न होना कहा जाता है।

२७. जीवत्ववाला, ज्ञाता, उपयोगवाला, प्रभु, कर्त्ता, भोक्ता, देहप्रमाण, वस्तुतः अमूर्त्त और कर्मावस्थामें मूर्त्त ऐसा जीव है।

२८. कर्ममलसे सर्वथा मुक्त हो जानेसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी आत्मा ऊर्ध्व लोकांतको प्राप्त होकर अतींद्रिय अनन्त सुखको प्राप्त होता है।

२९. अपने स्वाभाविक भावसे आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है और अपने कर्मसे मुक्त होनेसे वह अनंत सुखको प्राप्त होता है।

३०. बल, इन्द्रिय, आयु और उच्छ्वास इन चार प्राणोंसे जो भूतकालमे जीता था, वर्तमान-कालमें जीता है, और भविष्यकालमें जीयेगा वह 'जीव' है।

३१. अनंत अगुरुलघु गुणोंसे निरंतर परिणत अनंत जीव हैं। वे असंख्यात प्रदेशप्रमाण हैं। कुछ जीव लोकप्रमाण अवगाहनाको प्राप्त हुए हैं।

३२. कुछ जीव उस अवगाहनाको प्राप्त नहीं हुए हैं। मिथ्यादर्शन, कषाय और योगसहित अनंत संसारी जीव हैं। उनसे रहित अनंत सिद्ध हैं।

३३. जिस प्रकार पद्मराग नामका रत्न दूधमें डालनेसे दूधके परिमाणके अनुसार प्रकाशित होता है, उसी प्रकार देहमें स्थित आत्मा मात्र देहप्रमाण प्रकाशक-व्यापक है।

३४. जैसे एक कायामें सर्व अवस्थाओंमें वहीका वही जीव रहता है, वैसे सर्वत्र संसारावस्था में भी वहीका वही जीव रहता है। अध्यवसायविशेषसे कर्मरूपी रजोमलसे वह जीव मलिन होता है।

३५. जिनको प्राणधारिता नहीं है, जिनको प्राणधारिताका सर्वथा अभाव हो गया है, वे— देहसे भिन्न और वचनसे अगोचर जिनका स्वरूप है ऐसे—'सिद्ध' जीव हैं।

३६. वस्तुदृष्टिसे देखें तो सिद्ध पद उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वह किसी दूसरे पदार्थसे उत्पन्न होनेवाला कार्य नहीं है, इसी तरह वह किसीके प्रति कारणरूप भी नहीं है, क्योंकि किसी अन्य सम्बन्धसे उसकी प्रवृत्ति नहीं है।

३७. यदि मोक्षमें जीवका अस्तित्व ही न हो तो शाश्वत, अशाश्वत, भव्य, अभव्य, शून्य, अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान ये भाव किसको हों?

३८. कोई जीव कर्मके फलका वेदन करते हैं, कोई जीव कर्मबंधकर्तृत्वका वेदन करते हैं, और कोई जीव मात्र शुद्ध ज्ञानस्वभावका वेदन करते हैं; इस तरह वेदकभावसे जीवराशिके तीन भेद हैं।

३९. स्थावर कायके जीव अपने अपने किये हुए कर्मोंके फलका वेदन करते हैं, त्रस जीव कर्मबंध चेतनाका वेदन करते हैं, और प्राणरहित अतींद्रिय जीव शुद्धज्ञानचेतनाका वेदन करते हैं।

४०. ज्ञान और दर्शनके भेदसे उपयोग दो प्रकारका है, उसे जीवसे सर्वदा अनन्यभूत समझें।

४१. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये ज्ञानके पांच भेद हैं। कुमति, कुश्रुत और विभंग ये अज्ञानके तीन भेद हैं। ये सब ज्ञानोपयोगके भेद हैं।

४२. चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और अविनाशी अनंत केवलदर्शन ये दर्शनोपयोगके चार भेद हैं।

४३. आत्मासे ज्ञानगुणका सम्बन्ध है, और इसीसे आत्मा ज्ञानी है ऐसा नहीं है; परमार्थसे दोनोंमें अभिन्नता ही है।

४४. यदि द्रव्य भिन्न हो और गुण भी भिन्न हों तो एक द्रव्यके अनंत द्रव्य हो जायें, अथवा द्रव्यका अभाव हो जाये।

४५. द्रव्य और गुण अनन्यरूपसे हैं, दोनोंमें प्रदेशभेद नहीं है। द्रव्यके नाशसे गुणका नाश हो जाता है और गुणके नाशसे द्रव्यका नाश हो जाता है ऐसा उनमें एकत्व है।

४६. व्यपदेश (कथन), संस्थान, संख्या और विषय इन चार प्रकारकी विवक्षाओंसे द्रव्यगुणके अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु परमार्थनयसे ये चारों अभेद हैं।

४७. जिस तरह यदि पुरुषके पास धन हो तो वह धनवान कहा जाता है, उसी तरह आत्माके पास ज्ञान है, जिससे वह ज्ञानवान कहा जाता है। इस तरह भेद-अभेदका स्वरूप है, इसे तत्त्वज्ञ दोनों प्रकारसे जानते हैं।

४८. यदि आत्मा और ज्ञानका सर्वथा भेद हो तो दोनों ही अचेतन हो जायें ऐसा वीतराग सर्वज्ञका सिद्धांत है।

४९. ज्ञानका सम्बन्ध होनेसे आत्मा ज्ञानी होता है ऐसा माननेसे आत्मा और अज्ञान-जड़त्वका ऐक्य होनेका प्रसंग आता है।

५०. समवर्तित्व समवाय है। वह अपृथक्भूत और अपृथक् सिद्ध है; इसलिये वीतरागोंने द्रव्य और गुणके सम्बन्धको अपृथक् सिद्ध कहा है।

५१. वर्ण, रस, गंध और स्पर्श ये चार विशेष (गुण) परमाणु द्रव्यसे अभिन्न हैं। व्यवहारसे वे पुद्गलद्रव्यसे भिन्न कहे जाते हैं।

५२. इसी तरह दर्शन और ज्ञान भी जीवसे अनन्यभूत हैं। व्यवहारसे उनका आत्मासे भेद कहा जाता है।

५३. आत्मा (वस्तुतः) अनादि-अनंत है, और संतानकी अपेक्षासे सादि-सांत भी है और सादिअनंत भी है। पाँच भावोंकी प्रधानतासे वे सब भंग होते हैं। सद्भावसे जीव द्रव्य अनंत है।

५४. इस तरह सत् (जीव-पर्याय) का विनाश और असत् जीवका उत्पाद परस्पर विरुद्ध होने-पर भी जैसा अविरोधरूपसे सिद्ध है वैसा सर्वज्ञ वीतरागने कहा है।

५५. नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव—ये नामकर्मकी प्रकृतियाँ सत्का विनाश और असत् भावका उत्पाद करती हैं।

५६. उदय, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम और पारिणामिक भावोंसे जीवके गुणोंका बहुत विस्तार है।

५७, ५८, ५९.

६०. द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर जीव उदय आदि भावोंमें परिणमन करता है; भावकर्मका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मका परिणमन होता है। कोई किसीके भावका कर्ता नहीं है, और कर्ताके बिना होते नहीं हैं।

६१. सब अपने अपने स्वभावके कर्त्ता हैं, इसी तरह आत्मा भी अपने ही भावका कर्ता है; आत्मा पुद्गलकर्मका कर्त्ता नहीं है; ये वीतराग-वचन समझने योग्य हैं।

६२. कर्म अपने स्वभावके अनुसार यथार्थ परिणमन करता है, उसी प्रकार जीव अपने स्व-भावके अनुसार भावकर्मको करता है।

६३. यदि कर्म ही कर्मका कर्त्ता हो, और आत्मा ही आत्माका कर्त्ता हो, तो फिर उस कर्मका फल कौन भोगेगा? और कर्म अपने फलको किसे देगा?

६४. संपूर्ण लोक पुद्गल-समूहोंसे भरपूर भरा हुआ है सूक्ष्म और बादर ऐसे विविध प्रकारसे अनंत स्कन्धोंसे।

६५. आत्मा जब भावकर्मरूप अपने स्वभावको करता है, तब वहाँ रहे हुए पुद्गलपरमाणु अपने स्वभावके कारण कर्मभावको प्राप्त होते हैं, और परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूपसे अवगाढता पाते हैं।

६६. कोई कर्त्ता नहीं होने पर भी जैसे पुद्गलद्रव्यसे अनेक स्कंधोंकी उत्पत्ति होती है वैसे ही कर्मरूपसे स्वभावतः पुद्गलद्रव्य परिणमित होते हैं ऐसा जानें।

६७. जीव और पुद्गलसमूह परस्पर अवगाढ-ग्रहणसे प्रतिबद्ध हैं। इसलिये यथाकाल उदय होनेपर जीव सुखदुःखरूप फलका वेदन करता है।

६८. इसलिये कर्मभावका कर्ता जीव है और भोक्ता भी जीव है। वेदक भावके कारण वह कर्मफलका अनुभव करता है।

६९. इस तरह आत्मा अपने भावसे कर्त्ता और भोक्ता होता है। मोहसे भलीभाँति आच्छादित जीव संसारमें परिभ्रमण करता है।

७०. (मिथ्यात्व) मोहका उपशम होनेसे अथवा क्षय होनेसे वीतरागकथित मार्गको प्राप्त हुआ धीर, शुद्ध ज्ञानाचारवान जीव निर्वाणपुरको जाता है।

७१-७२. एक प्रकारसे, दो प्रकारसे, तीन प्रकारसे, चार गतियोंके भेदसे, पाँच गुणोंकी मुख्यतासे, छः कायके भेदसे, सात भंगोंके उपयोगसे, आठ गुणों अथवा आठ कर्मोंके भेदसे, नव तत्त्वसे, और दशस्थानकसे जीवका निरूपण किया गया है।

७३. प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंधसे सर्वथा मुक्त होनेसे जीव उर्ध्वगमन करता है। संसार अथवा कर्मावस्थामें जीव विदिशाको छोड़कर दूसरी दिशाओंमें गमन करता है।

७४. स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु इस तरह पुद्गलास्तिकायके चार भेद समझें।

७५. सकल समस्तको 'स्कंध', उसके आधेको 'देश', उसके आधेको 'प्रदेश' और अविभागी-को 'परमाणु' कहते हैं।

७६. बादर और सूक्ष्म परिणमन पाने योग्य स्कंधोंमें पूरण (बढ़ना) और गलन (घटना, विभक्त होना) स्वभाव जिनका है वे पुद्गल कहे जाते हैं। उनके छः भेद हैं, जिनसे त्रैलोक्य उत्पन्न होता है।

७७. सर्व स्कंधोंका जो अंतिम भेद है वह परमाणु है। वह शाश्वत, शब्दरहित, एक, अविभागी और मूर्त होता है।

७८. जो विवक्षासे मूर्त्त और चार धातुओंका कारण है उसे परमाणु जानना चाहिये। वह परिणामी है, स्वयं अशब्द अर्थात् शब्दरहित है, परन्तु शब्दका कारण है।

७९. स्कंधसे शब्द उत्पन्न होता है। अनंत परमाणुओंके मिलापके संघात-समूहको 'स्कंध' कहा है। इन 'स्कंधों' का परस्पर स्पर्श होनेसे, संघर्ष होनेसे निश्चय ही 'शब्द' उत्पन्न होता है।

८०. वह परमाणु नित्य है, अपने रूप आदि गुणोंको अवकाश-आश्रय देता है, स्वयं एकप्रदेशी होनेसे एक प्रदेशके बाद अवकाशको प्राप्त नहीं होता, दूसरे द्रव्यको अवकाश (आकाशकी तरह) नहीं देता, स्कंधके भेदका कारण है—स्कंधके खंडका कारण है, स्कंधका कर्त्ता है, और कालके परिमाण (माप) और संख्या (गिनती) का हेतु है।

८१. जो द्रव्य एक रस, एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्शसे युक्त है, शब्दकी उत्पत्तिका कारण है, एकप्रदेशात्मकतासे शब्दरहित है, स्कंधपरिणमित होनेपर भी उससे भिन्न है, उसे परमाणु समझें।

८२. जो इंद्रियोंसे उपभोग्य है, तथा काया, मन और कर्म आदि जो जो मूर्त्त पदार्थ हैं उन सबको पुद्गलद्रव्य समझें।

८३. धर्मास्तिकाय अरस, अवर्ण, अगंध, अशब्द और अस्पर्श है; सकल लोकप्रमाण है; अखंडित, विस्तीर्ण और असंख्यातप्रदेशात्मक द्रव्य है।

८४. वह अनंत अगुरुलघुगुणोंसे निरंतर परिणमित है; गतिक्रियायुक्त जीव आदिके लिये कारणभूत है; और स्वयं अकार्य है; अर्थात् वह द्रव्य किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है।

८५. जिस तरह मत्स्यकी गतिमें जल उपकारक है, उसी तरह जो जीव और पुद्गलकी गतिमें उपकारक है, उसे 'धर्मास्तिकाय' जानें।

८६. जैसे धर्मास्तिकाय द्रव्य है वैसे अधर्मास्तिकाय भी द्रव्य है ऐसा जानें। वे स्थितिक्रिया-युक्त जीव और पुद्गलको पृथ्वीकी भाँति कारणभूत हैं।

८७. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके कारण लोक-अलोकका विभाग होता है। ये धर्म और अधर्म द्रव्य दोनों अपने अपने प्रदेशोंसे भिन्न भिन्न हैं। स्वयं हलन-चलन क्रियासे रहित हैं, और लोकप्रमाण हैं।

८८. धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलको चलाता है, ऐसी बात नहीं है; जीव और पुद्गल गति करते हैं, उन्हें सहायक है।

८९.

९०. जो सब जीवोंको तथा शेष पुद्गल आदि द्रव्योंको सम्पूर्ण अवकाश देता है, उसे 'लोकाकाश' कहते हैं।

९१. जीव, पुद्गलसमूह, धर्म और अधर्म, ये द्रव्य लोकसे अनन्य हैं; अर्थात् लोकमें हैं, लोकसे बाहर नहीं हैं। आकाश लोकसे भी बाहर है, और वह अनंत है, जिसे 'अलोक' कहते हैं।

९२. यदि गति और स्थितिका कारण आकाश होता, तो धर्म और अधर्म द्रव्यके अभावके कारण सिद्ध भगवानका अलोकमें भी गमन होता।

९३. इसीलिये सर्वज्ञ वीतरागदेवने सिद्ध भगवानका स्थान उर्ध्वलोकांतमें बताया है। इससे आकाश गति और स्थितिका कारण नहीं है ऐसा जानें।

९४. यदि गतिका कारण आकाश होता अथवा स्थितिका कारण आकाश होता, तो अलोककी हानि होती और लोकके अंतकी वृद्धि भी हो जाती।

९५. इसलिये धर्म और अधर्म द्रव्य गति तथा स्थितिके कारण हैं, परन्तु आकाश नहीं है। इस प्रकार सर्वज्ञ वीतरागदेवने श्रोता जीवोंको लोकका स्वभाव बताया है।

९६. धर्म, अधर्म और (लोक) आकाश अपृथग्भूत (एकक्षेत्रावगाही) और समान परिमाणवाले हैं। निश्चयसे तीनों द्रव्योंकी पृथक् उपलब्धि है, और वे अपनी अपनी सत्तासे रहे हुए हैं। इस तरह इनमें एकता और अनेकता, दोनों हैं।

९७. आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्त्त हैं, और पुद्गलद्रव्य मूर्त्त है। उनमें जीवद्रव्य चेतन है।

९८. जीव और पुद्गल एक दूसरेकी क्रियामें सहायक हैं। दूसरे द्रव्य (उस प्रकारसे) सहायक नहीं हैं। जीव पुद्गलद्रव्यके निमित्तसे क्रियावान होता है। कालके कारणसे पुद्गल अनेक स्कंधरूपसे परिणमन करता है।

९९. जीवद्वारा जो इंद्रियग्राह्य विषय है वे पुद्गल-द्रव्य मूर्त्त हैं, शेष अमूर्त्त हैं। मन मूर्त्त एवं अमूर्त दोनों प्रकारके पदार्थोंको जानता है, अपने विचारसे निश्चित पदार्थोंको जानता है।

१००. काल परिणामसे उत्पन्न होता है, परिणाम कालसे उत्पन्न होता है। दोनोंका यह स्वभाव है। 'निश्चयकाल' से 'क्षणभंगुरकाल' होता है।

१०१. काल शब्द अपने सद्भाव—अस्तित्वका बोधक है, उनमेंसे एक (निश्चयकाल) नित्य है। दूसरा (समयरूप व्यवहारकाल) उत्पत्ति विनाशवाला है, और दीर्घांतर स्थायी है।

१०२. काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और जीव, इन सबकी द्रव्य संज्ञा है। कालकी अस्तिकाय संज्ञा नहीं है।

१०३. इस तरह निर्ग्रन्थके प्रवचनके रहस्यभूत इस पंचास्तिकायके स्वरूप-विवेचनके संक्षेपको जो यथार्थ रूपसे जानकर राग और द्वेषसे मुक्त हो जाता है वह सब दुःखोंसे परिमुक्त हो जाता है।

१०४. इस परमार्थको जानकर जो जीव मोहका नाशक हुआ है और जिसने रागद्वेषको शांत किया है वह जीव संसारकी दीर्घ परम्पराका नाश करके शुद्धात्मपदमें लीन हो जाता है।

इति पंचास्तिकाय प्रथम अध्याय।

ॐ जिनाय नमः। नमः श्री सद्गुरवे।

१०५. मोक्षके कारणभूत श्री भगवान महावीरको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उन भगवानके कहे हुए पदार्थप्रभेदरूप मोक्षमार्गको कहता हूँ।

१०६. सम्यक्त्व, आत्मज्ञान और रागद्वेषसे रहित ऐसा चारित्र तथा सम्यक् बुद्धि जिन्हें प्राप्त हुई है ऐसे भव्यजीवको मोक्षमार्ग प्राप्त होता है।

१०७. तत्त्वार्थकी प्रतीति 'सम्यक्त्व' है, तत्त्वार्थका ज्ञान 'ज्ञान' है और विषयके विमूढ़ मार्गके प्रति शांतभाव 'चारित्र' है।

१०८. जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष—ये नव तत्त्व हैं।

१०९. जीव दो प्रकारके हैं—संसारी और असंसारी। दोनों चैतन्यस्वरूप और उपयोग-लक्षणवाले हैं। संसारी देहसहित और असंसारी देहरहित होते हैं।

११०. पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये जीवसंश्रित काय हैं। इन जीवोंको मोहकी प्रबलता है और स्पर्श-इंद्रियके विषयका उन्हें ज्ञान है।

१११. इनमेंसे तीन स्थावर हैं और अल्पयोगवाले अग्नि और वायुकाय त्रस हैं। ये सभी मन-परिणामसे रहित 'एकेंद्रिय जीव' हैं ऐसा जानें।

११२. ये पाँचों प्रकारके जीवसमूह मनपरिणामसे रहित और एकेंद्रिय हैं ऐसा सर्वज्ञने कहा है।

११३. जिस तरह अंडेमें पक्षीका गर्भ बढ़ता है, जिस तरह मनुष्यगर्भमें मूर्च्छागत अवस्था होनेपर भी जीवत्व है; उसी तरह 'एकेंद्रिय जीव' भी जानना चाहिये।

११४. शंबूक, शंख, सीप, कृमि इत्यादि जो जीव रस और स्पर्शको जानते हैं, उन्हें 'दो इन्द्रिय जीव' जानना चाहिये।

११५. जूँ, खटमल, चींटी, बिच्छू इत्यादि अनेक प्रकारके दूसरे भी कीड़े रस, स्पर्श और गन्धको जानते हैं, उन्हें 'तीन इन्द्रिय जीव' जानना चाहिये।

११६. डांस, मच्छर, मक्खी, भ्रमरी, भ्रमर, पतंग आदि रूप, रस, गन्ध और स्पर्शको जानते हैं, उन्हें 'चार इन्द्रिय जीव' जानना चाहिये।

११७. देव, मनुष्य, नारक, तिर्यंच, जलचर, स्थलचर और खेचर वर्ण, रस, स्पर्श गन्ध और शब्दको जानते हैं, ये बलवान 'पाँच इन्द्रियवाले जीव' हैं।

११८. देवताके चार निकाय हैं। मनुष्य कर्म और अकर्म भूमिके भेदसे दो प्रकारके हैं। तिर्यंचके अनेक प्रकार हैं; और नारकी जितने नरक-पृथ्वीके भेद हैं उतने ही है।

११९. पूर्वकालमें बाँधी हुई आयुके क्षीण हो जानेपर जीव गतिनामकर्मके कारण आयु और लेश्याके प्रभावसे अन्य देहको प्राप्त होता है।

१२०. देहाश्रित जीवोंके स्वरूपका यह विचार निरूपित किया। ये भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारके हैं। देहरहित जीव 'सिद्ध भगवान' है।

१२१. इन्द्रियाँ जीव नहीं हैं, तथा काया भी जीव नहीं हैं; परन्तु जीवके ग्रहण किये हुए साधन मात्र हैं। वस्तुतः तो जिन्हें ज्ञान है उनको ही जीव कहते हैं।

१२२. जो सब जानता है, देखता है, दुःखको दूर कर सुख चाहता है, शुभ-अशुभ क्रियाको करता है और उनका फल भोगता है, वह 'जीव' है।

१२३.

१२४. आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म द्रव्यमें जीवत्वगुण नहीं हैं, उन्हें अचेतन कहते हैं, और जीवको सचेतन कहते हैं।

१२५. सुख-दुःखका वेदन, हितमें प्रवृत्ति, अहितसे भीति—ये तीनों कालमें जिसको नहीं है उसे सर्वज्ञ महामुनि 'अजीव' कहते हैं।

१२६. संस्थान, संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गंध और शब्द इस तरह पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न होनेवाले अनेक गुणपर्याय हैं।

१२७. अरस, अरूप, अगंध, अशब्द, अनिर्दिष्ट संस्थान और वचन अगोचर ऐसा जिसका चैतन्यगुण है वह 'जीव' है।

१२८. जो निश्चयसे संसारस्थित जीव है, उसका अशुद्ध परिणाम होता है। उस परिणामसे कर्म उत्पन्न होता है, उससे शुभ और अशुभ गति होती है।

१२९. गतिकी प्राप्तिसे देह होती है, देहसे इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण होता है, और उससे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

१३०. संसारचक्रमें अशुद्ध भावसे परिभ्रमण करते हुए जीवोंमेंसे, कुछ जीवोंका संसार अनादि सांत है और किसीका अनादि अनन्त है ऐसा भगवान सर्वज्ञने कहा है।

१३१. जिसके भावोंमें अज्ञान, रागद्वेष और चित्तप्रसन्नता रहती है, उसके शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं।

१३२. जीवको शुभ परिणामसे पुण्य होता है, और अशुभ परिणामसे पाप होता है। उससे शुभाशुभ पुद्गलके ग्रहणरूप कर्मत्व प्राप्त होता है।

१३३, १३४, १३ , १३६

१३७. तृषातुर, क्षुधातुर, रोगी अथवा अन्य दुःखी मनके जीवको देखकर उसका दुःख मिटानेकी प्रवृत्ति की जाय उसे 'अनुकंपा' कहते हैं।

१३८. क्रोध, मान, माया और लोभकी मीठाश जीवको क्षुभित करती है, और पाप भावको उत्पन्न करती है।

१३९. वहुत प्रमादवाली क्रिया, चित्तकी मलिनता, इन्द्रिय-विषयमें लोलुपता, दूसरे जीवोंको दुःख देना और उनकी निंदा करना इत्यादि आचरणोंसे जीव 'पापास्रव' करता है।

१४०. चार संज्ञा, कृष्णादि तीन लेश्या, इन्द्रियवशता, आर्त्त और रौद्र ध्यान, दुष्ट भाववाली धर्म क्रियामें मोह ये 'भाव-पापास्रव' हैं।

१४१. इन्द्रियों, कषाय और संज्ञाको जय करनेवाले कल्याणकारी मार्गमें जीव जिस समय रहता है उस समय उसके पापास्रवरूप छिद्रका निरोध हो जाता है ऐसा जानना चाहिये।

१४२. जिनको सव द्रव्योंमें राग, द्वेष और अज्ञान नहीं रहते, ऐसे सुख-दुःखमें समदृष्टिके स्वामी निग्रंथ महात्माको शुभाशुभ आस्रव नहीं होता।

१४३. जिस संयमीको योगोंमें जब पुण्य-पापकी प्रवृत्ति नहीं होती तब उसको शुभाशुभ कर्मके कर्तृत्वका 'संवर' हो जाता है, 'निरोध' हो जाता है।

१४४. जो योगका निरोध करके तप करता है वह निश्चयसे अनेक प्रकारके कर्मोंकी निर्जरा करता है।

१४५. जो आत्मार्थका साधक संवरयुक्त होकर, आत्मस्वरूपको जानकर तद्रूप ध्यान करता है वह महात्मा साधु कर्मरजको झाड़ डालता है।

१४६. जिसको राग, द्वेष, मोह और योगपरिणमन नहीं है उसको शुभाशुभ कर्मोंको जलाकर भस्म कर देनेवाली ध्यानरूपी अग्नि प्रगट होती है।

१४७, १४८, १४९, १५०, १५१.

१५२ दर्शनज्ञानसे परिपूर्ण, अन्य द्रव्यके संसर्गसे रहित ऐसा ध्यान जो निर्जराहेतुसे करता है वह महात्मा 'स्वभावसहित' है।

१५३. जो संवरयुक्त सब कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ वेदनीय और आयुकर्मसे रहित होता है, वह महात्मा उसी भवमें 'मोक्ष' जाता है।

१५४. जीवका स्वभाव अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन है। उसके अनन्यमय आचरण (शुद्ध निश्चयमय स्थिर स्वभाव) को सर्वज्ञ वीतरागने 'निर्मल चारित्र' कहा है।

१५५. वस्तुतः आत्माका स्वभाव निर्मल ही है। गुण और पर्याय अनादिसे परसमयपरिणामी-रूपसे परिणत है उस दृष्टिसे अनिर्मल है। यदि वह आत्मा स्वसमयको प्राप्त हो तो कर्मबन्धसे रहित होता है।

१५६. जो परद्रव्यमें शुभ अथवा अशुभ राग करता है वह जीव 'स्वचारित्र' से भ्रष्ट है और 'परचारित्र' का आचरण करता है, ऐसा समझें।

१५७. जिस भावसे आत्माको पुण्य अथवा पाप-आस्रवकी प्राप्ति होती है, उसमें प्रवृत्ति करनेवाला आत्मा परचारित्रका आचरण करता है, इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञने कहा है।

१५८. जो सर्व संगसे मुक्त होकर अनन्यमयतासे आत्मस्वभावमें स्थित है, निर्मल ज्ञाता-द्रष्टा है, वह 'स्वचारित्र' का आचरण करनेवाला जीव है।

१५९. परद्रव्यमें अहंभावरहित, निर्विकल्प ज्ञानदर्शनमय परिणामी आत्मा है वह स्वचारित्रा-चरण है।

१६०. धर्मास्तिकायादिके स्वरूपकी प्रतीति 'सम्यक्त्व' है, बारह अंग और चौदह पूर्वका जानना 'ज्ञान' है, और तपश्चर्यादिमें प्रवृत्ति करना 'व्यवहार-मोक्षमार्ग' है।

१६१. उन तीनसे समाहित आत्मा, जहाँ आत्माके सिवाय अन्य किंचित् मात्र नहीं करता, मात्र अनन्य आत्मामय है वहाँ सर्वज्ञ वीतरागने 'निश्चय-मोक्षमार्ग' कहा है।

१६२. जो आत्मा आत्मस्वभावमय ज्ञानदर्शनका अनन्यमयतासे आचरण करता है, उसे वह निश्चय ज्ञान, दर्शन और चारित्र है।

१६३. जो यह सब जानेगा और देखेगा वह अव्याबाध सुखका अनुभव करेगा। इन भावोंकी प्रतीति भव्यको होती है, अभव्यको नहीं होती।

१६४. दर्शन, ज्ञान और चारित्र यह 'मोक्षमार्ग' है; इसके सेवनसे 'मोक्ष' प्राप्त होता है और (अमुक हेतुसे) 'बन्ध' होता है ऐसा मुनियोंने कहा है।

१६५.

१६६. अर्हंत, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन, मुनिगण और ज्ञानकी भक्तिसे परिपूर्ण आत्मा बहुत पुण्य-का उपार्जन करता है, किन्तु वह कर्मक्षय नहीं करता।

१६७. जिसके हृदयमें अणुमात्र भी परद्रव्यके प्रति राग है, वह सभी आगमोंका ज्ञाता हो तो भी 'स्वसमय' को नहीं जानता, ऐसा समझें।

१६८.

१६९. इसलिये जो सर्व इच्छासे निवृत्त होकर निःसंग और निर्ममत्व होकर सिद्धस्वरूपकी भक्ति करता है वह निर्वाणको प्राप्त होता है।

१७०. जिसे परमेष्ठीपदमें तत्त्वार्थप्रतीतिपूर्वक भक्ति है, और निर्ग्रंथ-प्रवचनमें रुचिपूर्वक जिसकी बुद्धि परिणत हुई है और जो संयमतपसहित है, उसके लिये मोक्ष बिलकुल दूर नहीं है।

१७१. अर्हंत, सिद्ध, चैत्य और प्रवचनकी भक्तिपूर्वक यदि जीव तपश्चर्या करता है, तो वह अवश्य ही देवलोकको अंगीकार करता है।

१७२. इसलिये इच्छामात्रकी निवृत्ति करे, सर्वत्र किंचित्मात्र भी राग न करे, क्योंकि वीत-राग ही भवसागरको तर जाता है।

१७३. मैंने प्रवचनकी भक्तिसे प्रेरित होकर मार्गकी प्रभावनाके लिये प्रवचनके रहस्यभूत 'पंचास्तिकाय' के संग्रहरूप इस शास्त्रको कहा है।

इति पंचास्तिकायसमाप्तम्।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित
श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) के

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची

(१) गोम्मटसार जीवकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, श्री ब्रह्मचारी पं० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत संस्कृत छाया तथा नयी हिन्दी टीका युक्त। अबकी बार पंडितजीने धवल, जयधवल, महाधवल और बड़ी संस्कृतटीकाके आधारसे विस्तृत टीका लिखी है। षष्ठावृत्ति।

मूल्य—तीस रुपये।

(२) गोम्मटसार कर्मकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृत छाया और हिन्दी टीका। पं० खूबचन्दजी द्वारा संशोधित जैन सिद्धान्त-ग्रन्थ है। पंचमावृत्ति।

मूल्य—अट्ठाईस रुपये।

(३) स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

स्वामिकार्तिकेयकृत मूल गाथाएँ, श्री शुभचन्द्रकृत बड़ी संस्कृत टीका तथा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीकृत हिन्दी टीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक संपादन। द्वितीयावृत्ति।

मूल्य—उन्नीस रुपये।

(४) परमात्मप्रकाश और योगसार

श्री योगीन्दुदेवकृत मूल अपभ्रंश दोहे, श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका व पं० दौलतरामजीकृत हिन्दी टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिन्दीसार सहित। महान् अध्यात्मग्रंथ। डॉ० आ० ने० उपाध्येका अमूल्य सम्पादन। नवीन चतुर्थ संस्करण।

मूल्य—अठारह रुपये।

(५) ज्ञानार्णव

श्री शुभचन्द्राचार्यकृत महान् योगशास्त्र। सुजानगढ़ निवासी पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। पंचमावृत्ति।

मूल्य—पच्चीस रुपये।

(६) प्रवचनसार

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ग्रन्थरत्नपर श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत तत्त्वप्रदीपिका एवं श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकाएँ तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषा टीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद तथा विशद प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। चतुर्थावृत्ति।

मूल्य—छत्तीस रुपये।

(७) बृहद्द्रव्यसंग्रह

आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित मूल गाथाएँ, संस्कृत छाया, श्री ब्रह्मदेवविनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं० जवाहरलाल शास्त्रीप्रणीत हिन्दीभाषानुवाद। षड्द्रव्यसप्ततत्त्वस्वरूपवर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ। चतुर्थावृत्ति।

मूल्य—बारह रुपये पचास पैसे।

(८) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक। पं० टोडरमल्लजी तथा पं० दौलतरामजीकी टीकाके आधारपर पं० नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दी टीका सहित। श्रावकमुनिधर्मका चित्तस्पर्शी अद्भुत वर्णन। षष्ठावृत्ति। मूल्य—पाँच रुपये।

(९) पञ्चास्तिकाय

श्री कुन्दकुन्दाचार्यविरचित अनुपम ग्रन्थराज। श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत 'समयव्याख्या' (तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति) एवं श्री जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीकाके आधारपर पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—बत्तीस रुपये।

(१०) स्याद्वादमञ्जरी

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकृत अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका तथा श्री मल्लिषेणसूरिकृत संस्कृत टीका। श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी० कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बड़ी खोजसे लिखे गये ८ परिशिष्ट हैं। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—इक्कीस रुपये।

(११) इष्टोपदेश

श्री पूज्यपाद-देवनन्दि आचार्यकृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर श्री आशाधरकृत संस्कृतटीका, पं० धन्यकुमारजी जैनदर्शनाचार्य एम० ए० कृत हिन्दीटीका, बैरिस्टर चम्पतरायजीकृत अंग्रेजी टीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवादों सहित भाववाही आध्यात्मिक रचना। तृतीय आवृत्ति। मूल्य—बारह रुपये।

(१२) लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीरचित करणानुयोग ग्रन्थ। पंडितप्रवर टोडरमल्लजीकृत बड़ी टीका सहित। श्री फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका अमूल्य सम्पादन। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—तेंतालीस रुपये।

(१३) द्रव्यानुयोगतर्कणा

श्री भोजकवि कृत मूल श्लोक तथा व्याकरणाचार्य ठाकुरप्रसादजी शर्माकृत हिन्दी अनुवाद। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—ग्यारह रुपये पचीस पैसे।

(१४) न्यायावतार

महान् तार्किक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरकृत मूल श्लोक व जैनदर्शनाचार्य पं० विजयमूर्ति एम०ए० कृत श्री सिद्धर्षिगणिकी संस्कृतटीकाका हिन्दीभाषानुवाद। न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१५) प्रशमरतिप्रकरण

आचार्य श्री उमास्वातिविरचित मूल श्लोक, श्री हरिभद्रसूरिकृत संस्कृतटीका और पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। प्रथमावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१६) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र)

श्री उमास्वातिकृत मूलसूत्र और स्वोपज्ञ भाष्य तथा पं० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषा-टीका। तत्त्वोंका हृदयग्राह्य गम्भीर विश्लेषण। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१७) सप्तभंगीतरंगिणी

श्री विमलदासकृत मूल और पंडित ठाकुरप्रसादजी शर्मा कृत भाषाटीका। न्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तृतीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१८) समयसार

आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित महान् अध्यात्म ग्रन्थ। आत्मख्याति, तात्पर्यवृत्ति, आत्मख्याति-भाषावचनिका—इन तीन टीकाओं सहित तथा पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित। तृतीयावृत्ति। मूल्य—बत्तीस रुपये।

(१९) इष्टोपदेश

मात्र अंग्रेजी टीका व पद्यानुवाद। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२०) परमात्मप्रकाश

मात्र अंग्रेजी प्रस्तावना व मूल गाथाएँ। मूल्य—दो रुपये।

(२१) योगसार

मूल गाथाएँ व हिन्दी सार। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२२) कार्तिकेयानुप्रेक्षा

मूल्य गाथाएँ और अंग्रेजी प्रस्तावना। मूल्य—दो रुपये पचास पैसे।

(२३) प्रवचनसार

अंग्रेजी प्रस्तावना, प्राकृत मूल, अंग्रेजी अनुवाद तथा पाठांतर सहित। मूल्य—पाँच रुपये।

(२४) अष्टप्राभृत

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित मूल गाथाओंपर श्री रावजीभाई देसाई द्वारा गुजराती गद्य पद्यात्मक भाषान्तर। मूल्य—दो रुपये।

(२५) मोक्षमाला (भावनाबोध सहित)

श्रीमद् राजचन्द्रकृत मूल गुजराती ग्रन्थका श्री हंसराजजीकृत हिन्दी अनुवाद। इसमें जैन धर्मको यथार्थ समझानेका-प्रयास किया गया है। भाषाशैली बहुत सुन्दर और सरल है। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। साथमें भावनाबोधमें बारह भावनाओंका सुन्दर दृष्टान्तसहित वर्णन है। तृतीयावृत्ति मूल्य—छः रुपये।

(२६) क्रियाकोष

कवि किशनसिंह विरचित श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका सविस्तर वर्णन करनेवाली पद्यमय रचना। श्री पन्नालालजी साहित्याचार्यकृत हिन्दी अनुवाद सहित। मूल्य—छब्बीस रुपये।

अधिक मूल्यके ग्रन्थ मँगानेवालोंको कमीशन दिया जायेगा। इसके लिये वे हमसे पत्र व्यवहार करें।

श्रीमद् राजचंद्र आश्रमकी ओरसे

प्रकाशित ग्रंथ

गुजराती भाषामें—

१. श्रीमद् राजचंद्र २. मोक्षमाला (भावनाबोध सहित) ३. तत्त्वज्ञान ४. पत्रशतक ५. आत्मसिद्धिशास्त्र ६. आत्मसिद्धि विवेचन ७. सुबोध संग्रह ८. श्रीमद् राजचंद्र जीवनकला ९. श्रीमद् राजचंद्र आत्मकथा १०. उपदेशछाया ११. श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्री) उपदेशामृत १२. नित्यक्रम १३. नित्यनियमादि पाठ (भावार्थसहित) १४. समाधिसोपान (रत्नकरण्डश्रावकाचारके विशिष्ट स्थलोंका अनुवाद) १५. आठ दृष्टिनी सज्झाय (भावार्थ सहित) १६. आलोचनादि पद संग्रह १७. आलोचनादि पद संग्रह (संक्षिप्त) १८. ज्ञानमंजरी १९. सहज सुख साधन २०. धर्मामृत (अप्राप्य) २१. समयसार (अप्राप्य) २२. पूजासंचय २३. तत्त्वज्ञानतरंगिणी २४. परमात्मप्रकाश २५. सुवर्ण महोत्सव (आश्रम परिचय) २६. पूजादि स्मरणांजलि काव्यो।

हिंदी अनुवाद

१. श्रीमद् राजचंद्र २. उपदेशछाया ३. श्रीमद्राजचंद्र जीवनकला ४. नित्यनियमादि पाठ (भावार्थयुक्त)

बालबोध लिपिमें (भाषा गुजराती, लिपि हिंदी)

१. नित्यक्रम २. तत्त्वज्ञान

अन्य

१ A Great Seer

आश्रमके गुजराती प्रकाशनोंका पृथक् सूचीपत्र मंगाइये। सभी ग्रन्थोंपर डाकखर्च अलग

: प्राप्तिस्थान :

१. श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम,
स्टेशन–अगास; पोस्ट–बोरिया
वाया–आणंद (गुजरात)
पिन : ३८८१३०

२. श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,
(श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)
चोकसी चेम्बर, खारा कुंवा, जौहरी बाजार
बम्बई–४००००२